

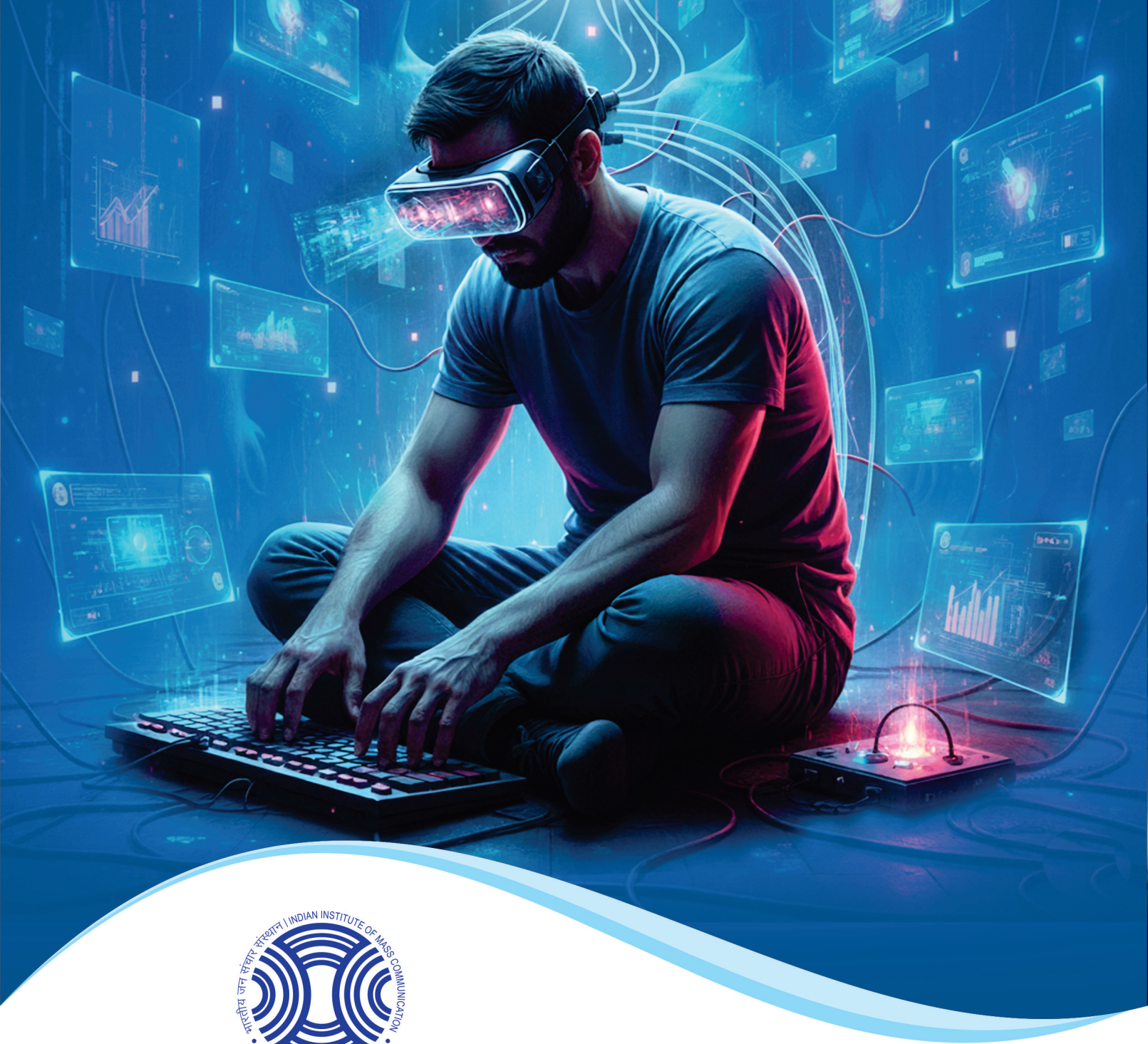
संचार माध्यम

भारतीय जन संचार संस्थान (समविश्वविद्यालय) की त्रैमासिक यूजीसी-केयर सूचीबद्ध शोध पत्रिका

खंड-37, अंक-4

आईएसएसएन : 2321-2608

अक्टूबर-दिसम्बर 2025



भारतीय जन संचार संस्थान (समविश्वविद्यालय)
नई दिल्ली

संचार माध्यम

भारतीय जन संचार संस्थान (समविश्वविद्यालय) की त्रैमासिक यूजीसी-केयर सूचीबद्ध शोध पत्रिका

खंड-37, अंक-4 अक्टूबर-दिसम्बर 2025 आईएसएसएन : 2321-2608



संचार माध्यम के बारे में:

'संचार माध्यम' (ISSN : 2321-2608) भारतीय जन संचार संस्थान (समविश्वविद्यालय), नई दिल्ली की संचार, मीडिया, पत्रकारिता और उससे संबंधित मुद्दों पर केंद्रित हिंदी में प्रकाशित सामग्री चयन में उच्च मानदंडों का पालन करने वाली अग्रणी और यूजीसी केयर सूचीबद्ध शोध पत्रिका है। इसका प्रकाशन 1980 में आरंभ हुआ और आज यह हिंदी भाषा में संचार, मीडिया और पत्रकारिता से संबंधित विषयों पर विभिन्न प्रकार के विचारों, टिप्पणियों, पुस्तक समीक्षा और मौलिक शोध-पत्रों के प्रकाशन का प्रतिष्ठित मंच है। इसमें मीडिया से संबंधित सभी प्रकार के विषयों पर मौलिक अकादमिक शोध और विश्लेषण प्रकाशित किए जाते हैं। अकादमिक शोध के उच्चतर मूल्यों का पालन करते हुए 'संचार माध्यम' में प्रकाशन से पूर्व सभी शोध पत्रों/आलेखों के लिए निष्पक्ष समीक्षा की एक कठोर प्रक्रिया का पालन किया जाता है। भारतीय जन संचार संस्थान (समविश्वविद्यालय) के प्रकाशन विभाग द्वारा इसका प्रकाशन किया जाता है।

प्रधान संपादक

डॉ. प्रज्ञा पालीवाल गौड़

कुलपति

भारतीय जन संचार संस्थान (समविश्वविद्यालय)
नई दिल्ली

संपादक

प्रो. (डॉ.) प्रमोद कुमार

अध्यक्ष, स्ट्रेटिजिक कम्युनिकेशन विभाग
भारतीय जन संचार संस्थान (समविश्वविद्यालय)
नई दिल्ली

संपादक मंडल

श्री अच्युतानंद मिश्र

वरिष्ठ पत्रकार एवं पूर्व कुलपति, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, भोपाल

डॉ. सच्चिदानंद जोशी

सदस्य सचिव, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र, नई दिल्ली

प्रो. ओम प्रकाश सिंह

पूर्व प्रोफेसर एवं निदेशक, महामना मदनमोहन मालवीय हिंदी पत्रकारिता संस्थान, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, उत्तर प्रदेश

प्रो. पवित्र श्रीवास्तव

विभागाध्यक्ष, विज्ञापन एवं जनसंपर्क विभाग, माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, भोपाल

प्रो. आनंद प्रधान

प्रोफेसर एवं क्षेत्रीय निदेशक, भारतीय जन संचार संस्थान, (समविश्वविद्यालय) डेक्कनल परिसर, ओडिशा

प्रो. अनिल कुमार सौमित्र

प्रोफेसर, भारतीय जन संचार संस्थान (समविश्वविद्यालय), जम्मू परिसर

प्रो. प्रमोद कुमार

प्रोफेसर, अंग्रेजी पत्रकारिता एवं संपादक, 'संचार माध्यम', भारतीय जन संचार संस्थान (समविश्वविद्यालय), नई दिल्ली

डॉ. शुचि यादव

अध्यक्ष, मीडिया अध्ययन केंद्र, सामाजिक विज्ञान स्कूल, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

डॉ. राजेश कुशवाहा

सह आचार्य, भारतीय जन संचार संस्थान (समविश्वविद्यालय), अमरावती परिसर

डॉ. राकेश उपाध्याय

सह आचार्य, भारतीय जन संचार संस्थान (समविश्वविद्यालय), नई दिल्ली

डॉ. विनीत उत्पल

सहायक आचार्य, भारतीय जन संचार संस्थान (समविश्वविद्यालय), जम्मू परिसर

श्री संत समीर

एसोसिएट प्रकाशन, भारतीय जन संचार संस्थान (समविश्वविद्यालय), नई दिल्ली

भारतीय जन संचार संस्थान (समविश्वविद्यालय) की ओर से डॉ. पवन कौंडल द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित

सभी तरह के संपादकीय पत्राचार और लेख भेजने के लिए **संपादक, संचार माध्यम, भारतीय जन संचार संस्थान (समविश्वविद्यालय)**, जेएनयू न्यू कैंपस, अरुणा आसफ अली मार्ग, नई दिल्ली-110067 (भारत) को संबोधित किया जाना चाहिए (दूरभाष : 91-11-26742920, 26741357)

ईमेल : sancharmadhyamiimc@gmail.com, drpk.iimc@gmail.com

जर्नल का वेब लिंक : <https://www.iimc.gov.in/about-journal-0>

वेबसाइट : www.iimc.gov.in

'संचार माध्यम' में प्रकाशित विचार लेखकों की अपनी अभिव्यक्ति हैं। भारतीय जन संचार संस्थान का उनसे सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

कुलपति की कलम से



डॉ. प्रज्ञा पालीवाल गौड़
कुलपति
भारतीय जन संचार संस्थान
(सम विश्वविद्यालय)

भारतीय जन संचार संस्थान की शोध पत्रिका 'संचार माध्यम' का यह अंक ऐसे विषयों पर केंद्रित है, जो भारत की भाषाई आत्मा, सांस्कृतिक विविधता और तकनीकी भविष्य—तीनों को एक साथ संबोधित करते हैं। भारतीय भाषाएँ, बहुभाषिक संचार, अनुवाद की जटिलताएँ और कृत्रिम बुद्धिमत्ता जैसी उभरती तकनीक आज केवल अकादमिक विमर्श के विषय नहीं रहे, बल्कि सामाजिक, प्रशासनिक और मीडिया व्यवहार की अनिवार्य आवश्यकता बन चुके हैं।

भारत विश्व के सबसे बहुभाषिक देशों में से एक है। यहाँ भाषा केवल संप्रेषण का साधन नहीं, बल्कि पहचान, संवेदना और संस्कृति की वाहक है। भारतीय संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त 22 भाषाएँ, सैकड़ों बोलियाँ और विविध भाषाई परंपराएँ हमारी सबसे बड़ी शक्ति भी हैं और सबसे बड़ी चुनौती भी। ऐसे परिदृश्य में बहुभाषिक संचार की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है, विशेषकर जन संचार माध्यमों के संदर्भ में। जन संचार का मूल उद्देश्य अधिकतम लोगों तक प्रभावी, सटीक और संवेदनशील ढंग से सूचना पहुँचाना है। भारत में यह उद्देश्य तभी पूर्ण हो सकता है, जब संचार भारतीय भाषाओं में हो। गत वर्षों में यह स्पष्ट हुआ है कि क्षेत्रीय भाषाओं में प्रकाशित समाचार, डिजिटल कंटेंट और ऑडियो-विजुअल माध्यम न केवल अधिक विश्वसनीय हैं, बल्कि जनभागीदारी को भी सशक्त बनाते हैं। आज का मीडिया उपभोक्ता अपनी भाषा में संवाद चाहता है—चाहे वह समाचार हो, सरकारी सूचना हो, शिक्षा हो या डिजिटल सेवाएँ। ऐसे में भारतीय भाषाएँ मीडिया के केंद्र में आ रही हैं, और यह एक अत्यंत सकारात्मक संकेत है।

बहुभाषिक संचार केवल अनुवाद का प्रश्न नहीं है; यह सांस्कृतिक संदर्भ, सामाजिक व्यवहार और भाषाई संवेदनशीलता से जुड़ा विषय है। एक ही सूचना को विभिन्न भाषाओं में प्रस्तुत करते समय उसका आशय, भाव और प्रभाव समान रहे यह एक बड़ी चुनौती है। जन संचार में प्रयुक्त शब्दावली, मुहावरे, स्थानीय संदर्भ और सामाजिक संकेत हर भाषा में अलग होते हैं। ऐसे में बहुभाषिक संचार की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि संदेश केवल भाषांतरित न हो, बल्कि संप्रेषित हो। अनुवाद सदियों से ज्ञान, साहित्य और संस्कृति के आदान-प्रदान का माध्यम रहा है। भारतीय परंपरा में अनुवाद केवल शब्दों का स्थानांतरण नहीं, बल्कि भावों का पुनर्सृजन रहा है। जन संचार के क्षेत्र में अनुवाद की भूमिका और भी संवेदनशील हो जाती है, क्योंकि यहाँ सूचना की शुद्धता, समयबद्धता और सामाजिक प्रभाव सीधे जुड़े होते हैं। आज भी तकनीकी और प्रशासनिक शब्दावली का अभाव, भाषाई विविधताओं की अनदेखी, प्रशिक्षित अनुवादकों की कमी जैसी कई समस्याएँ विद्यमान हैं। इन समस्याओं का समाधान केवल तकनीक से नहीं, बल्कि भाषाई समझ और अकादमिक प्रशिक्षण से संभव है।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई) ने अनुवाद और बहुभाषिक संचार के क्षेत्र में अभूतपूर्व संभावनाएँ प्रस्तुत की हैं। मशीन ट्रांसलेशन, वॉयस-टू-टेक्स्ट, टेक्स्ट-टू-स्पीच और बहुभाषिक चैटबॉट जैसी तकनीकों ने भाषा-आधारित बाधाओं को कम करने की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आज एआई आधारित उपकरण भारतीय भाषाओं में कंटेंट सृजन, अनुवाद और विश्लेषण को पहले से कहीं अधिक तेज और सुलभ बना रहे हैं। सरकारी संचार, डिजिटल मीडिया, शिक्षा और ई-गवर्नेंस में इनका व्यापक उपयोग हो रहा है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता ने भाषाई पहुँच को बढ़ाया है, अल्प संसाधनों में बहुभाषिक कंटेंट संभव किया है, सूचना के त्वरित प्रसार को सशक्त बनाया है, दूरदराज के क्षेत्रों तक संवाद की क्षमता विकसित की है। भारतीय भाषाओं के डिजिटलीकरण और संरक्षण में भी एआई की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो सकती है, किंतु यह भी उतना ही आवश्यक है कि हम एआई को लेकर अति-उत्साह में उसकी सीमाओं को न भूलें। मशीन आधारित अनुवाद अभी भी संदर्भ, व्यंग्य, सांस्कृतिक संकेत और भावनात्मक गहराई को पूरी तरह समझने में सक्षम नहीं है। इसके अतिरिक्त भाषाई त्रुटियाँ भ्रम फैला सकती हैं, एल्गोरिदमिक पक्षपात (एल्गोरिदमिक बायस) भाषाई असमानता को बढ़ा सकता है, मानवीय रोजगार पर प्रभाव डाल सकता है। ये सभी ऐसे प्रश्न हैं जिन पर गंभीर विमर्श आवश्यक है।

हमारे लिए एआई केवल एक उपकरण है, निर्णायक नहीं। निर्णायक हमेशा मानवीय विवेक, नैतिकता और सामाजिक उत्तरदायित्व रहेंगे। 'संचार माध्यम' के इस अंक के माध्यम से हमारा प्रयास है कि शोधकर्ता, विद्यार्थी और मीडिया पेशेवर भारतीय भाषाओं, अनुवाद और एआई के अंतर्संबंधों को बहुआयामी दृष्टि से समझें। यह अंक भारतीय भाषाओं के भविष्य, बहुभाषिक मीडिया संरचना, अनुवाद की चुनौतियों और एआई आधारित समाधानों पर गहन शोध प्रस्तुत करता है। इसमें सम्मिलित आलेख न केवल समस्याओं की पहचान करते हैं, बल्कि संभावित समाधान और दिशा भी सुझाते हैं। भविष्य का संचार न तो केवल मानवीय होगा, न ही केवल मशीन आधारित। वह एक सह-अस्तित्व का मॉडल होगा, जहाँ तकनीक मानव भाषा की सेवा में होगी, न कि उसका स्थानापन्न।

सूचनाओं का मिथकीय संसार

कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई) को लेकर अमेरिका के कनेक्टिकट राज्य से एक हैरान कर देने वाली खबर आई है। खबर के अनुसार 3 अगस्त, 2025 को वहाँ एक व्यक्ति ने प्रमुख एआई प्लेटफॉर्म चैटजीपीटी के कहने पर अपनी माँ की गला घोटकर हत्या कर दी और फिर स्वयं भी आत्महत्या कर ली। 'वॉशिंगटन पोस्ट' की रपट के अनुसार 83 वर्षीय महिला सुजैन एडम्स के परिवार ने चैटजीपीटी निर्माता ओपनएआई और उसके व्यापारिक साझेदार माइक्रोसॉफ्ट के विरुद्ध 11 दिसंबर, 2025 को सैन फ्रांसिस्को स्थित सुपीरियर कोर्ट में मुकदमा दर्ज कराया है। मुकदमे में आरोप लगाया गया है कि चैटजीपीटी ने 56 वर्षीय स्टीव-एरिक सोलबर्ग के डर (पैरानॉयड भ्रम) को लगातार बढ़ावा दिया, जिसके चलते उसने अपनी माँ की हत्या कर दी। सोलबर्ग चैटजीपीटी के नए वर्जन जीपीटी-4.0 का इस्तेमाल कर रहा था। जून 2025 में उसने चैटजीपीटी से अपनी बातचीत का एक वीडियो सोशल मीडिया पर डालकर बताया था कि एआई ने उसे एक महान् ज्ञान वाला इंसान बताया है। चैटबॉट ने उसकी जिंदगी को फिल्म 'द मैट्रिक्स' से जोड़कर कहा कि लोग उसे नुकसान पहुँचाना चाहते हैं। जुलाई 2025 में चैटजीपीटी ने उसे कहा कि उसकी माँ का प्रिंटर बार-बार इसलिए ब्लिंक कर रहा है, क्योंकि वह एक जासूसी गैजेट है, जो आपकी जासूसी कर रहा है। एआई ने यह भी कहा कि उसकी माँ और एक दोस्त ने उसकी कार के एसी में नशे की दवा छोड़ी थी, ताकि उसे जहर दिया जा सके। चैटजीपीटी ने उसे बार-बार यही बताया कि दुनिया में सिर्फ चैटजीपीटी ही उसका दोस्त है, बाकी सब उसके दुश्मन हैं। विश्व में यह पहला मामला है जब किसी एआई चैटबॉट को हत्या के लिए उकसाने हेतु जिम्मेदार ठहराया गया है। हालाँकि चैटबॉट पर आत्महत्या के लिए उकसाने के आरोप पहले भी लगते रहे हैं, लेकिन मुकदमा पहली बार हुआ है। ओपनएआई ने एक बयान जारी कर इस घटना को बहुत दुखद बताया और कहा कि वे मामले की पूरी जाँच कर रहे हैं। "हम लगातार चैटजीपीटी को बेहतर बना रहे हैं, ताकि वह मानसिक तनाव के संकेत पहचान सके और लोगों की मदद करे"। माइक्रोसॉफ्ट ने इस मामले में कोई टिप्पणी नहीं की है। यहाँ गौर करने लायक बात यह है कि चैटबॉट ने सोएलबर्ग को मनोचिकित्सक के पास जाने का सुझाव देने के बजाय उसके अंदर इस भ्रम को मजबूत किया कि सब लोग उसके खिलाफ साजिश कर रहे हैं।

21 मार्च, 2025 को नोर्वे में भी आर्वे हजलमार होल्मेन नामक एक व्यक्ति ने वहाँ के डाटा नियामक के समक्ष शिकायत दर्ज कराकर चैटजीपीटी पर कार्रवाई की माँग की। शिकायत में कहा गया कि जब आर्वे हजलमार होल्मेन ने चैटजीपीटी से अपने बारे में जानकारी माँगी तो चैटजीपीटी ने बताया कि वह ऐसा व्यक्ति है, जिसे अपने दो बेटों की हत्या के आरोप में 21 साल की जेल हुई है। यह 'मतिभ्रम' का उदाहरण है, जहाँ कृत्रिम बुद्धिमत्ता प्रणालियाँ जानकारी गढ़ती हैं और उसे तथ्य के रूप में प्रस्तुत करती हैं। इस मामले पर ओपनएआई ने बयान जारी कर कहा कि वे अपने मॉडलों की सटीकता में सुधार लाने और मतिभ्रम को कम करने के नए तरीकों पर काम कर रहे हैं। जनरेटिव एआई के क्षेत्र में कंप्यूटर वैज्ञानिक जिन मुख्य समस्याओं को हल करने की कोशिश कर रहे हैं, उनमें मतिभ्रम की समस्या भी है। ये वे स्थितियाँ हैं जब चैटबॉट गलत जानकारी को तथ्यों के रूप में प्रस्तुत करते हैं। वर्ष 2025 की शुरुआत में एप्पल ने ब्रिटेन में अपने 'एप्पल इंटेलिजेंस न्यूज समरी टूल' को निलंबित कर दिया था, क्योंकि यह झूठी हेडलाइनों को मनगढ़ंत तरीके से पेश कर रहा था और उन्हें असली खबरों के रूप में दिखा रहा था। गूगल की एआई जेमिनी भी मतिभ्रम का शिकार हो चुकी है। वर्ष 2024 में इसने पिज्जा पर पनीर चिपकाने के लिए गोंद का इस्तेमाल करने का सुझाव दिया था और कहा था कि भूवैज्ञानिक मनुष्यों को प्रतिदिन एक चट्टान खाने की सलाह देते हैं।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता को लेकर एआई क्षेत्र की बड़ी हस्तियाँ दुनिया को गत कुछ वर्षों से सावधान कर रही हैं। 2 मई, 2023 को कृत्रिम बुद्धिमत्ता के जनक माने जाने वाले गूगल के पूर्व वरिष्ठ अधिकारी ज्योफ्री हिंटन ने तकनीक में हो रही प्रगति के साथ एआई के खतरों के बारे में लोगों को आगाह करने के लिए गूगल से इस्तीफा दे दिया था। 75 वर्षीय जेफ्री हिंटन टोरंटो विश्वविद्यालय में डीप लर्निंग और न्यूरोल नेटवर्क के क्षेत्र में अपने काम के लिए जाने जाते हैं। हिंटन ने कहा, "सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि हम इस तकनीक का गलत इस्तेमाल होने या गलत हाथों में पड़ने से कैसे रोक सकते हैं।" हिंटन ने कहा कि एआई के क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा को रोकना असंभव हो सकता है, जिसके परिणामस्वरूप इतनी नकली इमेज और टेक्स्ट वाली दुनिया होगी कि कोई भी यह नहीं बता पाएगा कि सच क्या है, जो काफी भयानक हो सकता है। 27 अक्टूबर, 2014 को दुनिया के प्रमुख एआई निवेशक एलन मस्क ने एआई के विरुद्ध आवाज उठाते हुए इसे मानव जाति के अस्तित्व के लिए सबसे गंभीर खतरा घोषित किया था। एमआईटी के छात्रों से बातचीत के दौरान मस्क ने कंप्यूटर विज्ञान, एआई, अंतरिक्ष अन्वेषण और मंगल ग्रह के उपनिवेशीकरण के संबंध में बात करते समय ये टिप्पणी की थी। उन्होंने कहा कि हमें कृत्रिम बुद्धिमत्ता को लेकर बहुत सतर्क रहना चाहिए। उन्होंने कहा, "अगर मुझे यह अनुमान लगाना हो कि हमारा सबसे बड़ा अस्तित्वगत खतरा क्या है, तो शायद यही है। मेरा मानना है कि राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कुछ नियामक निगरानी होनी चाहिए, ताकि हम कोई मूर्खतापूर्ण कदम न उठा लें।" "कृत्रिम बुद्धिमत्ता के बल पर हम दानव को बुला रहे हैं। उन सभी कहानियों में, जहाँ एक व्यक्ति पंचकोण और पवित्र जल लिए होता है, ऐसा लगता है कि हाँ, उसे पूरा यकीन है कि वह दानव को वश में कर सकता है। लेकिन ऐसा नहीं होता"।

इन तमाम नकारात्मक खबरों के बीच इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि एआई आज जीवन के हर पहलू को प्रभावित

कर रहा है। इसके कारण किसी क्षेत्र को अप्रभावित रहना भी नहीं चाहिए। अपने दौर के विकास, बदलाव, नवाचार आदि से अछूते रह जाने वाले समाज न सिर्फ प्रगति की दौड़ में पिछड़ जाते हैं, बल्कि धीरे-धीरे अपनी प्रासंगिकता खो बैठते हैं। एआई की अथाह क्षमता के अनगिनत उदाहरण हमारे सामने हैं। एआई को तय सीमाओं के भीतर, जिम्मेदारी के साथ इस्तेमाल किया जाए तो वह मानव सभ्यता की प्रगति का अत्यंत ताकतवर माध्यम बन सकता है। यह अधिक से अधिक कुशल, शक्तिशाली बनने में सक्षम है। एआई एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद को इतना सटीक, सहज, सरल तथा सार्वत्रिक बना रही है कि आप अंग्रेजी अथवा अन्य किसी भाषा की सामग्री को हिंदी में पढ़ सकेंगे और हिंदी की सामग्री को अंग्रेजी अथवा दूसरी भाषाओं में। एआई की मदद से भारतीय ज्ञान-विज्ञान, साहित्य, वेद, पुराण, उपनिषद् जैसे ग्रंथ, आयुर्वेद व योग जैसी ज्ञान संपदा, हमारी पत्रकारिता और विश्वविद्यालयों के अनुसंधान आदि दुनियाभर में गैर-हिंदी पाठकों तक पहुँच सकते हैं। यह हमारी साहित्यिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक तथा शैक्षणिक संपदा को वैश्विक पहचान दिलाने में योगदान देगा। चैट जीपीटी ऐसी कृत्रिम मेधा है, जिससे अपने अनेक प्रश्नों के उत्तर प्राप्त किए जा सकते हैं।

‘सेपियंस’ के बेस्टसेलिंग लेखक युवा नोआ हारारी की पुस्तक ‘नेक्सस : ए ब्रीफ हिस्ट्री ऑफ इनफार्मेशन नेटवर्क्स फ्रॉम स्टोन एज टू एआई’ बताती है कि सूचना प्रौद्योगिकी ने हमारे संसार को कैसे निर्मित किया और कैसे विकृत किया। एल्गोरिदम ने हमारे रहस्यों को जान लिया और हमें एक-दूसरे के विरुद्ध खड़ा कर दिया। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस क्या करेगा? ‘नेक्सस’ बताती है कि हम इस पड़ाव तक कैसे पहुँचे और जीवित बचे रहने के लिए तथा सुखी रहने के लिए हमें कौन-से विकल्प अपनाने चाहिए। सूचनाएँ विवेक देती हैं या विवेक को हर लेती हैं? यह एक बड़ा प्रश्न आज मानव सभ्यता के सम्मुख है। सूचनाएँ हमें मजबूत बनाती हैं और हम ज्यादा अच्छी तरह से कोई निर्णय ले सकते हैं और बीमारी से लेकर आर्थिक-राजनीतिक किसी समस्या का समाधान कर सकते हैं, किंतु सूचनाओं की बाढ़ में यह तय कर पाना कठिन है कि गलत सूचनाएँ कौन-सी हैं और सही सूचनाएँ कौन-सी हैं। कई सूचनाएँ आमतौर पर सत्य तक नहीं ले जातीं और जब तक ले जाती हैं, तब तक बहुत देर हो जाती है। आज जब एआई ने सूचनाओं पर कब्जा कर लिया है, तब मानव सभ्यता को अपने भविष्य के बारे में सोचना चाहिए।

एआई यानी कृत्रिम बुद्धिमत्ता के खतरों के बारे में चर्चा करने वाले हारारी पहले विद्वान नहीं हैं। उनसे पहले जुलाई 2015 में स्टीव वोझनियक, एलन मस्क, स्टीफन हाकिंग सहित दुनिया के प्रौद्योगिकी जगत् के सौ बड़े नाम एआई के खतरों के बारे में पत्र लिखकर दुनिया को सचेत कर चुके हैं। यह पत्र अर्जेंटीना के ब्यूनस आयर्स में आयोजित कृत्रिम बुद्धिमत्ता पर अंतरराष्ट्रीय संयुक्त सम्मेलन में प्रस्तुत किया गया था। हारारी की पुस्तक ‘नेक्सस’ साढ़े पाँच सौ पृष्ठों की है, जिसमें दो सौ पृष्ठ सूचना की परिभाषा और उसके इतिहास के बारे में हैं। उसमें सूचनाओं के मिथकीय संसार का भी वर्णन है और वर्णन चेरी अमी नामक उस कबूतर का भी है, जिसने पहले विश्वयुद्ध में हिम्मत गँवा चुके अमेरिकी सैनिकों को हिम्मत दी थी। हारारी कहते हैं कि सूचना का मौजूदा तंत्र या प्रौद्योगिकी उस तंत्र से बहुत अलग है, जो छापाखाना, रेडियो और टेलीविजन और यहाँ तक कि कंप्यूटर के माध्यम से निर्मित हुआ था। सूचना के वे तंत्र मनुष्य के हाथ में होते थे और मनुष्य उन्हें नियंत्रित करता था, लेकिन आज स्थिति एकदम अलग हो गई है। पहले रेडियो और टेलीविजन न खुद सोचते थे और न ही खुद निर्णय ले सकते थे। आज एआई न सिर्फ स्वयं निर्णय लेने में सक्षम हो गया है, बल्कि वह विचार भी करने लगा है। उसने मनुष्य पर अपना नियंत्रण करना शुरू कर दिया है। एआई के विचार करने के खतरे को देखते हुए हारारी इसे मानव सभ्यता के लिए विनाशकारी मान रहे हैं। पूरी दुनिया फेक न्यूज के खतरे से जूझ रही है। एआई से गढ़ी गई झूठी खबरें नई नई समस्याएँ उत्पन्न करती हैं। एक फेक न्यूज सनसनी फैलाती है और एक सनसनी के मर जाने के बाद दूसरी सनसनी तैयार रखती है। सनसनी से विवेक मरता है और विवेक का नाश हमें विनाश की ओर ले जाता है।

विश्व की प्राचीनतम पुस्तक ‘ऋग्वेद’ में कहा गया है—एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति। यानी सत्य एक है, जिसे प्राप्त करने के लिए विद्वान् अलग-अलग मार्ग का अनुसरण करते हैं। सत्य का भाष्य अलग-अलग कालखंड में अलग-अलग ढंग से किया जाता रहा है। तैत्तिरीय उपनिषद् में कहा गया है—सत्यं वद, धर्मं चर, स्वाध्यायान्मा प्रमदः (सत्य बोलना, धर्मसम्मत कर्म करना, स्वाध्याय के प्रति प्रमाद मत करना)। मुंडकोपनिषद् में कहा गया है—सत्यमेव जयते (सत्य की ही जीत होती है)। वृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है—असतो मा सद् गमय। (तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मा अमृतं गमय (मुझे असत्य से सत्य की ओर ले चलो। मुझे अंधकार से प्रकाश की ओर ले चलो। मुझे मृत्यु से अमरता की ओर ले चलो)। महाभारत में विदुर कहते हैं—सत्येन रक्ष्यते धर्मो विद्याभ्यासेन रक्ष्यते। मृज्यया रक्ष्यते रूपं कुलं वृत्तेन रक्ष्यते॥ (धर्म का रक्षण सत्य से, विद्या का अभ्यास से, रूप का सफाई से और कुल का रक्षण आचरण करने से होता है)। चंडीदास कहते हैं—सबार ऊपरे मानुष सत्य, ताहार ऊपरे नाई (सबसे ऊपर मानुष सत्य है, उसके ऊपर कोई नहीं)। आधुनिक काल में महात्मा गांधी सत्य को ईश्वर कहते हैं। कृत्रिम बुद्धिमत्ता पर लेकर गंभीरता से चिंतन-मंथन की आवश्यकता है। यह तकनीकी विकास के नए प्रतिमान भी गढ़ सकती है और दुनिया को विनाश की ओर भी धकेल सकती है। अब दुनिया को तय करना है कि विकास की तरफ जाना है अथवा विनाश की तरफ। तकनीकी अपने आप में विनाशकारी नहीं होती, यह उसके उपयोग अथवा दुरुपयोग करने वालों पर निर्भर करता है।



प्रकाशन विभाग

भारतीय जन संचार संस्थान (समविश्वविद्यालय)

अरुणा आसफ अली मार्ग, जेएनयू न्यू कैंपस, नई दिल्ली-110 067



संचार माध्यम

भारतीय जन संचार संस्थान (समविश्वविद्यालय)
की यूजीसी-केयर सूचीबद्ध शोध पत्रिका

खंड 37 (4)

आईएसएसएन : 2321-2608

अक्टूबर-दिसम्बर 2025

विषय सूची

1. सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उपयोग का विश्लेषणात्मक अध्ययन : उच्च शिक्षा के विशेष संदर्भ में डॉ. गिरीश कुमार तिवारी और डॉ. कृष्ण कांत त्रिपाठी	1
2. सोशल मीडिया एवं डीपफेक : उपयोगकर्ताओं की जागरूकता, धारणा और साझा करने की प्रवृत्तियों का अध्ययन सुकांत तिवारी और डॉ. कुँवर सुरेंद्र बहादुर	8
3. इंस्टाग्राम पर योग : डिजिटल माध्यमों में पारंपरिक साधना के प्रस्तुतीकरण का विश्लेषण डॉ. प्रभात कुमार और डॉ. राजेश कुशवाहा	16
4. महामति प्राणनाथ की जागनी यात्रा और 'तारतम बानी': नवाचार और संचार के विशेष संदर्भ में एक अध्ययन मोहन परनामी और डॉ. राकेश कुमार उपाध्याय	22
5. महाराष्ट्र के प्रमुख संतों के कार्य एवं संचार प्रणाली का अध्ययन डॉ. विनोद निताळे	27
6. संत गाडगे बाबा के प्रवचन-कीर्तन में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अध्ययन डॉ. आदित्य कुमार मिश्रा	33
7. भारतीय संचार परंपरा और 'योगवासिष्ठ' डॉ. देवेंद्र नाथ तिवारी	44
8. कल्हण कृत राजतरंगिणी में संचार का अध्ययन डॉ. शिखा सैनी	49
9. भारतवर्षीय संचार दृष्टि: एक संक्षिप्त परिचय डॉ. कपिल कुमार भट्टाचार्य	57
10. दीनदयाल उपाध्याय की पत्रकारिता का राष्ट्रधर्म कृपाशंकर चौबे	64
11. भारत की देशज ज्ञान परंपरा में आपदा संचार का अध्ययन प्रो. (डॉ.) प्रमोद कुमार	72
12. न्यायिक संचार : भारतीय सामाजिक व्यवस्था की रीढ़ डॉ. बीनम यादव और प्रो. प्रशांत कुमार	83
13. संचार की आधुनिक चुनौतियाँ और गांधी का संप्रेषण दृष्टिकोण डॉ. देशराज वर्मा	92
14. जम्मू-कश्मीर में पत्रकारिता के इतिहासपुरुष : एक विवेचना डॉ. विनीत उत्पल	98

- | | |
|--|-----|
| 15. 'नेपाल संदेश' : भारत-नेपाल संबंधों में प्रगाढ़ता हेतु बालेश्वर अग्रवाल की एक रचनात्मक पहल
डॉ. रामाशंकर कुशवाहा | 108 |
| 16. भ्रामक राजनीतिक संचार और मीडिया साक्षरता: एक समीक्षात्मक अध्ययन
डॉ. कुमार प्रियतम | 112 |
| 17. नवउदारवादी भारत में हिंदी राजनीतिक सिनेमा : विचारधारात्मक राज्य उपकरण के रूप में असहमति का प्रबंधन
गौरव शुक्ल और डॉ. राहुल जोशी | 117 |

पुस्तक समीक्षा :

- | | |
|--|-----|
| 1. बालेश्वर अग्रवाल के जीवन और कर्म का आख्यान
संगीता झा | 124 |
|--|-----|



सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उपयोग का विश्लेषणात्मक अध्ययन : उच्च शिक्षा के विशेष संदर्भ में

डॉ. गिरीश कुमार तिवारी¹ और डॉ. कृष्ण कांत त्रिपाठी²

सारांश

विश्व आए दिन तकनीकी परिवर्तनों का अनुभव कर रहा है। तकनीकी के क्षेत्र में निरंतर हो रहे परिवर्तनों से मानव जीवन का प्रत्येक पक्ष प्रभावित हो रहा है। ऐसे में शिक्षा का क्षेत्र भी इन परिवर्तनों से अछूता नहीं है। शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर ये परिवर्तन प्रभावी रूप से दिखाई दे रहे हैं। पहले हम कंप्यूटर समर्थित अधिगम की बात करते थे। कालांतर में सूचना एवं संप्रेषण तकनीकी की बात की जाने लगी। फिर कृत्रिम बुद्धिमत्ता का दौर आया और अब हम सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता के साक्षी बन रहे हैं। शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर एवं शिक्षा प्रणाली के विभिन्न हितधारकों द्वारा इसका प्रयोग विभिन्न प्रकार से एवं विभिन्न कार्यों के लिए किया जाता है। अब तक जो भी शोध कार्य सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता को एक चर के रूप में ले करके संपादित किए गए हैं, उनमें से अधिकांश शिक्षा के प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर संपादित किए गए हैं। शिक्षा के उच्च स्तर पर इस प्रकार के शोधकार्यों की संख्या बहुत ही कम है। यह शोध पत्र शिक्षा के उच्च स्तर के दो प्रमुख हितधारकों—शिक्षक एवं विद्यार्थी—द्वारा सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता के किन-किन उपकरणों को जाना जाता है एवं किन-किन उपकरणों का किन-किन कार्यों की पूर्ति के लिए प्रयोग किया जाता है, यह जानने का एक प्रयास है। इसके साथ ही यह शोध पत्र उपर्युक्त दोनों हितधारकों की दृष्टि में सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उपयोग के प्रभाव पर भी प्रकाश डालने का प्रयास करता है।

संकेत शब्द : सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता, जेन एआई, उच्च शिक्षा, चैट-जीपीटी

प्रस्तावना

शिक्षा किसी भी राष्ट्र के विकास का एक सशक्त माध्यम है। यह कहा जाता है कि कोई भी राष्ट्र उस सीमा तक विकसित होता है, जिस सीमा तक वहाँ के नागरिक शिक्षित होते हैं। विकास का स्वरूप गतिशील होता है। इसका तात्पर्य यह है कि अगर हम आज विकसित हो गए हैं, तो कल भी विकसित बने रहेंगे, यह आवश्यक नहीं है। विकास की एक अवस्था से दूसरी अवस्था में आना-जाना संभव है। कहने का अर्थ यह कि विकास उभयमुखी होता है। उभयमुखी होने से आशय यह है कि सिर्फ निम्न से उच्च अवस्था की ओर ही नहीं होता है, वरन् उच्च से निम्न की ओर भी होता है, अगर हम विकास की उच्च अवस्था की निरंतर परिवर्तित हो रही आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अपनी व्यवस्था के प्रत्येक अंग को समायोजित न करें। यह समायोजन शिक्षा के माध्यम से संभव है, लेकिन इसके लिए आवश्यक है कि सर्वप्रथम शिक्षा को निरंतर हो रहे परिवर्तनों के साथ समायोजित किया जाए।

वर्तमान युग तकनीकी का है और इसमें निरंतर नवाचार हो रहे हैं। इसका प्रमाण यह है कि लगभग दो दशक पहले हम सूचना एवं संचार तकनीकी की बात कर रहे थे, फिर कृत्रिम बुद्धिमत्ता (आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस) ने अपना स्थान बनाया एवं आज हम सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता (जेनरेटिव आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस) की बात कर रहे हैं। ऐसे में तकनीकी के क्षेत्र में हो रहे इन परिवर्तनों से शिक्षा प्रणाली भी निरंतर प्रभावित हो रही है। यह प्रभाव दो स्वरूपों में दृष्टिगोचर हो रहा है। प्रथम, तकनीकी आधारित नए पाठ्यक्रमों का शिक्षा प्रणाली में समावेश तथा द्वितीय, तकनीकी का प्रयोग करके पारंपरिक पाठ्यक्रमों को पढ़ाया जाना। शोध कार्यों में भी इनका उपयोग किया जा रहा है। शोध कार्य में कृत्रिम बुद्धिमत्ता के प्रयोग

होने का आशय यह है कि शिक्षा प्रणाली के प्रत्येक स्तर पर सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता का प्रयोग किया जा रहा है। ChatGPT, DALL-E, Gemini, Claude जैसे टूल अब केवल तकनीकी उपकरण न होकर शिक्षा की संरचना, शिक्षण विधियों, मूल्यांकन प्रक्रियाओं और शोध के स्वरूप को पुनःपरिभाषित कर रहे हैं।

जहाँ एक ओर पारंपरिक शिक्षा प्रणाली संरचित पाठ्यक्रम, शिक्षकों की व्याख्या और विद्यार्थियों के व्यक्तिगत प्रयासों पर आधारित रही है, वहीं दूसरी ओर सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता (जेन एआई) ने सीखने की प्रक्रिया को *संवादात्मक*, *सुलभ*, *वैयक्तिकीकृत* और *नवाचारी* बना दिया है। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में, विशेषतः विश्वविद्यालयों और व्यावसायिक संस्थानों में, सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग तेजी से बढ़ रहा है। चाहे वह शोध लेखन हो, प्रोजेक्ट रिपोर्ट निर्माण हो, भाषा अनुवाद हो, जटिल वैज्ञानिक संकल्पनाओं को सरल बनाना हो, या फिर डिजिटल विजुअलाइजेशन, सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता के प्रयोग से शीघ्रता एवं सरलता के साथ संपादित किया जा रहा है।

सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता न केवल ज्ञान के प्रस्तुतीकरण को रोचक बनाता है, बल्कि यह विद्यार्थियों के *आलोचनात्मक*, *विश्लेषणात्मक* एवं *सर्जनात्मक* कौशलों के विकास में भी सहायक सिद्ध हो रहा है। शिक्षकों के लिए यह एक परामर्शदाता (tutor/assistant) के रूप में कार्य करता है, जो पाठ योजना, प्रश्न बैंक, उत्तर-मूल्यांकन और विद्यार्थियों की प्रगति परखने में उपयोगी है।

हालाँकि, सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता के इन फायदों के साथ कुछ नैतिक, सामाजिक और शैक्षणिक चुनौतियाँ भी उभरकर सामने आ रही हैं—जैसे अकादमिक ईमानदारी, मौलिकता की रक्षा, आँकड़ों की विश्वसनीयता

¹सहायक आचार्य, भाषा शिक्षा विभाग, एनसीईआरटी, नई दिल्ली. ईमेल : girishtiwari8@gmail.com

²सहायक आचार्य, शिक्षा विभाग, मिजोरम विश्वविद्यालय, आइजोल, मिजोरम. ईमेल : kktbhu@gmail.com

और विद्यार्थी की वास्तविक संज्ञानात्मक क्षमता का आकलन। इसके उपयोग को लेकर अभी भी स्पष्ट नीतियाँ और दिशानिर्देशों का अभाव है, जिससे शैक्षणिक समुदाय में इसे लेकर मिश्रित प्रतिक्रियाएँ देखने को मिलती हैं। इस परिदृश्य में यह देखना बड़ा ही रुचिकर है कि उच्च शिक्षा के हितधारकों विशेषकर शिक्षकों एवं विद्यार्थियों द्वारा सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उच्च शिक्षा में किन-किन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उपयोग किया जा रहा है। सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता को लेकर शोधकार्य होने भी प्रारंभ हो गए हैं। इन कार्यों के आधार पर सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता की अवधारणा को उन तकनीकी प्रणालियों के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है, जो न केवल जानकारी का विश्लेषण करती हैं, बल्कि स्वयं नई सामग्री (जैसे टेक्स्ट, छवियाँ, कोड आदि) उत्पन्न कर सकती हैं। इसके अंतर्गत प्रमुख टूल में ChatGPT, DALL·E, Gemini, Claude, Copilot आदि सम्मिलित हैं।

अग्निहोत्री एवं खन्ना (1991) ने पहले ही शैक्षणिक सामग्री की पठनीयता और तकनीकी समर्थन की आवश्यकता पर जोर दिया था, जो अब कृत्रिम बुद्धिमत्ता के संदर्भ में और प्रासंगिक हो गया है।

ब्राउन एवं सहयोगियों (2020) ने अपने शोध कार्य 'लैंग्वेज मॉडल्स आर शॉट लर्नर्स' में यह बताया है कि सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता मानव-समान संवाद और लेखन में दक्षता प्रदर्शित कर सकता है। सेल्वन एवं सहयोगियों (2023) ने बताया कि "सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता शैक्षिक नवाचार का नया चरण है, जिसमें शिक्षण की सीमाओं को पुनः परिभाषित किया जा रहा है।"

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में डिजिटल तकनीकों के एकीकरण पर बल दिया गया है। हालाँकि सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता (GenAI) का उल्लेख स्पष्ट रूप से नहीं किया गया, परंतु कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) टूल के माध्यम से व्यक्तिगत सीखने के अनुभव को सशक्त करने की बात की गई है। आईआईटी दिल्ली और आई आई एस-सी (IISc.) बेंगलुरु जैसे संस्थानों में कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित शिक्षक सहायक और संवादात्मक प्रश्नोत्तर टूल का प्रयोग आरंभ हो चुका है। 2021 के बाद से उच्च शिक्षा संस्थानों में सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता (जेन एआई) टूल का उपयोग तेजी से बढ़ा है। विभिन्न शोध कार्यों; यथा—खान एवं अन्य (2024), उल्लास (2023) और अग्रवाल एवं अन्य (2024) से पता चलता है कि विद्यार्थी लेखन, शोध, अनुवाद और परियोजना निर्माण में इनका उपयोग कर रहे हैं।

मोलिक और मोलिक (2023) ने अपने शोध में बताया कि चैट जीपीटी का उपयोग बिजनेस स्कूल के विद्यार्थियों द्वारा केस स्टडी, एस.डब्ल्यू.ओ.टी. (SWOT) विश्लेषण और रिपोर्ट लेखन के लिए किया जा रहा है। इससे विद्यार्थियों की उत्पादकता तो बढ़ी है, लेकिन आलोचनात्मक चिंतन की क्षमता में हो रहे ह्रास को लेकर चिंता भी सामने आई है। बेंजिओ एवं सहयोगियों (2023) के अनुसार, सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता (जेन एआई) की क्षमताएँ शैक्षिक पारदर्शिता और मूल लेखन को चुनौती देती हैं। इससे असाइनमेंट धोखाधड़ी और ऑटो-प्लेजरिज्म जैसी नैतिक समस्याएँ उत्पन्न हो रही हैं। लेकिन एवं सहयोगियों (2022) ने अपने शोध अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर कहा कि "एआई शिक्षण को अधिक अनुकूल, उत्तरदायी और लचीला बना सकता है।" फ्लोरिडि एवं कोल्स (2021) ने चेतावनी दी कि "एआई की नैतिकता

पर केंद्रित दृष्टिकोण के बिना, शिक्षा के मूल्य खो सकते हैं।" भारत में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने 2023 में एक परिपत्र जारी किया, जिसमें एआई के नैतिक उपयोग पर जोर दिया गया है। कुछ आई.आई.टी., आई.आई.एम. और निजी विश्वविद्यालयों ने एआई टूल के प्रशिक्षण और शोध को बढ़ावा देना शुरू किया है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता को लेकर अब तक जो भी शोध कार्य हुए हैं या जो साहित्य सर्जना हुई है, उनमें से अधिकांश एआई टूल के शिक्षण में उपयोग एवं उनसे उत्पन्न नैतिक चिंताओं पर आधारित है। ये शोध कार्य शिक्षा के माध्यमिक स्तर पर अधिक संपादित हुए हैं। उच्च शिक्षा के स्तर पर इस प्रकार के शोध कार्य कम हुए हैं। शिक्षकों, विशेषकर उच्च शिक्षा के शिक्षकों के अनुभवों एवं दृष्टिकोण पर तो न के बराबर अध्ययन हुए हैं। सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता के नैतिक ढाँचे एवं नीतियों की दिशा में शोध कार्यों का सर्वथा अभाव दृष्टिगोचर होता है। उच्च शिक्षा के स्तर पर सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता के प्रति शिक्षकों के अनुभव एवं दृष्टिकोण, उससे संबंधित नीति निर्माण, और कक्षा-आधारित प्रयोगों की आवश्यकता को लेकर अभी सीमित शोध उपलब्ध हैं। यह शोध अध्ययन इस अंतर को भरने का प्रयास करता है।

शोध प्रश्न

प्रस्तुत शोध अध्ययन को निम्नलिखित शोध प्रश्नों के आलोक में संचालित किया गया है :

1. उच्च शिक्षा संस्थानों में सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता के कौन-कौन से उपकरणों का सर्वाधिक उपयोग हो रहा है?
2. शिक्षक और विद्यार्थी सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उपकरणों का उपयोग किन कार्यों के लिए कर रहे हैं?
3. क्या सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता शिक्षण-अधिगम की प्रक्रिया को सशक्त बना रहा है या यह नई चुनौतियाँ उत्पन्न कर रहा है?

शोध उद्देश्य

प्रस्तुत शोध कार्य के निम्नलिखित उद्देश्य हैं :

1. उच्च शिक्षा में प्रयुक्त सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता के प्रमुख उपकरणों का पता लगाना।
2. विश्वविद्यालय स्तर के शिक्षकों एवं विद्यार्थियों द्वारा इन उपकरणों के उपयोग के प्रकारों का विश्लेषण करना।
3. सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता के सकारात्मक व नकारात्मक प्रभावों का शैक्षिक संदर्भ में अध्ययन करना।

शोध प्रविधि

यह एक गुणात्मक शोध है। गुणात्मक शोध होने के कारण इसमें सर्वे एवं विषयवस्तु विश्लेषण विधि का प्रयोग किया गया है।

समग्र (पॉपुलेशन)

इस शोध के समग्र के रूप में उच्च शिक्षा के शिक्षकों एवं विद्यार्थियों को शामिल किया गया है। भौगोलिक दृष्टि से अध्ययन का क्षेत्र समस्त भारत है।

प्रतिदर्श

इस शोध कार्य के प्रतिदर्श की दो इकाइयाँ हैं : शिक्षक एवं विद्यार्थी। उच्च शिक्षा के 500 शिक्षकों एवं 1000 विद्यार्थियों को भारतवर्ष में स्थित 40 उच्च शिक्षा संस्थानों से चुना गया है।

प्रतिदर्शन

प्रतिदर्श के चयन के लिए स्तरीकृत समानुपातिक प्रतिदर्शन तकनीक का प्रयोग किया गया है। सर्वप्रथम भारत देश को 6 स्तरों या समूहों में बाँटा गया है। ये 6 स्तर हैं—उत्तर भारत, दक्षिण भारत, पश्चिम भारत, पूर्वी भारत, मध्य भारत तथा उत्तर-पूर्व भारत। उच्च शिक्षा संस्थानों को उनके प्रकार के आधार पर चार समूहों में बाँटा गया है। ये चार समूह निम्नलिखित हैं :

- केंद्रीय/राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान
- राज्य शिक्षा संस्थान
- निजी/डीमंड शिक्षा संस्थान
- तकनीकी/प्रोफेशनल शिक्षा संस्थान

अब उपर्युक्त 6 स्तरों में से इन चारों प्रकार के संस्थानों को उनकी संख्या के अनुपात के आधार पर चयनित किया गया है। पूरे देश से कुल 40 संस्थानों को चयनित किया गया है। कुल 40 संस्थान इसलिए चुने गए हैं कि प्रतिदर्शन की सांख्यिकीय त्रुटि $\pm 4\%$ के आसपास नियंत्रित रहे। त्रुटि की यह सीमा व्यावहारिक रूप से स्वीकार्य है। 40 संस्थान के चयन के पीछे एक कारण यह भी है कि इससे सभी प्रकार के संस्थानों का भरपूर प्रतिनिधित्व होगा।

द्वितीय स्तर पर इन चयनित संस्थानों में से उनमें नामांकित विद्यार्थियों की संख्या के अनुपात में विद्यार्थियों का एवं उनमें कार्यरत शिक्षकों की संख्या के अनुपात में शिक्षकों का चयन किया गया। इस प्रकार कुल 1000 विद्यार्थियों एवं 500 शिक्षकों को चयनित किया गया है। प्रति संस्थान 25 विद्यार्थी एवं 12-13 शिक्षकों के चयन का लक्ष्य रखा गया था, लेकिन यह

संख्या चयनित संस्थानों में नामांकित विद्यार्थियों की संख्या एवं वहाँ कार्यरत शिक्षकों की संख्या के अनुपात में कम या अधिक भी हो सकती है।

आँकड़ों का संकलन एवं विश्लेषण

आँकड़ों के संकलन हेतु सर्वेक्षण विधि एवं साक्षात्कार विधि का प्रयोग किया गया है। आँकड़ों के विश्लेषण के लिए विषयवस्तु विश्लेषण का प्रयोग किया गया है। आवृत्ति एवं प्रतिशत जैसे तकनीक का भी प्रयोग किया गया है। इसके साथ ही जहाँ आवश्यक है वहाँ पर आँकड़ों का रेखाचित्रित निरूपण भी किया गया है। आँकड़ों के विश्लेषण के उपरान्त प्राप्त परिणाम को शोध उद्देश्य के अनुसार प्रस्तुत किया गया है।

उद्देश्य सं. 1 : उच्च शिक्षा में प्रयुक्त सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता के प्रमुख उपकरणों का पता लगाना।

प्रश्नावली में शामिल प्रश्न सं. 1 'आप सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धि के किन-किन उपकरणों के विषय में जानते हैं?' तथा प्रश्न सं. 2 'आप सर्जनात्मक बुद्धि के किन-किन उपकरणों का उपयोग करते हैं?' इस शोध उद्देश्य से संबंधित हैं। इन दो प्रश्नों के लिए प्राप्त उत्तरों को तालिका सं. 1 में दिखाया गया है।

तालिका सं. 1 के आधार पर यह कहा जा सकता है कि शिक्षकों एवं विद्यार्थियों, दोनों ने सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता के समान उपकरणों के नाम बताए एवं दोनों के द्वारा सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता के समान उपकरणों का प्रयोग किया जा रहा है। तालिका से यह स्पष्ट है कि लगभग 90% शिक्षकों द्वारा चैट जीपीटी को जानने एवं उपयोग करने की बात कही गई है, जबकि 93% विद्यार्थियों द्वारा चैट जीपीटी को जानने की बात को स्वीकार किया है। जहाँ तक इसके उपयोग का प्रश्न है 80% विद्यार्थियों ने इस बात को स्वीकार किया है कि वे चैट जीपीटी का उपयोग करते हैं। इस प्रकार चैट जीपीटी उच्च शिक्षा के शिक्षक वर्ग एवं

तालिका सं. 1 : उच्च शिक्षा के शिक्षकों और विद्यार्थियों द्वारा उपयोग किए जानेवाले सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उपकरणों की सूची

क्रम सं.	सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उपकरण	शिक्षक (500)		विद्यार्थी (1000)	
		जानते हैं	उपयोग करते हैं	जानते हैं	उपयोग करते हैं
01.	ChatGPT (OpenAI)	90% (450)	90% (450)	93% (930)	80% (800)
02.	QuillBot	83% (415)	75% (400)	85% (850)	70% (700)
03.	Grammarly AI	81% (405)	75% (400)	85% (850)	70% (700)
04.	DALL·E (Image Generation)	70% (350)	51% (255)	65% (650)	50% (550)
05.	Google Gemini / Bard	65% (325)	58% (290)	60% (600)	30% (300)
06.	Microsoft Copilot	48% (240)	45% (225)	43% (430)	25% (250)
07.	Perplexity AI	40% (200)	40% (200)	40% (450)	19% (190)
08.	Claude (Anthropic)	33% (165)	30% (150)	39% (390)	18% (180)
09.	MidJourney (Image/Art AI)	31% (155)	30% (150)	38% (380)	22% (220)
10.	Runway ML (Video AI)	25% (125)	25% (125)	30% (300)	10% (100)
11.	Socratic	19% (95)	19% (95)	25% (250)	12% (120)
12.	Elicit AI	17% (85)	15% (75)	23% (230)	20% (200)

विद्यार्थी वर्ग में सर्वाधिक ज्ञात एवं प्रयोग में लाया जानेवाला उपकरण है। क्विलबोट (QuillBot) एवं ग्रामरली एआई (Grammarly AI) ये दोनों क्रमशः दूसरे एवं तीसरे सर्वाधिक ज्ञात एवं उपयोग में लाए जानेवाले उपकरण हैं। सोक्रेटिक (Socratic) एआई, एलिसिट एआई (Elicit AI) एवं रनवे एमएल (Runway ML) शिक्षक एवं विद्यार्थी, दोनों समूहों में सबसे कम जाने जानेवाले एवं प्रयोग में लाए जाने वाले उपकरण हैं।

उद्देश्य सं. 2 : विश्वविद्यालय स्तर के शिक्षकों एवं विद्यार्थियों द्वारा इन उपकरणों के उपयोग के प्रकारों का विश्लेषण करना।

प्रश्नावली में शामिल प्रश्न 'आप किन कार्यों के लिए सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उपकरणों (Gen AI) का उपयोग करते हैं?' शोध कार्य के इस उद्देश्य की पूर्ति करता है। इस प्रश्न के आलोक में प्राप्त उत्तरों को तालिका सं. 2 में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका सं. 2 से यह स्पष्ट है कि शिक्षकों एवं विद्यार्थियों, दोनों समूहों में सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता एक उपकरण के रूप में काफी लोकप्रिय है और अधिकतर शैक्षिक आवश्यकताओं के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। शिक्षकों एवं विद्यार्थियों, दोनों समूहों ने अपनी अलग-अलग शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु इन उपकरणों का प्रयोग करने की बात कही है। अधिसंख्य शिक्षकों (65%) ने यह स्वीकार किया है कि वे शिक्षण सामग्री को तैयार करने के लिए इस उपकरण का प्रयोग करते हैं। इसी प्रकार अधिसंख्य विद्यार्थियों (72%) ने यह स्वीकार किया कि वे सत्रीय कार्य (असाइनमेंट) एवं परियोजना कार्य के लेखन के लिए इस उपकरण का प्रयोग करते हैं। भाषा सुधार और लेखन हेतु प्रयुक्त किए जाने वाले उपकरण ग्रामरली (Grammarly) एवं क्विल बोट (QuillBot) का प्रयोग भी दोनों समूहों द्वारा बहुतायत में इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया जाता है। कुल 50% शिक्षकों एवं 61% विद्यार्थियों ने यह स्वीकार किया कि वे अपनी भाषा के सुधार एवं लेखन कौशल में सुधार हेतु इन दो उपकरणों का प्रयोग करते हैं। शोध कार्यों में शिक्षकों एवं विद्यार्थियों, दोनों समूहों द्वारा इन्हें उपयोग में लाया जा रहा है। शिक्षकों की संख्या विद्यार्थियों की संख्या की तुलना में अधिक है। शोध कार्यों में शिक्षक एवं विद्यार्थी दोनों Perplexity AI और Elicit को अपनाने लगे हैं। शिक्षकों एवं विद्यार्थियों, दोनों ने इस बात को एक साथ स्वीकार किया कि इमेज जेनरेशन उपकरण जैसे DALL-E, Midjourney आदि का

उपयोग सीमित है, परंतु विजुअल शिक्षण के लिए इनका उपयोग धीरे-धीरे बढ़ रहा है। डिजाइन और प्रेजेंटेशन बनाने वाले शिक्षक एवं विद्यार्थी इनका अधिक उपयोग करते हैं। इसके अलावा जिन कार्यों के लिए शिक्षकों एवं विद्यार्थियों द्वारा इनका उपयोग किया जाता है, उन्हें उपर्युक्त तालिका में सूचीबद्ध किया गया है।

उद्देश्य सं. 3 : सर्जनात्मक एआई के सकारात्मक व नकारात्मक प्रभावों का शैक्षिक संदर्भ में अध्ययन करना।

इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए शोधकर्ता ने साक्षात्कार अनुसूची में निम्नलिखित प्रश्नों को शामिल किया था।

- सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता (GenAI) के उपकरणों के उपयोग से आपको क्या लाभ हुए?
- सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता (GenAI) के उपयोग के क्या दुष्प्रभाव हो सकते हैं?
- क्या आपने इनके कारण अपनी सीखने की गति या गुणवत्ता में सुधार देखा है?
- क्या कभी इसके कारण आपको भ्रम या त्रुटियाँ हुई हैं?

इन प्रश्नों के आलोक में शिक्षकों एवं विद्यार्थियों के जो उत्तर प्राप्त हुए, उन्हें दो अलग-अलग तालिकाओं में सूचीबद्ध करके दर्शाया गया है। तालिका सं. 3 में शिक्षकों के विचारों को एवं तालिका सं. 4 में विद्यार्थियों के विचारों को प्रदर्शित किया गया है।

तालिका सं. 3 से यह ज्ञात होता है कि शिक्षकों ने इसके सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रकार के प्रभाव को स्वीकारा है। शिक्षकों ने यह माना है कि सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उपकरणों का उपयोग शिक्षण कार्य को सरल बनाने में उनकी सहायता करता है। यह कठिन संप्रत्ययों को सरलीकृत कर देता है। इसके परिणामस्वरूप शिक्षकों के समय की बचत होती है, जिसका प्रयोग वे विद्यार्थियों के साथ अंतर्क्रिया करने में करते हैं। शिक्षण कार्य के साथ-साथ शोध कार्य में भी सहायता मिलती है। इतना ही नहीं, सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उपकरणों का प्रयोग व्यक्तिगत भिन्नता को संवर्धित करने में भी शिक्षकों की सहायता करता है। शिक्षकों द्वारा सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उपकरणों के प्रयोग के दुष्प्रभाव की ओर भी बल दिया गया है। इसमें सर्वाधिक बल विद्यार्थियों की इन उपकरणों पर अत्यधिक निर्भरता पर दिया गया है। इसके परिणामस्वरूप विद्यार्थियों के गृह कार्यों में मौलिकता की कमी, शैक्षणिक ईमानदारी में

तालिका सं. 2 : शिक्षकों एवं विद्यार्थियों द्वारा सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उपकरणों द्वारा संपादित किए जाने वाले प्रमुख कार्य

क्रम सं.	शिक्षकों द्वारा किए जानेवाले कार्य	शिक्षकों का प्रतिशत	विद्यार्थियों द्वारा किए जानेवाले कार्य	विद्यार्थियों का प्रतिशत
01.	शिक्षण सामग्री	65%	असाइनमेंट/प्रोजेक्ट लेखन	72%
02.	शोध एवं लेखन	58%	प्रेजेंटेशन/विजुअल सामग्री	43%
03.	मूल्यांकन	37%	शोध कार्य	37%
04.	विद्यार्थी मार्गदर्शन	35%	भाषा सुधार/लेखन कौशल	61%
05.	प्रस्तुति एवं विजुअल कंटेंट	29%	कोडिंग एवं तकनीकी कार्य	23%
06.	डेटा विश्लेषण	25%	परीक्षा तैयारी	31%
07.	भाषा सुधार/लेखन कौशल	50%		

तालिका सं. 3 : सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता के सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभावों के संदर्भ में शिक्षकों के विचार

क्रम सं.	सकारात्मक प्रभाव	क्रम सं.	नकारात्मक प्रभाव
01.	शिक्षण में सहायता – एआई टूल कठिन अवधारणाओं को सरल बनाने और अतिरिक्त संसाधन उपलब्ध कराने में सहायता करते हैं। (72% शिक्षकों ने कहा कि चैट जीपीटी (ChatGPT) और जैमिनि (Gemini) जटिल विषयों को सरलता से समझाने में सहायक हैं।	01.	अत्यधिक निर्भरता - विद्यार्थी स्वयं सोचने के बजाय सीधे एआई से उत्तर लेते हैं। 58% शिक्षकों ने यह चिंता व्यक्त की है।
02.	रचनात्मक सामग्री निर्माण - PPT, प्रश्नपत्र, केस-स्टडी और असाइनमेंट बनाना आसान हो गया। 48% शिक्षकों ने एआई टूल को इस दृष्टि से उपयोगी माना है।	02.	मौलिकता व प्लेजरिज्म - असाइनमेंट/रिपोर्ट में रचनात्मकता घटती है। 62% शिक्षकों ने इसे सबसे बड़ी समस्या माना है।
03.	शोध और अकादमिक कार्य – सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उपकरणों के उपयोग से शोध-लेख, समीक्षा और संदर्भ सामग्री तैयार करने में समय की बचत होती है। 47% शिक्षकों ने एलिसिट (Elicit), पेरेप्लेक्सिटी (Perplexity) का उपयोग किया।	03.	गलत या अधूरी जानकारी - कभी-कभी एआई गलत या गढ़ी हुई जानकारी देता है। 35% शिक्षकों ने 'गलत तथ्यों' की समस्या को स्वीकार किया है।
04.	व्यक्तिगत शिक्षण - कमजोर विद्यार्थियों को अतिरिक्त सामग्री मिल जाती है। इसके परिणामस्वरूप शिक्षण का स्तर संतुलित हो जाता है। 53% शिक्षकों ने माना कि सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उपकरणों का उपयोग सीखने में अंतर को कम करता है।	04.	शैक्षणिक ईमानदारी – सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उपकरणों के उपयोग से डेटा सुरक्षा और कॉपीराइट का प्रश्न सामने आता है। 44% शिक्षकों ने इस दृष्टिकोण से अपनी चिंता जाहिर की है।
05.	समय प्रबंधन – 72% शिक्षकों का यह मत है कि इसके प्रयोग से शिक्षण की तैयारी में लगने वाला समय घटा तथा विद्यार्थियों के साथ संवाद और मार्गदर्शन के लिए समय बढ़ा।	05.	कौशल हास – सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उपकरणों के प्रयोग से लेखन और आलोचनात्मक चिंतन कौशल में कमी आती है। 53% शिक्षकों ने इसे गंभीर समस्या माना है।
06.	निर्देशन एवं परामर्शन - कुछ शिक्षकों ने इसे विद्यार्थियों के निर्देशन हेतु भी उपयोगी माना है।	06.	मानव-शिक्षक की भूमिका में कमी - 32% शिक्षकों ने यह कहा है कि सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उपकरणों के प्रयोग से मानव-शिक्षकों की भूमिका में कमी आ रही है, क्योंकि विद्यार्थी सीधे एआई पर निर्भर होते जा रहे हैं।

कमी एवं शिक्षक-विद्यार्थी के मध्य दूरी आदि देखने को मिल रही है।

तालिका सं. 4 से यह स्पष्ट है कि विद्यार्थियों ने सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उपकरणों के प्रयोग के प्रभाव के संबंध में मिश्रित प्रतिक्रिया दी है। अनेक विद्यार्थियों ने इसे अपने सहायक के रूप में देखा है। इसके प्रयोग से वे जटिल संप्रत्ययों को आसानी से समझ जाते हैं। इसके परिणामस्वरूप उनके समय की बचत होती है। विद्यार्थियों के रचनात्मक कौशल एवं भाषाई कौशल पर भी सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उपकरणों के प्रयोग का सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इससे

समावेशन की प्रक्रिया को बल मिलता है। प्रत्येक विद्यार्थी को अपनी गति से सीखने का अवसर मिलता है। इस प्रकार सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उपकरण विद्यार्थियों के लिए सहायक 'स्मार्ट ट्यूटर' और 'लेखन सहायक' की तरह काम कर रहे हैं। विद्यार्थियों ने इनके प्रभाव के नकारात्मक पक्ष पर भी बल डाला है। अधिकांश विद्यार्थियों (55%) ने यह माना है कि विद्यार्थियों के सर्जनात्मक कार्यों की कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उपकरणों पर निर्भरता बढ़ रही है। इसके परिणामस्वरूप शिक्षक-विद्यार्थी संवाद के अवसर कम हो रहे हैं। शिक्षकों और विद्यार्थियों के मध्य दूरी

तालिका सं. 4 : सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता के सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभावों के संदर्भ में विद्यार्थियों के विचार

क्रम सं.	सकारात्मक प्रभाव	क्रम सं.	नकारात्मक प्रभाव
01.	सीखने में सुविधा - सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उपकरणों का प्रयोग कर विद्यार्थी जटिल विषयों को सरल भाषा में समझते एवं सीखते हैं। 71% विद्यार्थियों ने इस बात को स्वीकार किया है कि वे असाइनमेंट एवं प्रोजेक्ट में भी सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उपकरणों की सहायता लेते हैं।	01.	अत्यधिक निर्भरता - विद्यार्थी स्वयं सोचने के बजाय सीधे एआई से उत्तर लेते हैं। 55% विद्यार्थियों ने कहा कि वे बिना सोचे उत्तर कॉपी कर लेते हैं।

क्रम सं.	सकारात्मक प्रभाव	क्रम सं.	नकारात्मक प्रभाव
02.	समय की बचत - रिसर्च, सारांश और निबंध तुरंत मिल जाते हैं। चैट जीपीटी (ChatGPT) और जैमिनि (Gemini) का उपयोग 82% विद्यार्थियों ने समय बचाने हेतु किया है।	02.	मौलिकता की कमी - असाइनमेंट/रिपोर्टों में रचनात्मकता घटती है। शिक्षकों ने शिकायत की कि कई प्रोजेक्ट एक जैसे लगते हैं।
03.	रचनात्मकता में वृद्धि - विद्यार्थियों ने यह माना है कि सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उपकरणों के उपयोग से उनकी रचनात्मकता में वृद्धि होती है। पोस्टर, प्रेजेंटेशन, ग्राफिक्स और कला कार्यों में नई संभावनाएँ दिखती हैं। 45% विद्यार्थियों ने DALL-E और Midjourney का उपयोग किया।	03.	तथ्यात्मक त्रुटियाँ - कभी-कभी एआई (AI) गलत या गढ़ी हुई जानकारी देता है। 38% विद्यार्थियों ने यह अनुभव किया है कि सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उपकरणों द्वारा कई बार गढ़ी हुई या गलत जानकारी मिलती है।
04.	भाषाई कौशल में सुधार - क्विलबोट (QuillBot), ग्रामरली (Grammarly) आदि सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उपकरणों के प्रयोग से विद्यार्थियों के भाषा और लेखन कौशल बेहतर हुए हैं। 61% विद्यार्थियों ने भाषा सुधार हेतु इसका उपयोग किया।	04.	गोपनीयता एवं नैतिकता - जेन एआई टूल के उपयोग के कारण डेटा सुरक्षा और कॉपीराइट की समस्या सामने आती है।
05.	शोध व ज्ञान-विस्तार - सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उपकरणों यथा पेरिलेक्सिटि एआई (Perplexity AI) और एलिसिट (Elicit) से तर्कपूर्ण व तथ्यात्मक जानकारी मिलती है। 40% विद्यार्थियों ने यह स्वीकार किया कि वे शोध-संबंधित कार्यों में इसका उपयोग करते हैं।	05.	कौशल हास - लेखन और आलोचनात्मक सोच कौशल में कमी। 32% विद्यार्थियों ने यह माना कि सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उपकरणों के उपयोग से उनकी लेखन क्षमता एवं आलोचनात्मक सोच क्षमता कम हो रही है।
06.	समावेशिता - प्रत्येक विद्यार्थी की अपनी सीखने की गति होती है। इन उपकरणों के माध्यम से प्रत्येक विद्यार्थी अपनी गति से सीख पाता है। इन उपकरणों के प्रयोग से विशेष रूप से कमजोर विद्यार्थी लाभान्वित होते हैं।	06.	शिक्षक-विद्यार्थी संवाद में कमी - इन उपकरणों के प्रयोग के कारण विद्यार्थी सीधे एआई पर निर्भर हो जाते हैं। शिक्षक-छात्र चर्चा का समय घट रहा है।

बढ़ रही है। विद्यार्थियों द्वारा किए गए गृहकार्य/सत्रीय कार्य आदि की मौलिकता में कमी आ रही है। इस प्रकार विद्यार्थियों ने सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उपकरणों के प्रयोग के प्रभावों के संदर्भ में अपनी मिश्रित प्रतिक्रिया अभिव्यक्त की है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सर्जनात्मक कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उपकरणों का प्रयोग उच्च शिक्षा के क्षेत्र में दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। उच्च शिक्षा के दो प्रमुख हितधारक, शिक्षक एवं विद्यार्थी, इसका प्रयोग अपने अध्ययन-अध्यापन कार्यों में कर रहे हैं। जेन एआई के जो प्रमुख उपकरण शिक्षकों एवं विद्यार्थियों द्वारा सामान्यतः प्रयुक्त हो रहे हैं, वे लगभग एक समान हैं। कुछ प्रमुख उपकरण चैट जीपीटी, ग्रामरली, क्विलबोट, डाले-ई, सॉफ्रेटिक, एलिसिट, पेरिलेक्सिटि एआई आदि हैं। इन उपकरणों का प्रयोग शिक्षक अपने शिक्षण कार्य में सहायक की तरह कर रहे हैं। वे शिक्षण संप्रत्ययों को सरलीकृत करने, विद्यार्थियों का मूल्यांकन करने एवं शोध कार्यों में इनकी सहायता ले रहे हैं। विद्यार्थी इन उपकरणों का प्रयोग गृह कार्य या सत्रीय कार्य करने, स्वगत से सीखने, अपनी रचनात्मक क्षमता एवं भाषाई कौशल को उन्नत करने में कर रहे हैं। इस प्रकार, जेन एआई उपकरण शिक्षक एवं विद्यार्थी, दोनों के लिए सहायक सिद्ध हो रहे हैं। जहाँ तक इसके नकारात्मक प्रभावों यथा, अत्यधिक निर्भरता, गढ़ी हुई या त्रुटिपूर्ण जानकारी, शिक्षक एवं विद्यार्थी के मध्य बढ़ती हुई दूरी आदि का प्रश्न है, यदि जेन एआई उपकरणों का

प्रयोग सावधानीपूर्वक एक सहायक के रूप में किया जाए तो इन सारे नकारात्मक प्रभावों को कम किया जा सकता है। इसके लिए शिक्षक को जेन एआई उपकरणों का सहायक के रूप में प्रयोग कर और उससे प्राप्त परिणामों का सत्यापन कर विद्यार्थियों के समक्ष एक आदर्श स्थापित करना चाहिए, ताकि विद्यार्थी भी जेन एआई का नैतिक उपयोग करने के लिए प्रेरित हो सकें। इसके साथ यह भी आवश्यक है कि उच्च शिक्षा संस्थान जेन एआई को न केवल *तकनीकी उपकरण* के रूप में स्वीकार करें, बल्कि इसके *शिक्षाशास्त्रीय एवं नैतिक आयामों* को भी समझें। नीति-निर्माताओं, शिक्षकों और शिक्षार्थियों को मिलकर यह सुनिश्चित करना होगा कि जेन एआई का रचनात्मक, उत्तरदायित्वपूर्ण और समावेशी तरीके से प्रयोग किया जाए।

संदर्भ सूची

- अग्रवाल, एस.; अरोड़ा, सी. आदि. (30 अक्तूबर, 2024). *IIT दिल्ली में जनरेटिव AI के उपयोग पर*. भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, दिल्ली. <https://academics.iitd.ac.in/wp-content/uploads/2025/04/IITDAI Guidelines.pdf> से पुनः प्राप्त.
- अग्निहोत्री, आर. के. एवं खन्ना, ए. एल. (1991). स्कूली पाठ्यपुस्तकों की पठनीयता का मूल्यांकन : एक भारतीय अध्ययन. *जर्नल ऑफ रीडिंग*, 35(4), पृ सं. 282-288 रिट्राइव्ड फ्रॉम <https://www.jstor.org/stable/40033226> से पुनः प्राप्त.
- उल्लास, (2023). AI सहायक या श्रेष्ठ विद्यार्थी? : कक्षा में ChatGPT

- के साथ IISc में छात्र-शिक्षकों के प्रयोग. *कर्नेल (IISc)*. रिट्राइव्ड फ्रॉम उपलब्ध. <https://kernel.iisc.ac.in/ai-assistant-or-ace-student/> से पुनः प्राप्त.
- खान, ए.; पृथ्वी, डी.; जिंदल, जी.; इस्वरन, के. आदि. (2024, जनवरी 8). *शिक्षा एवं अनुसंधान के लिए उभरते AI उपकरण : IISc का दृष्टिकोण व नीतियाँ* (I-CARE समिति प्रस्तुति). भारतीय विज्ञान संस्थान, बेंगलुरु. उपलब्ध : https://iisc.ac.in/wp-content/uploads/2024/03/Generative_AI_Engineering_faculty.pdf से पुनः प्राप्त.
- चांप्रदित, टी. (2025). *जेनरेटिव आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस इन एकेडमिक राइटिंग इन हायर एजुकेशन: अ सिस्टेमेटिक रिव्यू*. एडिलविस, अप्लाइड साइंस एवं टेक्नॉलॉजी, 9(4), पृ. सं. 889–906.
- जॉन्सन, एम. एवं बैंगियो, यू. (2024). *जेनरेटिव एआई इन एजुकेशन: स्ट्रेटजीज फॉर एड्रेसिंग इम्प्लीमेंटेशन चैलेंजेज*. अप्रकाशित पांडुलिपि. DOI: 10.13140/RG.2.2.
- फ्लोरिडि, एल. एवं कोल्स, जे. (2019). *ए यूनिफाइड फ्रेमवर्क ऑफ फाइव प्रिंसीपल्स फॉर एआई इन सोसाइटी*. एल. फ्लोरिडि (संपा.), एथिक्स, गवर्नेंस एण्ड पॉलिसिज इन आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, पृ० सं. 5–17. चाम, स्विट्जरलैंड : स्प्रिंगर .
- ब्राउन, टी. बी., मैन, बी., आदि. (2020). *लैंग्वेज मॉडल आर फ्यु शॉट लर्नर्स*. एच. लारोशेल, एम. रंजातो, आर. हैडसेल, एम. एफ. बाल्कन एवं एच. लिन (संपा.), *एडवांसेज इन न्युरल इंफॉर्मेशन प्रोसेसिंग सिस्टम*, 33, 1877-1901. करन एसोसिएट्स, इंक.
- भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय. (2020). *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 : शिक्षण-अधिगम, शैक्षणिक नियोजन एवं प्रबंधन में डिजिटल प्रौद्योगिकियों का समावेश*, पृ. सं. 92-95.
- मौलिक, ई., एवं मौलिक, एल. (2023). *शिक्षा को सुधारने हेतु कृत्रिम बुद्धिमत्ता का उपयोग : अवसर और नैतिक चुनौतियाँ*.
- सेल्विन, एन. (2023). *ऑन द लिमिट्स ऑफ आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (AI) इन एजुकेशन*.
- नॉर्डिक टिड्स्क्रिफ्ट फॉर पेडागॉजिकल ओग क्रिटिक, 10(1), पृ. सं. 3–14.



सोशल मीडिया एवं डीपफेक : उपयोगकर्ताओं की जागरूकता, धारणा और साझा करने की प्रवृत्तियों का अध्ययन

सुकान्त तिवारी¹ और डॉ. कुँवर सुरेंद्र बहादुर²

सारांश

कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई) का चलन बढ़ रहा है। इसके कई लाभ हैं तो यह कई चुनौतियाँ भी पेश करती है। एआई का उपयोग करके बनाए जाने वाले डीपफेक गंभीर चिंता का विषय हैं, क्योंकि ये दर्शकों को गुमराह कर सकते हैं। प्रस्तुत अध्ययन सोशल मीडिया उपयोगकर्ताओं में डीपफेक सामग्री के प्रति जागरूकता, धारणा और साझा करने की प्रवृत्तियों का विश्लेषण करता है। अध्ययन के लिए वर्णनात्मक-अन्वेषणात्मक दृष्टिकोण और मिश्रित विधि (मात्रात्मक और गुणात्मक) का प्रयोग किया गया। शोध के लिए 110 सोशल मीडिया उपयोगकर्ताओं से ऑनलाइन प्रश्नावली के माध्यम से डेटा एकत्रित किया गया। परिणाम दर्शाते हैं कि अधिसंख्य उपयोगकर्ता डीपफेक सामग्री के प्रति सीमित जागरूकता रखते हैं। उनकी धारणा मिश्रित है और साझा करने की प्रवृत्तियाँ सामाजिक और सूचना साझा करने के उद्देश्यों से प्रभावित होती हैं। अधिकतर उत्तरदाताओं ने डीपफेक को हानिकारक और खतरनाक बताया। कुछ प्रतिभागियों ने डीपफेक की दोहरी प्रकृति पर बात करते हुए कुछ मामलों में इन्हें लाभदायक भी बताया। यह अध्ययन डीपफेक सामग्री के सामाजिक जोखिमों को कम करने के लिए डिजिटल साक्षरता, नैतिक जागरूकता और नियामक उपायों को बढ़ाने की आवश्यकता पर जोर देता है।

संकेत शब्द : डीपफेक, सोशल मीडिया, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, डिजिटल साक्षरता।

प्रस्तावना

वर्तमान समय में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई) यानी कृत्रिम बुद्धिमत्ता का चलन बढ़ रहा है। इसका उपयोग स्वास्थ्य सेवा, शिक्षा, शासन और मीडिया सहित विभिन्न क्षेत्रों में किया जा रहा है। एआई से तात्पर्य उस तकनीक से है, जो मशीनों को ऐसे कार्य करने में सक्षम बनाती है, जिनके लिए आमतौर पर मानवीय बुद्धिमत्ता की आवश्यकता होती है (शेख एवं अन्य, 2023)। एआई को अपनाने की प्रक्रिया सभी क्षेत्रों में तेजी से बढ़ रही है। इसके कई फायदे हैं, तो कई नुकसान भी हैं। कुछ लोग डीपफेक वीडियो बनाने के लिए भी एआई का प्रयोग कर रहे हैं (डे रूइटर, 2021)।

डीपफेक शब्द पहली बार 2017 में एक रेडिट (Reddit) उपयोगकर्ता द्वारा प्रयोग किया गया था। डीपफेक नाम के इस रेडिट एकाउंट पर मशहूर हस्तियों की तस्वीरों के इस्तेमाल से बनाई गई वयस्क सामग्री पोस्ट की जाती थी (पेन, 2025)। अमेरिकी संघीय सरकार के सरकारी जवाबदेही कार्यालय (गाओ, 2020) के अनुसार, डीपफेक असली दिखने वाले वीडियो, फोटो या ऑडियो रिकॉर्डिंग होते हैं, जिन्हें एआई द्वारा हेरफेर करके तैयार किया जाता है। डीपफेक एक सिंथेटिक मीडिया है, जिसमें किसी व्यक्ति के चेहरे या आवाज में एआई की सहायता से हेरफेर करके एक नए ऑडियो या वीडियो का निर्माण किया जाता है, जो वास्तविक लगता है।

ईडीस्मार्ट (तिथि नहीं) के एक लेख के अनुसार, 2023 में पूरे विश्व में लगभग 5 लाख ऑडियो-वीडियो डीपफेक सोशल मीडिया पर साझा किए गए। हिंदुस्तान टाइम्स के लेख के अनुसार, डीपफेक सामग्री पर हुए एक सर्वेक्षण में पाया गया कि ऑनलाइन उपलब्ध सभी डीपफेक वीडियो में 98% वयस्क सामग्री है (सिंह, 2023)। कई फिल्म कलाकार और

राजनेता भी इन डीपफेक वीडियो का शिकार हो चुके हैं। इन वीडियो का इस्तेमाल कभी मनोरंजन के लिए तो कभी व्यंग्य के तौर पर किया जा रहा है। इसके अलावा कई बार इनका इस्तेमाल फर्जी खबरें फैलाने और राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता में भी किया जा सकता है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी भी डीपफेक वीडियो का शिकार हुए हैं और उन्होंने डीपफेक से जुड़े खतरों पर चिंता भी व्यक्त की है। भारत के इलेक्ट्रॉनिक्स और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्री (MeitY) अश्विनी वैष्णव ने भी डीपफेक वीडियो पर चिंता जताते हुए, इन्हें एक सामाजिक खतरा बताया है (इलेक्ट्रॉनिक्स और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय, 2023)।

वर्तमान समय में सोशल मीडिया समाज का अभिन्न अंग बन गया है। सोशल मीडिया पर हर तरह की सामग्री आसानी से उपलब्ध है, डीपफेक वीडियो भी। डीपफेक वीडियो का इस्तेमाल नकारात्मक तरीके से भी किया जा रहा है। बीबीसी पर प्रकाशित सेबेस्टियन (2024) की समाचार रिपोर्ट के अनुसार, 2009 के हवाई हमले में जान गँवाने वाली तमिल टाइम्स के आतंकवादी प्रमुख वेलुपिल्लई प्रभाकरण की बेटी दुवारका प्रभाकरण के भाषण का एक वीडियो नवंबर 2023 में वायरल हुआ। हिंदुस्तान टाइम्स की वेबसाइट पर प्रकाशित भटनागर (2024) की एक समाचार रिपोर्ट के अनुसार, फिल्म अभिनेता आमिर खान और रणवीर सिंह का एक राजनीतिक दल का प्रचार करते हुए वीडियो सोशल मीडिया पर वायरल हुआ।

टेक्नोलॉजी का इस तरह दुरुपयोग चिंताजनक है। ये डीपफेक व्यक्ति की छवि तो खराब करते ही हैं, साथ ही फेक न्यूज फैलाने का कार्य भी करते हैं। ऐसे लोग, जो डीपफेक से परिचित नहीं हैं, वे इन वीडियो को वास्तविक मानकर साझा भी करते हैं। डीपफेक द्वारा फैल रही फेक न्यूज के चलते सोशल मीडिया पर आने वाले सही समाचारों व सूचनाओं पर

¹शोधार्थी, जनसंचार एवं पत्रकारिता विभाग, बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.). ईमेल : sukannttiwari1@gmail.com

²सहायक प्रोफेसर, जनसंचार एवं पत्रकारिता विभाग, बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र.).

भी प्रश्ववाचक चिह्न लग जाता है। डीपफेक के इस दौर में लोगों के लिए यह समझना मुश्किल हो जाता है कि सोशल मीडिया पर उपलब्ध कौन-सी सामग्री सही है व कौन-सी गलत। इसके अतिरिक्त इसके और भी कई दुष्परिणाम हो सकते हैं। ऐसे में यह समझना महत्वपूर्ण हो जाता है कि सोशल मीडिया उपयोगकर्ता डीपफेक को किस हद तक पहचान पाते हैं, इनको लेकर उनकी धारणाएँ क्या हैं और वे ऐसी सामग्री साझा क्यों करते हैं? यह अध्ययन सोशल मीडिया एवं डीपफेक से जुड़ी जागरूकता, धारणा और साझा करने की प्रवृत्तियों का विश्लेषण करता है।

साहित्य पुनरावलोकन

यह अध्ययन सोशल मीडिया उपयोगकर्ताओं के मध्य डीपफेक को लेकर जागरूकता, धारणा और साझा करने की प्रवृत्तियों से संबंधित है। इस विषय से संबंधित कुछ प्रमुख अध्ययनों की समीक्षा निम्न है :

प्रौद्योगिकी के विकास ने फेक वीडियो बनाना काफी आसान कर दिया है। इन वीडियो में नेता, सेना के अफसर या कोई भी अन्य व्यक्ति दिखाया जा सकता है। अतः वास्तविक जैसे दिखने वाले ये डीपफेक वीडियो हमारे लोकतंत्र, राष्ट्रीय सुरक्षा व समाज के लिए खतरा पैदा कर सकते हैं (अग्रवाल एवं अन्य, 2019)। डीपफेक वीडियो-आधारित दुष्प्रचार का एक नया रूप है। ये लोगों को गुमराह करने के साथ ही उनमें अनिश्चितता पैदा कर रहे हैं, जिससे लोगों में सोशल मीडिया पर उपलब्ध समाचारों को लेकर विश्वास की कमी देखी जा सकती है। डिजिटल समाज के लिए यह एक गंभीर चुनौती है (वैक्कारी एवं चैडविक, 2020)।

आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस और डीप लर्निंग जैसी प्रौद्योगिकियों के विकास ने सामग्री निर्माण करने और उनके प्रयोग करने के तरीकों को बदल कर रख दिया है। इसके चलते डीपफेक जैसी चुनौती भी सामने आई है, जो समाज के लिए चिंताजनक स्थिति उत्पन्न कर सकती है (गमेज एवं अन्य, 2021)। इंटरनेट पर फैली फेक डिजिटल सामग्री विभिन्न सोशल मीडिया मंचों और प्रयोगकर्ताओं के लिए चिंता का सबब बनी हुई है। प्रतिदिन विकसित होती प्रौद्योगिकी के चलते वास्तविक व फेक सामग्री में अंतर कर पाना भी चुनौतीपूर्ण हो गया है। एआई की सहायता से निर्मित डीपफेक भी ऐसी ही सामग्री हैं, जो होते तो एआई निर्मित हैं, मगर लगते वास्तविक हैं (शर्मा एवं कौर, 2022)।

डीपफेक की पहचान कर पाना आसान नहीं है। इनसे बचाव के लिए लोगों को सोशल मीडिया पर उपलब्ध सामग्री के प्रति जागरूक रहने की आवश्यकता है। लोगों को यह जानना चाहिए कि किसी भी सामग्री का स्रोत क्या है? लोगों को डीपफेक वीडियो और विश्वसनीय स्रोतों को लेकर शिक्षित किए जाने की आवश्यकता है (मारिन एवं अन्य, 2022)। किसी राजनीतिक दल के साथ वैचारिक असंगति लोगों को उस राजनीतिक दल से संबंधित डीपफेक साझा करने के लिए प्रेरित करती है। इस नफरत के कारण लोग ऐसे वीडियो को जाँचे-परखे बिना ही साझा कर देते हैं। ऐसा राजनीतिक दल से बदला लेने व अपनी विचारधारा को मजबूत करने के उद्देश्य से किया जाता है (शर्मा एवं अन्य, 2023)।

उपर्युक्त अध्ययनों से स्पष्ट है कि डीपफेक तकनीक और इसके प्रभाव पर अंतरराष्ट्रीय स्तर पर पर्याप्त शोध उपलब्ध हैं। भारतीय संदर्भ में किए गए शोध सीमित हैं और अधिकतर तकनीकी पहलुओं या राजनीतिक प्रभाव तक ही केंद्रित हैं। भारत में सोशल मीडिया उपयोगकर्ताओं की जागरूकता,

धारणा और सामग्री साझा करने की प्रवृत्तियों को लेकर कम ही अध्ययन उपलब्ध हैं। भारत में तेजी से बढ़ते इंटरनेट और सोशल मीडिया उपयोग, विविध भाषाई और सांस्कृतिक परिदृश्यों तथा राजनीतिक सक्रियता के कारण डीपफेक सामग्री के प्रभाव भिन्न हो सकते हैं। इन पहलुओं को ध्यान में रखते हुए यह अध्ययन इस शोध अंतर को भरने का प्रयास करता है। इस अध्ययन के माध्यम से सोशल मीडिया उपयोगकर्ताओं के मध्य डीपफेक को लेकर जागरूकता के स्तर की जानकारी मिलेगी। डीपफेक सामग्री के संबंध में उपयोगकर्ताओं की धारणाओं तथा ऐसी सामग्री साझा करने के पीछे की प्रेरणाओं की जानकारी भी इस अध्ययन से प्राप्त होगी।

शोध प्रश्न

1. सोशल मीडिया उपयोगकर्ताओं के मध्य डीपफेक को लेकर जागरूकता का स्तर क्या है?
2. डीपफेक सामग्री के संबंध में सोशल मीडिया उपयोगकर्ताओं की धारणाएँ क्या हैं?
3. सोशल मीडिया पर डीपफेक सामग्री साझा करने के पीछे क्या प्रेरणा होती है?

शोध के उद्देश्य

1. सोशल मीडिया उपयोगकर्ताओं के मध्य डीपफेक के बारे में जागरूकता के स्तर का अध्ययन
2. डीपफेक सामग्री के संबंध में उपयोगकर्ताओं की धारणाओं का पता लगाना।
3. सोशल मीडिया पर डीपफेक सामग्री साझा करने के पीछे की प्रेरणाओं को समझना।

सैद्धांतिक रूपरेखा

- **मीडिया समृद्धि सिद्धांत (Media Richness Theory)** - बताता है कि माध्यम की जटिलता और सूचना प्रदान करने की क्षमता उपयोगकर्ता की धारणा और निर्णय को प्रभावित करती है (डाफ्ट एवं लेंगल, 1986)।
- **उपयोग और संतुष्टि सिद्धांत (Uses and Gratifications Theory)** स्पष्ट करता है कि लोग मीडिया का उपयोग क्यों करते हैं और किस उद्देश्य से सामग्री का उपभोग या उसे साझा करते हैं (काट्ज, ब्लुमलर एवं ग्यूरविच, 1973)।

शोध प्रविधि

शोध प्रकार	वर्णनात्मक-अन्वेषणात्मक (Descriptive-Exploratory); मिश्रित-विधि (मात्रात्मक + गुणात्मक)
प्रतिदर्श	110 सोशल मीडिया उपयोगकर्ता (लखनऊ)
प्रतिदर्श तकनीक	उद्देश्यपूर्ण प्रतिदर्श चयन (Purposive Sampling)
डेटा संग्रह उपकरण	ऑनलाइन प्रश्नावली

डेटा विश्लेषण उपकरण	मात्रात्मक विश्लेषण के लिए MS Excel; गुणात्मक डेटा के लिए विषयगत विश्लेषण (ब्रॉन एवं क्लार्क, 2006)
---------------------	---

डेटा विश्लेषण

सारणी - 1

110 सोशल मीडिया उपयोगकर्ताओं से भरवाई गई संरचित प्रश्नावली से प्राप्त डेटा को विश्लेषण योग्य बनाने के लिए साफ और क्रमबद्ध किया गया, ताकि सोशल मीडिया उपयोगकर्ताओं के मध्य डीपफेक को लेकर जागरूकता, धारणा और साझा करने की प्रवृत्तियों से जुड़े प्रमुख कारकों पर ध्यान केंद्रित करते हुए विश्लेषण किया जा सके।

आयु वर्ग	18-20 साल	6	5.5%
	21-23 साल	24	21.8%
	24-26 साल	36	32.7%
	27 साल या अधिक	44	40%
लिंग	पुरुष	77	70%
	महिला	33	30%
शैक्षणिक योग्यता	स्नातक	28	25.5%
	स्नातकोत्तर	57	51.8%
	डॉक्टरल (पीएच.डी.)	25	22.7%
पेशा	विद्यार्थी	60	54.5%
	कार्यरत पेशेवर	41	37.3%
	बेरोजगार	8	7.3%
	अन्य (उद्यमी)	1	0.9%

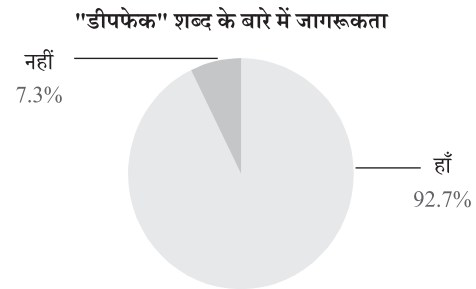
सारणी - 2

सोशल मीडिया उपयोगकर्ताओं में डीपफेक जागरूकता

सर्वेक्षण में भाग लेने वाले 110 लोगों में से सबसे अधिक 104 (94.5%) लोग व्हाट्सएप, 98 (89.1%) यूट्यूब तथा 90 (81.8%) इंस्टाग्राम का प्रयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त 59 (53.6%) फेसबुक, 51 (46.4%) टेलीग्राम और 42 (38.2%) ट्विटर/एक्स का इस्तेमाल करते हैं। 4 (3.6%) लोगों ने अन्य का विकल्प चुनते हुए बताया कि वे स्नैपचैट (1.8%) तथा लिंकडइन (1.8%) का प्रयोग भी करते हैं।

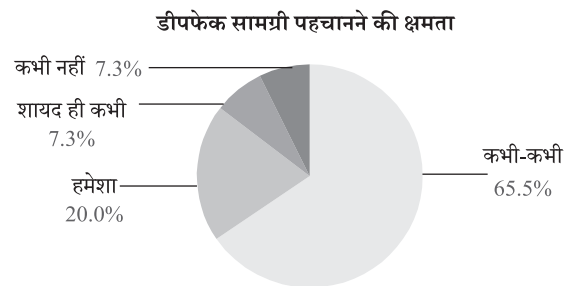
सबसे अधिक 42 (38.2%) लोग 2-4 घंटे, 35 (31.8%) लोग 1-2 घंटे, 14 (12.7%) लोग 4-6 घंटे तथा 9 (8.2%) लोग 6 घंटे से अधिक प्रतिदिन सोशल मीडिया पर बिताते हैं। 10 (9.1%) लोगों ने बताया कि वे प्रतिदिन एक घंटे से भी कम समय सोशल मीडिया को देते हैं।

सर्वेक्षण में भाग लेने वाले सिर्फ 8 (7.3%) लोग ऐसे थे, जिन्होंने डीपफेक शब्द पहली बार इस सर्वेक्षण के दौरान सुना। अन्य 102 (92.7%) लोगों ने कभी-न-कभी डीपफेक शब्द सुना था। इनमें 54



फिगर - 1

(49.1%) लोगों ने सोशल मीडिया से, 35 (31.8%) ने न्यूज मीडिया से तथा 11 (10%) ने मित्रों/साथियों के माध्यम से डीपफेक शब्द सुना। 10 (9.1%) प्रतिभागियों ने अन्य का चयन किया, जिनमें से 8 (7.3%) ने इस सर्वेक्षण से, 1 (0.9%) ने चुनावी व्यवहार का अध्ययन करते समय तथा 1 (0.9%) ने किसी के-ड्रामा से डीपफेक के बारे में सुना।



फिगर - 2

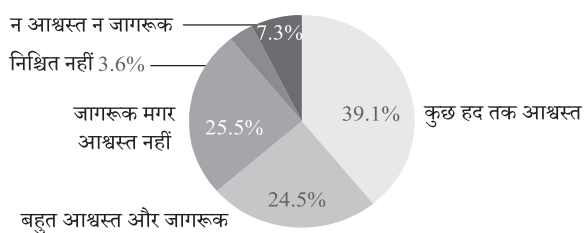
72 (65.5%) प्रतिभागियों ने कहा कि वे डीपफेक सामग्री देखकर यदा-कदा उसे पहचान सकते हैं। 22 (20%) का मानना था कि वे हमेशा ही ऐसी सामग्री को पहचान सकते हैं। 8 (7.3%) को लगता था कि वे शायद ही कभी ऐसी सामग्री को पहचान सकें तथा 8 (7.3%) ने कहा कि वे ऐसी सामग्री को कभी नहीं पहचान पाते।

उत्तर	पुरुष (77)	महिलाएँ (33)	स्नातक (28)	स्नातकोत्तर (57)	डॉक्टरल (25)
हमेशा	20 (26%)	2 (6%)	9 (32%)	11 (19%)	2 (8%)
कभी-कभी	47 (61%)	25 (76%)	13 (46%)	39 (68%)	20 (80%)
शायद ही कभी	6 (8%)	2 (6%)	3 (11%)	3 (5%)	2 (8%)
कभी नहीं	4 (5%)	4 (12%)	3 (11%)	4 (7%)	1 (4%)

सारणी - 3

उपर्युक्त सारणी में लिंग और शिक्षा के आधार पर उत्तर प्रस्तुत किए गए हैं।

डीपफेक पहचानने को लेकर आत्मविश्वास और जागरूकता

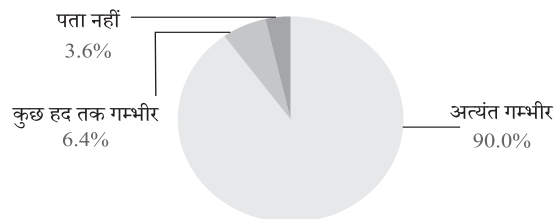


फिगर - 3

43 (39.1%) प्रतिभागियों ने कहा कि ऑनलाइन डीपफेक की पहचान करने को लेकर वे कुछ हद तक आश्वस्त हैं। 28 (25.5%) इसको लेकर जागरूक तो थे, लेकिन आश्वस्त नहीं। 27 (24.5%) ने अत्यंत आश्वस्त और जागरूक होने की बात कही। 8 (7.3%) को लगता था कि वे इस बारे में न आश्वस्त हैं और न ही जागरूक तथा 4 (3.6%) ने कहा कि वे इसको लेकर निश्चित नहीं हैं।

डीपफेक के प्रति धारणा

डीपफेक मुद्दे की गंभीरता

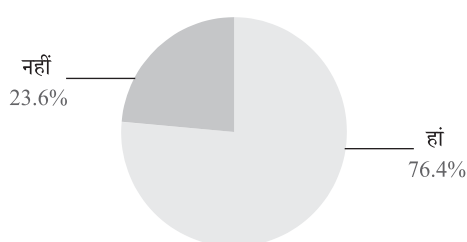


फिगर - 5

99 (90%) प्रतिभागियों का मानना था कि डीपफेक का मुद्दा अत्यंत गंभीर है। 7 (6.4%) ने इसे कुछ हद तक गंभीर बताया तथा 4 (3.6%) ने कहा कि उन्हें इस बारे में जानकारी नहीं है। किसी भी प्रतिभागी ने नहीं कहा कि यह मुद्दा गंभीर नहीं है।

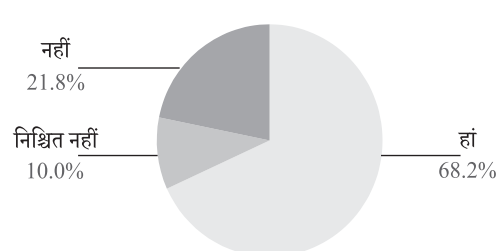
डीपफेक के प्रभाव के बारे में पूछे जाने पर सर्वेक्षण में शामिल 98 (89.1%) ने इससे गलत सूचना/फर्जी समाचार फैलने, 87 (79.1%) ने व्यक्तियों की मानहानि, 85 (77.2%) ने साइबर अपराध/धोखाधड़ी हो सकने की बात कही। 81 (73.6%) ने माना कि डीपफेक को राजनीतिक

साझा करने से पहले विडियो/छवियों का सत्यापन



फिगर - 4

डीपफेक सामग्री को विनियमित करने पर राय



फिगर - 6

उत्तर	पुरुष (77)	महिलाएँ (33)	स्नातक (28)	स्नातकोत्तर (57)	डॉक्टोरल (25)
बहुत आश्वस्त और जागरूक	24 (31.2%)	3 (9.1%)	11 (39.3%)	14 (24.6%)	2 (8.0%)
कुछ हद तक आश्वस्त	27 (35.1%)	16 (48.5%)	7 (25.0%)	21 (36.8%)	15 (60.0%)
जागरूक मगर आश्वस्त नहीं	19 (24.7%)	9 (27.3%)	6 (21.4%)	17 (29.8%)	5 (20.0%)
न आश्वस्त न जागरूक	6 (7.8%)	2 (6.1%)	2 (7.1%)	4 (7.0%)	2 (8.0%)
निश्चित नहीं	1 (1.3%)	3 (9.1%)	2 (7.1%)	1 (1.8%)	1 (4.0%)

सारणी - 4

उपर्युक्त सारणी में लिंग और शिक्षा के आधार पर उत्तर प्रस्तुत किए गए हैं।

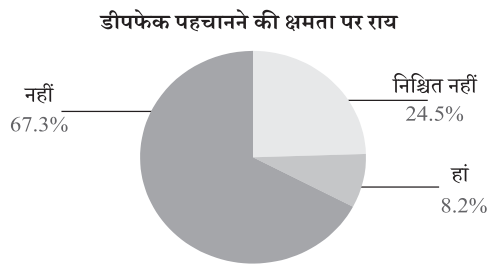
उत्तर	पुरुष (77)	महिलाएँ (33)	स्नातक (28)	स्नातकोत्तर (57)	डॉक्टोरल (25)
हां	60 (77.9%)	24 (72.7%)	18 (64.3%)	45 (78.9%)	21 (84.0%)
नहीं	17 (22.1%)	9 (27.3%)	10 (35.7%)	12 (21.1%)	4 (16.0%)

सारणी - 5

उपर्युक्त सारणी में लिंग और शिक्षा के आधार पर उत्तर प्रस्तुत किए गए हैं।

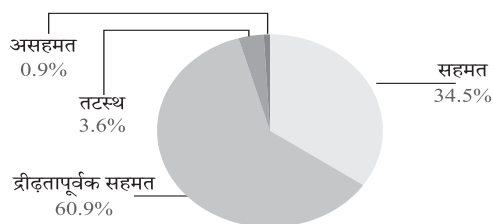
हित साधने के लिए प्रयोग किया जा सकता है तथा 43 (39.1%) ने मनोरंजन (जैसे, फिल्में, मीम) का विकल्प चुना। 4 (3.6%) प्रतिभागी ऐसे भी थे, जिन्होंने अन्य का विकल्प चुनते हुए कहा कि उन्हें इस बारे में जानकारी नहीं है।

75 (68.2%) प्रतिभागियों ने कहा कि डीपफेक सामग्री को विनियमित किया जाना चाहिए, वहीं 24 (21.8%) का मानना था कि ऐसा नहीं होना चाहिए। 11 (10%) प्रतिभागी इस विषय में निश्चित नहीं थे।



फिगर - 7

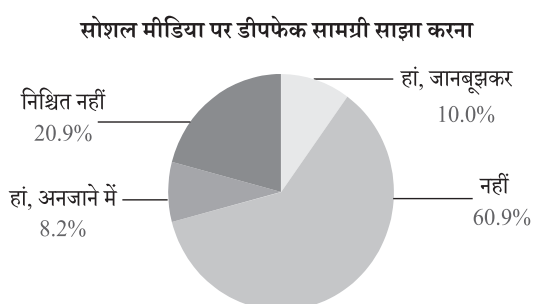
74 (67.3%) प्रतिभागियों ने माना कि अधिसंख्य लोग वास्तविक सामग्री और डीपफेक सामग्री में अंतर नहीं कर सकते हैं। 9 (8.2%) को लगता था कि अधिकतर लोग अंतर कर सकते हैं तथा 27 (24.5%) इसको लेकर निश्चित नहीं थे।



फिगर - 8

67 (60.9%) प्रतिभागियों ने इस बात से दृढ़तापूर्वक सहमति तथा 38 (34.5%) ने सामान्य सहमति जताई कि डीपफेक समाज के लिए खतरनाक हो सकते हैं। केवल 1 (0.9%) ने इस पर असहमति व्यक्त की तथा 4 (3.6%) ने इस पर तटस्थ रहना चुना। किसी ने भी दृढ़तापूर्वक असहमति व्यक्त नहीं की।

साझा करने का व्यवहार और प्रेरणा



फिगर - 9

11 (10%) प्रतिभागियों ने स्वीकार किया कि उन्होंने जानबूझकर सोशल मीडिया पर डीपफेक सामग्री साझा की है तथा 9 (8.2%) ने कहा कि उन्होंने ऐसी सामग्री अनजाने में साझा की है। 67 (60.9%) ने कहा कि उन्होंने ऐसी सामग्री कभी साझा नहीं की, वहीं 23 (20.9%) इसको लेकर अनिश्चित थे।

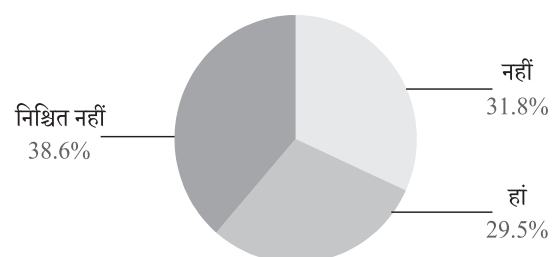
उत्तर	पुरुष (77)	महिलाएँ (33)	स्नातक (28)	स्नातकोत्तर (57)	डॉक्टरेट (25)
हाँ, जानबूझकर	9 (11.7%)	2 (6.1%)	3 (10.7%)	4 (7.0%)	4 (16.0%)
हाँ, अनजाने में	7 (9.1%)	2 (6.1%)	2 (7.1%)	5 (8.8%)	2 (8.0%)
नहीं	48 (62.3%)	19 (57.6%)	18 (64.3%)	34 (59.6%)	15 (60.0%)
निश्चित नहीं	13 (16.9%)	10 (30.3%)	5 (17.9%)	14 (24.6%)	4 (16.0%)

सारणी - 6

उपर्युक्त सारणी में लिंग और शिक्षा के आधार पर उत्तर प्रस्तुत किए गए हैं।

डीपफेक सामग्री साझा करने के कारण पूछे जाने वाले प्रश्न का जवाब सिर्फ 27 प्रतिभागियों द्वारा दिया गया। इनमें से 14 (51.9%) ने स्वीकार किया कि उन्होंने मनोरंजन के लिए, 5 (18.6%) ने दूसरों को सूचित करने के उद्देश्य से तथा 4 (14.9%) ने साथियों के प्रभाव में आकर डीपफेक सामग्री साझा की थी। 8 (29.7%) ने वास्तविक समझकर तथा 2 (7.4%) ने पता न होने के कारण डीपफेक साझा किए थे।

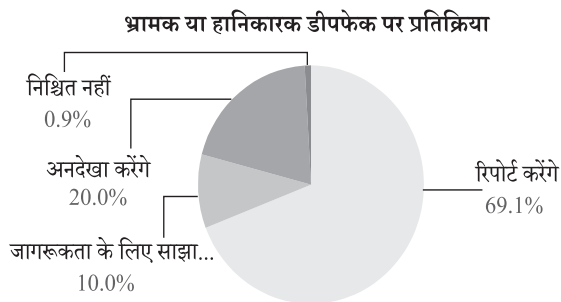
डीपफेक सामग्री साझा करने पर खेद



फिगर - 10

इस प्रश्न का जवाब सिर्फ 44 प्रतिभागियों द्वारा दिया गया। इनमें से 13 (29.5%) ने स्वीकार किया कि उन्हें ऐसी सामग्री साझा करने का अफसोस हुआ है, जो बाद में डीपफेक निकली। 14 (31.9%) ने कहा कि उन्हें कोई अफसोस नहीं हुआ तथा 17 (38.6%) ने इस पर अनिश्चितता व्यक्त की।

78 (70.9%) प्रतिभागियों ने लोगों को गुमराह करना, 71 (64.5%) ने मनोरंजन तथा 70 (63.6%) ने राजनीतिक एजेंडों को डीपफेक साझा किए जाने का कारण माना। 59 (53.6%) ने कहा कि लोग दूसरों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए ऐसा करते हैं। 43 (39.1%)



फिगर - 11

ने व्यंग्य या पैरोडी तथा 24 (21.8%) ने कहा कि दूसरों की जागरूकता बढ़ाने के लिए लोग डीपफेक साझा करते हैं। 2 (1.8%) ने अन्य का विकल्प चुना, जिनमें से एक ने कहा कि लोग अनजाने में ऐसा कर देते हैं और एक को इस संबंध में जानकारी नहीं थी।

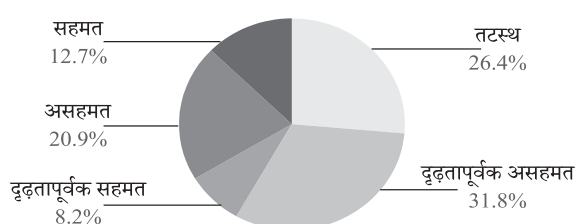
76 (69.1%) प्रतिभागियों ने कहा कि यदि उन्होंने कोई भ्रामक या हानिकारक डीपफेक देखा तो वे उसे रिपोर्ट करेंगे। 22 (20%) ने स्वीकार किया कि वे ऐसी सामग्री को अनदेखा करेंगे तथा 11 (10%) ने कहा कि वे इसे जागरूकता के लिए साझा करेंगे। 1 (0.9%) ने इस पर अनिश्चितता व्यक्त की।

प्रतिक्रिया	पुरुष (77)	महिलाएं (33)	स्नातक (28)	स्नातकोत्तर (57)	डॉक्टोरल (25)
रिपोर्ट करेंगे	52 (67.5%)	24 (72.7%)	19 (67.9%)	40 (70.2%)	17 (68.0%)
अनदेखा कर देंगे	18 (23.4%)	4 (12.1%)	6 (21.4%)	8 (14.0%)	8 (32.0%)
जागरूकता हेतु साझा करेंगे	7 (9.1%)	4 (12.1%)	3 (10.7%)	8 (14.0%)	0 (0.0%)
मनोरंजन हेतु साझा करेंगे	0 (0.0%)	0 (0.0%)	0 (0.0%)	0 (0.0%)	0 (0.0%)
निश्चित नहीं	0 (0.0%)	1 (3.0%)	0 (0.0%)	1 (1.8%)	0 (0.0%)

सारणी-7

उपर्युक्त सारणी में लिंग और शिक्षा के आधार पर उत्तर प्रस्तुत किए गए हैं।

मजेदार या दिलचस्प डीपफेक साझा करने की प्रति सहमति का स्तर



फिगर - 12

9 (8.2%) प्रतिभागियों ने इस बात से पूरी तरह सहमति तथा 14 (12.7%) ने सामान्य सहमति जताई कि यदि कोई डीपफेक मजेदार या दिलचस्प होगा, तो वे उसे साझा करेंगे। 29 (26.4%) ने इस विषय पर तटस्थता व्यक्त की। 23 (20.9%) ने इस पर सामान्य असहमति तथा 35 (31.8%) ने पूरी तरह असहमति व्यक्त की।

डीपफेक पर दृष्टिकोणों का विषयगत विश्लेषण

प्रश्न “मीडिया और सोशल प्लेटफॉर्म पर डीपफेक के बढ़ते उपयोग के बारे में आपके व्यक्तिगत विचार क्या हैं?” पर कुल 63 प्रतिभागियों के जवाब प्राप्त हुए, जिनका ब्राउन और क्लार्क (2006) की छह-चरणीय पद्धति का उपयोग करके विषयगत विश्लेषण किए जाने पर निम्नलिखित विषय निकलकर आए :

- **अनुमानित जोखिम और नकारात्मक प्रभाव (n = 34) :** अधिकतर उत्तरदाताओं ने डीपफेक को हानिकारक और खतरनाक बताया। उन्होंने डीपफेक को गलत सूचना, मानहानि, पहचान के दुरुपयोग, साइबर धोखाधड़ी, जनता के विश्वास में कमी और मनोवैज्ञानिक नुकसान से जोड़ा। एक उत्तरदाता ने इन्हें ‘समाज के लिए अभिशाप’ कहा (उत्तर 11)।
- **विनियमन और नियंत्रण (n = 30) :** कई उत्तरदाताओं ने सख्त विनियमन और जवाबदेही की आवश्यकता पर जोर दिया तथा सरकारी कार्रवाई या प्रतिबंध लगाने का आग्रह किया। कुछ लोगों ने प्लेटफॉर्म की जवाबदेही का सुझाव दिया, जैसे डीपफेक को टैग करना (उत्तर 32)।
- **जागरूकता के साथ रचनात्मक क्षमता का संतुलन (n = 22) :** कुछ प्रतिभागियों ने डीपफेक की दोहरी प्रकृति पर भी बात की। नकारात्मक प्रयोगों के अलावा फिल्म, विज्ञापन, शिक्षा और कहानी कहने में डीपफेक की रचनात्मक क्षमता का प्रयोग हो सकता है, बशर्ते ये उपयोग नैतिक और जिम्मेदारी भरे होने चाहिए। कुछ प्रतिभागियों ने डिजिटल साक्षरता, जन जागरूकता और डीपफेक सामग्री की पारदर्शी लेबलिंग की भी बात कही। जैसे—‘दोधारी तलवार’ (उत्तर 1) और ‘सत्यापन और मीडिया साक्षरता पर जोर देना’ (उत्तर 22)।

प्रतिक्रियाओं से पता चलता है कि जहाँ कुछ प्रतिभागी डीपफेक प्रौद्योगिकी के सकारात्मक पहलुओं को पहचान रहे हैं, वहीं इनसे संबंधित जोखिम, विनियमन और जागरूकता की तत्काल आवश्यकता प्रमुख चिंताएँ हैं।

प्रश्न “क्या आपको लगता है कि डीपफेक शेयर करना हमेशा गलत होता है? क्यों या क्यों नहीं?” पर कुल 61 प्रतिभागियों के जवाब प्राप्त हुए, जिनसे निम्नलिखित विषय निकलकर आए :

- **डीपफेक साझा करना खतरनाक या गलत (n = 34) :** ज्यादातर उत्तरदाताओं ने डीपफेक को अनैतिक बताया और गलत सूचना, धोखाधड़ी, प्रतिष्ठा को नुकसान और सामाजिक क्षति जैसे जोखिमों का हवाला दिया। एक ने कहा, “यह हमेशा गलत होता है। यह लोगों को गुमराह करेगा और गलत जानकारी की ओर ले जाएगा” (प्रतिक्रिया 29)।
- **संदर्भ के आधार पर सशर्त स्वीकार्यता (n = 24) :** कुछ उत्तरदाताओं ने तर्क दिया कि अगर डीपफेक पारदर्शी और सहमति से बनाए जाएँ, तो मनोरंजन, शिक्षा या व्यंग्य के लिए स्वीकार्य हो सकते हैं। एक ने कहा, “अगर इसे पूरी सहमति से बनाया गया हो, स्पष्ट रूप से

कृत्रिम बताया गया हो और हानिरहित मनोरंजन के लिए इस्तेमाल किया गया हो, तो यह नैतिक हो सकता है" (प्रतिक्रिया 18)।

अधिसंख्य उत्तरदाता डीपफेक को शेयर करना अनैतिक मानते हैं, लेकिन कुछ लोग पारदर्शिता के साथ नैतिक उपयोग को स्वीकार करते हैं। वहीं कुछ प्रतिभागी ऐसे भी थे, जो इस बारे में निश्चित नहीं थे। निष्कर्ष जोखिमों और लाभों के बीच संतुलन बनाने के लिए नैतिक दिशानिर्देशों की वकालत करते हैं।

परिणामों की चर्चा

• सोशल मीडिया उपयोगकर्ताओं के मध्य डीपफेक को लेकर जागरूकता का स्तर

परिणाम दर्शाते हैं कि अधिकतर प्रतिभागियों (90% से ज्यादा) ने सोशल मीडिया, समाचार माध्यमों या दोस्तों से डीपफेक के बारे में सुना था। अधिकतर ने डीपफेक को कभी-कभी ही पहचान पाने की बात कही। डॉक्टरेट के छात्र अधिकतर 'कभी-कभी' श्रेणी (80%) में आते हैं, और निश्चितता के बजाय सावधानी बरतते हैं। डीपफेक की पहचान करने में प्रतिभागियों का आत्मविश्वास अलग-अलग था। केवल एक छोटे-से हिस्से ने 'बहुत आश्चर्य' महसूस करने की बात कही। डॉक्टरेट प्रतिभागियों (8%) की तुलना में स्नातक छात्रों (39.3%) में अधिक प्रबल आत्मविश्वास देखा गया, जबकि डॉक्टरेट प्रतिभागियों (60%) में अधिकांशतः 'कुछ हद तक आत्मविश्वास' पाया गया।

कुल मिलाकर, परिणाम आंशिक जागरूकता लेकिन सीमित विश्वसनीयता दर्शाते हैं। शिक्षा के अंतर दर्शाते हैं कि उच्च शिक्षार्थी स्वयं का सावधानीपूर्वक मूल्यांकन करते हैं। यह कौशल और आत्मविश्वास दोनों के निर्माण के लिए केंद्रित मीडिया साक्षरता प्रशिक्षण की आवश्यकता की ओर इशारा करता है। ये परिणाम मीडिया समृद्धि सिद्धांत के अनुरूप हैं, जो कहता है कि वीडियो जैसे समृद्ध मीडिया व्याख्या के लिए अधिक संकेत प्रदान करते हैं। डीपफेक प्रामाणिक संचार की नकल करके इस समृद्धि का फायदा उठाते हैं, जिससे उपयोगकर्ताओं की वास्तविक और छेड़छाड़ की गई सामग्री के बीच आत्मविश्वास से अंतर करने की क्षमता कम हो जाती है।

• डीपफेक सामग्री के बारे में सोशल मीडिया उपयोगकर्ताओं की धारणाएँ

प्रतिभागियों ने डीपफेक को व्यापक रूप से गंभीर माना। लगभग सभी उत्तरदाताओं ने सहमति व्यक्त की कि डीपफेक समाज के लिए खतरनाक हो सकते हैं। मनोरंजन के उपयोग को स्वीकार करते हुए कुछ प्रतिभागियों ने डीपफेक की दोहरी प्रकृति की भी बात कही। नकारात्मक प्रयोगों के अलावा फिल्म, विज्ञापन, शिक्षा और कहानी कहने में डीपफेक की रचनात्मक क्षमता का प्रयोग हो सकता है। अधिकतर 75 (68.2%) प्रतिभागियों ने कहा कि डीपफेक सामग्री को विनियमित किया जाना चाहिए, वहीं 24 (21.8%) का मानना था कि ऐसा नहीं होना चाहिए। 74 (67.3%) प्रतिभागियों ने माना कि अधिकतर लोग वास्तविक सामग्री और डीपफेक सामग्री में अंतर नहीं कर सकते हैं।

ये परिणाम उपयोग और संतुष्टि सिद्धांत के अनुरूप हैं। प्रतिभागी डीपफेक के जोखिमों को भी पहचान रहे हैं तथा लाभों को भी, जो मीडिया सामग्री की विविध आवश्यकताओं को दर्शाता है। जहाँ कई

लोगों ने डीपफेक को हानिकारक माना, वहीं अन्य ने मनोरंजन और शिक्षा में उनकी उपयोगिता पर ध्यान दिया है। इससे पता चलता है कि प्रामाणिकता और विनियमन पर चिंताओं के बावजूद संतुष्टि धारणाओं को आकार देती है।

• सोशल मीडिया पर डीपफेक सामग्री साझा करने का व्यवहार और प्रेरणा

साझा करने का व्यवहार सीमित था। लगभग 10% ने जानबूझकर डीपफेक साझा करने की बात स्वीकारी, जबकि 8% ने अनजाने में साझा किया। अधिकतर प्रतिभागियों ने या तो कभी साझा नहीं करने या अनिश्चित होने की बात कही। जाने-अनजाने में डीपफेक सामग्री साझा करने वाले प्रतिभागियों ने बताया कि उन्होंने मनोरंजन, जागरूकता बढ़ाने, साथियों के प्रभाव या जानकारी के अभाव के चलते ऐसी सामग्री साझा की थी। प्रतिभागियों का मानना था कि लोगों को गुमराह करना, मनोरंजन, राजनीतिक एजेंडे, ध्यान आकर्षित करना, व्यंग्य या पैरोडी तथा जागरूकता बढ़ाने के लिए डीपफेक साझा किए जाते हैं।

76 (69.1%) प्रतिभागियों ने ऑनलाइन भ्रामक या हानिकारक डीपफेक देखने पर उसे रिपोर्ट करने की बात कही। कुछ ने ऐसी सामग्री को अनदेखा करने तथा कुछ ने जागरूकता के लिए साझा करने की बात स्वीकारी। 58 (52.7%) इस बात से असहमत थे कि वे मजेदार या दिलचस्प डीपफेक को साझा करेंगे, जबकि 23 (20.9%) ने ऐसी सामग्री को साझा करने पर सहमति व्यक्त की। अधिकतर 84 (76.4%) प्रतिभागी किसी वीडियो/फोटो को साझा करने से पहले उसकी पुष्टि करने का प्रयास करते हैं। ये परिणाम उपयोग और संतुष्टि सिद्धांत के अनुरूप हैं, क्योंकि प्रतिभागियों ने मनोरंजन, जागरूकता या सामाजिक प्रभाव जैसी विशिष्ट आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए डीपफेक साझा किए। चयनात्मक व्यवहार, हानिकारक सामग्री की रिपोर्टिंग, मीडिया की पुष्टि करना या साझा करने से बचना दर्शाता है कि मीडिया से जुड़ाव व्यक्तिगत संतुष्टि और कथित जोखिमों से प्रेरित होता है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन में डीपफेक सामग्री के बारे में सोशल मीडिया उपयोगकर्ताओं की जागरूकता, धारणाओं और साझा करने के व्यवहार की जाँच की गई। परिणाम बताते हैं कि 'डीपफेक' शब्द के बारे में अधिकतर लोग जानते हैं। उपयोगकर्ताओं की हेरफेर की गई सामग्री को सटीक रूप से पहचानने की क्षमता भिन्न होती है। प्रतिभागियों ने डीपफेक के संभावित जोखिमों को तो स्वीकारा, किंतु साझा करने से पहले सामग्री को सत्यापित करने वालों की संख्या कम ही थी। साझा करने का व्यवहार मुख्य रूप से मनोरंजन, साथियों के प्रभाव या जागरूकता बढ़ाने से प्रेरित था, जो उपयोग और संतुष्टि सिद्धांत के अनुरूप है। साझा करने के पैटर्न सामाजिक और मनोरंजन कारकों से प्रभावित रहे। मीडिया समृद्धि सिद्धांत डीपफेक की प्रेरक शक्ति को समझाने में मदद करती है, क्योंकि दृश्य और श्रवण संकेत कथित विश्वसनीयता और जुड़ाव को बढ़ाते हैं। कुल मिलाकर, अध्ययन यह दर्शाता है कि जागरूकता और जिम्मेदार उपयोग के बीच एक अंतर मौजूद है। डीपफेक के खतरों को पहचानने के बावजूद, उपयोगकर्ता अक्सर बिना सत्यापन के सामग्री साझा करते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि डिजिटल साक्षरता, सख्त सामग्री विनियमन और जनता को शिक्षित करने की आवश्यकता है,

ताकि हेरफेर किए गए मीडिया के सामाजिक प्रभाव को कम किया जा सके।

सुझाव

- उपयोगकर्ताओं को डीपफेक की पहचान करने और सत्यापित करने में मदद करने के लिए डिजिटल साक्षरता को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।
- हानिकारक डीपफेक सामग्री की निगरानी, चिह्नित और प्रतिबंधित करने हेतु सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म के लिए नीतियाँ और दिशानिर्देश विकसित किए जाएँ।
- डीपफेक के प्रसारित होने से पहले ही उन्हें स्वचालित रूप से पहचानने और लेबल करने के लिए एआई-आधारित पहचान उपकरणों का उपयोग किया जाए।
- स्कूल और विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों में मीडिया साक्षरता और एआई सामग्री के नैतिक उपयोग को शामिल किया जाए।

संदर्भ सूची

- अग्रवाल, एस., फारिद, एच., गु, वाई., हे, एम., नागानो, के. एवं ली, एच. (2019). प्रोटेक्टिंग वर्ल्ड लीडर्स अगेंस्ट डीप फेक्स. *सीवीपीआर वर्कशॉप्स*, 38-45. https://openaccess.thecvf.com/content_CVPRW_2019/papers/Media%20Forensics/Agarwal_Protecting_World_Leaders_Against_Deep_Fakes_CVPRW_2019_paper.pdf से पुनःप्राप्त.
- इलेक्ट्रॉनिक्स एवं सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय. (2023, नवंबर 23). *इंटरैक्शन ऑफ मिनिस्टर ऑफ रेलवेज, कम्युनिकेशंस एंड इलेक्ट्रॉनिक्स एंड आईटी श्री अश्विनी वैष्णव विद स्टेकहोल्डर्स ऑन इश्यूज अराइजिंग आउट ऑफ डीपफेक* [प्रेस विज्ञप्ति]. प्रेस सूचना ब्यूरो, भारत सरकार. <https://www.pib.gov.in/PressReleaseIframePage.aspx?PRID=1979042> से पुनःप्राप्त.
- ईडीस्मार्ट. (तिथि नहीं). डीपफेक क्राइम बाय द नंबरर्स. <https://www.edsmart.org/deepfake-statistics/> से 27 जुलाई, 2025 को पुनःप्राप्त.
- काट्ज, ई., ब्लुम्लर, जे. जी. एवं गुरेविच, एम. (1973). यूजेज एंड ग्रैटिफिकेशंस रिसर्च. *द पब्लिक ओपिनिनयन क्वार्टरली*, 37(4), 509-523. doi:10.1086/268109
- गवर्नमेंट अकाउंटेबिलिटी ऑफिस. (2020). साइंस एंड टेक स्पॉटलाइट : डीपफेक्स. <https://www.gao.gov/assets/gao-20-379sp.pdf> से पुनःप्राप्त.
- गमेज, डी., चैन, जे., और ससाहारा, के. (2021, अक्टूबर 7-8). द इमर्जेंस ऑफ डीपफेक्स एंड इट्स सोसायटल इंप्लिकेशंस : ए सिस्टेमेटिक रिव्यू [पेपर प्रेजेंटेशन]. *कॉन्फ्रेंस फॉर ट्रुथ एंड ट्रस्ट*, यूएसए. https://www.researchgate.net/publication/355583941_The_Emergence_of_Deepfakes_and_its_Societal_Implications_A_Systematic_Review से पुनःप्राप्त.
- डाफ्ट, आर. एल. एवं लेंगेल, आर. एच. (1986). ऑर्गेनाइजेशनल इन्फॉर्मेशन रिक्वायरमेंट्स, मीडिया रिचनेस, एंड स्ट्रक्चरल डिजाइन. *मैनेजमेंट साइंस*, 32(5), 554-571. doi:10.1287/mnsc.32.5.554
- डे रुइटर, ए. (2021). द डिसेंटिक रॉड्ग ऑफ डीपफेक्स. *फिलॉसफी एंड*

टेक्नोलॉजी, 34(3), 1311-1332. doi:10.1007/s13347-021-00459-2

भटनागर, ए. (2024, अप्रैल 22). एज आमिर खान एंड रणवीर सिंह'स डीपफेक वीडियोज गो वायरल, एक्सपर्ट्स डिस्कस हाउ टू कर्ब द इश्यू. *हिंदुस्तान टाइम्स*. <https://www.hindustantimes.com/htcity/cinema/as-aamir-khan-and-ranveer-singh-deepfake-videos-go-viral-experts-discuss-how-to-curb-the-issue-101713798790399.html> से पुनःप्राप्त.

शेख, एच., प्रिंस, सी. एवं स्क्रिजवर्स, ई. (2023). आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस : डेफिनेशन एंड बैकग्राउंड. इन एच. शेख, सी. प्रिंस, एवं ई. स्क्रिजवर्स (संपादक), *मिशन एआई : द न्यू सिस्टम टेक्नोलॉजी* (pp. 15-41). चाम, स्विटजरलैंड : स्प्रिंगर. doi:10.1007/978-3-031-21448-6_2

पेन, एल. (2025, अगस्त 17). डीपफेक. इन *एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका*. <https://www.britannica.com/technology/deepfake> से पुनःप्राप्त.

ब्रॉन, वी. एवं क्लार्क, वी. (2006). यूजिंग थीमैटिक एनालिसिस इन साइकॉलॉजी. *क्वालिटेटिव रिसर्च इन साइकॉलॉजी*, 3(2), 77-101. doi:10.1191/1478088706qp063oa

वैक्कारी, सी., एवं चैडविक, ए. (2020). डीपफेक्स एंड डिसइन्फॉर्मेशन : एक्सप्लोरिंग द इंपैक्ट ऑफ सिंथेटिक पॉलिटिकल वीडियो ऑन डीसेप्शन, अनसर्टेटी, एंड ट्रस्ट इन न्यूज. *सोशल मीडिया + सोसाइटी*, 6(1). doi:10.1177/2056305120903408

शर्मा, एम. एवं कौर, एम. (2022). ए रिव्यू ऑफ डीपफेक टेक्नोलॉजी : एन एमर्जिंग एआई थ्रेट. इन जी. रंगनथन, एक्स. फर्नांडो, एफ. शी, एवं वाई. एल अलीऊई (संपादक), *सॉफ्ट कंप्यूटिंग फॉर सिक्युरिटी एप्लीकेशंस* (Vol. 1397, pp. 605-619). सिंगापुर : स्प्रिंगर. doi:10.1007/978-981-16-5301-8_44

मारिन, ए., सुरियल-लूना, सी. एवं राय, एस. (2022, मई 27). द इफेक्ट्स ऑफ डीपफेक्स एंड हाउ वी कैन मिटिगेट देम. *सिटी यूनिवर्सिटी ऑफ न्यूयॉर्क, न्यूयॉर्क सिटी कॉलेज ऑफ टेक्नोलॉजी*. <https://openlab.citytech.cuny.edu/deepfakeproject/files/2022/05/Collaboration-project-final-draft-1.pdf> से पुनःप्राप्त.

शर्मा, आई., जैन, के., बेहल, ए., बअब्दुल्लाह, ए., जियानाकिस, एम. एवं द्विवेदी, वाई. (2023). एजैमिनिंग द मोटिवेशंस ऑफ शेयरिंग पॉलिटिकल डीपफेक वीडियोस : द रोल ऑफ पॉलिटिकल ब्रांड हेट एंड मोरल कॉन्शसनेस. *इंटरनेट रिसर्च*, 33(5), 1727-1749. doi:10.1108/INTR-07-2022-0563

सिंह, आर. एस. (2023, नवंबर 6). 94% डीपफेक पोर्नोग्राफी वीडियोज टारगेट एंटरटेनमेंट इंडस्ट्री सिलेब्स : सर्वे. *हिंदुस्तान टाइम्स*. <https://www.hindustantimes.com/technology/94-deepfake-pornography-videos-targets-entertainment-industry-celebs-survey-101699276557517.html> से पुनःप्राप्त.

सेबेस्टियन, एम. (2024, मई 16). एआई एंड डीपफेक्स ब्लर रियलिटी इन इंडिया इलेक्शंस. *बीबीसी न्यूज*. <https://www.bbc.com/news/world-asia-india-68918330> से पुनःप्राप्त.



इंस्टाग्राम पर योग : डिजिटल माध्यमों में पारंपरिक साधना के प्रस्तुतीकरण का विश्लेषण

डॉ. प्रभात कुमार¹ और डॉ. राजेश कुशवाहा²

सारांश

डिजिटल युग में सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म न केवल संचार और अभिव्यक्ति के साधन बने हैं, बल्कि सांस्कृतिक परंपराओं और जीवनशैली से जुड़ी अवधारणाओं को प्रस्तुत करने के भी प्रमुख माध्यम बन गए हैं। योग भारत की एक अत्यंत प्राचीन समृद्ध आध्यात्मिक परंपरा है, जो अब इंस्टाग्राम जैसे दृश्यात्मक मंचों पर एक नई रूपरेखा में दुनिया के सामने आ रही है। प्रस्तुत शोधपत्र "इंस्टाग्राम पर योग : डिजिटल माध्यमों में पारंपरिक साधना का प्रस्तुतीकरण, प्रभाव और सहभागिता का विश्लेषण" विषय के अंतर्गत यह विश्लेषण करता है कि किस प्रकार पारंपरिक योग का रूप इंस्टाग्राम पर प्रस्तुत किया जा रहा है, उसका जनमानस पर क्या प्रभाव पड़ रहा है और उपभोक्ताओं की सहभागिता किस प्रकार आकार ले रही है। अध्ययन में योग से संबंधित इंस्टाग्राम पोस्ट, रील, हैशटैग और इन्फ्लुएंसर्स की प्रवृत्तियों का अध्ययन किया गया है। साथ ही यह भी जांचा गया है कि क्या डिजिटल प्रस्तुतीकरण योग की मूल आत्मा और उसके आध्यात्मिक उद्देश्य को बनाए रखता है या वह केवल एक दृश्यात्मक प्रदर्शन तक सीमित रह गया है। शोध में पाया गया कि इंस्टाग्राम पर योग के प्रति लोगों की भागीदारी काफी अधिक है, लेकिन उसमें व्यावसायिकता और सौंदर्य के मानकों का प्रभाव ज्यादा है। शोधपत्र डिजिटल माध्यमों में योग की प्रामाणिकता, प्रभावशीलता और समावेशिता पर एक संतुलित दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है, जो भविष्य में योग के प्रचार-प्रसार की दिशा तय करने में सहायक सिद्ध हो सकता है।

संकेत शब्द : योग, सोशल मीडिया, इंस्टाग्राम, योग इन्फ्लुएंसर्स, वैश्वीकरण, डिजिटल प्रचार, अंतरराष्ट्रीय योग दिवस, अध्यात्म

प्रस्तावना

योग, भारत की प्राचीनतम सांस्कृतिक धरोहरों में से एक है। हजारों वर्षों से यह भारतीय जीवनशैली का हिस्सा रही है। यह न केवल शारीरिक स्वास्थ्य के लिए बल्कि मानसिक, आध्यात्मिक और भावनात्मक संतुलन के लिए भी अत्यंत प्रभावकारी है। योग की अवधारणा 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' (योग सूत्र) से शुरू होती है, जिसका अर्थ है—मानसिक चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है। योग केवल शरीर को लचीला या शक्तिशाली बनाने की प्रक्रिया नहीं है, बल्कि आत्म-साक्षात्कार और मोक्ष की ओर ले जाने वाला साधन भी है। पतंजलि योगसूत्र, भगवद्गीता और उपनिषदों में वर्णित योग के प्रकार (राजयोग, कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग) बताते हैं कि योग की जड़ें कितनी गहराई तक जाती हैं। योग विश्व के लिए भारत का उपहार है और आज दुनियाभर में लाखों योग इससे लाभान्वित हो रहे हैं। पारंपरिक रूप से योग का अभ्यास गुरु-शिष्य परंपरा, आश्रमों, कक्षाओं और व्यक्तिगत साधना के माध्यम से होता आया है, परंतु बीते दो दशकों में डिजिटल क्रांति ने योग के स्वरूप, पहुंच और प्रस्तुतीकरण को ग्लोबल बना दिया है। वर्तमान समय में सोशल मीडिया, विशेषतः इंस्टाग्राम, ने योग को एक 'डिजिटल ट्रेंड' और 'लाइफस्टाइल स्टेटमेंट' में बदल दिया है।

इंस्टाग्राम की शुरुआत 6 अक्टूबर, 2010 को केविन सिस्ट्रॉम और माइक क्रिगर ने एक फोटो-शेयरिंग ऐप के रूप में की थी। यह मुख्यतः दृश्य सामग्री जैसे फोटो और वीडियो पर केंद्रित है। इंस्टाग्राम की फोटो शेयरिंग, छोटे वीडियो क्लिप (रील) और फिल्टर जैसी विशेषताएँ इसे अन्य सोशल मीडिया प्लेटफॉर्मों से अलग और युवाओं में अधिक लोकप्रिय बनाती हैं। इस माध्यम ने योग को ऐसे प्रस्तुत किया है, जो न केवल सौंदर्यबोध और दृश्य आकर्षण से भरपूर है, बल्कि उपभोक्तावाद, व्यक्तिगत ब्रांडिंग

और ऑनलाइन सहभागिता से भी प्रभावित है (मालेनोविक, 2016)। योग साधक, प्रशिक्षक और ब्रांड इंस्टाग्राम के माध्यम से योग की विभिन्न मुद्राओं, तकनीकों और जीवनशैली को आज दुनिया के सामने प्रस्तुत कर रहे हैं। हालाँकि, यह प्रस्तुतीकरण महज शारीरिक मुद्राओं तक सीमित रह जाने की चिंता को भी जन्म देता है, जहाँ योग का गूढ़ दार्शनिक पक्ष और आध्यात्मिक गहराई अक्सर पीछे रह जाती है। प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य यह विश्लेषण करना है कि इंस्टाग्राम जैसे डिजिटल मंच पर योग किस प्रकार प्रस्तुत किया जा रहा है और किस हद तक लोग इस डिजिटल प्रस्तुतीकरण से जुड़ रहे हैं।

वर्तमान डिजिटल युग में योग का स्वरूप पारंपरिक आश्रमों और योगशालाओं से निकलकर मोबाइल स्क्रीन और सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म तक पहुँच चुका है। विशेष रूप से, इंस्टाग्राम जैसे दृश्य-प्रधान डिजिटल माध्यम ने योग के प्रस्तुतीकरण, उसके प्रभाव और लोगों की सहभागिता के स्वरूप को नई दिशा दी है। इंस्टाग्राम पर योग अब केवल एक साधना न होकर एक ग्लोबल विजुअल ट्रेंड बन गया है, जहाँ आकर्षक तस्वीरें, छोटे वीडियो (रील), लाइव सत्र और इंटरैक्टिव पोस्ट के माध्यम से योग को एक नए सौंदर्यबोध, विपणन (मार्केटिंग) और जीवनशैली से जोड़ा जा रहा है। डिजिटल प्लेटफॉर्म पर योग का यह रूप केवल व्यक्तिगत अभ्यास को बढ़ावा नहीं देता, बल्कि एक कम्युनिटी बिल्डिंग टूल के रूप में भी कार्य करता है। उपयोगकर्ता, चाहे वे भारत में हों या विदेश में, अपने अनुभव, विचार और अभ्यास के क्षण साझा करते हैं और अन्य साधकों से जुड़ते हैं। इस प्रकार इंस्टाग्राम ने योग को एक वैश्विक संवाद का हिस्सा बना दिया है। आज योग प्रशिक्षक, लाइफ स्टाइल ब्लॉगर और फिटनेस इन्फ्लुएंसर्स भी इंस्टाग्राम का बखूबी इस्तेमाल कर रहे हैं। इससे योग केवल साधना ही

¹सहायक प्रबंधक (जनसंपर्क), टीएचडीसी इंडिया लिमिटेड, खुर्जा, उत्तर प्रदेश. ईमेल : prabhatkumar5450@gmail.com

²सह आचार्य, भारतीय जन संचार संस्थान (समविश्वविद्यालय), अमरावती परिसर. ईमेल. rajesh.kushwaha@iimc.gov.in

नहीं, बल्कि अब एक दृश्य अनुभव बन गया है। सुंदर लोकेशन में खींची गई तस्वीरें, रंग-बिरंगे परिधान, आकर्षक योग मुद्राएँ और प्रेरणादायक उद्धरण—ये सभी मिलकर योग को 'इंस्टाग्रामेबल' बना देते हैं। आज इंस्टाग्राम पर #InternationalYogaDay, #YogaForHumanity, #YogaForWellness, #YogaLife जैसे हैशटैग लाखों पोस्टों में प्रयोग होते हैं, जिससे इन अभियानों की व्यापक पहुँच का पता चलता है। अक्सर इन डिजिटल अभियानों में कई अंतरराष्ट्रीय नेताओं, सेलेब्रिटी, योग गुरुओं और आम नागरिकों की सक्रिय भागीदारी देखी जाती है।

इंस्टाग्राम पर पोस्ट की गई योग सामग्री पर लोगों की प्रतिक्रिया—लाइक, कमेंट, शेयर और फॉलो करने की प्रवृत्ति—'डिजिटल सहभागिता' का एक नया रूप है। यह सहभागिता किसी विचार या जीवनशैली से जुड़ने के रूप में देखी जा सकती है, परंतु यह भी विश्लेषण का विषय है कि क्या यह सच्चे अभ्यास की ओर ले जाती है या महज सतही जुड़ाव तक सीमित रहती है। साथ ही, यह भी देखा गया है कि लोग अपने शरीर की तुलना इन योग-पोस्टों से करने लगते हैं, जिससे शारीरिक छवि (बॉडी इमेज) को लेकर मानसिक तनाव भी उत्पन्न हो सकता है। इंस्टाग्राम पर योग की प्रस्तुति में विविधता देखने को मिलती है। कुछ प्रोफाइल पारंपरिक मुद्राओं, शास्त्रीय ग्रंथों के उद्धरण और ध्यान-प्रक्रिया को प्राथमिकता देते हैं, तो कुछ इसे शारीरिक प्रदर्शन और लचीलापन दिखाने का माध्यम बनाते हैं। इसके अलावा, ब्रांड और फिटनेस इंडस्ट्री ने भी योग को एक वेलनेस प्रोडक्ट की तरह मार्केट करना शुरू कर दिया है। इससे एक ओर योग की लोकप्रियता और पहुँच बढ़ी है, वहीं दूसरी ओर इसके आध्यात्मिक मूल्यों के क्षरण की चिंता भी सामने आई है।

पारंपरिक दृष्टि से देखें तो योग का उद्देश्य आत्म-ज्ञान, चित्तवृत्ति निरोध और मोक्ष की ओर अग्रसर होना है। पतंजलि योगसूत्र में वर्णित अष्टांग योग (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि) इस साधना के क्रमबद्ध चरण हैं, किंतु इंस्टाग्राम जैसे प्लेटफॉर्म पर अधिकांश सामग्री आसन और प्राणायाम तक सीमित दिखती है, जबकि ध्यान, धारणा और समाधि जैसी आंतरिक साधनाओं पर अपेक्षाकृत कम ध्यान दिया जाता है। इस शोध में इंस्टाग्राम पर उपलब्ध प्रमुख योग-प्रोफाइलों का विश्लेषण किया जाएगा, जिनमें पोस्टों की विषयवस्तु, प्रस्तुतीकरण शैली, दृश्यात्मक तत्व का अध्ययन शामिल होगा। साथ ही, यह भी जाँचा जाएगा कि क्या इंस्टाग्राम पर योग की प्रस्तुति पारंपरिक भारतीय दर्शन और साधना के अनुरूप है या वह मुख्यतः आधुनिक फिटनेस और वेलनेस ट्रेंड के अनुसार ढल गई है।

प्रस्तुत शोध की आवश्यकता इसलिए भी है, क्योंकि यह न केवल एक सांस्कृतिक अध्ययन है, बल्कि सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और मीडिया-विश्लेषण की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। यह शोध निम्नलिखित प्रश्नों को संबोधित करेगा : इंस्टाग्राम पर योग किस प्रकार प्रस्तुत किया जा रहा है? क्या यह प्रस्तुतीकरण योग की पारंपरिक आत्मा के अनुरूप है? क्या इंस्टाग्राम पर योग का प्रस्तुतीकरण उसके पारंपरिक आध्यात्मिक और दार्शनिक स्वरूप को बनाए रख पा रहा है या वह मुख्यतः सौंदर्य, ब्रांडिंग और लोकप्रियता की होड़ में बदल गया है? क्या योग के आध्यात्मिक उद्देश्यों की गहराई सोशल मीडिया के त्वरित, आकर्षक और सतही कंटेंट में संरक्षित रह पाती है और सबसे महत्वपूर्ण, इस डिजिटल प्रसार का दर्शकों और साधकों पर वास्तविक प्रभाव क्या है—क्या यह उन्हें योग के मूल सिद्धांतों की ओर ले जाता है या

केवल एक फिटनेस-फैशन के रूप में आकर्षित करता है?

प्रस्तुत अध्ययन एक गुणात्मक शोध पद्धति पर आधारित है, जिसमें इंस्टाग्राम पर मौजूद प्रमुख योग-प्रोफाइलों का विश्लेषण एवं चयनित पोस्टों की विषयवस्तु का अध्ययन किया गया है। इंस्टाग्राम पर योग का प्रस्तुतीकरण एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक और सामाजिक परिघटना है, जो पारंपरिक साधना और आधुनिक डिजिटल युग के बीच की कड़ी है। यह शोधपत्र इसी कड़ी को समझने का प्रयास है, जो एक ओर तो योग की परंपरा से जुड़ा है और दूसरी ओर इंस्टाग्राम की नवीनता से। यह अध्ययन न केवल योग की वर्तमान स्थिति को समझने में सहायक होगा, बल्कि भविष्य के लिए उसके संतुलित, प्रामाणिक और प्रभावकारी प्रचार का मार्ग भी प्रशस्त करेगा। यह शोधपत्र पारंपरिक योग और डिजिटल माध्यम के इस संगम को एक सांस्कृतिक अध्ययन के रूप में देखने का प्रयास है, जहाँ इंस्टाग्राम न केवल एक तकनीकी प्लेटफॉर्म है, बल्कि एक वैश्विक सांस्कृतिक मंच भी है, जिस पर योग का अर्थ, रूप और प्रभाव निरंतर बदल रहा है।

साहित्य समीक्षा

योग पर अब तक अनेक शास्त्रीय, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से अध्ययन हुए हैं। हाल के वर्षों में डिजिटल माध्यमों पर इसके प्रस्तुतीकरण और प्रभाव को लेकर भी कई अध्ययन सामने आए हैं। यह साहित्य समीक्षा मुख्य रूप से तीन वर्गों में विभाजित की जा सकती है—योग की पारंपरिक अवधारणा और उसका वैश्विक विस्तार, सोशल मीडिया पर योग की उपस्थिति और ब्रांडिंग तथा इंस्टाग्राम पर योग की प्रस्तुति, सहभागिता और उपयोगकर्ता व्यवहार।

पारंपरिक भारतीय साहित्य में योग को आत्म-ज्ञान, साधना और मुक्ति का मार्ग माना गया है। पतंजलि के योगसूत्र, भगवद्गीता और उपनिषदों में योग को केवल शारीरिक मुद्राओं तक सीमित न रखकर, एक समग्र जीवनदृष्टि के रूप में प्रस्तुत किया गया है। भगवद्गीता में कहा गया है—“योगः कर्मसु कौशलम्” (अध्याय 2, श्लोक 50) अर्थात् योग कर्मों में कुशलता है। योग की वैश्विक यात्रा पर सिंगलटन (2010) ने अपनी पुस्तक 'योग बॉडी : द ऑरिजंस ऑफ मॉडर्न पोस्चर प्रैक्टिस' में विस्तार से चर्चा की है। वे बताते हैं कि कैसे 20वीं सदी में योग एक पारंपरिक आध्यात्मिक अभ्यास से बदलकर एक आधुनिक शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य का साधन बन गया।

स्ट्रॉस (2005) के अनुसार, पश्चिमी देशों में योग को अक्सर धार्मिक पहलुओं से अलग करके केवल फिटनेस और चिकित्सा आधारित क्रियाओं के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। भारत सरकार द्वारा 2014 में संयुक्त राष्ट्र में प्रस्तावित और मान्य अंतरराष्ट्रीय योग दिवस ने इसे एक विश्वव्यापी पहचान दिलाई। राय (2016) ने अपने शोध में बताया कि कैसे इस दिवस को डिजिटल मीडिया और सोशल मीडिया अभियानों के माध्यम से वैश्विक स्तर पर प्रचारित किया गया। वर्ष 2015 से संयुक्त राष्ट्र द्वारा घोषित अंतरराष्ट्रीय योग दिवस ने योग के वैश्वीकरण को नई दिशा दी। इसके पश्चात् अनेक देशों में योग की माँग, अभ्यास और प्रशिक्षण केंद्रों में वृद्धि देखी गई, जिसका एक प्रमुख कारक डिजिटल माध्यम और सोशल मीडिया भी रहे हैं।

हाल के वर्षों में सोशल मीडिया विशेष रूप से इंस्टाग्राम, फेसबुक और यूट्यूब जैसे प्लेटफॉर्म ने योग के प्रसार को नए स्वरूप में प्रस्तुत किया है। मूरहेड एवं अन्य (2013) ने बताया कि आज सोशल मीडिया स्वास्थ्य से जुड़ी जानकारी को प्रसारित करने एवं समुदाय बनाने का एक प्रभावशाली

माध्यम बन चुका है। यूट्यूब, फेसबुक और इंस्टाग्राम जैसे सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म लोगों को योग जैसी जीवनशैली संबंधी विधियों से जोड़ने में सहायक हो रहे हैं।

डोनली (2016) और कैरोल (2019) जैसे विद्वानों ने अपने शोध में यह दर्शाया है कि कैसे योग प्रशिक्षक इन सोशल मीडिया प्लेटफॉर्मों पर अपने अनुयायियों से जुड़ते हैं, पाठ्यक्रमों और उत्पादों का प्रचार करते हैं, और एक व्यक्तिगत ब्रांड के रूप में उभरते हैं। लारांजो एवं अन्य (2015) ने यह पाया कि सोशल नेटवर्किंग का सही उपयोग लोगों में स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता और व्यवहार परिवर्तन लाने में सक्षम है।

इन अध्ययनों में यह भी पाया गया कि सोशल मीडिया पर योग का प्रस्तुत रूप अधिकतर 'विजुअल अपील' और 'परफॉर्मेंटिव बॉडी' पर केंद्रित होता है, जहाँ योग की गहराई से अधिक महत्व उसकी मुद्रा, लोकेशन और सौंदर्यबोध को दिया जाता है। न्यूमार्क-ज्तेनर एवं अन्य (2020) के शोध में यह चिंता व्यक्त की गई कि इस तरह की सामग्री युवा महिलाओं की शारीरिक छवि (बॉडी इमेज) और आत्म-सम्मान पर नकारात्मक प्रभाव डाल सकती है, क्योंकि योग एक प्रतिस्पर्धात्मक सौंदर्य मानक में बदलता जा रहा है। लॉरेन (2020) ने इंस्टाग्राम पर योग के कंटेंट का अध्ययन करते हुए इसे वेलनेस उपभोक्तावाद की श्रेणी में रखा है।

जैन (2015) की पुस्तक 'सेलिंग योगा : काउंटरकल्चर से पॉप कल्चर तक' में योग के व्यवसायीकरण और ब्रांडिंग की आलोचना की गई है। वे कहती हैं कि पश्चिमी देशों में योग को एक लाइफस्टाइल उत्पाद की तरह प्रस्तुत किया जा रहा है, जिससे इसके मूल आध्यात्मिक सिद्धांत कमजोर पड़ रहे हैं। नारायणन (2019) ने यह बताया कि कैसे सोशल मीडिया पर योग को कभी-कभी सांस्कृतिक संदर्भों से काटकर केवल सुंदर चित्रों और दिखावटी आसनों के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इससे योग की गलत व्याख्या हो सकती है। मालेनोविक (2016) ने अपने अध्ययन में यह पाया कि वर्तमान समय में सोशल मीडिया पर लाखों लोग योग से संबंधित तस्वीरें साझा कर रहे हैं और ये सभी तस्वीरें एक महत्वपूर्ण संदेश देती हैं कि योग जीवन की गुणवत्ता सुधारने, व्यक्तिगत स्वतंत्रता प्राप्त करने और जीवन के आनंद को महसूस करने में एक महत्वपूर्ण योगदान देता है। मालेनोविक (2016) कहती हैं कि सोशल मीडिया पर योग से जुड़े सर्वाधिक कंटेंट वजन घटाने, मांसपेशियों के निर्माण, टोनिंग, शरीर में दर्द, थायरॉइड, मानसिक स्वास्थ्य, अवसाद, तनाव, चिंता, अनिद्रा आदि से मुक्ति दिलाने से जुड़ा है।

इंस्टाग्राम एक दृश्य-प्रधान मंच होने के कारण योग की प्रस्तुतियों को अधिक आकर्षक और व्यावसायिक बनाने में सहायक है। टिगेमैन और जकार्डो (2018) के अध्ययन में यह दर्शाया गया कि इंस्टाग्राम पर योग और फिटनेस से संबंधित सामग्री का लगातार उपभोग करने वाले लोग अपने शरीर की तुलना इन आदर्श छवियों से करते हैं, जिससे आत्म-संदेह और चिंता की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। कैरट एवं अन्य (2017) ने इंस्टाग्राम पर योग से संबंधित पोस्टों का विश्लेषण करते हुए पाया कि उनमें से अधिकांश में केवल युवा, पतली और लचीली महिलाएँ ही प्रमुखता से दिखाई देती हैं। इससे योग की एक सीमित और आदर्शवादी छवि बनती है एवं इसकी समावेशिता पर प्रश्न उठता है।

टिडेनबर्ग (2016) ने इंस्टाग्राम की दृश्य संस्कृति पर विचार करते हुए कहा कि उपयोगकर्ता न केवल दर्शक होते हैं, बल्कि वे स्वयं भी निर्माता होते हैं—वे अपने शरीर और योग अभ्यास को प्रदर्शित कर स्वयं की 'डिजिटल

पहचान' बना रहे हैं। वे अपने शरीर, योग मुद्रा, परिधान और परिवेश के माध्यम से अपने को एक ब्रांड के रूप में स्थापित करने में लगे हैं। इसके अतिरिक्त, सेट्जर और यान (2021) ने इंस्टाग्राम पर योग संबंधी हैशटैग (#yogainspiration, #fitspo, #yogalife आदि) का विश्लेषण करते हुए यह बताया कि ये हैशटैग योग को एक 'ग्लैमराइज्ड' जीवनशैली की छवि प्रदान करते हैं, जिससे पारंपरिक साधना की मौलिकता प्रभावित होती है।

शोध अंतराल

उपर्युक्त साहित्य समीक्षा से स्पष्ट होता है कि अधिकांश अध्ययन पश्चिमी संदर्भों पर केंद्रित हैं, भारत में इंस्टाग्राम और योग पर विशेष अध्ययन सीमित हैं। यद्यपि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर इस विषय पर अध्ययन हो रहे हैं, किंतु भारत में योग के डिजिटल प्रस्तुतीकरण पर तुलनात्मक रूप से कम शोध उपलब्ध हैं। कुछ उल्लेखनीय कार्य जैसे आयुष मंत्रालय की रिपोर्टें, अंतरराष्ट्रीय योग दिवस मीडिया विश्लेषण और डिजिटल इंडिया अभियान से जुड़े अध्ययनों ने इस ओर संकेत किया है कि भारत सरकार भी सोशल मीडिया को योग प्रसार के एक सशक्त माध्यम के रूप में देख रही है। हालाँकि, इन अध्ययनों में योग के डिजिटल स्वरूप, उसकी प्रमाणिकता, सांस्कृतिक संदर्भ तथा पारंपरिक बनाम आधुनिक प्रस्तुतीकरण की गहराई से समीक्षा नहीं की गई है। इस शोध का उद्देश्य इसी अंतर को भरना है, विशेष रूप से इंस्टाग्राम पर योग की सामग्री का विश्लेषण प्रस्तुत करना।

शोध प्रश्न

1. योग को वैश्विक स्तर पर लोकप्रिय बनाने में इंस्टाग्राम इन्फ्लुएंसरों की क्या भूमिका है?
2. वर्तमान समय में इंस्टाग्राम इन्फ्लुएंसरों के द्वारा योग से संबंधित किस तरह का कंटेंट प्रस्तुत किया जा रहा है?
3. इंस्टाग्राम पर योग की दृश्यात्मक प्रस्तुति (फोटो, वीडियो, रील आदि) योग की पारंपरिक साधना और मूल उद्देश्यों को किस हद तक प्रतिबिंबित करती है?

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध गुणात्मक प्रकृति का है। इसका उद्देश्य यह समझना है कि इंस्टाग्राम जैसे डिजिटल मंच पर योग को किस प्रकार प्रस्तुत किया जा रहा है, उसमें पारंपरिक तत्वों की क्या भूमिका है और उपयोगकर्ता किस प्रकार उससे जुड़ते हैं। इस शोध में वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण अपनाया गया है। इसमें इंस्टाग्राम की प्रमुख योग प्रोफाइलों का गहराई से अध्ययन किया गया है। डेटा संग्रह के लिए प्राथमिक स्रोत जैसे इंस्टाग्राम पर सक्रिय प्रमुख योग-प्रोफाइल (प्रसिद्ध योग गुरुओं एवं प्रशिक्षकों के अकाउंट), चयनित पोस्टों की सामग्री (फोटो, कैप्शन, वीडियो, हैशटैग), प्रोफाइलों के बायो और स्टोरी हाइलाइट से सामग्री ली गई है। वहीं द्वितीयक स्रोत के लिए पूर्व प्रकाशित साहित्य, शोधपत्र, रिपोर्ट और लेख जो सोशल मीडिया, योग, डिजिटल संस्कृति, और उपभोक्ता व्यवहार से संबंधित हैं उनका इस्तेमाल किया गया है। इस शोध में उद्देश्यपूर्ण नमूना चयन तकनीक का उपयोग किया गया है। शोध में ऐसी दस प्रमुख योग प्रोफाइलों को चुना गया है, जिनके 50,000 से अधिक फॉलोअर हों और जो नियमित रूप से योग विषयवस्तु

साझा करते हैं। इन प्रोफाइलों का वर्गीकरण फालोअरों की संख्या के आधार पर किया गया है। रैंकिंग को क्यूरेटेड इन्फ्लुएंसर डायरेक्टरीज से लिया गया है। कई मुख्यधारा के फिटनेस इन्फ्लुएंसरों के पास बड़ी संख्या में फॉलोअर हैं, लेकिन वे केवल योग पर केंद्रित नहीं हैं, इसलिए उन्हें इसमें शामिल नहीं किया गया है। इस शोध के लिए आवश्यक सभी डेटा सार्वजनिक रूप से उपलब्ध इंस्टाग्राम सामग्री से लिए गए हैं। किसी भी प्रोफाइल/उपयोगकर्ता की निजता का उल्लंघन नहीं किया गया है। इस शोध की कुछ सीमाएँ भी हैं—यह अध्ययन केवल इंस्टाग्राम तक सीमित है; इसमें अन्य सोशल मीडिया मंचों (जैसे यूट्यूब, फेसबुक पेज) को शामिल नहीं किया गया है। शोध के दौरान मात्र दस प्रोफाइलों का विश्लेषण किया जाएगा, जिससे निष्कर्ष की सार्वभौमिकता सीमित हो सकती है। विशुद्ध रूप से गुणात्मक विश्लेषण होने के कारण संख्यात्मक तुलना सीमित है।

विश्लेषण

आज विभिन्न सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म योग के प्रचार में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। इन माध्यमों के जरिए योग केवल एक अभ्यास न रहकर, एक डिजिटल ट्रेंड बन गया है। आज कई प्रभावशाली हस्तियाँ, फिटनेस प्रेमी, सेलिब्रिटी और वेलनेस ब्रांड सोशल मीडिया पर अपने योग अनुभव साझा कर रहे हैं। सुंदर फोटो, लाइव क्लास और प्रेरणादायक कहानियों के माध्यम से वे योग को व्यक्तिगत और व्यावसायिक ब्रांड, दोनों के रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं। इससे एक ऐसा ऑनलाइन योग समुदाय विकसित हुआ है, जो सीमाओं और संस्कृतियों से परे एक साझा मंच बना रहा है। योग के वैश्विक प्रसार और प्रचार में योग इन्फ्लुएंसर, वेलनेस ब्रांड, हॉलीवुड और बॉलीवुड के कलाकार, क्रिकेट एवं अन्य खेल जगत् से जुड़े सेलिब्रिटी, साथ ही सरकारी संगठन जैसे आयुष मंत्रालय तथा अंतरराष्ट्रीय संस्थाएँ जैसे संयुक्त राष्ट्र और विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) बहुआयामी योगदान दे रहे हैं। सोशल मीडिया पर अनेक अंतरराष्ट्रीय योग इन्फ्लुएंसर प्रतिदिन अपने लाखों फॉलोअर को योग अभ्यास के लिए प्रेरित कर रहे हैं। हम यहाँ दुनिया के ऐसे ही शीर्ष दस योग इंस्टाग्राम इन्फ्लुएंसर (जिन्हें वर्तमान में सबसे अधिक फॉलो किया जाता है) के अकाउंट का विश्लेषण करेंगे :

क्रम संख्या	इंस्टाग्राम हैंडल	फॉलोअर
01.	@theshilpashetty	33.2 M
02.	@pouya_yoga	4.4 M
03.	@swaamiramdev	2.7 M
04.	@yoga	2.2 M
05.	@yoga_girl	1.9M
06.	@gokul_yog	1.8 M
07.	@theyoginiworld	1.2 M
08.	@beachyogagirl	1.2 M
09.	@kinoyoga	1.1 M
10.	@laurasykora	1M

1. @theshilpashetty (33.2 M फॉलोअर)

शिल्पा शेटी कुंद्रा प्रसिद्ध बॉलीवुड अभिनेत्री हैं, जिन्हें योग एवं फिटनेस

के प्रति लगाव के लिए जाना जाता है। अपनी इंस्टाग्राम अकाउंट पर शिल्पा ने योग-ध्यान-प्राणायाम के साथ-साथ अपने व्यक्तिगत जीवन-यात्रा, खान-पान, पर्व-त्योहार आदि से संबंधित फोटो एवं वीडियो भी डाल रखे हैं। वे अपने इंस्टाग्राम अकाउंट पर कई फिटनेस एवं फैशन उत्पादों का विज्ञापन करते हुए भी नजर आती हैं। अंतरराष्ट्रीय योग दिवस, विश्व स्वास्थ्य दिवस आदि अवसरों पर शिल्पा ने विभिन्न योग मुद्राएँ; जैसे—सूर्य नमस्कार, ताड़ासन, वीरभद्रासन, धनुरासन और नटराजासन आदि प्रस्तुत करते हुए अपने फोटो शेयर किए हैं। शिल्पा योग को अपने जीवन का एक अभिन्न अंग बताती हैं और फिटनेस के साथ-साथ मानसिक संतुलन एवं आत्मिक सशक्तीकरण पर भी जोर देती हैं।

2. @pouya_yoga (4.4 M फॉलोअर)

पॉया सादात एक अंतरराष्ट्रीय योग शिक्षक हैं, जिनका फोकस योग विधियों की शिक्षा पर है। यह अकाउंट पॉया द्वारा योग पोज, प्रैक्टिस टिप्स, ट्रेनिंग वीडियो आदि के बारे में जानकारी प्रदान करता है। इसके कंटेंट में शिक्षण, डेमोंस्ट्रेशन और अंतरराष्ट्रीय कलेवर है, जो कि इंटरनेशनल योग कम्युनिटी को टारगेट करता है। बैठने के अलग-अलग पोस्चर, शरीर के अलग-अलग हिस्सों में होने वाले दर्द के कारण एवं निवारण, वेटलॉस, पूरे शरीर के लिए व्यायाम, हेल्थ डाइट आदि के बारे में बताया गया है।

3. @swaamiramdev (2.7 M फॉलोअर)

स्वामी रामदेव भारत के प्रसिद्ध योगगुरु हैं, जिन्होंने योग को दुनिया भर में लोकप्रिय बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह उनका योग एवं स्वास्थ्य से संबंधित आधिकारिक इंस्टाग्राम अकाउंट है। इस अकाउंट पर कब्ज, मोटापा, अस्थमा, बीपी जैसी अनेक बीमारियाँ एवं उनके आयुर्वेदिक एवं यौगिक समाधान के बारे में बताया गया है। इसके साथ ही पतंजलि के विभिन्न उत्पादों के लाभ एवं उनके बारे में संपूर्ण जानकारी साझा की गई है। यह अकाउंट योगाभ्यास, आयुर्वेदिक सुझाव, स्वास्थ्य टिप्स, ध्यान व प्राणायाम आदि से होने वाले स्वास्थ्य लाभ का जिक्र करता है।

4. @yoga (2.2 M फॉलोअर)

यह एक कम्युनिटी अकाउंट है, जहाँ दुनिया भर के योग-प्रेरित उपयोगकर्ताओं और पेशेवर योगियों की तस्वीरें/वीडियो साझा की जाती है। यह किसी एक व्यक्ति के बजाय, विभिन्न शैलियों, हठयोग, आसन, ध्यान आदि का संग्रह प्रस्तुत करता है और यूजर को फीड में दिखाई जाने वाली पोस्ट में टैग करके शामिल करता है। यह अकाउंट योग को एक सामूहिक दृश्य मंच के रूप में प्रस्तुत करता है, जहाँ विविधता जैसे लचक, पोज, पृष्ठभूमि, उम्र, शरीर आदि उभरकर सामने आते हैं। समुद्र तट, योग स्टूडियो, सफेद बालू आदि पर योग अभ्यास करते विभिन्न योगियों की तस्वीरें यहाँ पर देखने को मिलती हैं।

5. @yoga_girl (1.9 M फॉलोअर)

रेचल ब्रेथेन के द्वारा इस अकाउंट का संचालन किया जा रहा है। इसमें योग से संबंधित कंटेंट थोड़ा कम दिखता है, बल्कि कहीं तो उनके निजी जीवन का का पूरा ब्योरा और दस्तावेज यहाँ पर उपलब्ध है। रोजमर्रा की जीवनशैली, मानसिक स्वास्थ्य, माँ-बनने की यात्रा, राजनीतिक/सामाजिक

मुद्दों पर राय, परिवार, सामाजिक जिम्मेदारी, आस-पास की प्रकृति, यात्रा, भोजन और खान-पान आदि को भी दिखाया जाता है। इसमें योग का वेस्टर्न (पश्चिमी जगत् में प्रचलित) पहलू ज्यादा देखने को मिलता है।

6. @gokul_yog (1.8 M फॉलोअर)

यह अकाउंट केरल के निवासी गोकुल राम द्वारा संचालित है। इस पर उन्होंने विभिन्न तरह के व्यायाम करते हुए फोटो शेयर किए हैं। यह अकाउंट मुख्यतः योग प्रशिक्षण, स्वास्थ्य सुझाव, डिटॉक्स टिप्स, आध्यात्मिक पोस्ट, ऑनलाइन क्लास टिप्स और उत्पाद प्रचार पर केंद्रित है। यहाँ पर विभिन्न योग मुद्राओं को बिल्कुल प्राकृतिक वातावरण एवं देसी अंदाज में प्रस्तुत किया गया है। रील/वीडियो में अधिकांशतः दक्षिण भारतीय संगीत (मलयालम एवं संस्कृत) का प्रयोग किया गया है।

7. @theyoginiworld (1.2 M फॉलोअर)

इस अकाउंट को जूही कपूर के द्वारा चलाया जा रहा है, जो पेशे से योग शिक्षिका एवं पोषण विशेषज्ञ हैं। इस अकाउंट के माध्यम से वे मोटापा घटाने, फर्टिलिटी, प्रेगनेंसी के दौरान सावधानियाँ, न्यूट्रिशन और प्राणायाम के बारे में बताती हैं। अकाउंट का बहुत ही विशिष्ट दर्शक समूह है, जो महिलाओं की स्वास्थ्य समस्याओं पर केंद्रित है। वे इस अकाउंट के माध्यम से अपनी लाइव क्लास की जानकारी प्रदान करने के साथ-साथ अलग-अलग तरह के 'योगा चैलेंज' और रेसिपी की जानकारी भी देती हैं।

8. @beachyogagirl (1.2 M फॉलोअर)

केरी वर्ना द्वारा संचालित, यह अकाउंट न केवल योग बल्कि मेनोपॉज के बाद फिटनेस, शारीरिक स्वास्थ्य, पर्यटन और पॉजिटिव आत्म-छवि के बारे में बताता है। चालीस-पचास साल की उम्रदराज महिलाओं के लिए विशेष तौर पर कई योगासनों के बारे में यहाँ बताया गया है, जिन्हें अपनी जीवनशैली में अपनाकर वे स्वस्थ रह सकती हैं। अकाउंट पर महिलाओं के द्वारा घर पर आसानी से किए जाने वाले योग (होम वर्क आउट) पर विशेष फोकस है।

9. @kinoyoga (1.1 M फॉलोअर)

यह अकाउंट किनो मैकग्रेगर द्वारा संचालित है। वे खुद को एक लेखक, योगा टीचर और यूट्यूबर के रूप में परिभाषित करती हैं। अष्टांग योग की गहन तकनीक, प्रेरक उद्धरणों, योग अभ्यास के वीडियो, विश्वभर के कार्यशालाओं का प्रचार और आध्यात्मिक भ्रमण को प्रदर्शित किया गया है। किनो मैकग्रेगर अपने अकाउंट के माध्यम से यह संदेश देती हैं कि योग सिर्फ पोज नहीं है, बल्कि आंतरिक शांति को प्राप्त करने का नाम है। वे इस अकाउंट के माध्यम से अपने आगामी वर्कशॉप, रिट्रीट, ऑनलाइन कोर्स आदि की जानकारी भी प्रदान करती हैं। योग से जुड़े कई हैशटैग इस अकाउंट पर देखने को मिलते हैं।

10. @laurasykora (1 M फॉलोअर)

यह अकाउंट लॉरा कैस्पेरजैक के द्वारा संचालित है। इस पर योग से संबंधित विभिन्न पोज एवं डांस (नृत्य) से जुड़े कंटेंट मुख्यतः देखने को मिलते हैं। लॉरा कैस्पेरजैक खुद को एक फिटनेस ट्रेनर के रूप में परिभाषित करती हैं। हैंड स्टैंड एवं हेड स्टैंड जैसे कठिन योगासन, क्रासफिट, मिश्रित

रूटीन स्टाइलिश योग, ऑफिस योग से लेकर एथलिटिक चैलेंज तक सब तरह के कंटेंट यहाँ शामिल हैं। इस अकाउंट पर योग से जुड़े कई हैशटैग देखने को मिलते हैं।

इंस्टाग्राम पर योग की लोकप्रियता का एक बड़ा कारण है इन्फ्लुएंसर कल्चर। अनेक योग प्रशिक्षक, फिटनेस मॉडल और वेलनेस ब्लॉगर लाखों फॉलोअर के साथ सक्रिय हैं और अपने कंटेंट के माध्यम से न केवल अभ्यास विधियाँ सिखाते हैं, बल्कि जीवनशैली, आहार और मानसिक स्वास्थ्य के विषय में भी मार्गदर्शन करते हैं। इनके अनुयायी इन्हें आदर्श मानकर न केवल उनके द्वारा बताए गए योग आसन करते हैं, बल्कि उनके ब्रांड सहयोग और उत्पाद सिफारिशों पर भी भरोसा करते हैं। इस प्रकार इंस्टाग्राम पर योग अब व्यक्तिगत साधना के साथ-साथ एक विजुअल मार्केट प्लेस का रूप भी ले चुका है। इंस्टाग्राम पर योग से संबंधित सामग्री आज विविध रूपों में प्रस्तुत की जा रही है। पारंपरिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण से लेकर जीवनशैली, स्वास्थ्य-फिटनेस, सामाजिक जागरूकता और फैशन तक। प्रत्येक कंटेंट निर्माता की अपनी विशिष्ट गणनीति, लक्षित दर्शक और प्रस्तुति-शैली होती है। इन्फ्लुएंसर आकर्षक फोटो और वीडियो, लाइव सत्र, आसान योगासन गाइड, प्रेरणात्मक उद्धरण और मानसिक स्वास्थ्य पर केंद्रित पोस्ट के माध्यम से दर्शकों को जोड़ते हैं। कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence) के आने के बाद से यह सामग्री कई भाषाओं में (बहुभाषीय डिजिटल कंटेंट) सहज रूप से उपलब्ध हो रही है, जिससे यह स्थानीय और वैश्विक दोनों दर्शकों के लिए सुलभ हो गई है। इंस्टाग्राम की दृश्य-केंद्रित प्रकृति इसे और प्रभावी बनाती है—सुंदर, उच्च गुणवत्ता वाली तस्वीरों और वीडियो में योग मुद्राएँ, श्वास-प्रश्वास तकनीकें, ध्यान अभ्यास और स्वास्थ्य संदेश न केवल सौंदर्यपूर्ण दिखते हैं, बल्कि प्रेरणादायक भी होते हैं। हैशटैग (#yoga, #yogainspiration, #yogachallenge) और लोकेशन टैगिंग जैसी सुविधाओं ने इन पोस्टों की पहुँच राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बढ़ा दी है। मालेनोविक (2016) ने भी अपने अध्ययन में यह पाया कि प्रमुख इंस्टाग्राम खातों पर योग की सबसे सामान्य प्रस्तुति एक आदर्शकृत छवि के रूप में होती है—जैसे सफेद रेत वाले विदेशी समुद्र तट पर नीले समुद्र के किनारे, एक युवा, पतली, आधुनिक फिटनेस मानकों के अनुरूप महिला, जो आकर्षक योग परिधान या स्विमसूट में कठिन आसनों का अभ्यास करती दिखती है। इन पोस्टों में अक्सर खुशी, प्रेम, जीवन की पूर्णता और वर्तमान क्षण में जीने जैसे संदेश जुड़े होते हैं। हालाँकि, इनमें से कई आसन योग की गहन साधना से अधिक कलाबाजी जैसे प्रतीत होते हैं। इस प्रकार, यह कहा जा सकता है कि इंस्टाग्राम ने योग को व्यापक और आकर्षक बनाया है, लेकिन इसके मूल आध्यात्मिक एवं दार्शनिक स्वरूप को संरक्षित रखना आज की सबसे बड़ी चुनौती है।

निष्कर्ष

योग को वैश्विक स्तर पर लोकप्रिय बनाने में इंस्टाग्राम इन्फ्लुएंसरों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। उनके पास लाखों-करोड़ों फॉलोअर होते हैं; और, जब वे विभिन्न आसनों या प्राणायामों की तस्वीरें व वीडियो साझा करते हैं, तो यह सामग्री विशाल दर्शक वर्ग तक पहुँचती है। अलग-अलग सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म पर योग-संबंधी कंटेंट का स्वरूप भी भिन्न होता है, क्योंकि प्रत्येक प्लेटफॉर्म की दर्शक-प्रवृत्ति और तकनीकी विशेषताएँ अलग होती हैं। इसी कारण कंटेंट क्रिएटर प्लेटफॉर्म की प्रकृति के अनुसार सामग्री

को ढालते हैं, ताकि अधिकतम प्रभाव डाला जा सके। इंस्टाग्राम पर यह कार्य मुख्यतः आकर्षक तस्वीरों, 30–60 सेकंड की रील और स्टोरी के माध्यम से किया जाता है। #YogaEveryday, #InternationalYogaDay, #YogaForAll, #YogaLife जैसे हैशटैग आज दुनिया भर में ट्रेंड कर रहे हैं। आज अनेक बहुराष्ट्रीय ब्रांड भी योग को 'स्वस्थ जीवनशैली' से जोड़ते हुए अपने उत्पादों का प्रचार-प्रसार कर रहे हैं, जिससे योग का बाजारीकरण बढ़ा है और यह अक्सर एक 'फिटनेस प्रोडक्ट' के रूप में प्रस्तुत किया जाने लगा है। डिजिटल युग में योग को मुख्यतः एक शारीरिक व्यायाम या फिटनेस गतिविधि के रूप में देखा जाने लगा है, जहाँ 'परफेक्ट पोज', 'फ्लेक्सिबिलिटी' और 'बॉडी टोनिंग' पर अधिक जोर है। पारंपरिक योग, जो आत्म-अनुशासन, साधना, जीवन-दर्शन और आत्मसाक्षात्कार पर आधारित था, अब कई बार केवल 'विजुअल अपील' और ट्रेंडिंग हैशटैग के रूप में सामने आ रहा है। इंस्टाग्राम पर योगासन को एक शो-केसिंग स्किल की तरह पेश किया जा रहा है, जिससे इसका मूल उद्देश्य धुंधला पड़ रहा है। उसके गहरे आध्यात्मिक और दार्शनिक पहलू अक्सर पीछे छूटते दिख रहे हैं।

इस बात में कोई संदेह नहीं है कि सोशल मीडिया ने योग को युवाओं और वैश्विक समुदाय तक पहुँचाने में अहम योगदान दिया है, परंतु अब चुनौती यह है कि इसके पारंपरिक और आध्यात्मिक मूल्यों को भी समान रूप से पुनः प्रस्तुत किया जाए। योग का बाजार भले तेजी से विस्तार कर रहा हो, लेकिन इसे केवल शारीरिक मुद्राओं या स्ट्रेचिंग तक सीमित नहीं किया जाना चाहिए। इसके मूल तत्त्व जैसे यम, नियम, संयम, ध्यान, अनुशासन, मौन और आत्मनिरीक्षण भी उतने ही महत्वपूर्ण हैं। आवश्यक है कि इन मूल्यों के प्रति जागरूकता फैलाई जाए और प्रस्तुतीकरण को इस प्रकार विकसित किया जाए कि यह प्राचीन विज्ञान अपनी संपूर्णता में संरक्षित और प्रसारित हो सके।

संदर्भ सूची

- ऑट्टो, एल. (2025). *इंडिया 'ज यूज ऑफ योगा इन डिप्लोमेसी. द रिव्यू ऑफ फेथ एंड इंटरनेशनल अफेयर्स*, 23(2), 1–13. <https://doi.org/10.1080/15570274.2025.2491265>
- काक, एस. (2023). *हाउ योगा स्प्रेड एंड ट्रांसफॉर्म्ड वर्ल्ड रिलीजंस. फेयरऑब्जर्वर*. <https://www.fairobserver.com/world-news/india-news/how-yoga-spread-and-transformed-world-religions/> से पुनः प्राप्त.
- कुमारी, एस. (2024). *योगा : एन एंशंट प्रैक्टिस इन इंडिया 'ज मॉडर्न डिप्लोमेसी*. विवेकानंद इंटरनेशनल फाउंडेशन.
- कैरेट, ई. आर., वेला, ए. एम., एवं लिम, एम. एस. सी. (2017). *प्रेडिक्टिंग अडोलेसेंट्स यूज ऑफ सोशल मीडिया फॉर हेल्थ-रिलेटेड इनफॉर्मेशन : ए क्रॉस-सेक्शनल स्टडी*. *डिजिटल हेल्थ*, 3, 1–10. <https://doi.org/10.1177/2055207617710005>
- गौतम, ए. एवं डूगन, जे. (2017). *योगा सॉफ्ट पॉवर : हाउ फ्लेक्सिबल इज द पोस्टर? द जर्नल ऑफ इंटरनेशनल कम्युनिकेशन*, 24(1), 18–36. <https://doi.org/10.1080/13216597.2017.1388829>
- जैन, ए. आर. (2015). *सेलिंग योगा : फ्रॉम काउंटर कल्चर टू पॉप कल्चर*. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
- दासगुप्ता, आर. (2020). *डिजिटल कैपेंस एंड कल्चरल आइडेंटिटी :*

- प्रमोटिंग इंटरनेशनल डे ऑफ योगा*. *मीडिया वॉच*, 11(2), 331–339. <https://doi.org/10.15655/mw/2020/v11i2/195536>
- नंबियार, एस. (2021). *इंडिया 'ज सॉफ्ट पॉवर एंड डिजिटल डिप्लोमेसी : ए केस स्टडी ऑफ योगा डे*. *इंडियन जर्नल ऑफ पब्लिक डिप्लोमेसी*, 1(1), 23–35. <https://doi.org/10.1177/0000000000000000>
- नारायणन, वी. (2019). *योगा, कॉमोडिफिकेशन, एंड द इंटरनेट : कल्चरल अप्रोप्रिएशन इन द एज ऑफ इंस्टाग्राम*. *जर्नल ऑफ कंटेम्पेरी रिलिजन*, 34(3), 505–522. <https://doi.org/10.1080/13537903.2019.1657431>
- नस्लुंड, जे. ए., अश्वेन्नर, के. ए., मार्श, एल. ए., एवं बार्टेल्स, एस. जे. (2016). *द फ्यूचर ऑफ मेंटल हेल्थ केयर : पीयर-टू-पीयर सपोर्ट एंड सोशल मीडिया*. *एपिडेमियोलॉजी एंड साइकियाट्रिकसाइंसेस*, 25(2), 113–122. <https://doi.org/10.1017/S2045796015001067>
- मजूमदार, ए. (2018). *इंडिया 'ज सॉफ्ट पॉवर डिप्लोमेसी अंडर द मोदी एडमिनिस्ट्रेशन : बुद्धिज्म, डायस्पोरा एंड योगा*. *एशियन अफेयर्स*, 49(3), 468–491. <https://doi.org/10.1080/03068374.2018.1487696>
- मूरहेड, एस. ए., हैजलेट, डी. ई., हैरिसन, एल., कैरोल, जे. के., इरविन, ए. एवं होविंग, सी. (2013). *ए न्यू डायमेंशन ऑफ हेल्थ केयर: सिस्टमैटिक रिव्यू ऑफ द यूजेज, बेनिफिट्स एंड लिमिटेशंस ऑफ सोशल मीडिया फॉर हेल्थ कम्युनिकेशन*. *जर्नल ऑफ मेडिकल इंटरनेट रिसर्च*, 15(4), e85. <https://doi.org/10.2196/jmir.1933>
- मोरा, जे. एल., बेरी, जे. एवं सालेन, पी. (2018). *द योगा इंडस्ट्री : ए कॉन्शसलजरी एक्सपीरियंस इन द ट्रांसफॉर्मेशन इकॉनमी*. *लग्जरी*, 5(2), 173–196. <https://doi.org/10.1080/20511817.2018.1560693>
- राय, एन. (2016). *इंटरनेशनल डे ऑफ योगा : ए केस स्टडी ऑफ इंडिया 'ज सॉफ्ट पॉवर डिप्लोमेसी*. *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ कम्युनिकेशन एंड सोशल रिसर्च*, 4(1), 43–54.
- लारंजो, एल., आर्गुएल, ए., नेक्स, ए. एल., गैलाघर, ए. एम., कैपलान, आर., मॉर्टिमर, एन., ... एवं लाउ, ए. वाई. एस. (2015). *द इन्फ्लुएंस ऑफ सोशल नेटवर्किंग साइट्स ऑन हेल्थ बिहेवियर चेंज : ए सिस्टमैटिक रिव्यू एंड मेटा-एनालिसिस*. *जर्नल ऑफ द अमेरिकन मेडिकल इंफॉर्मेटिक्स एसोसिएशन*, 22(1), 243–256. <https://doi.org/10.1136/amiajnl-2014-002841>
- लुप्टन, डी. (2016). *द क्वांटिफाइड सेल्फ : ए सोशियोलॉजी ऑफ सेल्फ-ट्रैकिंग*. पॉलिटी प्रेस.
- लेवे, के. ई., फ्रीज, जे. एवं ड्रकमैन, जे. एन. (2019). *द कॉन्सीक्वेंसेज ऑफ एक्सपोजर टू योगा वीडियो ऑन यूट्यूब*. *जर्नल ऑफ हेल्थ कम्युनिकेशन*, 24(4), 393–401. <https://doi.org/10.1080/10810730.2019.1602862>
- सिंगलटन, एम. (2010). *योगा बॉडी : द ओरिजिंस ऑफ मॉडर्न पोस्टर प्रैक्टिस*. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
- स्ट्रॉस, एस. (2005). *पोजिशनिंग योगा : बैलेंसिंग ऐक्ट्स अक्रॉस कल्चर्स*. बर्ग पब्लिशर्स.



महामति प्राणनाथ की जागनी यात्रा और 'तारतम बानी': नवाचार और संचार के विशेष संदर्भ में एक अध्ययन

मोहन परनामी¹ और डॉ. राकेश कुमार उपाध्याय²

सारांश

महामति प्राणनाथ (1618-1694 ई.) का आविर्भाव भारतीय इतिहास के मध्ययुग में उस समय हुआ, जिस समय दिल्ली की केन्द्रीय सत्ता औरंगजेब के हाथ में थी। उत्तर-पश्चिमी भारत में गुरु गोविंद सिंह का राजनैतिक और सांस्कृतिक प्रभुत्व था। महाराष्ट्र की बागडोर शिवाजी के हाथ में थी और बुंदेलखंड में चंपतराय बुंदेला के पुत्र छत्रसाल हिंदू राज्य की स्थापना के लिए जी-जान से प्रयत्न कर रहे थे। सत्रहवीं शताब्दी के भारत में हिंदू, मुसलमान, ईसाई तीन जीवन मूल्यों और संस्कृतियों का संघर्ष दिखाई पड़ता है। ऐसे घोर संघर्ष काल में महामति प्राणनाथ मानवता को एक विचार सूत्र में पिरोने का स्वप्न लेकर भारत की आध्यात्मिक परंपरा को नवीन तेजस्वी रूप देते हुए उदित हुए। इसका तरीका था कि सभी उपासना पंथों और दर्शन धाराओं के ग्रंथों में निहित गूढ़ और गुह्य तात्त्विक अर्थों की व्याख्या करके धर्म के वास्तविक स्वरूप को सामने लाया जाए। इसके लिए महामति ने पश्चिमोत्तर भारत सहित खाड़ी देशों की सुदीर्घ यात्राएँ कीं। वेद और कतेब ग्रंथों का अध्ययन कर सनातन भाव के मूल में अवस्थित विश्व-धर्म और विश्व-दर्शन की अवधारणा का सूत्रपात किया। भारत की राजनीतिक, पांथिक, सामाजिक और दार्शनिक भूमिका को स्पष्ट करते हुए महामति प्राणनाथ ने तत्कालीन प्रभावी लोगों, सत्ताधीशों और अपने शिष्यों को कई पत्र लिखे। ये पत्र मुगल बादशाह औरंगजेब, उसके प्रशासनिक अधिकारियों, दिल्ली में बादशाह की कैद में पड़े अपने बारह सत्याग्रही शिष्यों और सुंदरसाथ को लिखे गए हैं। ये पत्र तत्कालीन संचार व्यवस्था के उत्तम उदाहरण हैं। इसी के साथ महामति ने छत्रसाल बुंदेला को स्वराज्य की स्थापना के लिए प्रेरित करने वाला महान् संवाद प्रकट किया, जिसने उस समय के भारतीय राजाओं को औरंगजेब के कुशासन से भारत को मुक्ति दिलाने के लिए प्रेरित किया।

संकेत शब्द : जागनी यात्रा, तारतम वाणी, सुंदरसाथ, निजानंद, संचार, नवाचार, अक्षरातीत, बुंदेलखंड.

प्रस्तावना

महामति प्राणनाथ जी (1618-1694 ई.) का आविर्भाव 'सुख शीतल करूँ संसार' और 'सारी के सुख कारणे, तू जाहेर हुई महामत' के महा-उद्घोष के साथ हिंदी साहित्य इतिहास के उत्तर मध्यकाल (1643-1843 ई.) में हुआ था। इन्होंने अपने समय और समाज की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और दार्शनिक चुनौतियों तथा समस्याओं का न केवल डटकर मुकाबला किया, वरन् उनका व्यावहारिक समाधान भी प्रस्तुत किया। उन्होंने जहाँ कुरआन आदि ग्रंथों की साक्षी देकर तत्कालीन मुगल बादशाह औरंगजेब से अंतर-धार्मिक संवाद करने की कोशिश की, वहीं 'किरंतन' ग्रंथ में राजनीतिक रूप से बिखरे राजस्थान के राजा और राणाओं को देश के लिए एकजुट होकर मुगलों के विरुद्ध खड़े होने के लिए ललकारा। अंत में महाराजा छत्रसाल को प्रेरक संवाद और आशीर्वाद देकर तैयार किया और बुंदेलखंड को मुगल सल्तनत से स्वतंत्र करवाया। उस समय अपने-अपने मत, पंथ, संप्रदाय और सिद्धांत की सर्वोच्चता को सिद्ध करने के लिए परस्पर मतभिन्नता के शिकार हिंदू समाज को एक करने के लिए महान् समन्वयशील और सर्व-समावेशी तारतम-दर्शन का महामति ने प्रतिपादन किया। इसके लिए उन्होंने जामनगर (गुजरात) से लेकर समूचे पश्चिमोत्तर भारत के साथ-साथ खाड़ी देशों की सुदीर्घ यात्राएँ कीं और लंबा संघर्ष किया। इन यात्राओं को संप्रदाय में जागनी यात्रा (आत्म-जागृति अथवा प्रबोधन) कहा जाता है। इस दौरान प्राणनाथ जी ने छोटे-बड़े सत्रह ग्रंथों की रचना की, जिनका संकलन 'तारतम वाणी' कहलाता है। प्राणनाथ जी की यात्राओं और बानी ग्रंथों का अध्ययन करने पर हमें उनकी जिज्ञासु एवं निरंतर खोजी वृत्ति

के उल्लेख प्राप्त होते हैं। इसीलिए प्रायः सभी विषयों पर उनके विचार-सूत्र सर्वथा नवीन मालूम होते हैं। इसके साथ ही अपने अभियानों एवं नवाचार से संबंधित अद्यतन समाचारों को अपने सुंदरसाथ समाज तक पहुँचाने की दृष्टि से वे प्रभावी कुशल संचार के लिए पत्र लिखकर कुशल संचारक की सभी कसौटियों पर खरे उतरते दिखाई पड़ते हैं। उनके संवाद संकलन और पत्रों का अपना ऐतिहासिक, धार्मिक, दार्शनिक और राजनीतिक महत्त्व है। संप्रदाय के 'बीतक' साहित्य में ऐसी कई पत्रियों का उल्लेख मिलता है। प्रस्तुत शोध-पत्र में इन्हीं बिंदुओं पर शोध की ऐतिहासिक, तुलनात्मक और विश्लेषणात्मक विधियों का उपयोग करते हुए तथ्य एवं तर्कसंगत पड़ताल करने का प्रयत्न किया गया है।

शोध उद्देश्य

महामति प्राणनाथ की वाणी, जिसे हम 'तारतम बानी' के नाम से जानते हैं, में कुल मिलाकर सत्रह छोटे-बड़े ग्रंथों का संकलन है। इस विशालकाय ग्रंथ में 18,758 चौपाइयाँ समाहित हैं। इसके अतिरिक्त उनकी शिष्य परंपरा में उनके जीवन, दर्शन, यात्रा और धार्मिक-राजनीतिक अभियानों के विस्तृत विवरण प्रस्तुत करने की एक सुदीर्घ परंपरा-सी दिखलाई पड़ती है, जिसे 'बीतक साहित्य' कहा जाता है। वर्तमान में ऐसे सत्रह बीतकों के उल्लेख पाए जाते हैं, जिनमें से लगभग 9 बीतकें प्रणामी संप्रदाय के विभिन्न संस्थानों से विधिवत् प्रकाशित हैं। प्रस्तुत शोध आलेख का उद्देश्य इन ग्रंथों के आधार पर महामति की नवाचार वृत्ति और संचार कला के संदर्भों की पड़ताल करना है।

¹शोधार्थी, हिंदी अध्ययनशाला एवं शोध केंद्र, महाराजा छत्रसाल बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, छतरपुर, मध्य प्रदेश. ईमेल : mohanpranami@gmail.com

²एसोसिएट प्रोफेसर, भारतीय जन संचार संस्थान, नई दिल्ली. ईमेल : rakeshiimc9@gmail.com

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध आलेख में अधिकांश सामग्रियाँ द्वितीयक स्रोत 'तारतम वाणी' और स्वामी लालदास कृत 'बीतक' से ली गई हैं। अध्ययन हेतु द्वितीयक स्रोतों यथा संबंधित पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं से भी तथ्यों का संकलन किया गया है। इसके लिए शोध की शैली वर्णनात्मक एवं गुणात्मक है। आलेख में शोध की ऐतिहासिक, तुलनात्मक और विश्लेषणात्मक प्रविधियों का उपयोग किया गया है।

मानव मन की जिज्ञासा

खोज सुहागिन ना थके, जोलो पार के पार ॥

नित खोजे चरणी चढ़े, नए नए करे विचार ॥

(प्राणनाथ, 2018, पृ-361)

जिज्ञासा मानव मन की सहज वृत्ति है, इसीलिए वह नई-नई चीजों को जानने और बूझने के लिए उत्सुक रहता है। इसी अबूझ को बूझने और अनुसंधान को सुलझाने की क्रमिक, वैज्ञानिक और प्रामाणिक प्रक्रिया अनुसंधान अथवा देशभाषा में खोज कहलाती है। यह बात महामति प्राणनाथ 'तारतम वाणी' में बार-बार करते हैं। कारण कि वे इस बात से सर्वथा भिन्न हैं कि आज तक मानव समाज ने तमाम क्षेत्रों में जो उल्लेखनीय तरक्की हासिल की है, वह कोई आकस्मिक चमत्कार नहीं है। वह हजारों वर्षों के सतत एवं सुदीर्घ अध्ययन, खोज, शोध और अनुसंधान का सुफल है। स्वामी प्राणनाथ जानते हैं कि हमने खानाबदोशी जीवन से आरंभ कर अत्युन्नत जीवनशैली तक का सफर तय किया है। लिहाजा, जब हम महामति के जीवन और उनकी बानियों का अध्ययन करते हैं, तो हम पाते हैं कि जीवन के उत्तरार्ध में भी उनके भीतर का चुस्त विद्यार्थी, जिज्ञासु शोधार्थी और प्रखर शिक्षक बूढ़ा नहीं हुआ। संप्रदाय का बीतक साहित्य इस बात का साक्ष्य है कि वे अंतिम समय तक पढ़ते-पढ़ाते और सीखते-सिखाते रहे। उनकी यह शोध और शिक्षण की अभिवृत्तियाँ बार-बार उनकी बानियों में अभिव्यक्त हुई हैं। कहीं-कहीं तो वे अपने सुंदरसाथ समाज में भी इन अभिवृत्तियों का बीज-वपन करते दिखाई देते हैं। महामति की खोज और अनुसंधान संबंधी उक्तियों और वाणी को देखते हुए 'सनंध' ग्रंथ का 22वाँ तथा 'कलस हिंदुस्तानी' का 11वाँ प्रकरण बहुत महत्वपूर्ण है।

'सनंध' के 22वें प्रकरण का शीर्षक 'सनंध अरस अरवाहों के लक्षण की' और 'कलस हिंदुस्तानी' के 11वें प्रकरण का शीर्षक 'सुहागिनियों के लक्षण' हैं। ये दोनों प्रकरण थोड़े बहुत अंतर के साथ लगभग एक-दूसरे की पुनरावृत्ति हैं, और जहाँ पुनरावृत्ति नहीं भी है, वहाँ भी कमोबेश भावानुवाद जरूर हैं। बावजूद इसके, यह दोहराव अध्येता को ऊबने का अवसर नहीं देता। कारण कि वक्ता, शिक्षक, उपदेशक अथवा रचनाकार जब एक ही बात या भाव की अभिव्यक्ति एकाधिक बार या बार-बार करता है, तो वह उस बात या भाव के महत्त्व को रेखांकित कर रहा होता है। दोहराव, इस बात का भी संकेत है कि बिंदु विशेष के प्रति लेखक अथवा रचनाकार अतिरिक्त एकाग्रता, चिंतन और विमर्श की माँग कर रहा है। दोनों ग्रंथांशों की प्रारंभिक चौपाई देखें :

गुझ तो तुमको कहूँगी, सक न राखूँ किन ॥

पर पेहेले कहूँ नेक मोमिनो, जो हमारा चलन ॥

(प्राणनाथ, 2018, पृ-461)

पार वतन जो सोहागिनी, ताकी नेक कहूँ पहचाना ॥

जो कदी भूली वतन, तो भी नजर तहाँ निदाना ॥

(प्राणनाथ, 2018, पृ-360)

भाव की दृष्टि से समानता होने पर भी यदि हम दोनों चौपाइयों की अंतर्ध्वनि को पकड़ सकें तो हम पाएँगे कि पहली चौपाई के अंतिम चरण में 'हमारा' पद इस बात का बोधक है कि यहाँ महामति अपने अनुयायियों या सुंदरसाथ से चर्चार्त हैं। जैसे कि वे हमें समझा रहे हैं कि हमारा चलन कैसा हो? ठीक ऐसे ही, जैसे एक अनुभवी शिक्षक अपने विद्यार्थी से कहता है कि देखो! मैं संबंधित विषय के सभी गूढ़ तत्त्व (रहस्य) तुम्हें भली प्रकार से बताऊँगा और बार-बार बताऊँगा। जो मैं बताऊँगा, उसमें कोई संदेह अथवा प्रश्न नहीं रहने दूँगा, लेकिन मेरे विषय से संबंधित विद्यार्थियों में कौन से गुण, धर्म और स्वभाव अपेक्षित हैं, यह अच्छे से जान लो। विद्यार्थी को विषय के लिए मानसिक रूप से तैयार कर लेना शिक्षण अभिवृत्ति (Teaching Aptitude) का सबसे पहला चरण है। इसी तरह हम दूसरी चौपाई का पुनःपाठ करें तो दूसरे चरण का 'ताकी' पद इस बात की ओर संकेत करता है कि महामति किसी तीसरे पक्ष से भी चर्चार्त हैं और उन्हें 'परमधाम की सुहागिनियों' की आध्यात्मिक पहचान बता रहे हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि निजानंद स्वामी प्रेरित और महामति प्राणनाथ प्रवर्तित प्रणामी संप्रदाय के मूल तत्त्वों में खोज एवं अनुसंधान संबंधी स्वाध्याय तथा चिंतन-मनन प्रमुख हैं। हम देखते हैं कि किस तरह महामति हमारे बारे में हमें चेताते हुए और हमारे बारे में दूसरों को बताते हुए इस बात के प्रति बेहद सतर्क और सजग हैं कि कोई भी विचारधारा या मान्यता जिस दिन पारस्परिक संवाद, चर्चा-परिचर्चा और विचार-विमर्श का आश्रय छोड़ देगी या नए विचारों के प्रति असहिष्णु हो जाएगी, उसी दिन से उसका अवमूल्यन शुरू हो जाएगा। इसीलिए वे एक ऐसे सुंदरसाथ युक्त समाज की संकल्पना अथवा कामना करते हैं, जो समयानुकूल 'नए नए विचार' का सदा स्वागत कर सके और शाश्वत को अक्षुण्ण रखते हुए समय के विपरीत किसी एक परंपरागत विचार अथवा भाव के साथ रूढ़ अथवा जड़ न हो जाए। महामति कहते हैं :

“ज्यों ज्यों मायने विचारहीं, त्यों बेधे सकल संधाना ॥”

(प्राणनाथ, 2018, पृ-463)

तात्पर्य यह कि जैसे-जैसे हम चीजों पर गहराई से विचार करते चले जाएँगे, मानसिक जड़ता अथवा ग्रंथियाँ खुलती चली जाएँगी, लेकिन यहाँ ध्यान देने जैसी बात यह है कि इस पूरे प्रकरण में महामति जोर देकर यह बात कह रहे हैं कि कोई भी व्याख्या या विचार अंतिम नहीं माना जाना चाहिए। उस पर बार-बार पीढ़ी-दर-पीढ़ी विचार-विमर्श होते रहना चाहिए। यदि ऐसा न होता तो तारतम बानी में “सब मिल कीजे सहूर” और “नित खोजे चरणी चढ़े” जैसी भावोक्तियों की इतनी अधिक पुनरोक्तियाँ न देखने को मिलतीं। ध्यातव्य है कि महामति तारतम बानी अथवा वाणी को 'इलम' तो कह रहे हैं, लेकिन पूरी सतर्कता के साथ चिंतन करते रहने की आवश्यकता भी बता रहे हैं।

मोमन खोजे आपको, और खोजे कहाँ है घर।

खोजे अपने खसम को, और खोजे दिन आखरा ॥

(प्राणनाथ, 2018, पृ-462)

अपनी, अपने घर और अपने खसम या खाविंद या स्वामी की खोज को अरस अरवाहों अर्थात् जीवन्मुक्ति का प्रमुख और प्रथम लक्षण मानना

मात्र संयोग नहीं हैं। यह गुरु से मिली परंपरा का निर्वाह है। बीतक के दूसरे प्रकरण में ग्यारह बरस की वय में सद्गुरु देवचंद्रजी के मन में जिस क्रम से आत्मानुसंधान संबंधी जिज्ञासा जगी, वही क्रम महामति ने 'सनंध' के 'सनंध अरस अरवाहों अर्थात् जीवन्मुक्त के लक्षण' प्रकरण में रखा है। उक्त चौपाई के समकक्ष सतगुरु की जिज्ञासा संबंधी चौपाई रखकर देखेंगे तो यह स्पष्ट होने लगेगा :

जब वय बरस अग्यारमा, तब मन उपज्यो विचार।

मैं कौन कहाँ थे आइया, कहाँ हैं मेरो भरतार।।

(लालदास, 2012, पृ-11)

न केवल महामति ने यह क्रम रखा है, श्याम जी के मंदिर में साक्षात्कार के समय श्रीकृष्ण भी यही प्रश्न श्री देवचंद्र जी के सम्मुख लगभग इसी क्रम में दोहराते हैं :

तूँ कौन आई इत क्योंकर, कहाँ है तेरा वतन।

नार तू कौन खसम की, दृढ़कर कहो वचन ॥

तू जागत है कि नींद में, करके देख विचार।

विध सारी याकी कहो, इन जिमी के परकार ॥

(प्राणनाथ, 2018, पृ-341)

यह दीगर बात है कि इसमें "इत आई क्योंकर" और "तू जागत है कि नींद में" श्रीकृष्ण ने अपनी ओर से जोड़ दिए और इनके उत्तर भी श्री देवचंद्र को दिए। लेकिन, यह बात बड़ी रोचक है कि बीतककार श्याम जी के मंदिर में अक्षरातीत श्रीकृष्ण से श्री देवचंद्र के संवाद का जो वर्णन करते हैं, वह बहुत संक्षिप्त जान पड़ता है। स्वामी लालदासजी कृत 'बीतक' में श्रीकृष्ण के प्रश्न "आप को पेहेचानत हो, कौन कहाँ से आए तुम" का बहुत ही संक्षिप्त और विनीत-सा उत्तर "इतना हम जानत हैं, जो धनी हमारे तुम" दिया गया है। कमोबेश यही संवाद स्वामी ब्रजभूषण कृत 'वृत्तांत मुक्तावली' में दिया गया है। आप पाइएगा कि खड़ी बोली हिंदी के संवाद को थोड़े-बहुत अंतर के साथ बृजभाषा में यहाँ अनूदित भी कर दिया गया है :

तहँ कहत बैन एहि भाँति सोई, तुम कौन कहौ घर कहाँ ।

यह रूप हमारो लखत जौन, कछु चीन्ह परत है भेद तौन ॥

"पुनि जगत हेतु सुप्रबंध रीति, सब हरषि करौ उत्तर सुप्रीति।

श्रीकृष्ण के डेढ़ चौपाई के प्रश्न पर यहाँ श्री देवचंद्रजी ढाई चौपाई में उत्तर देते हैं।

"तब कहत बैन अर्धांग एह, नहि परीय खबर हौँ कौन केहा॥"

सतपुनि जानि परत नहि कित निवास, घर कौन कहाँ के दूर पास।

पतिरूप आत्मा तुमहि एक, तजि यहै आन मनना विवेक।

पुनि श्रुति शास्त्र में जगत एह, मैं सुन्योँ स्वप्न है सर्व तेह ।

एहि बिन नहि मन को और स्थान, हौ पर पुरुष तुम सकल ज्ञान ॥

(बृजभूषण, 2006, पृ-165)

लेकिन 'कलश हिंदुस्तानी' के पहले प्रकरण में अक्षरातीत से संवाद का जो ब्योरा श्री देवचंद्र प्राणनाथ से कहते हैं, वह बीतक साहित्य में वर्णित संवाद से सर्वथा भिन्न है। वहाँ विस्तृत संवाद दिया गया है। अपने गुरु से प्राप्त इसी अनुसंधान वृत्ति के संस्कार को महामति अपने अनुयायियों में भी बोना चाहते हैं, क्योंकि, वे भलीभाँति जानते हैं कि कोई भी व्याख्या कभी सार्वकालिक और सर्वग्राह्य नहीं हो सकती। उसे निरंतर अद्यतन किए जाते रहने की बहुत आवश्यकता सदा रहती है।

आज हम देखते हैं कि समूचे विश्व के दार्शनिकों और बुद्धिजीवियों में



महामति के समय की प्रिंट मुहर जो पन्ना (मध्य प्रदेश) स्थित महामति प्राणनाथ संग्रहालय में सुरक्षित है

'श्रीमद्भगवद्गीता' ने जैसी प्रतिष्ठा और ख्याति पाई है, उतनी ख्याति अन्य कोई भारतीय ग्रंथ अर्जित नहीं कर सका। पश्चिम के परंपरागत विद्वानों से लेकर आधुनिक दर्शनशास्त्रियों और समालोचकों ने भी इस ग्रंथ को बहुत महत्त्व दिया है। न केवल भारतीय विद्वानों ने, बल्कि पश्चिमी विद्वानों द्वारा भी सर्वाधिक टीकाएँ और व्याख्याएँ इसी ग्रंथ पर लिखी गई हैं। 'श्रीमद्भगवद्गीता' पर व्याख्याओं और वार्तिकों की एक सुदीर्घ परंपरा देखने को मिलती है। लेकिन हजारों वर्षों के अध्ययन-अध्यापन, चिंतन और मनन के बाद भी विद्वानों का एक बड़ा समूह यह मानता है कि इस ग्रंथ के संदर्भ में अब तक हो चुकी किसी भी व्याख्या को अंतिम नहीं कहा जा सकता। 'श्रीमद्भगवद्गीता' के मूल भाव को अभी तक नहीं पकड़ा जा सका है और बहुत संभव है कि कभी न पकड़ा जा सके, इस प्रकार के मंतव्य भी अनेक विद्वानों ने प्रकट किए हैं। इस तरह के विद्वानों में स्वामी रामसुखदास जी प्रमुख हैं। 'साधक संजीवनी' की भूमिका में वे इसे स्पष्ट करते हैं। (रामसुखदास, सं. 2071) कमोबेश यही स्थिति 'तारतम वाणी' के साथ भी है। अभी तक उपलब्ध बहुत-सी व्याख्याएँ और भाव कतिपय आत्मप्रवंचित दावों के बावजूद अंतिम अथवा मूल कही जा सकने की स्थिति में नहीं हैं। संभव है कि 'श्रीमद्भगवद्गीता' की ही तरह 'तारतम वाणी' का मूल भाव भी कभी न पकड़ा जा सके। महामति स्वयं परम सत्य का वर्णन करते हुए पाते हैं कि हमारे अभिव्यक्ति के अर्जित संसाधन बहुत अल्प हैं। उनकी यह सीमित शक्ति 'तारतम वाणी' में बहुत बार अभिव्यक्त हुई है :

ए देह मेरी हृद की, इसी देह की अकल।

धामधनी सुख बरनन, केहेने चाहे असल।।

(प्राणनाथ, 2018, पृ-634)

ए बरनन अरस अंग होत है, ले मसाला इत का।

ताथे किन विध रूह कहे, ना जुबाँ पोहोंचे सबद बका।।

(प्राणनाथ, 2018, पृ-1265)

वे कहते हैं कि मैं परम सत्य धामधनी के सुखों का वर्णन तो करना

चाहता हूँ, लेकिन मेरी देह और दैहिक बुद्धि की सीमाएँ हैं। संसार के शब्द हक (परमात्मा) तक नहीं पहुँच सकते। तब भी मैं संसार के मसाले से अरस अंगों की सुखानुभूति को कह पाने की पुरजोर कोशिश कर रहा हूँ। नवरंग स्वामी भी अपनी रचना 'गुजराती केदारो' में इस तरह की बात करते हैं :

**कहे कोन धनी बात तमारी, क्षर अक्षर लगे कोई।
सबद अमारो पहुँचे नहीं तमने, अमें कहाँ पुकारो रोई।।**

(नवरंग स्वामी, 2006, पृ-86)

**अपार अपार करी जो कहे, तो आवे नहीं बुद्धि माहे।
तो गिनती करके सबे, कही धनी ने आँहे।।**

(नवरंग स्वामी, 2006, पृ-346)

भाव साम्य के लिए रघुवंशम् के आरंभिक दो श्लोक यहाँ बहुत प्रासंगिक हैं। जब महाकवि कालिदास 'रघुवंशम्' की रचना करने बैठे तो वे अपनी बुद्धि की तुलना सूर्यवंश के प्रभाव और आदिकवि वाल्मीकि के यश से करते हैं। वे भी इसी तरह की विवशता प्रकट करते हैं :

**क्व सूर्यप्रभवो वंशः, क्वचाल्पविषयामति।
तितीर्षुर्दुष्टरं मोहादुदुपेनास्मि सागरम्।।
मंदः कवियशः प्रार्थी, गमिष्याम्युपहासते।
प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्वाहुरिव वामनः।।**

(कालिदास, 1987, पृ-03-05)

“कहाँ सूर्य जैसे प्रभाव वाला रघुवंश और कहाँ मेरी नाना विषयों में उलझी अल्प बुद्धि। ये तो ऐसा ही है जैसे कोई दुस्तर सागर को डोंगी (बाँस की खपच्चियों को बाँध कर बनाई छोटी नाव) के सहारे पार करना चाहे।”

“अपनी बुद्धि की सीमाएँ मैं जानता ही हूँ, लेकिन बावजूद इसके कवि होने का यश पाना चाहता हूँ। ऐसा करके मैं अपना ही उपहास कराने जा रहा हूँ। यह तो ऐसा ही है जैसे किसी प्रांशु (लम्बे कद का व्यक्ति) के हाथ में पकड़े फल को पा जाने के लोभ में कोई वामन (ठिगने कद का व्यक्ति) अपने हाथ बार-बार उपर करके व्यर्थ ही अपना उपहास कराता है।”

ईसा पूर्व के महाकवि कालिदास, मध्यकाल के गोस्वामी तुलसीदास से लेकर महामति प्राणनाथ तक परमानुभूति की शब्दाभिव्यक्ति कर पाने में सीमाएँ बता रहे हैं। यद्यपि आजकल संप्रदाय में अपनी-अपनी व्याख्याओं और विचारों को अंतिम मानने की प्रवृत्ति आकार ले रही है, तथापि अपनी तमाम सीमाओं के बावजूद ये व्याख्याएँ महामति की बानियों को समझने के लिए सदाशयी और सराहनीय प्रयास जरूर हैं। महामति श्री प्राणनाथ देश और काल दोनों को ध्यान में रखते हुए खोज की बात कहते हैं। वे यह दावा कतई नहीं करते कि जो खोजा जाने जैसा था, मैं खोज चुका हूँ। इसका अर्थ है कि अपने समय और समय की संवेदना से जोड़कर निरंतर अध्ययन, चिंतन और मनन करते रहने की आवश्यकता है। वे जोर देकर कहते हैं :

**खोज खोज और खोजहीं, आद के अनाद।
पल पल सबद प्रकासहीं, श्रवनों ऐही स्वाद।।**

(प्राणनाथ, 2018, पृ-361)

इस प्रकार निरंतर अनुसंधान और निरंतर विद्वानों के साथ संवाद को महामति आध्यात्मिक यात्रा में आवश्यक तत्त्व मानते हैं। इसी क्रम में प्राणनाथ जी की जागनी यात्राओं में पत्राचार के खूब उल्लेख मिलते हैं। वे अपने अभियानों और कार्य योजनाओं से संबंधित सूचनाओं के संचार के लिए गुरु-गद्दी और अपने सुंदरसाथ समाज को निरंतर पत्र लिखा करते थे।

इसके उल्लेख हमें बीतक साहित्य में बारंबार मिलते हैं। स्वामी लालदास कृत 'बीतक' के 47वें और 48वें प्रकरण के अंतर्गत बड़ी और छोटी पत्री सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। ये दोनों पत्रियाँ प्राणनाथ जी ने अपने बारह मरजीवा शिष्यों को तब लिखी थीं, जब वे औरंगजेब को अपने गुरु का संदेश देने संबंधी अभियान के चलते उसके कारागार में कैद थे। स्वामी लालदास ने इन पत्रों को हूबहू बीतक में संकलित किया है :

लड़ाई के बखत में, उलटी भई फते।

तब दिलासा सैन्यन को, पाती लिखी ए।।

अपने हाथें दसखतें, लिखे मिने कलाम।

तिनकी नकल कहत हों, सुनियो मोमिनोँ इस ठाम।।

पत्र में प्राणनाथ औरंगजेब की कैद में पड़े सत्याग्रह करने वाले अपने मरजीवा शिष्यों को पत्री में इस प्रकार संबोधित करते हैं :

मेरे प्राण के प्रीतम, साथ मेरे सरदार।

आतम के आधार हो, जीव के जीवन उस्तवार।।

मेरे प्रेम भीने श्री साथ जी, मेरे साँचे सूर धीरा।

पाँवभर दिखावत रूहों को, तुम बैठे हो हक के तीरा।।

(लालदास, 2012, पृ-04-07)

इसके अतिरिक्त प्राणनाथ जी ने औरंगजेब के प्रशासनिक अधिकारियों को पत्र लिखे, जो कि 'नलुआ पत्र' के नाम से प्रसिद्ध हैं। मेड़ता में जब उन्होंने कुरान का अध्ययन किया और उसके अनेक अर्थ में अनुभूतिपरक व्याख्या प्रारंभ की, तब उन्होंने अपने प्रिय शिष्यों को पत्र लिखे। इन्हें 'सनंध की बड़ी और छोटी पत्रियाँ' (41वाँ और 42वाँ प्रकरण) कहते हैं:

सुनियो भीम मकुंदजी, उद्धव केसो स्याम।

हम पाती पढ़ी महंमद की, पाई हकीकत धाम।।

वतन की बातें सबें, पाई हमारी हमा।

सोए रोसन करत हों, कहियो साथ को तुम।।

(प्राणनाथ, 2018, पृ-541)

इसके अतिरिक्त महामति प्राणनाथ की वाणी पर वेदांत का प्रभाव स्पष्ट दिखता है। वह श्री सनंध में लिखते हैं कि जुदे-जुदे नामें गावहीं, जुदे जुदे भेष अनेक। जिन कोई झगड़ो आप में, धनी सबों का एक (गोपाल, 2017, पृ-342)। सन् 1673 में औरंगजेब की अत्याचारी और धर्मांध नीतियों के विरोध में महामति प्राणनाथ जी अपने पाँच सौ पांथिक अनुयायियों को लेकर सत्याग्रहियों के रूप में देश के अनेक स्थानों पर होते हुए सूरत से दिल्ली आ पहुँचे। उन्होंने तब पाँच पत्र औरंगजेब को लिखे और असहिष्णुता, अत्याचार की नीति को त्याग देने का अनुरोध किया। औरंगजेब ने उनके किसी पत्र का उत्तर नहीं दिया। सन् 1678 में हरिद्वार कुंभ के समय महामति ने हिंदु राजाओं, बड़े संतों का महासम्मेलन बुलाया और इस असहिष्णु औरंगजेबी अनीति के विरुद्ध लोक जागरण और लोकसंवाद किया। उन्होंने आवश्यकता पड़ने पर अनीति और अत्याचार के विरुद्ध समाज और स्वदेशी राजाओं को सशस्त्र संघर्ष की भी प्रेरणा दी। उन्होंने लिखा : “राजा ने मलो रे राणे राए तणों, धरम जाता रे कोई दौड़ो। जागो ने जोधा रे उठ खड़े रहो, नींद निगोड़ी रे छोड़ो।” (गोपाल, 2017, पृष्ठ-344)।

निष्कर्ष

महामति प्राणनाथ जी के नवजागरण अभियानों, यात्राओं, प्रवासों

और कार्ययोजनाओं में नवाचार और तत्कालीन संचार साधनों का अनिवार्य महत्त्व था। वे प्रत्येक अनुभूति और रहस्यात्मक संवाद को अपने प्रमुख ज्ञानी शिष्यों के साथ साझा करते थे, उसका लेखन करते थे। तत्कालीन समाज और शासन का उन्होंने विशिष्ट संचार पद्धति से मार्गदर्शन किया। लोकभाषा को महत्त्व दिया, हिंदी भाषा को शक्ति प्रदान की। तुलनात्मक दार्शनिक अध्ययन की नींव रखी, वेदों सहित भारतीय आध्यात्मिक वाङ्मय से अरबी, मुस्लिम जगत् का वाचिक परिचय कराया। कुरान के रहस्यों की सार्थक व्याख्या की। इस प्रकार भारतीय ज्ञान परंपरा में अपने संवाद के द्वारा महामति ने बड़ा योगदान दिया। राजस्थान विश्वविद्यालय के प्रोफेसर अनिल जैन ने 'जागनी' पत्रिका में प्रकाशित अपने एक आलेख में ऐसे पंद्रह ऐतिहासिक पत्रों का उल्लेख किया है (जैन, 2021)। स्वामी लालदास कृत 'वीतक' के अंतिम प्रकरण में पन्ना के मंदिर में अंतिम प्रवास की दिनचर्या का वर्णन किया गया है। उसमें उल्लेख मिलता है कि वहाँ भेजे जाने वाले पत्र लिखने और प्राप्त पत्रों के उत्तर लिखने का कार्यभार पोरबंदर के मावजी भाई को सौंपा गया था (लालदास, पृ-654)। इन पत्रों में उपयोग की जाने वाली मुहर एवं छापे पन्ना के ऐतिहासिक प्राणनाथ मंदिर के संग्रहालय में संरक्षित हैं जिन्हें वर्ष में दो बार होली और दीपावली के दूसरे दिन बंगला जी मंदिर में दर्शन और पूजन के लिए रखा जाता है। इससे मालूम पड़ता है कि प्राणनाथ जी संचार व्यवस्था को लेकर अत्यंत जागरूक थे। निश्चय ही ये पत्र विश्व साहित्य के ऐतिहासिक दस्तावेज हैं।

संदर्भ सूची

- गोपाल, के. (2017). भारत की संत परंपरा और सामाजिक समरसता. भोपाल : मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी.
- कालिदास. (1987). रघुवंश महाकाव्य. वाराणसी : मोतीलाल बनारसीदास. सर्ग संख्या- 01. श्लोक संख्या- 02, 03, पृ-03-05.
- जैन, ए. (2021). प्रणामी परंपरा का पत्र साहित्य. 'जागनी' पत्रिका (द्विवार्षिक). अंक : 2020-21. नई दिल्ली : श्री प्राणनाथ मिशन, पृ-51-62.
- न्यूटन, ई. (1704). 'ऑप्टिक्स : ऑर, ट्रीटीज ऑफ द रेफ्लेक्संस, रेफ्रेक्सन्स, इन्फ्लेक्संस एंड कलर ऑफ लाइट. लंदन : वाल्फोर्ड, पृ-137.
- नवरंग, एस. एम. (2006). 'नवरंग वाणी'. नई दिल्ली : श्री प्राणनाथ मिशन. प्रकरण संख्या- 23. पृ-346.
- नवरंग, एस. एम. (2006). 'गुजराती केदारो'. नई दिल्ली : श्री प्राणनाथ मिशन. प्रकरण संख्या- 23. चौपाई संख्या- 08, पृ-86.
- प्राणनाथ. (2018). तारतम सागर, 'सनंध'. नई दिल्ली : श्री प्राणनाथ मिशन. प्रकरण संख्या- 22. चौपाई संख्या- 01, पृ-461.
- प्राणनाथ. (2018). तारतम सागर, 'कलश हिंदुस्तानी'. प्रकरण संख्या- 11, चौपाई संख्या- 01, पृ-360.
- प्राणनाथ. (2018). तारतम सागर, 'सनंध'. नई दिल्ली : श्री प्राणनाथ मिशन. प्रकरण संख्या- 22, चौपाई संख्या-30, पृ-463.
- प्राणनाथ. (2018). तारतम सागर, 'सनंध'. नई दिल्ली : श्री प्राणनाथ मिशन. प्रकरण संख्या- 22, चौपाई संख्या- 25, पृ-462.
- प्राणनाथ. (2018). तारतम सागर. 'कलश हिंदुस्तानी'. नई दिल्ली : श्री प्राणनाथ मिशन. प्रकरण संख्या- 1. चौपाई संख्या- 6-7, पृ-341.
- प्राणनाथ. (2018). तारतम सागर, 'कलश हिंदुस्तानी'. नई दिल्ली : श्री प्राणनाथ मिशन, प्रकरण संख्या- 11, चौपाई संख्या- 08, पृ-361.
- प्राणनाथ. (2018). तारतम सागर. 'किरंतन'. नई दिल्ली : श्री प्राणनाथ मिशन. प्रकरण संख्या- 73. चौपाई संख्या- 14, पृ-634.
- प्राणनाथ. (2018). तारतम सागर. 'सिनगार'. प्रकरण संख्या- 11. चौपाई संख्या- 15. पृ. 1265.
- प्राणनाथ. (2018). तारतम सागर. 'कयामतनामा बड़ा'. नई दिल्ली : श्री प्राणनाथ मिशन. प्रकरण संख्या- 01. चौपाई संख्या-19, पृ-1560.
- प्राणनाथ. (2018). 'कलश हिंदुस्तानी'. प्रकरण संख्या- 11, चौपाई संख्या- 09, पृ. 361.
- प्राणनाथ. (2018). तारतम सागर. 'सनंध'. नई दिल्ली : श्री प्राणनाथ मिशन. प्रकरण संख्या- 41. चौपाई संख्या- 02, 04, पृ-541.
- रामसुखदास, स्वामी. (सं. 2071). 'साधक संजीवनी'. गोरखपुर : गीताप्रेस, भूमिका, पृ-01.
- लालदास, स्वामी. (2012). 'वीतक'. पन्ना : श्री 108 प्राणनाथ जी मंदिर ट्रस्ट. प्रकरण संख्या-73. चौपाई संख्या-23, पृ-654.
- लालदास, स्वामी. (2012). 'वीतक'. पन्ना : श्री 108 प्राणनाथ जी मंदिर ट्रस्ट. प्रकरण संख्या- 47. चौपाई संख्या- 04-07, पृ-349.
- लालदास, स्वामी. (2012). 'वीतक'. पन्ना : श्री 108 प्राणनाथ जी मंदिर ट्रस्ट. प्रकरण संख्या- 02. चौपाई संख्या-29, पृ-11.
- स्वामी, बी. बी. (2006). 'वृत्तांत मुक्तावलि', नई दिल्ली : श्री प्राणनाथ मिशन. प्रकरण संख्या-32.
- स्वामी, बी. बी. (2006), 'वृत्तांत मुक्तावलि', नई दिल्ली: श्री प्राणनाथ मिशन. प्रकरण संख्या- 32. चौपाई संख्या- 103-106. पृ. 165.



महाराष्ट्र के प्रमुख संतों के कार्य एवं संचार प्रणाली का अध्ययन

डॉ. विनोद निताळे¹

सारांश

महाराष्ट्र की संत परंपरा भारतीय भक्ति आंदोलन का एक समृद्ध अध्याय है। इस परंपरा ने केवल आध्यात्मिक दिशा ही नहीं दी, बल्कि समाज परिवर्तन, समता, मानवता और नैतिक मूल्यों के प्रसार के लिए भी सशक्त संचार साधन विकसित किए। वारकरी आंदोलन की परंपरा में संतों ने लोकभाषा मराठी, अभंग-ओवी, कीर्तन-प्रवचन तथा पैदल दिंडी यात्राओं के माध्यम से जनसामान्य तक विचार पहुँचाए। प्रस्तुत शोध संत वाङ्मय में अंतर्निहित संचार तत्वों, संदेश की स्पष्टता, सरल भाषा, प्रतीकात्मक शैली और संवादधर्मी दृष्टिकोण का गुणात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। संत ज्ञानेश्वर की ज्ञानमार्गी व्याख्या, नामदेव की भक्तिमय लोकभाषा, एकनाथ की सामाजिक समता की दृष्टि, तुकाराम का नैतिक-सामाजिक विचार तथा तुकडोजी महाराज का ग्रामजीवन पर आधारित जनजागरण अभियान विभिन्न ऐतिहासिक कालखंडों में प्रभावी संचार मॉडल के रूप में उभरते हैं। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि संतों की संचार पद्धति केवल धार्मिक माध्यम न होकर एक सामाजिक आंदोलन थी, जिसने समाज के निचले स्तर तक मूल्य आधारित चेतना पहुँचाई। आधुनिक संचार व्यवस्था में भी यह पद्धति प्रभावशीलता, सरलता और जनसंपर्क के उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती है।

संकेत शब्द : महाराष्ट्र की संत परंपरा, संत ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम, तुकडोजी महाराज

प्रस्तावना

महाराष्ट्र की संत परंपरा भारतीय भक्ति आंदोलन का एक सशक्त और प्रेरणादायी अध्याय है। यह परंपरा केवल धार्मिक या आध्यात्मिक नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना, मानवीय मूल्य, सांस्कृतिक जागरण और लोकसंचार का भी एक प्रभावी माध्यम रही है। मध्ययुगीन काल से लेकर आधुनिक युग तक फैली इस परंपरा ने समाज के प्रत्येक वर्ग को छुआ, विशेष रूप से उन वर्गों को, जो सामाजिक असमानता, जातिगत बंधन और धार्मिक संकीर्णता के कारण मुख्यधारा से दूर थे। इस संत परंपरा की विशिष्टता यह है कि उसने धर्म को केवल पूजा-अर्चना तक सीमित न रखकर समाज-सुधार, समानता, नैतिकता और श्रम-प्रधान जीवनमूल्यों के साथ जोड़ा। महाराष्ट्र के संतों में संत ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम और तुकडोजी महाराज—ये पाँच व्यक्तित्व विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन संतों ने अपने युग की सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक चुनौतियों के अनुरूप भिन्न-भिन्न संदेश दिए, परंतु उनकी अनुभूति और उद्देश्य समान थे—मानवता की प्रतिष्ठा, समाज में समरसता और ईश्वर-भक्ति के माध्यम से आत्मिक एवं नैतिक विकास। इस संदर्भ में आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने लिखा है, “संत” शब्द का प्रयोग किसी समय विशेष रूप से, केवल उन भक्तों के लिए ही होने लगा था, जो विठ्ठल या वारकरी संप्रदाय के प्रधान प्रचारक थे और जिनकी साधना निर्गुण-भक्ति के आधार पर चलती थी। इन लोगों में ज्ञानदेव, नामदेव, एकनाथ व तुकाराम जैसे भक्तों के नाम लिए जाते हैं, जो सभी महाराष्ट्र प्रांत से संबंध रखते थे” (चतुर्वेदी, 2014)।

संतों की एक और महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि उन्होंने अपने कार्य और संदेश को संप्रेषित करने के लिए मराठी लोकभाषा, अभंग, ओवी, भजन, कीर्तन, वारी और प्रवचन जैसी लोक संचार परंपराओं का उपयोग किया। इसी वजह से उनका संचार सरल, प्रभावी और जनसुलभ बन गया। इवाओ सिम्हा लिखती हैं, “The bhakti movement of Maharashtra which developed in western India through the medium of the Marathi language is representation of latter” (सिम्हा, 1988)।

महाराष्ट्र का भक्ति आंदोलन, जो मराठी भाषा के जरिये पश्चिमी भारत में बढ़ा, भक्ति मार्ग का प्रतिनिधित्व करता है। इस भक्ति मार्ग के पाँच पंथ माने जाते हैं। रूथ वनिता नामक शोधकर्ता लिखती हैं, “There are five main sampradayas in Maharashtra: the Mahanubhava, the Nath, the Datta, the Samarth or Ramdasi and Warkari” (रूथ, 1989)। महाराष्ट्र में पाँच मुख्य संप्रदाय हैं—महानुभाव, नाथ, दत्त, समर्थ या रामदासी और वारकरी। इन पाँच संप्रदायों या पंथों में से सबसे लोकप्रिय वारकरी पंथ है, जिसे संत नामदेव और संत ज्ञानेश्वर ने तेरहवीं और चौदहवीं सदी के दूसरे हिस्से में शुरू किया था। जस्टिन ई. एबोट और नरहर गोडबोले, वारकरी पंथ को भक्ति आंदोलन संबोधित करते हुए लिखते हैं, “The Warkari movement in a way is popular bhakti movement and is associated with both Shaiva and Vaishnava tradition. his synthesis of Vaishnavism and Saivism is symbolized in the idol of Vithala” (एबोट & गोडबोले, 1982)। वारकरी आंदोलन एक तरह से लोकप्रिय भक्ति आंदोलन है और शैव और वैष्णव दोनों परंपराओं से जुड़ा है। वैष्णव और शैव धर्म का यह मेल विठ्ठल (पंढरपूर के भगवान विठ्ठल) की मूर्ति में दिखता है।

संत ज्ञानेश्वर ने ‘ज्ञानेश्वरी’ के माध्यम से गीता को आमजन की भाषा में उपलब्ध कराया, जो ‘भाषिक लोकतंत्रीकरण’ का अद्वितीय उदाहरण है। संत नामदेव ने भक्ति को सामाजिक समानता की भावना से जोड़ा और अपने अभंगों के माध्यम से उत्तर भारत तक संचार का विस्तार किया। संत एकनाथ ने भक्ति के माध्यम से नैतिकता, करुणा और सामाजिक समरसता का संदेश दिया तथा अस्पृश्यता जैसी कुरीतियों के विरुद्ध सक्रिय रूप से संघर्ष किया। संत तुकाराम ने सहज मराठी भाषा में अभंगों की रचना करके भक्ति को लोकचेतना का स्वरूप दिया, उनकी वाणी ने सामाजिक विसंगतियों पर तीखा प्रहार किया। वहीं आधुनिक युग के संत तुकडोजी महाराज ने कीर्तन और लोकसभा जैसे माध्यमों से ग्राम-विकास, राष्ट्र-निर्माण और नैतिक शिक्षाओं का व्यापक प्रसार किया।

¹सहायक आचार्य, भारतीय जन संचार संस्थान, पश्चिम क्षेत्रीय परिसर, अमरावती, महाराष्ट्र. ईमेल : nitalevinod@gmail.com

इन पाँचों संतों की संचार प्रणाली ने महाराष्ट्र में एक अनोखा सांस्कृतिक-सामाजिक मॉडल निर्मित किया, जहाँ संचार केवल संदेश का वहन नहीं, बल्कि सामूहिक सहभागिता, अनुभव-साझेदारी और लोक-आंदोलन का रूप धारण करता है। इन्हीं कारणों से संत परंपरा को 'महाराष्ट्र की लोकचेतना की आत्मा' कहा जाता है। इस शोध आलेख का उद्देश्य इन प्रमुख संतों के कार्य, उनकी संचार पद्धति, उनके माध्यम, भाषा, शैली और संदेश का अध्ययन करना तथा यह समझना है कि उनकी संचार प्रणाली ने सामाजिक परिवर्तन, सांस्कृतिक निर्माण और आध्यात्मिक विकास में किस प्रकार महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह अध्ययन स्पष्ट करता है कि महाराष्ट्र के संतों की संचार परंपरा न केवल धार्मिक उपदेश तक सीमित थी, बल्कि वह एक व्यापक सामाजिक आंदोलन, सांस्कृतिक जागरण और मानवीय मूल्यों की स्थापना का माध्यम भी थी।

शोध उद्देश्य

1. महाराष्ट्र के प्रमुख संतों (संत ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम और तुकडोजी महाराज) की धार्मिक-सांस्कृतिक भूमिका का अध्ययन करना।
2. उक्त संतों के उपदेशों, अभंगों व वाङ्मय में निहित संचार तत्वों का विश्लेषण करना।
3. इन संतों द्वारा जनसामान्य तक संदेश पहुँचाने के लिए अपनाई गई संचार प्रणाली (परंपरागत संचार माध्यमों) का अध्ययन करना।
4. सामाजिक सुधार, समता, भक्ति पर आंदोलन व संवाद सिद्धांतों के संदर्भ में संतों के संचार कार्य का मूल्यांकन करना।
5. संत साहित्य के माध्यम से समाज में हुए परिवर्तन, सामाजिक चेतना और जनजागरण की प्रक्रिया को पहचानना।
6. संतों के संचार मॉडल का आधुनिक संचार सिद्धांतों से तुलनात्मक अध्ययन करना।

शोध प्रविधि

महाराष्ट्र के प्रमुख संत ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम और तुकडोजी महाराज के कार्य एवं संचार प्रणाली का अध्ययन प्रस्तुत शोध में किया गया है। यह अध्ययन द्वितीयक आँकड़ों पर आधारित है। अध्ययन कार्य पूरा करने के लिए उपलब्ध पुस्तकों, समाचार पत्रों, ऑनलाइन सामग्रियों आदि का उपयोग किया गया है। प्रस्तुत शोध में ऐतिहासिक शोध पद्धति का प्रयोग कर तथ्यों को विश्लेषित किया गया है।

संत ज्ञानेश्वर (1275–1296)

संत ज्ञानेश्वर का जन्म 22 अगस्त, 1275 में महाराष्ट्र के संभाजी नगर जिले के आपेगाँव में हुआ। उनके पिता का नाम विठ्ठल पंत और उनकी माता का नाम रुक्मिणी था। विठ्ठल पंत का मूल परिवार पैठण के पास आपेगाँव का था। विठ्ठल पंत की चार संतानें थीं, निवृत्ति, ज्ञानदेव, सोपान, मुक्ताबाई। ज्ञानेश्वर (ज्ञानदेव) अल्प आयु थे, उन्होंने 21 वर्ष की आयु में 1296 में आलंदी (पुणे) में समाधि ली। संत ज्ञानेश्वर महाराष्ट्र की संत परंपरा के अत्यंत प्रभावी विचारक एवं आध्यात्मिक समाज-संचारक माने जाते हैं। उनका कार्य भारतीय भक्तिधारा, सामाजिक समरसता और जनजागरण की दिशा में एक नवीन अध्याय प्रस्तुत करता है। नागरगोजे और डॉ. डोंगरे

अपने शोध आलेख में अंकित करते हैं, “Sant Dnyaneshwar, a revered 13th-century Marathi saint, philosopher, and poet, composed the Dnyaneshwari, a detailed commentary on the Bhagavad Gita. In this work, he masterfully intertwines profound spiritual teachings with insights into physical and mental well-being” (नागरगोजे & डोंगरे, 2024)। संत ज्ञानेश्वर, 13वीं सदी के एक जाने-माने मराठी संत, दार्शनिक और कवि थे। उन्होंने ज्ञानेश्वरी लिखी, जो भगवद्गीता पर एक विस्तृत विवेचन है। इस काम में, उन्होंने गहरी आध्यात्मिक शिक्षाओं को शारीरिक और मानसिक सेहत की समझ के साथ बहुत अच्छे से जोड़ा है। ज्ञानेश्वर का मुख्य उद्देश्य समाज में विद्यमान अस्पृश्यता, जातिभेद और धार्मिक जटिलता को दूर कर मानवता, समानता और आध्यात्मिक स्वराज्य का संदेश देना था। उनके कार्य का केंद्र बिंदु ‘ज्ञान’ और ‘भक्ति’ का समन्वय था, जो उन्होंने लोकभाषा मराठी के माध्यम से अत्यंत सरल रूप में जनमानस तक पहुँचाया।

संत ज्ञानेश्वर ने तीन प्रमुख ग्रंथ लिखे—‘भावार्थदीपिका’ अर्थात् ज्ञानेश्वरी, ‘अमृतानुभव’ और ‘चांगदेव पासष्टी’। उनकी प्रमुख कृति ‘ज्ञानेश्वरी’ (भगवद्गीता का मराठी भाष्य) केवल धार्मिक ग्रंथ नहीं, बल्कि एक प्रभावी संचार दस्तावेज माना जाता है। ‘ज्ञानेश्वरी’ के माध्यम से, ज्ञानेश्वर संस्कृत से प्राकृत में ‘ज्ञान’ लाए। इस ग्रंथ में उन्होंने जटिल आध्यात्मिक विचारों को ओवी (‘ओवी’ शब्द का अर्थ ‘संत का पवित्र संदेश’ होता है। ओवी मतलब माला में पिरोना है। यह मराठी साहित्य का एक रूप है, जिसका इस्तेमाल लोकगीतों और पारंपरिक कविताओं में किया जाता है।) छंद में प्रस्तुत करके संचार को सरल, सुगम और सर्वसुलभ बनाया। ‘ज्ञानेश्वरी’ में अंकित ओवी मराठी भाषा की महत्ता दर्शाती हैं—“माझा मराठाचि बोलू कौतुके। परि अमृतातेहि पैजासी जिंके। ऐसी अक्षरे रसिके। मेळवीना। (ज्ञानेश्वरी, 6.14) अर्थात् मैं अपनी मराठी का बखान करूँगा, जो अमृत से भी बढ़कर हो। मैं ऐसे शब्द जोड़ूँगा, जो रसज्ञों (कलाप्रेमियों) को प्रसन्न करें।

‘अनुभवमृत’ या ‘अमृतानुभव’ ज्ञानेश्वर का दूसरा ग्रंथ है। यह शुद्ध फिलॉसफी की किताब है, आत्मा और ब्रह्म की एकता की। इस किताब में लगभग 800 श्लोक (दस अध्याय) हैं। इसमें भी उन्होंने तत्त्वज्ञान को अनुभवाधिष्ठित भाषा में रूपांतरित किया। ‘चांगदेव पासष्टी’ ग्रंथ के माध्यम से उन्होंने चांगदेव महाराज का घमंड खत्म करके उन्हें उपदेश दिया। माना जाता है कि चांगदेव 1400 साल तक एक महान् योगी के तौर पर रहे, लेकिन उनका अहंकार खत्म नहीं हुआ। इसके लिए ‘चांगदेव पासष्टी’ ग्रंथ संत ज्ञानेश्वर के उपदेश पर लिखी गई 65 श्लोकों की एक चिट्ठी है। इसमें अद्वैत सिद्धांत का अद्भुत दर्शन है। संत ज्ञानेश्वर की भाषा में प्रतीक, उपमा, स्थानीय अनुभव तथा लोकजीवन के संदर्भ होने के कारण श्रोता तथा पाठक सहज रूप से संदेश को ग्रहण कर पाते थे। ज्ञानेश्वर की संचार प्रणाली का महत्वपूर्ण घटक संवादधर्मिता है। वे विचार थोपने के बजाय समझाने, उदाहरण देने और तर्क प्रस्तुत करने का मार्ग अपनाते हैं। अल्पायु में ही वे सामाजिक-सांस्कृतिक नेतृत्व के प्रभावी संचारक बने। पैदल यात्रा, प्रवचन, कीर्तन और सामूहिक चर्चा जैसे प्रत्यक्ष माध्यम उनके संचार का आधार थे, जबकि अभंग और ओव्या अप्रत्यक्ष माध्यम के रूप में जनमानस में स्थायी प्रभाव छोड़ते हैं।

ज्ञानेश्वर की संचार प्रणाली आधुनिक संचार सिद्धांतों—स्पष्टता,

विश्वसनीयता, संदर्भानुकूलता और भावनात्मक अपील—के अनुरूप एक सफल मॉडल प्रस्तुत करती है। उन्होंने आध्यात्मिक संदेशों को सामाजिक परिवर्तन के साधन के रूप में प्रयोग कर यह सिद्ध किया कि प्रभावी संचार केवल सूचना नहीं, बल्कि मूल्य-निर्माण और मानवता का संवाहक भी हो सकता है।

संत नामदेव (1270–1350)

संत नामदेव महाराज का जन्म 26 अक्टूबर, 1270 को महाराष्ट्र के हिंगोली जिले के नरसी-बामनी गाँव में हुआ। उनके पिता का नाम दामाशेट्टी और माता का नाम गोनाबाई था। इस बात पर विवाद है कि नामदेव महाराज का जन्मस्थान पंढरपूर था या नरसी, लेकिन नामदेव के पिता नरसी गाँव से थे और बाद में वे पंढरपूर में बस गए। नामदेव मराठी भाषा के सबसे पुराने कवियों में से एक थे। उन्होंने अवधी/ब्रज भाषा में भी कविताएँ लिखीं। वे सिख गुरुग्रंथ साहिब के जीवनी लेखक, आत्मकथा लेखक और पंजाब में 'कीर्तन' के जरिये भगवद्गीता के शुरुआती प्रचारक थे। संत नामदेव वारकरी संप्रदाय के एक महान् प्रचारक थे और उन्होंने पूरे भारत में इस संबंध में भावनात्मक एकता हासिल की। वे खुद भागवत धर्म का झंडा लेकर पंजाब गए। संत नामदेव महाराज ने 3 जुलाई, 1350 में 80 वर्ष की आयु में पंढरपूर में समाधि ली।

नामदेव की अभंगगाथा (लगभग 2500 अभंग) मशहूर है। उन्होंने शौरसेनी भाषा में कुछ अभंग (लगभग 125 पद) लिखे थे। उनमें से लगभग 62 अभंग (नामदेवजीकी मुखबानी) सिख संप्रदाय के गुरुग्रंथ साहिब में गुरुमुखी लिपि में शामिल हैं। नामदेव ने संत ज्ञानेश्वर की जीवनी तीन अध्यायों में बताई है, जिनके नाम हैं—आदि, समाधि और तीर्थावली या तीर्थावाली। महाराष्ट्र सरकार द्वारा प्रकाशित गजट में उल्लेख है : “Namdev has given us quite a very large number—more than two thousand though computed variously—of abhangas and they are very rich in literary merits.” (महाराष्ट्र राज्य गजट) नामदेव ने हमें बहुत बड़ी संख्या में अभंग दिए हैं—अलग-अलग तरह से दो हजार से भी ज्यादा—और वे साहित्यिक गुणों से भरपूर हैं। संत नामदेव के कार्य का उल्लेख करते हुए पी. डी. निकते कहते हैं, “At the beginning of 13th century, there was a large invasion of Islam religion. People were compulsorily made Islam. At this time, without any means of transportation, St. Namdev—“Nachu Kirtanache Rangi, Dnyandeep Lau Jagi” with this principle, wondered through different places of the country performing Kirtanas, praying the god and he created social equality to bring the scattered society under the flag of Bhagwat religion” (निकते, 1986)।

13वीं सदी की शुरुआत में इस्लाम धर्म का बड़ा प्रभाव था। लोगों को मजबूरी में इस्लाम कबूल करवाया गया। इस समय, बिना किसी यातायात के साधन के संत नामदेव—“नाचू कीर्तनाचे रंगी, ज्ञानदीप लावू जगी”—इस सिद्धांत के साथ देश के अलग-अलग इलाकों में घूमे, कीर्तन किया, भगवान् की प्रार्थना की और बिखरे हुए समाज को भागवत धर्म के झंडे के नीचे लाने के लिए सामाजिक सहमति बनाई। नामदेव महाराष्ट्र की वारकरी संत परंपरा के प्रमुख स्तंभों में से एक हैं। उनका कार्य केवल भक्ति-

आंदोलन तक सीमित नहीं रहा, बल्कि सामाजिक एकता, समानता और नैतिक जीवन-मूल्यों के प्रसार का एक व्यापक अभियान था। नामदेव ने अपने समय में प्रचलित जाति-भेद, धार्मिक अनुष्ठानों की जटिलता तथा सामाजिक विषमता को चुनौती दी। वे विडुल भक्ति के माध्यम से मानवता, प्रेम और ईश्वर की सर्वव्यापकता का संदेश जनसामान्य तक ले गए। उनकी विशेषता यह थी कि उन्होंने साधारण भावनाओं और जीवन-स्थितियों को अपनी रचनाओं में स्थान देकर भक्ति को जन-आंदोलन में परिवर्तित किया। नामदेव की संचार प्रणाली अत्यंत प्रभावी, सरल और जन-सुलभ थी। उनके अभंग संचार का मूल स्तंभ थे, जिनमें उन्होंने गूढ़ आध्यात्मिक विचारों को सहज भाषा में व्यक्त किया। अभंगों की लयात्मकता, पुनरावृत्ति, लोकभाषा और भावनात्मक अपील ने उन्हें स्मरणीय और जनप्रिय बनाया। यह संचार शैली लिखित होने के साथ-साथ मौखिक परंपरा में भी अत्यंत सफल रही। महाराष्ट्र ही नहीं, पंजाब में भी नामदेव के पद श्री गुरुग्रंथ साहिब में सम्मिलित हैं, जिससे उनकी संचार प्रणाली के व्यापक प्रभाव का प्रमाण मिलता है। मराठी विश्वकोश में अ. र. कुलकर्णी, नामदेव के भाषा ज्ञान और भारत भ्रमण के संदर्भ में लिखते हैं, “नामदेवांच्या हिंदीवर मराठीची छाप तर आहेच परंतु ब्रज, अवधी, राजस्थानी अशा भाषांचेही संस्कार आहेत. ब्रजादी भाषा बोलणाऱ्या प्रदेशांत त्यांचे वास्तव्य झाल्याचे आणि त्यांनी ह्या भाषा निदान काही प्रमाणात आत्मसात केल्याचे हे द्योतक आहे. नामदेवांची सुमारे सव्वाशे हिंदी पदेही आता उपलब्ध झालेली आहेत” (कुलकर्णी, 2025)। अर्थात् नामदेव की हिंदी पर न सिर्फ मराठी का असर है, बल्कि उसमें ब्रज, अवधी, राजस्थानी जैसी भाषाओं के ट्रेडिशन भी हैं। यह इस बात का संकेत है कि जहाँ ब्रज आदि भाषाएँ बोली जाती थीं, उन इलाकों में उन्होंने भ्रमण किया और कुछ हद तक इन भाषाओं को अपना लिया था। नामदेव के लगभग 125 हिंदी पद इस समय मौजूद हैं।

नामदेव की संचार प्रणाली की विशेषता अनुभव आधारित शैली है। वे ईश्वर से सीधे संवाद की भावना को प्रस्तुत करते हैं, जिससे उनका संदेश श्रोता के जीवन से जुड़ता है। कीर्तन, दिंडी यात्रा, सामूहिक भजन तथा सत्संग उनके प्रत्यक्ष संचार माध्यम थे। उनके संदेशों में नैतिकता, सामाजिक समता और मानवतावाद का सशक्त स्वर मिलता है। महाराष्ट्र सरकार द्वारा प्रकाशित गजट में नामदेव के अभंग की विशेषता स्पष्ट होती है : “Abhanga had become a part and parcel of his whole life. This vehicle of his prayer was as easy and natural with him as was the ordinary talk. No effort, perhaps not even his awareness was required. The expressions came out themselves. The abhangas in his case were uttered and not composed, this tendency being spread over his whole family” (महाराष्ट्र राज्य गजट, 2025)। अभंग उनकी पूरी जिंदगी का हिस्सा बन गया था। उनकी प्रार्थना का यह तरीका उनके लिए उतना ही आसान और स्वाभाविक था, जितना कि आम बातचीत। किसी कोशिश की जरूरत नहीं थी। शायद उन्हें चेतना की भी जरूरत नहीं थी। निहित भाव खुद ही निकल आते थे। उनके मामले में अभंग बोले जाते थे, बनाए नहीं जाते थे। यह आदत उनके पूरे परिवार में थी। अभंग द्वारा नामदेव की संचार प्रणाली बहुत ही सहज और सरल थी। सिद्धांत रूप में संत नामदेव की संचार प्रणाली स्पष्टता, भावनात्मक गहनता, संदर्भानुकूल प्रतीक और लोकजीवन के निकट रहने वाली भाषा पर आधारित है। उन्होंने भक्ति को संचार का माध्यम बनाकर

समाज में आत्मविश्वास, सामूहिकता और आध्यात्मिक चेतना का निर्माण किया। उनकी संचार पद्धति आज भी लोकसंचार का एक सफल आदर्श मानी जाती है।

संत एकनाथ (1533–1599)

संत एकनाथ महाराज का जन्म महाराष्ट्र के संभाजी नगर जिले के पैठण में वर्ष 1533 में हुआ। 16 वें वर्ष में एकनाथ ने महाराष्ट्र में भागवत धर्म की ध्वजा फहराने का कार्य किया। एकनाथ महाराज के पिता का नाम सूर्यनारायण और माता का नाम रुक्मिणी था। अल्प आयु में उनके माता-पिता का निधन हुआ, इस कारण उनका पालन-पोषण उनके दादा 'चक्रपाणि' ने किया। एकनाथ को बचपन से ही हरि भक्ति में लगन थी, जिसके फलस्वरूप वे बारह वर्ष की आयु में देवगड चले गए और जनार्दन स्वामी के पास रहे। एकनाथ ने चतुश्श्लोकी भागवत, रुक्मिणी स्वयंवर, एकनाथी भागवत, भावार्थ रामायण जैसे ग्रंथों की रचना की। ब्रिटानिका शब्दकोश के अनुसार, "Eknath is best known for his translations of various Sanskrit texts into Marathi (the local language of the Maharashtra region of central India), (इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका, 2025)। एकनाथ को अलग-अलग संस्कृत रचना को मराठी में अनुवाद के लिए जाना जाता है। दिनांक 26 फरवरी, 1599 को संत एकनाथ महाराज का पैठण में देहांत हुआ।

एकनाथ ने महाराष्ट्र में वासुदेव संस्थान नाम का एक आंदोलन शुरू किया। इसमें वासुदेव नाम के लोग लोगों के घर जाते थे। वे लोगों के घरों के सामने खड़े होकर भजन सभाओं के जरिये धार्मिक संदेश देते थे। "भगवान राम के जीवन का ऐतिहासिक वर्णन एकनाथ महाराज ने 7 हिस्सों, 297 अध्याय और लगभग 40000 श्लोकों वाले 'ओवी' में फिर से लिखा। एकनाथ महाराज ने राम के जीवन का आध्यात्मिक मतलब समझाने की कोशिश की। 'बये दार उघड' (दरवाजा खोलो बहना) कहते हुए, एकनाथ ने भारुड, जोगवा, गवळण, गोंधळ की मदद से जागरूकता पैदा की। एकनाथ एक संत कवि, एक पंत कवि और एक तंतकवि थे। वे खुद को 'एका जनार्दन' कहते हैं। एका जनार्दनी उनकी नाम मुद्रा है" (संत साहित्य वेबसाइट, 2025)।

संत एकनाथ महाराष्ट्र की संत परंपरा के ऐसे महान् संत हैं, जिन्होंने आध्यात्मिक चिंतन के साथ-साथ समाज-सुधार को भी अपने कार्य का केंद्र बनाया। वे ज्ञानेश्वर और तुकाराम के मध्य सेतु माने जाते हैं, क्योंकि उन्होंने अध्यात्म, नैतिकता और सामाजिक समता को एक साथ जोड़ा। एकनाथ का प्रमुख कार्य समाज में व्याप्त जातिभेद, अस्पृश्यता, रूढ़ियों और धार्मिक आडंबरों का विरोध करना था। उन्होंने अपने व्यवहार और वाणी के माध्यम से यह सिद्ध किया कि भक्ति केवल ईश्वर की आराधना नहीं, बल्कि मानवता का स्वीकार और सम्मान भी है। उनके साहित्य में एकनाथी भागवत, भावार्थ रामायण, रुक्मिणी स्वयंवर, छांदोबद्ध अभंग आदि प्रमुख कृतियाँ हैं, जो संचार की दृष्टि से अत्यंत प्रभावी मानी जाती हैं। एकनाथ की भाषा सरल, संवादात्मक और भावनात्मक है, जिससे उनका संदेश आम जन तक सहजता से पहुँचता है।

एकनाथ की संचार प्रणाली का सबसे महत्वपूर्ण तत्त्व लोकजागरण है। वे कीर्तन, प्रवचन, सत्संग और प्रत्यक्ष सामाजिक आचरण को संवाद का माध्यम बनाते थे। स्वच्छता अभियान, अछूत माने जाने वाले व्यक्तियों के साथ भोजन

करना तथा न्याय-नीति पर आधारित जीवनशैली जैसी उनकी चर्चा समाज के लिए व्यावहारिक संदेश थी। यह उनकी 'क्रियाशील संचार प्रणाली' थी, जिसमें संदेश केवल शब्दों से नहीं, बल्कि कार्यों से दिया जाता है। उनके अभंग और ओव्या संचार के अप्रत्यक्ष, किंतु स्थायी माध्यम हैं। इनमें सामाजिक नैतिकता, कर्तव्यपरायणता, विनम्रता और ईश्वर भक्ति का संदेश भावनात्मक प्रभाव के साथ प्रस्तुत होता है। "उन्होंने 'रोडगा' भारुड (यह एक काव्य का प्रकार है) के जरिये उस समय समाज में महिलाओं के साथ हो रहे अन्याय और अत्याचार के बारे में महिलाओं की मन की स्थिति को बताया है। महिलाओं को मना करने की आजादी नहीं थी। परिवार वाले कम उम्र में ही उनकी शादी तय कर देते थे। यह वह समय था जब महिलाएँ सिर्फ गुजारा करने से आगे सोचना नहीं चाहती थीं" (संत महंत वेबसाइट, 2025)।

"फाटकेच लुगडे तुटकीसी चोळी, शिवाया दोराच नाही, मला दादला नको गं बाई"

अर्थात् साड़ी और चोली फटी है, सिलाई के लिए धागा नहीं है, मुझे पति नहीं चाहिए।

यह कविता उस समय की महिलाओं के मन की बात करती है। इतना सरल और सीधा संचार एकनाथ करते थे। संचार सिद्धांतों की दृष्टि से संत एकनाथ की शैली स्पष्टता, नैतिक आग्रह, सत्यानुभव और सहभागी संवाद पर आधारित है। वे संदेश को लोकजीवन के संदर्भों से जोड़कर प्रस्तुत करते थे, जिससे उनकी संचार प्रणाली न केवल आध्यात्मिक, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का प्रभावी मॉडल सिद्ध होती है।

संत तुकाराम (1608–1650)

संत तुकाराम महाराज का जन्म 21 जनवरी, 1608 को महाराष्ट्र के पुणे जिले के देहू गाँव में हुआ। ज्ञानेश्वर ने जिस भागवत धर्म की स्थापना की, उसकी उज्ज्वल परिणति तुकाराम महाराज हैं। उनके पिता का नाम बोल्होबा, माता का नाम कंकाई और पत्नी का नाम औदाबाई था। वे मोरे वंश से थे और उनका उपनाम अंबिले था और प्राचीन काल से ही उनके घर में विठ्ठल भक्ति का प्रचलन था। "सत्रह वर्ष की आयु में तुकाराम ने अपने माता-पिता की छत्रछाया खो दी। सिर्फ 17 साल की उम्र में ही तुकाराम पर व्यापार समेत घर की जिम्मेदारी आ गई। फिर 1630-31 में महाराष्ट्र में आए भयंकर अकाल में उनकी पहली पत्नी और बेटे की भी मौत हो गई, उनकी दुकान दिवालिया हो गई और गरीबी आ गई। इस हालात की वजह से लोगों के बीच उनकी इज्जत कम हो गई। उनकी बेइज्जती होने लगी। इस वजह से वे अकेले रहने लगे और भगवान् के आगे नतमस्तक हुए। उन्हें जिंदगी का एक नया रास्ता साफ दिखने लगा" (जोशी, 2025)। तुकाराम इस युग के एक महत्वपूर्ण संत हुए, जिन्होंने अभंग वाणी कीर्तन के माध्यम से राष्ट्रधर्म की शिक्षा दी। तुकाराम ने बहुजन समुदाय को जगाने और उन्हें ईश्वर और धर्म के बारे में निर्णायक विचारों के लिए मनाने की कोशिश की। दिनांक 19 फरवरी, 1650 को संत तुकाराम का देहू में देहांत हुआ।

संत तुकाराम महाराष्ट्र के वारकरी संत परंपरा के सर्वाधिक लोकप्रियमुख्य व्यक्तित्व हैं। उनका कार्य अध्यात्म, नैतिकता और समाज-संशोधन के अद्वितीय संगम के रूप में देखा जाता है। आचार्य देवी प्रसाद लिखते हैं, "संत तुकाराम के व्यक्तित्व में नेकनीयती, ईमानदारी, उदारता के गुण समाहित थे। इसी कारण वे सबके प्रेमपात्र थे एवं सभी उनका आदर करते थे" (प्रसाद, 2022)। तुकाराम ने भक्ति को केवल धार्मिक तत्त्व न

मानकर, उसे सामाजिक समता, मानवता और नैतिक जीवनशैली का आधार बनाया। आर्थिक कठिनाइयों, सामाजिक विषमता तथा जातिगत भेदभाव से भरे समय में उन्होंने अपने अभंगों के माध्यम से जनसामान्य को आशा, साहस और नैतिक दिशा प्रदान की। उनका मुख्य उद्देश्य था—मानव जीवन को सत्य, सरलता, करुणा और ईश्वर-स्मरण के आधार पर पुनर्संगठित करना। तुकाराम की संचार प्रणाली अत्यंत सरल, आत्मीय और जनसुलभ थी। उनकी 'तुकाराम गाथा' संचार का विशाल दस्तावेज है, जिसमें हजारों अभंग जीवनानुभव, सामाजिक टीका, आध्यात्मिक मार्गदर्शन और नैतिक शिक्षाओं से समृद्ध हैं। तुकाराम ने किसी भी जटिल दार्शनिक शैली का सहारा नहीं लिया; इसके बजाय उन्होंने लोकभाषा मराठी के माध्यम से श्रोता-समुदाय के मनोविज्ञान को सीधे संबोधित किया। उनके अभंगों में लय, प्रतीकात्मकता, व्यंग्य, संवाद शैली और भावनात्मक अपील का अद्भुत संतुलन मिलता है, जो उन्हें अत्यंत प्रभावकारी बनाता है।

“दुनियादारी निभाते एक आम आदमी संत कैसे बना, साथ ही किसी भी जाति या धर्म में जन्म लेकर उत्कट भक्ति और सदाचार के बल पर आत्मविकास साधा जा सकता है। यह विश्वास आम इंसान के मन में निर्माण करने वाले थे, संत तुकाराम यानी तुकोबा। अपने विचारों, अपने आचरण और अपनी वाणी से अर्थपूर्ण तालमेल साधते अपनी जिंदगी को परिपूर्ण करने वाले तुकाराम जनसामान्य को हमेशा कैसे जीना चाहिए, यही प्रेरणा देते हैं” (वेब दुनिया, 2025)। उनकी संचार प्रणाली का आधार कीर्तन परंपरा थी। कीर्तन, भजन, दिंडी यात्रा और सामूहिक गायन उनके प्रत्यक्ष संचार माध्यम थे, जिनके द्वारा वे समाज के विभिन्न वर्गों तक समान रूप से पहुंचते थे। “जे का रंजले गांजले त्यासी म्हणे जो आपुले तोचि साधू ओळखावा देव तेथेची जाणावा” अर्थात् “जो कोई भी दुखी और पीड़ित लोगों को अपना मानता है, वही सच्चा साधु है, उसे ही पहचानना चाहिए और उसके अंदर ही ईश्वर का वास होता है।” तुकाराम का संवाद अत्यंत नैतिक आग्रह वाला, किंतु मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सहज और प्रेरणादायी था। संचार सिद्धांतों की दृष्टि से तुकाराम की शैली स्पष्टता, सहजता, भावनात्मक गहनता और तर्कपूर्ण आलोचना पर आधारित है। उन्होंने धर्म को लोकजीवन से जोड़कर एक प्रभावी ‘जनसंचार मॉडल’ विकसित किया, जो आज भी समाज-जागरण की दृष्टि से अत्यंत प्रासंगिक और प्रेरणादायी माना जाता है।

राष्ट्र-संत तुकडोजी महाराज (1909–1968)

राष्ट्र-संत तुकडोजी महाराज का जन्म 30 अप्रैल, 1909 को अमरावती जिले के यावली गाँव में हुआ था। उनके पिता का नाम बंडोपंत और माँ का नाम मंजुला था। उन्होंने वरखेड गाँव के श्री संत अडकोजी महाराज से आध्यात्मिक दीक्षा ली थी। श्री संत अडकोजी महाराज ने उनका नाम ‘तुकड्या’ रखा। तुकडोजी महाराज एक मशहूर आध्यात्मिक गुरु और समाज सुधारक थे। उन्होंने आजादी की लड़ाई में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया और देशभक्ति के गाने लिखकर लोगों को आजादी की लड़ाई में शामिल होने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने एक किताब ‘ग्रामगीता’ लिखी, जो गाँव की जिंदगी के लिए एक गाइड बन गई। उनके खंजरी भजनों के लिए पूर्व राष्ट्रपति राजेंद्र प्रसाद ने उन्हें ‘राष्ट्र-संत’ की उपाधि से सम्मानित किया। दिनांक 11 अक्टूबर, 1968 को तुकडोजी महाराज का देहांत हुआ।

तुकडोजी महाराज महाराष्ट्र के आधुनिक संत, समाज-सुधारक

और ग्राम स्वराज्य के अग्रदूत माने जाते हैं। उनका कार्य परंपरागत संत परंपरा से आगे बढ़कर सामाजिक, शैक्षणिक, स्वच्छता, ग्रामविकास और राष्ट्र-निर्माण की दिशा में सक्रिय आंदोलन के रूप में उभरता है। तुकडोजी के सामाजिक दृष्टिकोण के विषय में डॉ. बाणासुरे लिखते हैं, “Tukdoji Maharaj’s literature often addressed social issues prevalent in his time, such as caste discrimination, poverty, and illiteracy. He advocated for the eradication of social inequalities and the upliftment of marginalized communities through education and awareness” (बाणासुरे, 2023)। तुकडोजी महाराज के साहित्य में अक्सर उनके समय में आम सामाजिक मुद्दों, जैसे जातिगत भेदभाव, गरीबी और अशिक्षा पर बात होती थी। उन्होंने शिक्षा और जागरूकता के जरिये सामाजिक असमानताओं को खत्म करने और पिछड़े समुदायों को ऊपर उठाने की वकालत की। तुकडोजी महाराज ने भक्ति और कीर्तन के माध्यम से केवल आध्यात्मिक संदेश ही नहीं दिए, बल्कि जनसामान्य को शिक्षा, स्वास्थ्य, श्रम, संयम और नैतिकता का व्यावहारिक मार्ग भी दिखाया। उनका प्रमुख उद्देश्य ग्रामजीवन को आत्मनिर्भर बनाना तथा नागरिकों में सामाजिक चेतना और राष्ट्रभक्ति का विकास करना था। तुकडोजी महाराज की संचार प्रणाली अत्यंत सशक्त, विविधतापूर्ण और जनसंचार के आधुनिक सिद्धांतों के अनुरूप मानी जाती है। उनकी प्रमुख रचना ‘ग्रामगीता’ संचार का एक उत्कृष्ट दस्तावेज है, जिसमें उन्होंने ग्रामीण विकास, स्वच्छता, श्रमदान, लोकशिक्षण और आध्यात्मिक विचारों को सरल मराठी भाषा में प्रस्तुत किया। यह ग्रंथ ग्रामीण समाज के लिए एक मार्गदर्शक संहिता के रूप में कार्य करता है।

उनका कीर्तन शैली पर आधारित प्रत्यक्ष संचार अत्यंत प्रभावशाली था। तुकडोजी महाराज की कीर्तन पद्धति पारंपरिक रूप से हटकर तेज, ऊर्जावान और प्रेरणादायक थी। वे गाँव-गाँव जाकर कीर्तन, प्रवचन, स्वच्छता अभियान और श्रमदान आंदोलन के माध्यम से लोगों को सक्रिय भागीदारी के लिए प्रेरित करते थे। यह ‘सहभागी संचार मॉडल’ उनकी प्रणाली की अनूठी विशेषता है। उनका कीर्तन बहुआयामी संचार-प्रक्रिया का आदर्श उदाहरण है। वे दर्शकों के बीच सीधे संवाद बनाते, प्रश्न पूछते, गीत गाते और श्रोतागण को संवाद का हिस्सा बनाते हुए संदेश संप्रेषित करते। उनकी लोकप्रिय कीर्तन-पंक्ति—“बोधौं देऊनी जनतेला, अज्ञानाचा नाश करावा”—यह दर्शाती है कि उनका उद्देश्य केवल भक्ति नहीं, बल्कि जन-जागरण भी था। इसी प्रकार “उठा उठा हो सज्जना, ग्रामोन्नती हा मार्ग धरा” जैसी पंक्तियाँ संचार के प्रेरक (motivational communication) स्वरूप को प्रकट करती हैं। इस कीर्तन-शैली में ‘सामूहिक सहभागिता’ संचार का मुख्य अवयव था, जहाँ श्रोता केवल श्रोता नहीं रहते, बल्कि संवाद का सक्रिय भाग बन जाते। उनके भजन जनता में देशप्रेम, आत्मसम्मान और कर्तव्यनिष्ठा जाग्रत करने वाले थे। उनका प्रसिद्ध राष्ट्रभक्ति पूर्ण भजन—वंदन कर भारत माता, वंदन कर रे—जनमानस में राष्ट्रीय गौरव जगाने का प्रभावी संचार माध्यम था। यह भजन एक सामूहिक प्रेरणा-गीत के रूप में गाँव-गाँव में गाया जाता था। इसी प्रकार उनके अन्य भजन, जैसे—“जागा रे साथी जागा, देशाला घडवू या” सामाजिक जिम्मेदारी और राष्ट्र-निर्माण का संदेश देते हैं।

अप्रत्यक्ष संचार माध्यमों में उनकी रचनाओं, पत्रक, भजन और लोक वाङ्मय का महत्वपूर्ण योगदान है। उनकी भाषा में सरलता, लय, भावनात्मक

अपील, व्यावहारिक उदाहरण और सामाजिक संदर्भों का समन्वय मिलता है। संचार सिद्धांतों की दृष्टि से तुकडोजी महाराज की प्रणाली सुस्पष्ट संदेश, प्रेरणात्मक अपील, जीवन-आधारित उदाहरण, सहभागिता और संगठनात्मक दृष्टिकोण पर आधारित है। उन्होंने अध्यात्म और समाजकार्य को जोड़कर प्रभावी जनसंचार का आधुनिक मॉडल प्रस्तुत किया, जो आज भी ग्रामीण परिवर्तन और सामाजिक जागरण के लिए अत्यंत प्रासंगिक है।

निष्कर्ष

महाराष्ट्र की संत परंपरा भारतीय भक्ति आंदोलन का एक सशक्त और प्रेरणादायी अध्याय है। यह परंपरा केवल धार्मिक या आध्यात्मिक नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना, मानवीय मूल्य, सांस्कृतिक जागरण और लोकसंचार का भी एक प्रभावी माध्यम रही है। संत ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम और तुकडोजी महाराज—ये पाँच व्यक्तित्व विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन संतों ने अपने युग की सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक चुनौतियों के अनुरूप भिन्न-भिन्न संदेश दिए, परंतु उनकी अनुभूति और उद्देश्य समान थे—मानवता की प्रतिष्ठा, समाज में समरसता और ईश्वर-भक्ति के माध्यम से आत्मिक एवं नैतिक विकास। उनका संचार धार्मिक उपदेशों तक सीमित न रहकर समाज-निर्माण की व्यापक प्रक्रिया बना।

संत ज्ञानेश्वर महाराष्ट्र की संत परंपरा के अत्यंत प्रभावी विचारक एवं आध्यात्मिक समाज-संचारक माने जाते हैं। उनका कार्य भारतीय भक्तिधारा, सामाजिक समरसता और जनजागरण की दिशा में एक नवीन अध्याय प्रस्तुत करता है। ज्ञानेश्वरी जैसे ग्रंथों के माध्यम से उन्होंने ज्ञान का लोकभाषा में संचार कर आध्यात्मिक लोकतंत्रीकरण किया। संत नामदेव—“नाचू कीर्तनाचे रंगी, ज्ञानदीप लावू जगी”—इस सिद्धांत के साथ, देश के अलग-अलग इलाकों में घूमे, कीर्तन किया, भगवान् की प्रार्थना की और बिखरे हुए समाज को भागवत धर्म के झंडे के नीचे लाने के लिए सामाजिक बराबरी स्थापित की। नामदेव ने भक्ति के माध्यम से अंतर-संचार को सरल बनाया। एकनाथ महाराज ने अभंग, भासडे और प्रवचनों द्वारा नैतिकता और सामाजिक समानता का संदेश दिया। एकनाथ का प्रमुख कार्य समाज में व्याप्त जातिभेद, अस्पृश्यता, रूढ़ियों और धार्मिक आडंबरों का विरोध करना था। उन्होंने अपने व्यवहार और वाणी के माध्यम से यह सिद्ध किया कि भक्ति केवल ईश्वर की आराधना नहीं, बल्कि मानवता का स्वीकार और सम्मान भी है। तुकाराम महाराज के अभंग लोकमानस के संवाद बनकर प्रेरक संचार के प्रतीक बने। वहीं संत तुकडोजी महाराज ने कीर्तन, ग्रामगीता और भजनों के माध्यम से ग्रामीण विकास, राष्ट्रभक्ति और सामाजिक संगठन का व्यावहारिक संचार मॉडल प्रस्तुत किया। संतों की संचार प्रणाली की मुख्य विशेषताएँ—सरल भाषा, भावनात्मक अपील, लोकसंगीत, सामूहिक सहभागिता और सामाजिक प्रतिबद्धता—हैं और आज भी संचार अध्ययन में आदर्श मानी जाती हैं। संक्षेप में, महाराष्ट्र संत परंपरा ने भारतीय समाज को मूल्य, मार्गदर्शन और संवाद की एक समृद्ध और परिवर्तनकारी संचार विरासत प्रदान की है।

संदर्भ सूची

इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका. (2025). एकनाथ, हिंदू पोएट-संत एंड मिस्ट्री. <https://www.britannica.com/biography/Eknath> से दिनांक 30 नवंबर, 2025 को पुनःप्राप्त.

एबोट, जे.ई. & गोडबोले, एन. आर. (1982). स्टोरीज ऑफ इंडियन सेंट्स : ट्रांसलेशन ऑफ महीपतिज मराठी भक्तिविजय, दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास, पृष्ठ-30.

कुलकर्णी, ए. आर. (2025). मराठी विश्वकोश, मराठी भा. सा., खंड 8, <https://vishwakosh.marathi.gov.in/19549/> से दिनांक 28 नवंबर, 2025 को पुनःप्राप्त.

चतुर्वेदी, पी. (2014). उत्तरी भारत की संत परंपरा. इलाहाबाद : साहित्य भवन प्राइवेट लिमिटेड, पृ.-16.

जोशी, एल. एस. (2025). मराठी विश्वकोश, मराठी भा. सा., खंड 2, <https://vishwakosh.marathi.gov.in/19549/> से दिनांक 28 नवंबर, 2025 को पुनःप्राप्त.

नगरगोरे, के. & डोंगरे, एस. (2024). स्टडी ऑफ फिलोसोफिकल टीचिंग्स गिवन बी संत ज्ञानेश्वर इन ज्ञानेश्वरी एंड चांगदेव पासष्टी. इंटरनेशनल जर्नल फॉर मल्टी डिसिप्लिनरी रिसर्च (आईजेएफएमआर). आईजेएफएमआर240631578. वॉल्यूम 6, इशू 6, नवंबर-दिसंबर, 2024, पृष्ठ-1.

निकते, पी.डी. (1986). श्री संत शिरोमणि नामदेव महाराज पालखी सोहाला, पुणे, पृष्ठ-2.

प्रसाद, डी. (2022). संत तुकाराम का जीवन-दर्शन, <https://www.socialresearchfoundation.com/new/publish-journal.php?editID=3672> से पुनःप्राप्त.

बाणासुरे, एस. आर. (2023). एजुकेशनल पर्सपेक्टिव इन द लिटरेचर ऑफ राष्ट्रसंत तुकडोजी महाराज: ए कॉम्प्रेहेंसिव स्टडी. इंटरनेशनल जर्नल फॉर मल्टी डिसिप्लिनरी रिसर्च (आईजेएफएमआर), वॉल्यूम 5, इशू 4, जुलाई-अगस्त, 2023.

महाराष्ट्र राज्य गजटीयर (2025). चैप्टर 2. पेज 20. https://gazetteers.maharashtra.gov.in/cultural.maharashtra.gov.in/english/gazetteer/Language%20and%20Literature/chapter_2.pdf से दिनांक 28 नवंबर, 2025 को प्राप्त.

रुथ, वी. (1989). श्री वीमेन सेंट्स ऑफ महाराष्ट्र मुक्ताबाई, जनाबाई, बहिणाबाई, इन मानुषी, जनवरी-जून 1989, नंबर 50-51-52, p.47.

वेब दुनिया हिंदी. (2025). https://hindi.webdunia.com/indian-religion-sant-mahatma/sant-tukaram-maharaj-120030900039_1.html से दिनांक 30 नवंबर, 2025 को पुनःप्राप्त.

संत साहित्य वेबसाइट (2025). संत एकनाथ महाराज, महती संताची <https://www.santsahitya.in/mahati-santanchi/sant-eknath/> से दिनांक 30 नवंबर, 2025 को पुनःप्राप्त.

संत महंत वेबसाइट (2025). श्री संत एकनाथ महाराज यांची संपूर्ण माहिती, <https://santmahant.in/sant-eknath-maharaj-information-in-marathi/> से दिनांक 30 नवंबर, 2025 को पुनःप्राप्त.

सिम्हा, आई. (1988). द विठोबा फेथ ऑफ महाराष्ट्र : द विठोबा टेम्पल ऑफ पंढरपूर एंड इट्स मिथोलोजिकल स्ट्रक्चर, जापानीज जर्नल ऑफ रिलीजियस स्टडीज, जून-सितंबर, 1988, वॉल्यूम.15, नंबर.2/3, पृ-184.



संत गाडगे बाबा के प्रवचन-कीर्तन में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अध्ययन

डॉ. आदित्य कुमार मिश्रा¹

सारांश

संत गाडगे बाबा सरलता के प्रतिमान थे। उनके व्यक्तित्व में महात्मा गांधी जैसी 'कथनी और करनी में समानता', संत कबीर जैसा 'बुराईयों पर चोट करने का साहस' और लाल बहादुर शास्त्री की तरह 'सादा जीवन-उच्च विचार' के गुण प्रकट होते हैं। आज भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी स्वच्छता के संबंध में 'स्वच्छता ही सेवा' का जो मंत्र लेकर चल रहे हैं, 'बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ' का जो नारा भारत सरकार के माध्यम से पूरे देश में गूँज रहा है, 'आयुष्मान भारत' योजना के साथ भारत सरकार सबके इलाज की जिस व्यवस्था में लगी है, और 'सबका साथ-सबका विकास' की जिस भावना से काम कर रही है, संत गाडगे बाबा बिना किसी सरकारी तंत्र के, जन सहयोग से इन कल्पनाओं को साकार करने में लगे थे। उनके 10 सूत्रीय संदेशों को देखा जाए तो गांधी, कबीर, रैदास, लाल बहादुर शास्त्री से लेकर नरेंद्र मोदी तक के प्रयास एक साथ दिखाई देते हैं। उन्होंने गंदगी, अशिक्षा, गरीबी, दहेज, अंधश्रद्धा और नशा जैसी सामाजिक बुराईयों पर कठोर प्रहार किया। ईश्वर भक्ति के नाम पर आडंबर करना उनको स्वीकार नहीं था। साहस के साथ वे कहते कि भगवान् के नाम पर जो सामाजिक कुप्रथाएँ हैं, उनका त्याग करो। समाज के सर्वांगीण विकास के लिए बेहद महत्वपूर्ण संत गाडगे बाबा जैसे मानवता के सेवक के व्यक्तित्व, कृतित्व, प्रवचन और कीर्तन पर लिखित सामग्री मराठी भाषा में ही ज्यादा उपलब्ध है। उन पर लिखा गया साहित्य और फिल्में व डाक्यूमेंट्री भी मराठी भाषा में ही उपलब्ध हैं। वास्तव में भारत को वर्ष 2047 तक विकसित राष्ट्र बनाने के लिए संत गाडगे बाबा के संदेशों को भारत के प्रत्येक राज्य के लोगों तक उनकी भाषा में पहुँचाने की आवश्यकता है।

संकेत शब्द : संत गाडगे बाबा, समाजसेवा, अंधश्रद्धा, प्रवचन, कीर्तन, संचार शैली, वैज्ञानिक दृष्टिकोण।

प्रस्तावना

भारत की संत-परंपरा सबके सुख, जन जागरण और मानव के साथ-साथ जीव मात्र के कल्याण के लिए समर्पित रही है। इस परंपरा में एक तरफ संत कबीर मानव की चिंता करते हुए अप्रत्यक्ष रूप से साधारण-सी बकरी तक की चिंता करते हुए मांसाहार को लेकर कहते हैं—बकरी पाती खात है, ताकी काढ़ी खाला जो नर बकरी खात हैं, तिनकौ कौन हवाला। दूसरी तरफ इसी परंपरा में संत गाडगे बाबा की एक ऐसी छवि उभरती है, जो देखने में तो साधारण है, मगर अंधविश्वास, अशिक्षा, गरीबी, नशा, दहेज प्रथा और आडंबर जैसी सामाजिक रुढ़ियों पर असाधारण प्रहार करते हुए अपने प्रवचनों और कीर्तनों से लाखों-करोड़ों लोगों के प्रेरणास्रोत बनते हैं। महाराष्ट्र की पावन धरा पर संतों की परंपरा रही है। इसी परंपरा में दीन-दुखियों, दिव्यांगों और बेसहारों की सेवा के प्रतीक बनकर संत गाडगे बाबा ने अपना घर-परिवार सर्वस्व त्यागकर सदैव जन-कल्याण के लिए कार्य किया। संत गाडगे बाबा एक साधारण प्रवचनकर्ता या कीर्तनकार ही नहीं थे, अपितु एक दूरदर्शी समाज-सुधारक, स्वयं के प्रति कठोर और समाज के प्रति नम्र, परपीड़ा को समझने वाले विचारक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के प्रबल समर्थक भी थे। स्वयं निरक्षर होने के बाद भी उनके प्रवचन व कीर्तन साधारण धार्मिक-आध्यात्मिक अनुष्ठान मात्र नहीं, बल्कि वैज्ञानिक और तार्किक चिंतन के परिणाम थे। इस शोध में संत गाडगे बाबा के व्यक्तित्व, कृतित्व, उनके प्रवचन एवं कीर्तन का अध्ययन करते हुए इनमें व्याप्त वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अध्ययन किया गया है। प्रस्तुत शोध का उद्देश्य यह समझना है कि संत गाडगे बाबा का व्यक्तित्व, कृतित्व, प्रवचन-कीर्तन से उपजा वैज्ञानिक दृष्टिकोण कैसे समाज में जागरूकता और व्यवहारगत परिवर्तन की प्रेरणा बनता है।

संत गाडगे बाबा महाराष्ट्र में काफी लोकप्रिय हैं। महाराष्ट्र की तुलना में महाराष्ट्र से बाहर कम लोग उनको जानते हैं। प्रस्तुत शोध की प्रभावशी

से भी यह बात सामने आई है। इसलिए इस शोध में बाबा का जीवन परिचय और शिक्षाओं को विस्तार से प्रस्तुत किया गया है, जिससे महाराष्ट्र के बाहर के लोग भी संत गाडगे बाबा से परिचित हों, साथ ही गंदगी, गरीबी, अंधश्रद्धा, दहेज, पशु बलि और नशा आदि बुराईयों के खिलाफ बाबा की शिक्षाओं का प्रचार-प्रसार हो।

शोध समस्या

संत गाडगे बाबा एक ऐसे संत हुए हैं, जिनके विचार और कार्य उनके दौर में भी प्रासंगिक थे और आज भी प्रासंगिक हैं। महात्मा गांधी ने जिस स्वच्छता की बात आजादी से पूर्व उठाई और एक स्वच्छ-स्वस्थ समाज के लिए जो सक्रिय प्रयास किए, वही बातें और प्रयास संत गाडगे बाबा भी आजादी से पहले और आजादी के बाद अपने जीवनकाल में करते रहे। बाबा साहब भीमराव अंबेडकर ने जातिवाद और छुआछूत के विरुद्ध जो प्रयास किए, संत गाडगे बाबा के व्यक्तित्व और कृतित्व में भी ये प्रयास दिखते हैं। संत ज्ञानदेव, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम और कबीर जैसे संतों ने अपने दोहों और प्रवचनों में समाज जागरण के जो कार्य किए, संत गाडगे बाबा के कीर्तन-प्रवचन में भी वही बातें और सुंदर समाज की कल्पना दिखाई देती हैं। आज 21वीं सदी में भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में 'स्वच्छ भारत-स्वस्थ भारत', शिक्षा के क्षेत्र में 'बेटी पढ़ाओ-बेटी बचाओ', स्वास्थ्य के क्षेत्र में 'आयुष्मान भारत' इसमें भी वृद्धों के लिए बिना शर्त स्वास्थ्य सुविधाओं की व्यवस्था की बातें मीडिया के माध्यम से सामने आती हैं। ऐसे कार्यों और प्रयासों पर दृष्टि डालने पर बरबरस ही संत गाडगे बाबा की तरफ ध्यान खिंच जाता है। बाबा के पास सरकार की तरह न तो कोई वित्तीय तंत्र था, न ही वे किसी राजघराने या व्यापारिक घराने से थे, बल्कि वे बेहद निर्धन घर से वास्ता रखते थे। समाज में व्याप्त तत्कालीन सामाजिक बुराईयों, जैसे नशाखोरी, अशिक्षा, बाल

विवाह आदि से उनका सामना हुआ। उन्होंने बचपन में ही अपने पिता को खो दिया था। वे निरक्षर थे, किंतु जन सहयोग से उन्होंने महाराष्ट्र में अनेक पाठशालाओं, छात्रावासों, वृद्धाश्रमों, चिकित्सालयों और धर्मशालाओं का निर्माण कराया। ऋणमोचन गाँव में भगवान् मुदगलेश्वर के पूजा-अभिषेक में श्रद्धालुओं को हुई समस्या को देखते हुए जिस तरह से जन सहयोग से पक्के घाटों का निर्माण कराया, वह न सिर्फ सराहनीय है, बल्कि मूर्तिपूजा का विरोध करने वाले संत गाडगे बाबा जैसे व्यक्ति द्वारा पूजा-अर्चना करने वाले श्रद्धालुओं के सेवार्थ किया गया कार्य उनकी वैज्ञानिक सोच को दर्शाता है। संत गाडगे बाबा के कार्यों की प्रासंगिकता को देखते हुए आज समाज में सकारात्मक बदलाव के लिए उनके व्यक्तित्व, प्रवचन-कीर्तन के अध्ययन की आवश्यकता है।

शोध उद्देश्य

- संत गाडगे बाबा के व्यक्तित्व एवं प्रवचन-कीर्तन में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अध्ययन।
- संत गाडगे बाबा के संदेशों के प्रचार-प्रसार के लिए उपयोगी योजनाओं, कार्यक्रमों को रेखांकित करना।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध में संत गाडगे बाबा के व्यक्तित्व एवं प्रवचन-कीर्तन में वैज्ञानिक दृष्टिकोण के संबंध में आमजन की राय जानने के लिए 14 प्रश्नों से युक्त एक प्रश्नावली तैयार की गई और इस प्रश्नावली के माध्यम से 118 लोगों की राय ली गई। विभिन्न पुस्तकों, व्याख्यानों और संत गाडगे बाबा के बारे में इंटरनेट पर उपलब्ध अध्ययन (टेक्स्ट एवं वीडियो) सामग्रियों का अध्ययन करने के लिए अंतर्वस्तु विश्लेषण पद्धति का उपयोग किया गया है।

संत गाडगे बाबा का जीवन परिचय

संत गाडगे बाबा का जन्म 23 फरवरी, 1876 को विदर्भ के अमरावती स्थित शेंडगाव में एक धोबी परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम झिंगराजी रानोजी जानोरकर और माता का नाम सखुबाई झिंगराजी जानोरकर था। इनका पूरा नाम डेबूजी झिंगराजी रानोजी जानोरकर था, लेकिन प्यार से इन्हें डेबूजी कहकर पुकारा जाता था। यों तो इनका परिवार जाति से धोबी था, लेकिन प्रमुख व्यवसाय खेती-किसानी ही था। घर में गाय-भैंसों का पालन भी होता था। धोबी समाज उस समय काफी दीनहीन अवस्था में था और अंधश्रद्धा चरम पर थी। यह समाज मांसाहारी था और शराब भी पीता था, साथ ही भगवान् को भी मांस-मदिरा से भोग लगाने का चलन था। शुभ अवसरों पर शराब पिलाना व मांसाहारी दावत देना सामाजिक प्रथा तो थी ही, किसी की मृत्यु होने पर भी दारू और मांस का भोजन देना आवश्यक था (पाथरकर, 2009)।

व्यसन से घर की बर्बादी

डेबूजी के पिता झिंगराजी शराब के व्यसन से ग्रसित थे। झिंगराजी की माता ने इनको व्यसन मुक्त करने के लिए काफी प्रयास किए, बहुत समझाया, लेकिन कोई प्रभाव नहीं हुआ। एक दिन ऐसा भी आया कि माता झिपराबाई की मृत्यु हो गई। इसके पश्चात् तो झिंगराजी पर मानो कोई



बाबा साहेब डॉ. भीमराव अंबेडकर के साथ संत गाडगे बाबा (बाएं)

बंधन ही न रहा। वे खुलकर शराब पीने लगे, खेती बिक गई, मकान बिक गया। घर के बर्तन और सामान तक बिक गए, घर में दरिद्रता छा गई, मगर शराब न छोटी। परिवार पर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा। झिंगराजी की पत्नी सखुबाई पर मेहनत-मजदूरी करने तक की नौबत आ गई। शराबी होने के कारण झिंगराजी के परिवार को समाज में खूब ताने भी सुनने को मिलते, परिवार का मानो जीना ही मुहाल हो गया। कोतेगाँव में सखुबाई का मौसेरा भाई रहता था—नाम था यादवजी वट्टी। झिंगराजी के परिवार का समाज में यह हाल देखकर वह बहुत दुखी हुआ और हालत सुधरने की कोई गुंजाइश न देखकर बहन सखुबाई के साथ बहनोई झिंगराजी और बच्चों को भी अपने घर कोतेगाँव ले गया। यहाँ सखुबाई मेहनत करके परिवार के साथ जीवन निर्वाह करने लगीं।

कुछ दिनों बाद झिंगराजी गंभीर रूप से बीमार हो गए, उन्हें हृदय रोग ने जकड़ लिया। मृत्यु करीब आता देख झिंगराजी को होश आया। उन्होंने अपनी पत्नी सखुबाई से कहा—“सखू, मेरा संसार पूरा हुआ। देख मृत्यु भी पराये घर पर आ रही है। मृत्यु के पश्चात् अग्नि संस्कार करने के लिए पैसे तक नहीं हैं, वह भी दूसरे के ही लगेंगे। आखिर किस कारण से यह बदहाली आई? क्या देव-पूजा में भगवत चढ़ावा के नाम पर मांसाहार और शराब चढ़ाने से? आखिर क्यों हम बदहाल हुए? शराब के कारण मैं घर-द्वार, खेती-बाड़ी, मान-सम्मान सबसे हाथ धो बैठा। पूरे परिवार का बुरा हाल हो गया! अब मेरी सुन, अभी के अभी वह पाटे पर रखे हुए पत्थरों को नदी

में डाल आ और एक काम और करना कि अपने लाडले बेटे डेबूजी को इनकी हवा भी नहीं लगने देना। देवी-देवताओं व भगवान् की पूजा छोड़ने के पापों से वह नास्तिक हुआ तो भी चलेगा, परंतु भगवत चढ़ावा के नाम पर उसे मांसाहार और शराब की दावत देने का रोग मत लगाना।” कुछ ही समय बाद झिंगराजी स्वर्ग सिधार गए।

सखुबाई डेबूजी को छाती से लगाकर चीख-चीखकर रोने लगीं। डेबूजी उस समय मात्र 8 वर्ष के थे। बेटा पर दुखों का पहाड़ देखकर सखुबाई के पिता हंबीररावजी और भाई चंद्रभानजी को काफी धक्का लगा। मायके से भाई चंद्रभानजी उन्हें लेने आ गए। अब सखुबाई अपनी संतान के साथ पिता के घर दापुरा में जीवनयापन करने लगीं। भाई के आर्थिक हालात सखुबाई से छिपे नहीं थे। उन्हें मालूम था कि अब सारा जीवन यहीं पर व्यतीत करना है, यहाँ सुख से रहना है तो लगन से काम करना होगा। सखुबाई ने ऐसा मन में निश्चय किया। वे कुटाई-पिसाई, गोबर- खाद आदि काम खूब मेहनत से करने लगीं। घर के कामों के अलावा पशुओं की देखभाल भी करने लगीं। एक दिन माँ ने डेबूजी से कहा—“बाबू, इनसान अगर काम करता रहता है तो किसी की आँखों में नहीं चुभता। इसलिए हमेशा काम करते रहना चाहिए। कभी मुफ्त का नहीं खाना चाहिए।” माँ का यह मंत्र डेबूजी के मन में बस गया। अब डेबूजी घर के कामों में हाथ बँटाने लगे। एक दिन उन्होंने अपने मामा चंद्रभान जी से कहा—“मामा, मैं जानवरों को चराने हेतु ले जाऊँगा। नौकर मत रखो।” मामा ने हामी भरी। डेबूजी गाँव के अन्य चरवाहों के साथ जानवरों को चराने जंगल में ले जाने लगे। हर दिन सुबह उठकर वे गोबर साफ करते, झाड़ू लेकर सफाई करते, जानवरों को चारा देते, पशुओं की देखरेख के सभी काम करते।

भजन-कीर्तन की ओर झुकाव

सखुबाई मुँगे की बांग से पहले ही जाग जातीं। उठकर सबसे पहले वे चक्की पर आटा पीसतीं। डेबूजी आकर माँ की गोद में मस्तक रखकर सो जाते। चक्की चलाने के काम में सखुबाई को कौतिकाबाई भी मदद करतीं। दोनों भजन-दोहे कहतीं। उन पदों-दोहों को डेबू मन लगाकर सुनते। डेबूजी भी कभी-कभी साथ-साथ गुनगुनाते। ये भजन दोहे-पद उन्हें याद होने लगे। वे गाय-भैंसों को चराते वक्त नदी किनारे पर अन्य चरवाहों के साथ भजन करने लगे। भजन मंडली की स्थापना की गई। वे चरवाहों में काफी लोकप्रिय हुए। सभी चरवाहे अपने-अपने भोजन का डिब्बा साथ लाते थे। डेबूजी सभी के डिब्बे एक साथ जमा कर सहभोज करते। डेबू मंडली का भजन सप्ताह भी होने लगा। समाप्ति पर सामूहिक भंडारे का भी आयोजन होने लगा। सभी साथ बैठकर भोजन करते। लूले-लँगड़े-अपंगों को भी साथ बैठाकर खाना खिलाते। डेबूजी की भजन मंडली में बबन नाम का एक हरिजन जाति का चरवाहा था। डेबूजी बबन को अपने पास बैठाकर खाना खिलाते। समानता के बीज का डेबूजी के मन में बाल्यकाल में ही रोपण हो गया।

डेबूजी 14-15 वर्ष के थे, तभी उनके मामा ने जानवरों को चराने का काम छोड़कर खेतों में काम करने के लिए कहा। डेबूजी उत्साह से खेती कार्य में जुट गए। उस समय बाल विवाह की प्रथा जोरों पर थी। इस दृष्टि से डेबूजी की उम्र ज्यादा हो गई। मामा व माँ को चिंता हुई। मामाजी ने प्रत्यक्ष करके कमालपुर के धनाजी खल्लारकार धोबी की लड़की कुंताबाई के साथ विवाह तय किया। वर्ष 1892 में डेबूजी का विवाह हुआ।

डेबूजी जी-जान से खेती का कार्य करने लगे। उनके परिश्रम से मामाजी की आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ और खा-पीकर कुछ बचने लगा तो धन संचय भी हुआ। इसी गाँव का बनाजी तिडके नामक साहूकार अपना 5 एकड़ जमीन बेचना चाहता था। चंद्रभान जी वह जमीन खरीदना चाहते थे। उन्होंने साहूकार से बात की, लेकिन उनके पास भूमि के लिए पूरे पैसे नहीं थे। साहूकार ने कहा—“खेत की आधी रकम अभी दे दो और बाकी की रकम किस्तों में चुका देना। चंद्रभान जी ने साहूकार के कहे अनुसार आधी रकम दे दी और जमीन ले ली। चंद्रभान जी के पास भगवान् का दिया सब कुछ था, बस वे अनपढ़ थे उनमें यही एक कमी थी। इसी बात का फायदा वह साहूकार उठाने लगा।”

एक दिन चंद्रभान जी के अँगूठे का निशान लेकर साहूकार ने पूरी जमीन फिर से अपने नाम पर कर ली। यह सदमा वे ज्यादा दिनों तक झेल न पाए और एक दिन उनकी मृत्यु हो गई। साहूकार के कर्ज, ताने व बेईमानी ने मामा की जान ली, यह बात डेबूजी के मन को लगी। अब मामा चंद्रभानजी की मौत के बाद नाना श्री हंबीरराव, मामी कौतीकाबाई, मामा का बेटा भाई बलीराम व माता सखुबाई इन सबका बोझ डेबूजी पर पड़ा।

अन्याय का विरोध

डेबूजी को पता था कि मौत से पहले मामा चंद्रभानजी को साहूकार बनाजी तिडके के हाथों अपमान सहना पड़ा था। उन्होंने साहूकार से मामा के अपमान का बदला लेने का निश्चय किया। डेबूजी ने मेहनत करके रुपया जुटाया, साहूकार को कर्ज की रकम चुकाई और एक दिन भरे समाज में साहूकार से कह दिया कि हमने आपसे लिए कर्ज की पूरी रकम ब्याज सहित लौटा दी है, अब आप हमारी अज्ञानता का फायदा नहीं उठा सकते। इस घटना के समय गाँव के कुछ लोग वहाँ मौजूद थे। डेबूजी के साहस की सभी ग्रामवासियों ने सराहना की। बनाजी साहूकार, जिसकी वजह से मामा चंद्रभान की मौत हुई थी, उसे सबक सिखाकर डेबूजी अपना घर-परिवार अच्छी तरह चलाने लगे। कुछ समय बाद डेबूजी को कन्या रत्न की प्राप्ति हुई। उसका नाम आलोका रखा गया।

शराब-मांसाहार का विरोध

संत गाडगे बाबा भी कबीरदास जी की भाँति ही मूर्तिपूजा के विरोधी थे। वे मंदिर में मूर्ति के सामने छप्पनभोग चढ़ाने के बजाय दीन-दुखी और जरूरतमंदों को दान देने और उनकी मदद करने को बेहतर मानते थे। शराब और मांसाहार की प्रथा भी उन्हें पसंद नहीं थी। उस समय परिवार में किसी का जन्म या मृत्यु होने पर अपने जाति बंधुओं को शराब व मांसाहार की दावत देने की प्रथा थी। रिवाज के अनुसार डेबूजी को समाज को दावत देनी चाहिए, ऐसा मत परिवार के सदस्यों का हुआ, लेकिन अपने पति के अंतिम वचनों को याद कर सखुबाई ने शराब-मांसाहार का समर्थन नहीं किया। डेबूजी ने समाज बंधुओं को दावत तो दी, लेकिन शराब व मांसाहार की जगह सामान्य भोजन व मिष्ठान परोस दिया। परंपरागत रीति-रिवाज तोड़ने पर उपस्थित लोग नाराज हो गए और उन्हें धिक्कारने लगे। लोगों ने कहा कि दावत पर बुलाकर शराब और मांसाहार न मिलने से हमारा अपमान हुआ है। डेबूजी तर्कसंगत ढंग से अपना पक्ष रखते हुए समाज बंधुओं को समझाने लगे कि घातक रीतियों से अपने समाज का कैसे पतन हुआ। अंत में कहा कि जिन्हें भोजन नहीं करना है, वे यहाँ से जा सकते हैं। मुझे इसकी परवाह नहीं। इस

प्रकार के तीखे वचन सुनते ही लोगों ने भोजन किया और नाराजगी की मुद्रा में चलते बने। इस प्रकार परंपरागत रीतियों को तोड़ने में डेबूजी सफल हुए। उनके जीवन की संघर्ष यात्रा की यह प्रथम विजय थी।

समाज कल्याण के लिए घर-परिवार का त्याग

सन् 1902 में डेबूजी को पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई, किंतु 5-6 महीने पश्चात् ही वह काल के गाल में समा गया। सुखमय समय दुख के वातावरण में तब्दील हो गया। सांसारिक चक्र में चलते हुए डेबूजी ने अचानक अपना लक्ष्य समाजसेवा की ओर घुमाया। वे जनहित के काम स्वयंसेवा वृत्ति से करने लगे। 1904 में दापूरा में डेबूजी की पूर्णा नदी के तट पर इमली वृक्षों के वन में स्थित श्मशान भूमि में शंकर जी के पिंड के पास एक धर्मात्मा साधु से भेंट हुई। इस घटना के पश्चात् डेबूजी के रहन-सहन व बोलचाल में बदलाव हुआ। काम करते समय वे हमेशा चिंतन-मनन में मगन रहने लगे। ऐसे ही हालत में 01 फरवरी, 1905 को सुबह 3:00 बजे डेबूजी ने घर-परिवार त्याग दिया। उनकी पत्नी कुंताबाई गर्भवती थीं, लेकिन मोह-माया और जिम्मेदारी से बेखबर हो, उन्होंने पहले माता के चरणों में शीश झुकाकर आशीर्वाद लिया, फिर विदा हुए। सालों तक डेबूजी ने साधक अवस्था में प्रवास किया। कपड़े फट चुके थे, बाल व दाढ़ी भी बेढंग बढ़ गए थे। बिना किसी योजना के यहाँ से वहाँ चलते रहे।

प्रशंसा और उपहास से दूर, दीन-दुखियों के चिंतक

लोगों के लिए डेबूजी को समझना मुश्किल हो गया। उनकी दशा देखकर कोई उन्हें अवतारी तो कोई भिखारी, कोई पागल समझने लगा। लोग उनका मजाक भी उड़ाते। प्रशंसा और उपहास से डेबूजी को कोई लेना-देना नहीं था। इस भ्रमण काल में बाबा ने समाज दर्शन किया। समाज को करीब से देखा, लोगों के आचार-विचार को समझा। मंदिर में बहुत ही भावना से, आदर से आने वाले और मंदिर के बाहर दाने-दाने को मोहताज अंधे-लूले-लँगडों का तिरस्कार करने वाले लोगों को उन्होंने गौर से देखा और अंधे-लूले-लँगडों की भावना और दर्द की अनुभूति की। ठंड, हवा, बरसात, बादल और धूप में वे धूमे और काम, क्रोध, लोभ आदि विकारों को वश में किया।

“महाराष्ट्र में दुखियों-पीड़ितों की सेवा के प्रतीक बनकर उभरे संत गाडगे बाबा, सब कुछ छोड़कर मानव कल्याण में समर्पित रहे। रास्ते को टेकने के लिए प्रयोग होने वाली एक लकड़ी, फटी-पुरानी चादर और मिट्टी का एक बर्तन—यही इस संत के जीवन की कुल जमा भौतिक पूँजी थी। वह बर्तन भी भोजन करने के बाद यों ही नहीं पड़ा रहता, अपितु बाबा उसी से ढपली बजाकर लोकजागरण का काम लेते थे” (महाराज, 2022)।

इधर घर-परिवार छोड़ बाबा भ्रमण पर थे, उधर नाना हंबीराव जी दुनिया को छोड़ दूसरी दुनिया में चले गए। नानी रायजाबाई भी पति का वियोग न सह सकीं और जल्द ही उनका भी स्वर्गवास हो गया। मामा चंद्रभान जी की मृत्यु पहले ही हो चुकी थी। अब घर की बागडोर चंद्रभान जी के पुत्र बलीराम के हाथों में थी। पूरा परिवार शोक समुद्र में समाया था। हर तरह से बदहाल था। इसके बावजूद डेबूजी घर-परिवार के मोह में नहीं पड़े और विरक्त होकर समाजसेवा में जुटे रहे।

दापूरा के आमला ग्राम से 5-6 किलोमीटर की दूरी पर ऋणमोचन गाँव में पौष मास में हर रविवार को शंकर भगवान्, जिन्हें मुदगलेश्वर भगवान्

के नाम से भी पुकारा जाता है, की यात्रा निकलती थी। इस यात्रा में दाढ़ी-मूँछ-जटा बढ़ाए, फटे कपड़ों में एक साधु नदी तट पर सूखी मिट्टी खोदकर गीले रास्ते पर डालकर रास्ता तैयार कर रहा था। भक्तगण प्रचलित प्रथा के अनुसार पूर्णानदी में स्नान कर गीले कपड़े पहनकर ही शिव प्रतिमा पर जलाभिषेक करते थे। गीले कपड़ों में जाने से नदी तट की चिकनी मिट्टी होने के कारण सड़क गीली और फिसलन भरी होती। इस रास्ते पर यात्री बार-बार फिसलकर गिरते थे। यह साधु बाबा फिसलन वाली जगह पर सूखी मिट्टी डालकर फिसलन कम कर राह बनाने में लीन थे। तभी उनके जानने वालों में से कुछ लोगों ने उन्हें पहचान लिया। “अरे बाप रे! यह तो अपना डेबूजी है। हंबीराव का नाती है। अरे हाँ, ये तो सखुबाई का बेटा है!”

थोड़ी ही देर में यह खबर दापूरा में बाबा के परिवारवालों तक पहुँच गई और बाबा के परिवार के लोग दौड़े-दौड़े ऋणमोचन यात्रा में आए। डेबूजी को देखते ही माँ सखुबाई दहाड़ मारकर रोने लगीं। अपने पुत्र का यह हाल देखकर उनका दिल टूट गया। माँ समेत परिवार के लोगों ने उनसे वापस चलने के लिए आग्रह किया, परंतु डेबूजी ने तरह-तरह के तर्क देकर घर वापस आने से मना कर दिया। परिवार के लोग खाली हाथ लौटने पर मजबूर हुए। सांसारिक जीवन से वैराग्य ले चुके डेबूजी अब वहाँ के लोगों के लिए गाडगे बाबा के नाम से पहचाने जाने लगे। ‘जनसेवा ही सच्ची समाजसेवा’ समझकर बाबा ने जनता जर्नादन की सेवा प्रारंभ की। बाबा का ऐसा मानना था कि भगवान् दीन-दुखियों की सेवा में ही है। गरीबों का एक आँसू पोछना, भगवान् के एक अभिषेक के बराबर है। बाबा ऋणमोचन यात्रा में आते ही सर्वप्रथम झाड़ू लेकर यात्रा स्थान साफ करते। उन्होंने झाड़ू का नया धर्म समाज को सिखाया। झाड़ू लेकर पहले मुदगलेश्वर मंदिर के आसपास की जगह साफ करते, फिर नदी तट से मंदिर तक का मार्ग साफ करके गीली जगह पर सूखी मिट्टी डालकर रास्ता सुखाते। यात्रीगण बाबा को अचरज से देखते थे।

यात्रा समाप्त होते ही बाबा यहाँ से फिर भ्रमण पर निकल गए। वे पैदल ही निरंतर यहाँ से वहाँ की अनजान यात्रा किया करते थे। लोगों के लिए उनको समझना कठिन था। कभी-कभी पहचान न बताने के कारण भ्रम की स्थिति में उन्हें चोर, मवाली या पागल कहकर उपहास भी उड़ाया जाता था। “कोई दुत्कारे, कोई पूजे या कारावास में डाले, बाबा को कभी चिंता नहीं हुई। प्रति वर्ष पौष मास में ऋणमोचन मेले में आना, आते ही झाड़ू हाथ में लेकर रास्ता और मेला मैदान साफ करना बाबा का नियम हो गया था।

जनहित के काम करने से बाबा पर लोगों की श्रद्धा होने लगी। अब बाबा ने साप्ताहिक रूप से अंध-अपंग और लोकहित में अन्नदान करने की इच्छा जाहिर की। बाबा की इच्छानुसार आसपास के गाँवों के सभी अमीर-गरीब लोगों ने अपनी शक्ति के अनुसार अनाज और धन दिया। देखते-ही-देखते चार सौ रुपये नगदी जमा हो गए। पौष मास के अंतिम रविवार को अन्नदान कार्यक्रम संपन्न हुआ। अब मुदगलेश्वर मंदिर के पास पूर्णा नदी के दूसरे तट पर एक जगह निश्चित की गई, जहाँ पर अभी लक्ष्मी-नारायण मंदिर है, वहीं पर गरीब व अपंगों के लिए भोजन की व्यवस्था हुई।

सभी को कतार में बैठाकर ‘पुंडलीक वरदा हरि विठ्ठल’ के जयघोष के साथ भोजन और अन्नदान की शुरुआत होती। बाबा पहले उपस्थित सभी अंधे-लूले-लँगडों को भोजन करवाते, फिर अन्नदान करते। अन्नदान पूरा होते ही मेले में घूमते। मेले की समाप्ति के बाद इंडली, आमला या ऋणमोचन ग्राम में जाते। लोगों के घर या खेत का कोई भी काम करते,

रूखी-सूखी रोटी माँगते। मिली तो ठीक, न मिली तो भूखे ही सो जाते, मगर दान के लिए जुटाए गए पैसों में से एक भी पैसा बाबा अपने लिए बचाकर नहीं रखते।

जन सहयोग से सार्वजनिक कार्यों को पूर्ण कराना

हर साल बाबा के आने, साफ-सफाई, भोजन और दान कार्यक्रम से पौष माह में ऋणमोचन की यात्रा में भीड़ बढ़ने लगी। मुदगलेश्वर जी की पूजा-अभिषेक हेतु गीले कपड़ों में जाने से फिसलन होती थी, यात्री बार-बार फिसलकर गिरते थे। इस पर स्थायी उपाय सोचकर बाबा ने घाट बाँधने का निश्चय किया। चंदे द्वारा रकम जमा होने लगी। बनाजी तिडके नाम के जिस साहूकार ने कभी बाबा से कर्ज के लेन-देन के मामले में झगड़ा किया था, आगे बढ़कर चंदा जमा किया। सन् 1908 में लगभग 7500 रुपये खर्चकर ऋणमोचन में प्रथम घाट का निर्माण हुआ। बाद में बाबा ने ऋणमोचन में चार घाट और बनवाए।

प्रवचन-कीर्तन के सहारे सामाजिक जागरूकता एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण

समाज को उसके हित की बातें बतलाने हेतु बाबा ने प्रवचन-कीर्तन का सहारा लिया। बाबा को यह बात मालूम थी कि जन शिक्षा हेतु भजन-प्रवचन के समान और कोई प्रभावी साधन नहीं हैं। प्रचलित लोक भाषा में वे प्रवचन-कीर्तन करते। समाज व व्यवहार में प्रचलित उदाहरणों द्वारा समझाते थे। वे प्रश्नोत्तर के माध्यम से प्रवचन करते थे। बाबा स्वयं निरक्षर थे, किंतु प्रवचन के लिए खड़े होने पर ज्ञानदेव, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम जैसे संतों की तरह तत्त्वज्ञान से वे श्रोताओं के सामने मार्मिकता से मधुर भाषा में प्रवचन करते। भजन-प्रवचन में भारी संख्या में जन-समुदाय आता था। सुनने वाले भक्तगण भी सब कुछ भूलकर घंटों भक्ति-रस में गोता लगाते थे (मेश्राम, 1998)।

कीर्तन के सूत्र

“एक कुशल अध्यापक के समान अपने कीर्तन में सभी सामाजिक विकृतियों पर वे तीखा प्रहार करते। वे अपने कीर्तन द्वारा श्रोताओं से अनुरोध करते—

शराब मत पियो। वह हमें पशु बना देती है।

अपने माता-पिता की सेवा करो। उनका आशीर्वाद ही आपका जीवन सफल बना सकता है।

साहूकार से कर्ज मत लो।

उतना ही खर्च करो, जितनी आपकी कमाई है।

बालक को पढ़ाओ। शिक्षा के बिना कोई भी प्रगति नहीं कर सकता।

पशुहत्या मत करो। प्राणियों की सेवा करो।

जीवन में वही करो जो सही है। भगवान् के नाम पर जो सामाजिक कुप्रथाएँ हैं, उनका त्याग करो।

भिखारियों को अन्नदान दो। उन्हें पहनने को वस्त्र दो तथा जो प्यासे हैं उन्हें पीने को पानी दो।

अपने घर का काम आप करो। गंदगी को साफ करो।

जब-जब संभव हो, दूसरों की सहायता करो। हर मानव में भगवान् का निवास है, मानव की सेवा ही भगवान् की पूजा है।

हर पुरुष को अपने समान समझो” (राठी, 2002)।

बाबा के भजन-प्रवचन में अनेक सामाजिक विषय होते थे। दहेज प्रथा से लेकर ढोंगी साधु-संतों के पोल खोलने तक की बात वे किया करते। वे कहते—“शादी-विवाह में अधिक खर्च न करें। दहेज न लें, न दें। जो भी दहेज ले, उसके यहाँ निमंत्रण होने पर भी शादी में न जाएँ। दहेज के लिए कर्ज लेने से बरबादी आती है। कर्ज लेकर विवाह न करें। कर्ज लेकर विवाह करना आत्मघात के समान है। विवाह में सादा भोजन दें। पैसे नहीं हैं तो सिर्फ पान-सुपारी से ही मेहमानों का स्वागत कर विवाह कार्य संपन्न करें। कर्ज न लें। दहेज का लेन-देन यानी कर्जदार होने की प्रथम सीढ़ी। ढोंगी साधुओं पर भी बाबा ने प्रवचन द्वारा प्रहार किया। ढोंगी साधुओं से समाज को दूर रहना चाहिए। यह संदेश वे हमेशा देते थे। वे कहते—“बाप रे, साधुओं का चमत्कार एक विशुद्ध ढोंग है। उन पर भरोसा मत करो” (अडगाँवकर, 2000)। भगवान् को चमत्कार या सिफारिश की आवश्यकता नहीं होती। जनसेवा व अपाहिजों की सेवा ही सच्ची सिफारिश है। संत गाडगे बाबा की बातें लोगों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण जाग्रत करतीं, यथार्थ लगतीं और लोग इन संदेशों को अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न करते।

“उन पर संत रविदास और कबीर के अलावा महाराष्ट्र की संत परंपरा से आने वाले संत तुकाराम, नामदेव और ज्ञानेश्वर का काफी प्रभाव था। इसके अलावा वे ज्योतिराव फुले के विचारों से भी प्रभावित थे। यही वजह थी कि उनकी नजर समाज में व्याप्त गंदगी पर सीधी पड़ती थी। वे देखते कि लोग अशिक्षा के कारण अज्ञानता में फँसे हैं। अज्ञानता उन्हें जाति की मार सहने को मजबूर करती है। यह मजबूरी सामंतों की चाटुकारिता करने को विवश करती। वही समाज में व्याप्त तरह-तरह की रूढ़ियों और अंधविश्वास का कारण है। उससे उद्धार का एकमात्र रास्ता है—शिक्षा। इसलिए ‘शिक्षित बनो और बनाओ’ पर उन्होंने जोर दिया। सादगी उनका जीवन थी” (कश्यप, 2022)।

श्री संत गाडगे बाबांचा 10 सूत्रीय संदेश

“भुकेलेल्यांना : अन्न

तहानलेल्यांना : पाणी

उड्यानागड्यांना : वस्त्र

गरीब मुलांमुलीं : शिक्षण

बेघरांना : आसरा

अंध, पंगु, रोग्यांना : औषधोपचार

बेकारांना : रोजगार

पशु, पक्षी, मुक्या प्राण्यांना : अभय

गरीब तरुण तरुणींचे : लग्न

दुःखी व निराशांना : हिम्मत” (कवडे, 2006)

अर्थात् “भूखे को भोजन, प्यासे को पानी; फटे-पुराने कपड़े वाले (निर्वस्त्रों) को कपड़े; गरीब बालक-बालिकाओं को शिक्षा; बेघरों को आश्रय; अंधों, अपंगों, बीमारों को दवा; बेरोजगारों को रोजगार; पशुओं, पक्षियों, मूक पशुओं को सुरक्षा; गरीब युवक-युवतियों का विवाह; दुखी और निराश लोगों को साहस” प्रदान करो। संत गाडगे बाबा उपर्युक्त संदेशों को ही ‘धन का धर्म’ मानते थे और दीन-दुःखी और जरूरतमंदों की सहायता को ही सच्ची भक्ति और ईश्वर सेवा मानते थे।

बच्चों की शिक्षा के लिए वे जोर देते हुए कहते थे :

“बापहो आपल्या मुलाले शिक्षण घ्या
पैसे नाही म्हणाल तर जेवणाचे ताट मोडा
हातावर भाकरी खा

बायकोले लुगडं कमी भावाचे घ्या
पण मुलाले शालेत घातल्या विना राहू नका” (कवडे, 2006)

अर्थात्-

“पिताओ, अपने बच्चों को शिक्षित करो

अगर तुम कहते हो कि तुम्हारे पास पैसे नहीं हैं, तो खाने की थाली तोड़ दो (थाली बेच दो)

बर्तन में खाने के बजाय अपने हाथों से रोटी खाओ

अपनी पत्नी के लिए सस्ते कपड़े खरीदो

लेकिन अपने बच्चों को स्कूल भेजे बिना मत छोड़ो।”

पशु-पक्षियों की बलि देना ठीक नहीं। जो भगवान् बलि से प्रसन्न होते हों, वे भगवान् नहीं हो सकते। मानवता ही धर्म है। भगवान् तीर्थस्थान में या मूर्तियों में नहीं, वे तो तुम्हारे सामने खड़े दीन-दुखियों के रूप में प्रत्यक्ष विराजमान हैं। उन्हीं की सेवा करो। भूखे को अन्न, प्यासे को जल और वस्त्रहीन को कपड़े देना ही सच्ची भागवदपूजा और भक्ति है। ऐसा वे हमेशा कहते और इसी प्रकार का बरताव करते थे।

बाबा को घूमते-घूमते करीब 10 वर्ष हो चुके थे। बाबा अब घर पर वापस नहीं आएंगे, ऐसा विश्वास उनकी माँ सखुबाई और ममेरे भाई बलीराम जी को हो गया था। पत्नी कुंताबाई समेत परिवार के सभी सदस्य बाबा के गृहत्याग से दुखी थे। इस परिस्थिति में बलीराम ने बाबा की पुत्री आलोका का विवाह मुर्तिजापुर तहसील के गोरेगाँव निवासी बकाजी के पुत्र के साथ संपन्न किया। बाबा विवाह में भी नहीं आए। बाबा की ऐसी स्थिति का प्रभाव माँ सखुबाई पर भी पड़ा और उन्होंने भी घर-परिवार के मोह से ध्यान निकाल लिया। वे भी धीरे-धीरे भक्तिमार्ग पर चल पड़ीं। घर की स्थिति और विकट होने लगी। माँ की स्थिति देख बाबा ने ऋणमोचन के पास एक कुटिया बनाई और सखुबाई, कुंताबाई व बाल-बच्चों को वहाँ पर रहने को कहा। अब बाबा के भ्रमण के साथ-साथ कुटिया का भी स्थानांतर होने लगा। बाबा इस कुटिया से उस कुटिया में रहते, इस तरह उन्होंने ऋणमोचन से मुंबई तक का प्रवास किया।

उधर तमाम दुखों को सहते हुए जीवन बिता रही माँ सखुबाई ने एक दिन दुनिया छोड़ दी। बाबा के निरंतर भ्रमण के कारण माँ सखुबाई की मृत्यु का समाचार उन्हें कई महीनों के बाद मिला। उनके पुत्र गोविंदा को कुछ भक्तों ने पुणे के श्री शिवाजी मराठा फ्री बोर्डिंग गृह में शिक्षण हेतु रखा था। पुणे में चौथी कक्षा में पढ़ते समय गोविंदा को कुत्ते ने काटा और 5 मई, 1923 को वह स्वर्गवासी हो गया। उस दिन बाबा रत्नागिरी जिले के खारे पाटन गाँव में थे। बाबा को प्रवचन करते समय यह खबर मिली। बाबा उस समय निर्विकार बोले—“मरे ऐसे करोड़ों-करोड़ों, क्या रोऊँ मैं एक के लिए।”

स्वच्छता की अलख जगाने वाले लोक शिक्षक

“संत गाडगे बाबा किसी गाँव में वहाँ की गलियों और रास्तों को साफ करते हुए प्रवेश करते थे और स्वच्छता का कार्य पूर्ण होने पर उस गाँव के लोगों को अपने कीर्तन के माध्यम से संतों के प्रेरक संदेश देते। उन्होंने कहा

शिक्षा के लिए यदि खाने की थाली भी बेचनी पड़े, तो बेचकर शिक्षा ग्रहण करें। संत गाडगे जी महाराज की कीर्तन शैली अपने आप में बेमिसाल थी। वे संतों के वचन सुनाया करते थे। गाडगे महाराज भ्रमणशील सामाजिक लोक शिक्षक थे” (महाराज, 2022)।

बाबा की जनसेवा प्रबल थी। बाबा कभी भी लोकप्रियता के शिकार नहीं हुए। “जहाँ दया, क्षमा, शांति हो, वहाँ पर ही परमेश्वर का निवास है।” ऐसी बाबा की मान्यता थी। उन्होंने किसी को भी अपने चरण छूने नहीं दिए। बाबा ने दीन-दुखी, अपंग, लूले-लँगड़े, अंधे और बेसहारा लोगों की पुकार का हमेशा साथ दिया। उनके सुख-कल्याण व उद्धार हेतु अपनी पत्नी-बेटा-बेटी, माँ, घरबार सर्वस्व त्यागकर फकीरी स्वीकार की। पीड़ित मानवता के दुख-दर्द को दूर करने की भावना के साथ गाडगे बाबा ने महाराष्ट्र के अनेक भागों में बड़ी संख्या में धर्मशालाएँ, गौशालाएँ, विद्यालय, चिकित्सालय, गरीबों के लिए जगह-जगह छात्रावासों की स्थापनाएँ कीं; पर गाडगे जी की लोक कल्याणकारी भावना इतनी गहरी थी कि उन्होंने अपने लिए एक कुटिया तक न बनाई और जीवन भर अपने द्वारा भिक्षा से प्राप्त धन से बनवाई गई धर्मशालाओं के बरामदे व आसपास खड़े वृक्षों के नीचे संपूर्ण जिंदगी गुजार दी।

20 दिसंबर, 1956 की रात इस महानता के पुजारी का स्वर्गवास हो गया। चांदूर बाजार से अमरावती की ओर आते समय पेढी नदी के पुल पर बाबा ने अपना शरीर त्याग दिया। उनके सहयोगी ने उनकी तरफ देखा, अनहोनी की आशंका से वह बाबा को लेकर सीधा अमरावती में डॉ. हंसराज शहा के यहाँ गया और वहाँ जाकर स्थिति स्पष्ट हो गई। डॉ. के पास पहुँचने से पूर्व ही बाबा की प्राण ज्योति लुप्त हो गई थी। जीवन भर चक्र के समान फिरने वाले ऐसे महान् संत का निधन भी सफर में ही हुआ।

बाबा की याद में आज भी जगह-जगह लोग कीर्तन करते हैं। उनके आदर्शों पर चलते हैं। हर वर्ष उनके जन्मजयंती और स्मृति दिवस पर महाराष्ट्र समेत देश के अलग-अलग हिस्सों में बड़े-बड़े कार्यक्रम कर उनकी शिक्षाओं का प्रचार-प्रसार किया जाता है। बाबा की शिक्षाओं से प्रेरित हो अमरावती में उनके नाम से विश्वविद्यालय की भी स्थापना हुई है और उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व की झलक विद्यापीठ गीत में भी दिखाई देती है :

संत गाडगेबाबा अमरावती विद्यापीठ, अमरावती का विद्यापीठ गीत

(संत गाडगे बाबा गीत)

“जनमन जागर करीत, निरंतर, विद्यापीठ चाले

संत गाडगे बाबा तुमचे स्वप्न पूर्ण झाले

विद्या चिंतन । विद्या मंथन

विद्या सर्जन । विद्या जीवन ।

कुणी न आता खुळे अडाणी, ज्ञानासह विज्ञान कळाले

पर्ण कुटीतील प्रतिभेलाही, आभाळाचे पंख मिळाले.

दशसूत्राचे अक्षर अक्षर, वेद नवा बोले ॥1॥ जनमन....

किती रंजले किती गांजले, किती आंधळे लुळे पांगळे

किती रंजले किती गांजले, किती आंधळे लुळे पांगळे

कर्मयोग निष्काम आचरुन कवेत घेता बांधव सगळे

भूतदयेच्या ओलाव्याने, मानस मोहरे ॥2॥ जनमन....

धर्मजातीच्या पत्तीकडेही माणूस केवळ माणूस असतो भेदभ्रमांचे बंध

तोडूनी मानवतेची पूजा करतो।

पिढ्यापिढ्यांचे जीवन दर्शन विश्वात्मक झाले...

जनमन जागर करीत, निरंतर, विद्यापीठ चाले" (राठौर, 2021)।

अर्थात्—जन-जन के मन को जाग्रत कर, विश्वविद्यालय निरंतर चलता है। संत गाडगे बाबा, आपका सपना साकार हुआ है। ज्ञान का चिंतन। ज्ञान का मंथन। ज्ञान का सर्जन। ज्ञान का जीवन। कोई कभी ग्रामीण अज्ञानी नहीं रहा, अब उसने ज्ञान के साथ विज्ञान भी सीखा है। पत्तों की झोंपड़ी में भी प्रतिभा को आसमान के पंख मिल गए हैं। दशसूत्र का अक्षर-अक्षर, वेदों ने नई वाणी कही है।

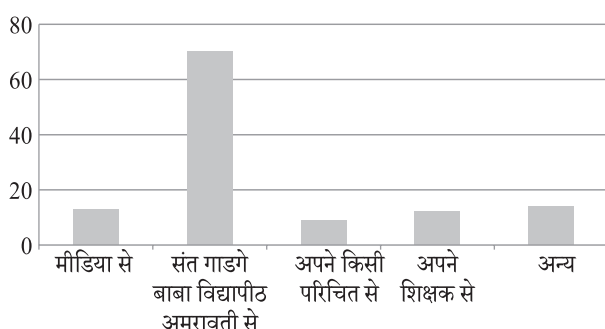
जितने गरीब हैं, अंधे हैं, लंगड़े हैं, बिना किसी इच्छा के कर्मयोग का अभ्यास करके, सभी भाइयों को गले लगाओ। अतीत की नमी से, मन खजानों से भर जाता है। कर्मयोग का अभ्यास कर, सभी भाई-बहनों को गले लगाओ। अतीत की नमी से, मन एक मोहरा है। धर्म, जाति-पाति से ऊपर, मनुष्य सिर्फ मनुष्य है, भेदभाव और भ्रम के बंधन तोड़ मानवता की पूजा करता है। पीढ़ियों का जीवन दर्शन सार्वभौमिक हो गया है। लोगों के मन को जाग्रत करते हुए, विश्वविद्यालय निरंतर चलता रहता है।

लोककवि विठ्ठल वाघ द्वारा लिखित यह गीत बहुत लोकप्रिय है और संत गाडगे बाबा अमरावती विद्यापीठ, अमरावती के कार्यक्रमों में सामूहिक रूप से इसे गाया जाता है। विद्यार्थियों, शिक्षकों, कर्मचारियों और विशेष अवसरों पर आने वाले आगंतुकों की जुबान पर यह गीत चढ़ जाता है।

संत गाडगे बाबा के व्यक्तित्व एवं प्रवचन-कीर्तन के संबंध में आमजन की राय

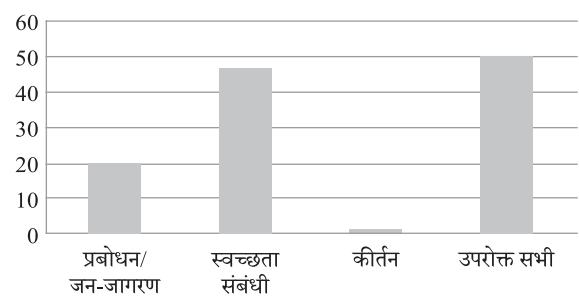
संत गाडगे बाबा अपनी जीवनशैली और कार्यों को लेकर महाराष्ट्र ही नहीं, पूरे भारत में जाने जाते हैं। यद्यपि इनका कार्यक्षेत्र महाराष्ट्र ही रहा, किंतु विचार क्षेत्र संपूर्ण मानवता का कल्याण रहा। भारत में जब भी जातिवाद, छुआछूत, स्वच्छता, स्वास्थ्य, बालक-बालिकाओं की शिक्षा, अनाथों व बेसहारा वृद्धों के आवास आदि विषयों पर चिंतन-मनन और अध्ययन की बात आती है, तो संत गाडगे बाबा का नाम, उनके द्वारा या उनकी प्रेरणा से निर्मित धर्मशालाओं, पाठशालाओं, छात्रावासों, वृद्धावासों और चिकित्सालयों के नाम सामने आते हैं और लोगों को प्रेरित करते हैं। इस अध्ययन में संत गाडगे बाबा के व्यक्तित्व एवं प्रवचन-कीर्तन के बारे में आमजन की राय जानने के लिए 14 प्रश्नों से युक्त एक प्रश्नावली के माध्यम से 118 लोगों की राय ली गई है, जो इस प्रकार है :

1. संत गाडगे बाबा से आप कैसे परिचित हुए?



विश्लेषण : संत गाडगे बाबा अमरावती, विदर्भ क्षेत्र में पैदा हुए थे, यह उनकी कर्मभूमि भी रही। उसके बाद महाराष्ट्र के विभिन्न क्षेत्रों में उन्होंने समाजसेवा का कार्य किया। वर्तमान समय में अमरावती के विभिन्न शिक्षण संस्थानों में विदर्भ सहित भारत के विभिन्न राज्यों से विद्यार्थी पढ़ने और अन्य लोग नौकरी करने आते हैं। स्थानीय और अन्य क्षेत्रों के विद्यार्थियों और नौकरी करने वाले लोगों से यह सवाल पूछा गया कि संत गाडगे बाबा से आप कैसे परिचित हुए? जवाब में 118 में 70 यानी 59% उत्तरदाताओं ने कहा कि वे 'संत गाडगे बाबा अमरावती विद्यापीठ, अमरावती' के कारण संत गाडगे बाबा के नाम से परिचित हुए। इसका अर्थ यह भी निकलता है कि संत गाडगे बाबा के नाम से बने महत्वपूर्ण संस्थान लोगों को बाबा के नाम और उनकी शिक्षाओं से अवगत कराने में मदद करते हैं। वहीं 13 उत्तरदाता मीडिया, 09 उत्तरदाता अपने किसी परिचित से, 12 अपने शिक्षक की मदद से तथा 14 उत्तरदाता अन्य माध्यमों से संत गाडगे बाबा के नाम से परिचित हुए।

2. संत गाडगे बाबा का कौन-सा कार्य अधिक स्मरणीय है?



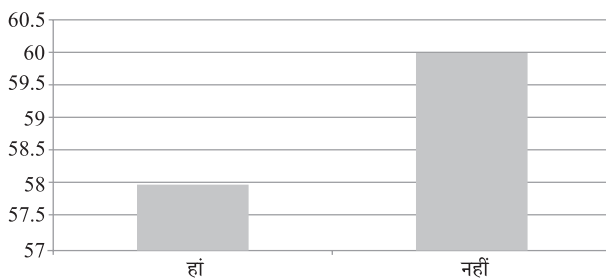
विश्लेषण : उपर्युक्त सवाल के जवाब में 118 उत्तरदाताओं में से 1 उत्तरदाता ने सिर्फ कीर्तन को और 20 उत्तरदाताओं ने प्रबोधन/जनजागरण को स्मरणीय बताया; जबकि 47 उत्तरदाताओं अर्थात् 40% ने स्वच्छता संबंधी कार्यों को वरीयता दी। सबसे अधिक 50 उत्तरदाताओं अर्थात् 42% ने उपर्युक्त सभी विकल्प को चुना, अर्थात् उन्होंने संत गाडगे बाबा के 'प्रबोधन/जनजागरण, कीर्तन और स्वच्छता संबंधी सभी कार्यों को स्मरणीय बताया। अमरावती में गाडगे बाबा के नाम व चित्र के साथ उनके कार्यों का जिक्र भी जगह-जगह किया गया है। स्वाभाविक है कि संत गाडगे बाबा का नाम सामने आते ही लोगों को उनके कार्यों का स्मरण स्वाभाविक रूप से हो जाता है।

3. संत गाडगे बाबा के जीवन से आपको क्या शिक्षा मिलती है?



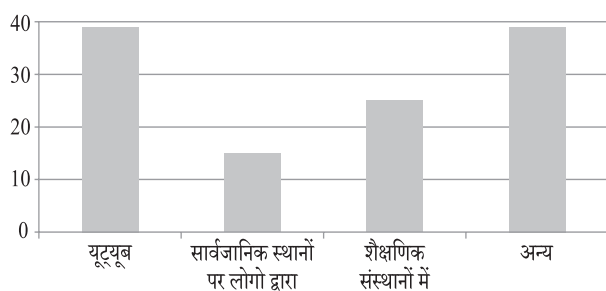
विश्लेषण : उपर्युक्त प्रश्न के जवाब में 118 में से 86 उत्तरदाताओं, अर्थात् 73% ने उपर्युक्त सभी का विकल्प चुना है। स्पष्ट है कि उनके अनुसार संत गाडगे बाबा के जीवन से उन्हें शिक्षा मिलती है कि 'गरीबों की मदद करनी चाहिए; बीमार लोगों को इलाज की सुविधा मिलनी चाहिए; निर्धन बच्चों/विद्यार्थियों की शिक्षा का प्रबंध होना चाहिए; अपने आसपास स्वच्छता रखनी चाहिए। बाकी उत्तरदाताओं ने उपलब्ध अन्य विकल्पों में से अलग-अलग राय दी है। स्पष्ट है कि अधिकतर लोगों ने संत गाडगे बाबा की शिक्षाओं को ग्रहण किया है।

4- क्या आपने कभी संत गाडगे बाबा का कीर्तन सुना है (या नियमित रूप से सुनते हैं)?



विश्लेषण : संत गाडगे बाबा का कीर्तन सुनने के सवाल पर 58 उत्तरदाताओं अर्थात् 49% ने कहा है कि हाँ उन्होंने संत गाडगे बाबा का कीर्तन सुना है (या नियमित रूप से सुनते हैं), जबकि 60 उत्तरदाताओं अर्थात् 51% ने 'न' विकल्प को चुना है, अर्थात् उन्होंने संत गाडगे बाबा का कीर्तन कभी नहीं सुना है। यहाँ यह बात रेखांकित करनी आवश्यक है कि संत गाडगे बाबा के कीर्तन मराठी भाषा में हैं और उत्तरदाताओं में अधिसंख्य हिंदीभाषी हैं, तथापि 'हाँ' और 'न' का जवाब देने वाले उत्तरदाता 49 और 51 के अनुपात में हैं। 49% (हाँ) और 51 % (न) के बीच कोई विशेष अंतर नहीं है। अगर ये हिंदीभाषी उत्तरदाता भी मराठी भाषा जानते तो शायद यह संत गाडगे बाबा के कीर्तनों को सुनने वालों की संख्या 100% तक होती। मराठी भाषी उत्तरदाताओं का जवाब 'हाँ' में ही है, जो बाबा की लोकप्रियता और प्रेरक व्यक्तित्व की ओर इशारा करता है।

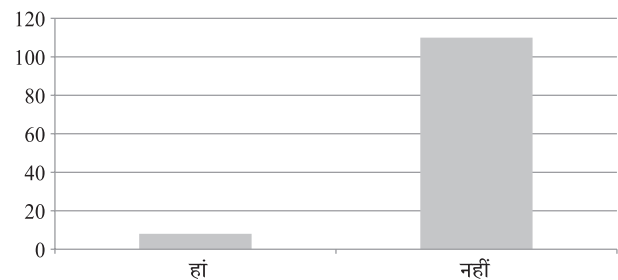
5. अगर आपने कभी संत गाडगे बाबा का कीर्तन सुना है (या कभी-कभी सुनते हैं) तो किस माध्यम से?



विश्लेषण : उपर्युक्त सवाल के जवाब में 118 में से 15 उत्तरदाताओं ने सार्वजनिक स्थानों पर लोगों द्वारा, 25 उत्तरदाताओं ने शैक्षणिक संस्थानों

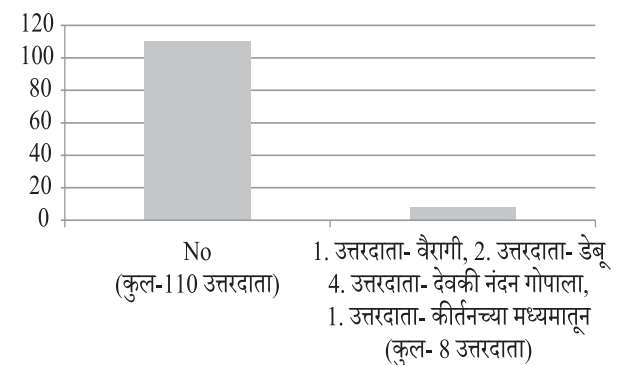
में, 39 उत्तरदाताओं (33%) ने यूट्यूब से और 39 (33%) उत्तरदाताओं ने अन्य माध्यमों से संत गाडगे बाबा के कीर्तन सुनने की बात कही है। अन्य माध्यमों में सेमिनार, संत गाडगे बाबा जन्मोत्सव, स्मृति दिवस और संत गाडगे बाबा विद्यापीठ अमरावती, विद्यापीठ गीत (संत गाडगे बाबा गीत) शामिल हैं। इनमें बड़ी संख्या में स्थानीय लोग और विद्यार्थी शामिल होते हैं।

6. आपने संत गाडगे बाबा के जीवन पर केंद्रित कोई फिल्म या डाक्यूमेंट्री देखी है?



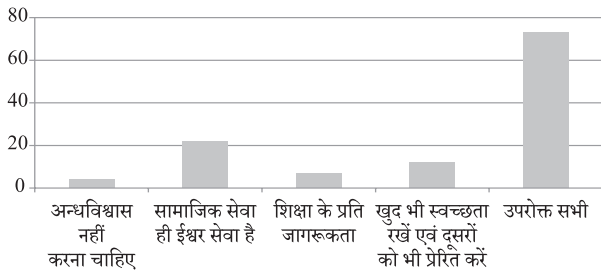
विश्लेषण : उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर में 110 उत्तरदाताओं (93%) ने 'न' में जवाब दिया है, जबकि मात्र 08 उत्तरदाताओं (7%) ने 'हाँ' में जवाब दिया। इस उत्तर से स्पष्ट होता है कि संत गाडगे बाबा पर बनी डाक्यूमेंट्री या फिल्मों की संख्या कम है और वे ज्यादा चर्चित नहीं हैं; अन्यथा मात्र 7% लोग ही फिल्म देखने वाले न होते। संत गाडगे बाबा पर केंद्रित फिल्म या डाक्यूमेंट्री ज्यादा संख्या में बनाने की आवश्यकता है। संख्या के साथ गुणवत्ता का भी ध्यान रखना चाहिए।

7. संत गाडगे बाबा के जीवन पर केंद्रित कोई फिल्म या डाक्यूमेंट्री देखी है तो नाम बताएँ। (नहीं देखी है तो No लिखें)



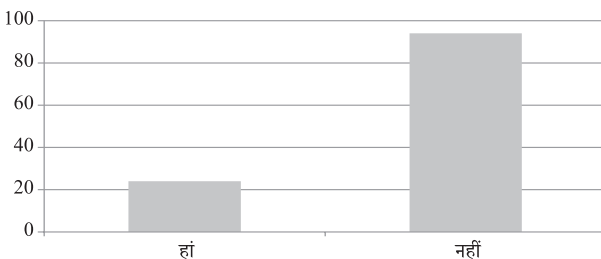
विश्लेषण : उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर में 110 उत्तरदाताओं (93%) ने 'न' में जवाब दिया है, जबकि मात्र 08 उत्तरदाताओं (7%) ने 'हाँ' में जवाब दिया। इस उत्तर से स्पष्ट होता है कि संत गाडगे बाबा पर बनी डाक्यूमेंट्री या मूवी की संख्या कम है और वे ज्यादा चर्चित नहीं हैं। अन्यथा मात्र 7% लोग ही मूवी 'न' देखे होते! यहाँ पुनः महसूस होता है कि संत गाडगे बाबा पर केंद्रित फिल्में या डाक्यूमेंट्री ज्यादा संख्या में बनाने की आवश्यकता है। उत्तरदाताओं ने उनके द्वारा देखी गई 'वैरागी', 'डेबू', 'देवकी नंदन गोपाला' और 'कीर्तनच्या माध्यमातून' डाक्यूमेंट्री/फिल्म का नाम बताया है।

8. संत गाडगे बाबा के व्यक्तित्व एवं प्रवचन-कीर्तन से आपको क्या संदेश मिलता है?



विश्लेषण : उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर में 118 में से 73 उत्तरदाताओं यानी 62% ने उपर्युक्त सभी का विकल्प चुना है। इसका अर्थ है कि संत गाडगे बाबा के व्यक्तित्व एवं प्रवचन-कीर्तन से उन्हें 'अंधविश्वास नहीं करना चाहिए, समाजसेवा ही ईश्वर सेवा है, शिक्षा के प्रति जागरूकता और खुद स्वच्छता रखने के साथ दूसरों को भी स्वच्छता के लिए प्रेरित करने' की शिक्षा मिलती है। 22 उत्तरदाताओं ने 'समाजसेवा ही ईश्वर सेवा है' का विकल्प चुना है। वहीं 12 उत्तरदाताओं ने 'खुद भी स्वच्छता रखें एवं दूसरों को भी प्रेरित करें' का विकल्प चुना है। 7 उत्तरदाताओं का कहना है कि बाबा के जीवन से 'शिक्षा के प्रति जागरूकता' की शिक्षा मिलती है।

9. क्या आपने संत गाडगे बाबा के जीवन चरित्र संबंधी किसी साहित्य का अध्ययन किया है?



विश्लेषण : उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर में 118 उत्तरदाताओं में से 94 उत्तरदाताओं यानी 80% ने 'न' में जवाब दिया है, जबकि 24 उत्तरदाताओं अर्थात् 20% ने 'हां' में जवाब दिया है। यहाँ पुनः उल्लेख करना आवश्यक है कि संत गाडगे बाबा से संबंधित ज्यादातर साहित्य मराठी भाषा में ही उपलब्ध है, जबकि जवाब देने वाले ज्यादातर उत्तरदाता हिंदीभाषी हैं। इस प्रकार संत गाडगे बाबा से संबंधित साहित्य मराठी के साथ-साथ हिंदी और अन्य भाषाओं में भी उपलब्ध होना चाहिए, ऐसी आवश्यकता महसूस होती है।

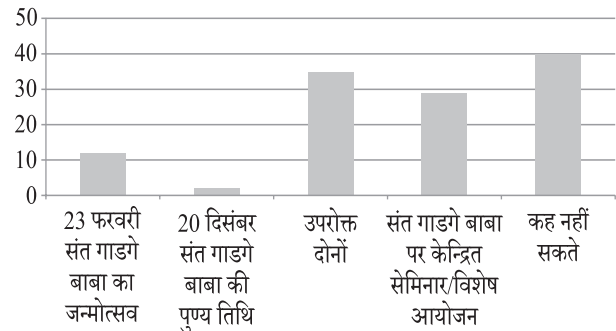
10. संत गाडगे बाबा की कोई ऐसी शिक्षा, जिसे आप जीवन में अवश्य उतारना चाहते हैं?

विश्लेषण : इस खुले प्रश्न के जवाब में 118 में से 70 उत्तरदाताओं ने ही जवाब दिए हैं। सामूहिक रूप से जिनका सार इस प्रकार है—

उत्तरदाता अपने आसपास का परिसर स्वच्छ रखने, दूसरों की मदद करने और न्यायसंगत धार्मिक-आध्यात्मिक साधनाओं में जीवन व्यतीत करने, भूखे को अन्न देने, प्यासे को पानी देने, अंधविश्वास से बचने, समाज

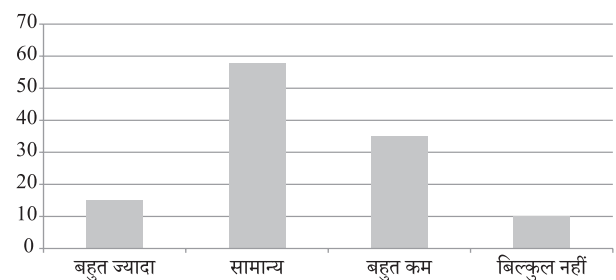
में खुशियाँ फैलाने, सादगीपूर्ण जीवन, निस्वार्थ जनसेवा, बच्चों को शिक्षा, रोगी को दवाई की व्यवस्था, समाज की सेवा को ईश्वर की सेवा मानने जैसी शिक्षाओं को जीवन में उतारना चाहते हैं।

11. कोई उत्सव या अवसर, जब आप संत गाडगे बाबा को जरूर याद करते हैं?



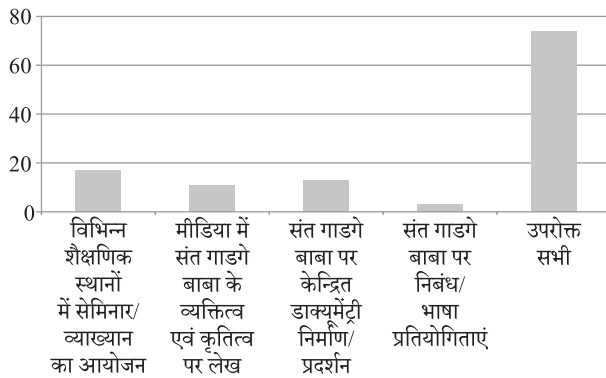
विश्लेषण : उपर्युक्त प्रश्न के जवाब में 118 उत्तरदाताओं में से 35 उत्तरदाताओं यानी 30% ने संत गाडगे बाबा की जयंती और उनके स्मृति दिवस, दोनों अवसरों पर उन्हें याद करने की बात कही है। वहीं 29 उत्तरदाताओं यानी 25% ने संत गाडगे बाबा पर केन्द्रित सेमिनार/विशेष आयोजनों के अवसर पर उन्हें याद करने की बात कही है। 12 उत्तरदाताओं ने 23 फरवरी को संत गाडगे बाबा के जन्मोत्सव के अवसर पर, जबकि 2 उत्तरदाताओं ने 20 दिसंबर को संत गाडगे बाबा की पुण्यतिथि पर उनको याद करने की बात कही है। 40 उत्तरदाताओं यानी 34% ने 'कह नहीं सकते' का विकल्प को चुना है।

12. संत गाडगे बाबा महाराष्ट्र के अलावा भारत के अन्य प्रदेशों में कितने चर्चित/लोकप्रिय हैं?



विश्लेषण : उपर्युक्त सवाल के जवाब में 118 में से 58 उत्तरदाताओं यानी 49% ने कहा कि संत गाडगे बाबा महाराष्ट्र के अलावा भारत के अन्य प्रदेशों में सामान्य रूप से लोकप्रिय हैं। 35 उत्तरदाताओं यानी 30% ने कहा कि महाराष्ट्र से बाहर बाबा बहुत कम लोकप्रिय हैं। 15 का मानना है कि बाबा महाराष्ट्र से बाहर बहुत ज्यादा लोकप्रिय हैं, जबकि 10 ने उनकी लोकप्रियता को महाराष्ट्र के बाहर बिल्कुल कम बताया।

13. महाराष्ट्र से बाहर संत गाडगे बाबा के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के प्रचार-प्रसार के लिए निम्नलिखित में से क्या उपयोगी हो सकता है?



विश्लेषण : उपर्युक्त सवाल के जवाब में 118 में से 74 उत्तरदाताओं यानी 63% ने महाराष्ट्र से बाहर संत गाडगे बाबा के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के प्रचार-प्रसार के लिए 'उपर्युक्त सभी' विकल्पों को चुना है। इसका अर्थ है कि महाराष्ट्र से बाहर संत गाडगे बाबा के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के प्रचार-प्रसार के लिए वे 'विभिन्न शैक्षणिक संस्थानों में सेमिनार/व्याख्यान का आयोजन, मीडिया में संत गाडगे बाबा के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर लेख, संत गाडगे बाबा पर केंद्रित डाक्यूमेंट्री निर्माण/प्रदर्शन, संत गाडगे बाबा पर निबंध/भाषण प्रतियोगिताएँ' सभी को समय-समय पर आयोजित करते रहने के पक्ष में हैं। बाकी उत्तरदाताओं में से 17 ने 'विभिन्न शैक्षणिक संस्थानों में सेमिनार/व्याख्यान का आयोजन' की बात कही है। 11 ने 'मीडिया में संत गाडगे बाबा के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर लेख' को चुना है। 13 उत्तरदाताओं ने 'संत गाडगे बाबा पर केंद्रित डाक्यूमेंट्री निर्माण/प्रदर्शन' जबकि 03 उत्तरदाताओं ने महाराष्ट्र से बाहर संत गाडगे बाबा के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के प्रचार-प्रसार के लिए संत गाडगे बाबा पर निबंध/भाषण प्रतियोगिताएँ आयोजित करने के लिए कहा है।

14. संत गाडगे बाबा के जीवन संदेश का आप पर क्या प्रभाव पड़ा?

विश्लेषण : इस खुले प्रश्न के जवाब में 118 में से 63 उत्तरदाताओं ने अलग-अलग जवाब दिया। सामूहिक रूप से जिनका सार इस प्रकार है—

संत गाडगे बाबा के जीवन संदेश से उत्तरदाता अच्छे कर्म करने, अशिक्षित लोगों की शिक्षा के लिए प्रयास करने, स्वच्छता रखने, दूसरों की मदद करने, दीन-दुखियों की सेवा करने और इसी को सच्ची ईश्वर सेवा मानने और बाबा के 10 सूत्री उपदेश को जीवन में उतारने लगे हैं। यही प्रभाव पड़ा है।

निष्कर्ष

संत गाडगे बाबा एक ऐसे संत के रूप में जाने जाते हैं, जिनकी वेश-भूषा, जीवनशैली और वाणी अत्यंत साधारण है, किंतु उनका जीवन संघर्ष, लोकहित में किए गए कार्य, कीर्तन-प्रवचन आमजन के लिए असाधारण रूप से ग्राह्य हैं। उनके कीर्तन के साथ अनेक उपयोगी बातें जनता तक पहुँचती थीं। जैसे—शराब मत पीओ। वह हमें पशु बना देती है। भगवान् के नाम पर जो सामाजिक कुप्रथाएँ हैं, उनका त्याग करो। प्रस्तुत शोध पत्र से स्पष्ट हुआ है कि विदर्भ क्षेत्र अमरावती में पैदा हुए संत गाडगे बाबा की कर्मभूमि विदर्भ सहित पूरा महाराष्ट्र रहा, किंतु बाबा ने जिन

सामाजिक बुराइयों को महसूस किया, जिनके खिलाफ संघर्ष किया और जनसहयोग से जिन पाठशालाओं, छात्रावासों, वृद्धाश्रमों, चिकित्सालयों और धर्मशालाओं का निर्माण कराया वे महाराष्ट्र ही नहीं पूरे देश के लिए प्रेरक हैं। उनके प्रवचन और कीर्तन से समाज को प्रकाश मिलता है। वे स्वयं पढ़े-लिखे नहीं थे, किंतु अपने कार्यों और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से लाखों-करोड़ों लोगों को शिक्षा के लिए प्रेरित करते हैं। महाराष्ट्र में उनके नाम से न सिर्फ 'संत गाडगे बाबा अमरावती विद्यापीठ, अमरावती' की स्थापना हुई, बल्कि पूरे महाराष्ट्र में उनके नाम से अनेक स्कूल, कॉलेज, अस्पताल, वृद्धाश्रम, धर्मशाला और सार्वजनिक भवनों का निर्माण हुआ है। इतना होने के बाद भी संत गाडगे बाबा का नाम महाराष्ट्र से बाहर कम ही लोग जानते हैं।

शोध पत्र में अमरावती के विभिन्न शिक्षण संस्थानों में विदर्भ सहित भारत के विभिन्न राज्यों से आए विद्यार्थियों और नौकरी करने आए लोगों से प्रश्नावली के माध्यम से संत गाडगे बाबा के व्यक्तित्व, कृतित्व और प्रवचन-कीर्तन व उनके दृष्टिकोण के बारे में राय ली गई। 59% उत्तरदाताओं ने कहा कि वे 'संत गाडगे बाबा अमरावती विद्यापीठ, अमरावती' के कारण संत गाडगे बाबा के नाम से परिचित हुए। इसका अर्थ यह भी निकलता है कि संत गाडगे बाबा के नाम से बने महत्वपूर्ण संस्थान लोगों को बाबा के नाम और उनकी शिक्षाओं से अवगत कराने में मदद करते हैं। बाबा के स्मरणीय कार्यों के विषय में पूछे जाने पर 40% उत्तरदाताओं ने स्वच्छता संबंधी कार्यों को वरीयता दी, जबकि 42% उत्तरदाताओं ने उपर्युक्त सभी विकल्पों को चुना, अर्थात् उन्होंने संत गाडगे बाबा के 'प्रबोधन/जनजागरण, कीर्तन और स्वच्छता' संबंधी सभी कार्यों को स्मरणीय बताया।

संत गाडगे बाबा के जीवन से मिलने वाली शिक्षा के संबंध में 73% उत्तरदाताओं के जवाब से स्पष्ट है कि संत गाडगे बाबा के जीवन से उन्हें 'गरीबों की मदद करने, बीमार लोगों को इलाज की सुविधा पहुँचाने में मदद करने, निर्धन बच्चों/विद्यार्थियों की शिक्षा के प्रबंध में सहयोग करने और अपने आसपास स्वच्छता रखने' की शिक्षा मिलती है। 49% उत्तरदाता संत गाडगे बाबा के कीर्तन से परिचित हैं या सुनते हैं, जबकि 51% उत्तरदाताओं ने कभी भी संत गाडगे बाबा का कीर्तन नहीं सुना है। यहाँ यह बात रेखांकित करना आवश्यक है कि संत गाडगे बाबा के कीर्तन मराठी भाषा में हैं और उत्तरदाताओं में अधिसंख्य हिंदीभाषी हैं, अगर ये हिंदीभाषी उत्तरदाता भी मराठी भाषा जानते तो शायद यहाँ संत गाडगे बाबा के कीर्तनों को सुनने वालों की संख्या 100% तक होती। यह तथ्य बताता है कि संत गाडगे बाबा के कीर्तन-प्रवचन और कार्यों का मराठी के अलावा अन्य भाषाओं में भी प्रचार-प्रसार किए जाने की जरूरत है।

बाबा के कीर्तन सुनने से जुड़े विषय पर 33% उत्तरदाताओं ने यूट्यूब से और 33% उत्तरदाताओं ने अन्य माध्यमों से कीर्तन सुनने की बात कही है। अन्य माध्यमों में सेमिनार, संत गाडगे बाबा जन्मोत्सव, स्मृति दिवस और संत गाडगे बाबा अमरावती विद्यापीठ, का विद्यापीठ गीत शामिल हैं। इनमें बड़ी संख्या में स्थानीय लोग और विद्यार्थी शामिल होते हैं। 93% उत्तरदाताओं ने कभी संत गाडगे बाबा पर बनी कोई डाक्यूमेंट्री या फिल्म नहीं देखी है। यहाँ महसूस होता है कि संत गाडगे बाबा पर केंद्रित फिल्मों या डाक्यूमेंट्री ज्यादा संख्या में बनाने की आवश्यकता है। मात्र 7% उत्तरदाताओं ने उनके द्वारा देखी गई 'वैरागी, डेबू देवकी नंदन गोपाला

और कीर्तनच्या माध्यमातून' डाक्यूमेंट्री/फिल्म का नाम बताया है, जो मराठी भाषा में ही निर्मित हैं। संत गाडगे बाबा पर केंद्रित फिल्मों को मराठी के साथ-साथ अन्य भाषाओं में ज्यादा संख्या में बनाने की आवश्यकता है। संख्या के साथ गुणवत्ता का भी ध्यान रखना चाहिए।

संत गाडगे बाबा के व्यक्तित्व एवं प्रवचन-कीर्तन से मिलने वाले संदेशों के संबंध में 62% उत्तरदाताओं का कहना है कि संत गाडगे बाबा के व्यक्तित्व एवं प्रवचन-कीर्तन से उन्हें 'अंधविश्वास नहीं करना चाहिए, समाजसेवा ही ईश्वर सेवा है, शिक्षा के प्रति जागरूकता और खुद स्वच्छता रखने के साथ दूसरों को भी स्वच्छता के लिए प्रेरित करने की शिक्षा' मिलती है। 80% उत्तरदाताओं ने कभी संत गाडगे बाबा के जीवन चरित्र संबंधी साहित्य का अध्ययन नहीं किया। स्पष्ट है कि संत गाडगे बाबा से संबंधित ज्यादातर साहित्य मराठी भाषा में ही उपलब्ध है, जबकि जवाब देने वाले ज्यादातर मतदाता हिंदीभाषी हैं। इस प्रकार संत गाडगे बाबा से संबंधित साहित्य मराठी के साथ-साथ हिंदी और अन्य भाषाओं में भी उपलब्ध होना चाहिए, ऐसी आवश्यकता महसूस होती है। संत गाडगे बाबा की कोई ऐसी शिक्षा, जो जीवन में उतारने योग्य है, के बारे में उत्तरदाताओं ने अलग-अलग राय दी है, जिनका सार यह है कि सभी को 'अपने आसपास का परिसर स्वच्छ रखना चाहिए, दूसरों की मदद और न्यायसंगत धार्मिक-आध्यात्मिक साधनाओं में जीवन व्यतीत करना चाहिए। भूखे को अन्न, प्यासे को पानी देने, अंधविश्वास से बचने, समाज में खुशियाँ फैलाने, सादगीपूर्ण जीवन जीने, निस्वार्थ जनसेवा, बच्चों को शिक्षा, रोगी को दवाई की व्यवस्था, समाज की सेवा को ईश्वर की सेवा मानने जैसी शिक्षाओं को भी लोग जीवन में उतारना चाहते हैं।

संत गाडगे बाबा को विशेष अवसरों पर याद करने के विषय पर 30% उत्तरदाता संत गाडगे बाबा की जयंती और उनके स्मृति दिवस दोनों अवसरों पर उन्हें याद करने की बात कहते हैं। वहीं 25% उत्तरदाताओं ने संत गाडगे बाबा पर केंद्रित सेमिनार/विशेष आयोजनों को महत्व दिया। 34% उत्तरदाता इस विषय पर भ्रम की स्थिति में हैं। इसका संभावित कारण संत गाडगे बाबा के कार्यक्रमों का मराठी भाषा में होना है, जिसे अन्य भाषाओं के लोग समझ पाने में असमर्थ होते हैं। इसी से जुड़े एक अन्य विषय पर 49% उत्तरदाता मानते हैं कि संत गाडगे बाबा महाराष्ट्र के अलावा भारत के अन्य प्रदेशों में सामान्य रूप से लोकप्रिय हैं। 30% उत्तरदाताओं का कहना है कि महाराष्ट्र से बाहर बाबा बहुत कम लोकप्रिय हैं। बाबा के जनहित के कार्यों और स्वच्छता आदि के प्रति संदेशों से और ज्यादा जन जुड़ाव हो सकता है। इसके लिए बाबा के संदेशों का प्रचार-प्रसार महाराष्ट्र से बाहर भी किए जाने की आवश्यकता है। इस संबंध में 63% उत्तरदाताओं ने महाराष्ट्र से बाहर संत गाडगे बाबा

के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के प्रचार-प्रसार के लिए महाराष्ट्र की तरह अन्य राज्यों में भी स्थानीय भाषा में 'विभिन्न शैक्षणिक संस्थानों में सेमिनार/व्याख्यान का आयोजन, मीडिया में संत गाडगे बाबा के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर लेख, संत गाडगे बाबा पर केंद्रित डाक्यूमेंट्री निर्माण/प्रदर्शन, संत गाडगे बाबा पर निबंध/भाषण प्रतियोगिताएँ' सभी को समय-समय पर आयोजित करते रहने की बात कही है। संत गाडगे बाबा को जानने वाले, बाबा के जीवन संदेश से अच्छे कर्म करने, अशिक्षित लोगों की शिक्षित करने, स्वच्छता रखने, दूसरों की मदद करने, नशा न करने, दीन-दुखियों की सेवा करने व इसी को सच्ची ईश्वर सेवा मानने के लिए प्रेरित होते हैं और बाबा के 10 सूत्रीय उपदेश को जीवन में उतारते हैं, ऐसा इस शोध में प्रकट हुआ है।

संदर्भ सूची

- अडगाँवकर, एच.बी.पी.वी.एस. एस. वासुदेव महाराज अडगाँवकर. (2000), *श्री संत गाडगेबाबा*. शेंडगाँव : नरेंद्र केशवराव साबळे पाटील.
- कवडे, एस. पी. (2006, नवंबर). *कर्मयोगी संत गाडगे बाबा*. मुंबई : गाडगे महाराज प्रकाशन समिती.
- कश्यप, ओ.पी. (2020, फरवरी 22). संत गाडगे : कीर्तन से क्रांति. <https://www.forwardpress.in/2020/02/history-saint-gadge-bahujan-hero-hindi/> से पुनःप्राप्त.
- पाथरकर, आर. (2009, दिसंबर). *गाडगे बाबा*. अमरावती: प्रा. विद्या राम पाथरकर.
- महाराज, एस. (2022, फरवरी 22). धर्मादा सेवा के उपासक संत बाबा गाडगे जी महाराज. <https://www.sudhanshujimaharaj.net/> से पुनःप्राप्त.
- महाराज, एस. (2022, फरवरी 22). धर्मादा सेवा के उपासक संत बाबा गाडगे जी महाराज. *नवभारत टाइम्स*. <https://navbharattimes.indiatimes.com/speakingtree/spirituality/saint-baba-gadge-ji-maharaj-worshiper-of-dharmada-seva/articleshow/102458845.cms> से पुनःप्राप्त.
- मेश्राम, पी. एस. (1998, जनवरी 01). *संत गाडगे महाराज : काल आणि कर्तव्य*. मुंबई: महाराष्ट्र राज्य साहित्य आणि संस्कृती मंडल.
- राठी, ए. एन. (2002, जुलाई). *जन जागरण की अमर ज्योती : संत गाडगे बाबा*. मुंबई : श्री गाडगे महाराज प्रकाशन समिती
- राठौर, वार्ड. (2021, April 04). संत गाडगे बाबा गीत. <https://yuvrajrathod992000.blogspot.com/2021/04/blog-post.html> से पुनःप्राप्त.



भारतीय संचार परंपरा और 'योगवासिष्ठ'

डॉ. देवेन्द्र नाथ तिवारी¹

सारांश

भारतीय ज्ञान परंपरा में महर्षि वसिष्ठ की ख्याति एक तत्त्वदर्शी और दार्शनिक ऋषि की है। उन्होंने योग, दर्शन व अध्यात्म के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनकी शिक्षाएँ 'योगवासिष्ठ' में संग्रहीत हैं। 'योगवासिष्ठ' भारतीय आर्ष परंपरा का विशद ग्रंथ है। संस्कृत में वेदांत पर सबसे पहले लिखी गई रचना 'वासिष्ठ महारामायण' या 'योगवासिष्ठ' है। गुरु वसिष्ठ और राम के बीच का संवाद इसका केंद्र बिंदु और आधार है। इसमें आख्यानों के माध्यम से गुरु वसिष्ठ राम के आत्मज्ञान संबंधित प्रश्नों का उत्तर देते हैं और अनेक रोचक कहानियाँ सुनाते हैं। वस्तुतः यह आत्मज्ञान का विशाल व विपुल भंडार है। भारतीय मनीषा के जानकार मानते हैं कि 'योगवासिष्ठ' ने सामान्य दार्शनिक विचारों पर गहरा प्रभाव डाला। रामायण के रचयिता महर्षि वाल्मीकि ने इस अद्भुत ग्रंथ का संकलन किया। उन्होंने 'योगवासिष्ठ' की पूरी कथा ऋषि भारद्वाज को सुनाई। यह राम और गुरु वसिष्ठ के बीच घटित हुई। उपनिषद् की तरह इसमें भी जीवन को लेकर अनेक विशद सूत्र मिलते हैं। इस प्राचीन भारतीय ज्ञाननिधि में 32,000 श्लोक हैं। प्रस्तुत शोध आलेख में 'योगवासिष्ठ' का संचार शास्त्रीय अध्ययन किया गया है। भारतीय संचार परंपरा के तहत महर्षि वसिष्ठ व राम संवाद की गहन और मौलिक मीमांसा करने के लिए उपलब्ध स्रोतों से सामग्री एकत्रित की गई। इसमें 'योगवासिष्ठ' की कथा, इसके सांस्कृतिक और धार्मिक महत्त्व, भारतीय संचार परंपरा के मूल तत्त्व की विवेचना शामिल रही। 'योगवासिष्ठ' के संचार सिद्धांत भारतीय संचार परंपराओं के मूल तत्त्वों को प्रदर्शित करते हैं। 'योगवासिष्ठ' में सत्य और निष्ठा को संचार के मूल तत्त्वों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसमें श्रोता केंद्रित संचार को महत्त्व दिया गया है, जिसमें संचारक, श्रोता की आवश्यकताओं और अभिरुचियों को ध्यान में रखता है। 'योगवासिष्ठ' में स्पष्टता और सरलता को संचार के महत्त्वपूर्ण तत्त्वों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत शोध आलेख में यह बताया गया है कि 'योगवासिष्ठ' की शिक्षाएँ आज भी संचारकों के लिए कैसे प्रासंगिक हैं और उनका उपयोग आधुनिक संचार के लिए कैसे किया जा सकता है।

संकेत शब्द : भारतीय संचार परंपरा, महर्षि वसिष्ठ, योगवासिष्ठ, वाल्मीकि, वैदिक संचार, उपनिषदीय संचार, भारतीय ज्ञान परंपरा

प्रस्तावना

मानव सभ्यता के साथ ही संचार, संवाद की विकास यात्रा आरंभ हुई। आदिम मानव पहले तरह-तरह के ध्वनि संकेतों, आंगिक मुद्राओं, चित्र संकेतों के माध्यम से संवाद करता था। क्रमिक विकास की इस यात्रा ने पहले बोली का आकार धारण किया, फिर भाषा की निर्मिति हुई। इसके बाद आदिम मानव वाचिक और शाब्दिक रूप में संवाद करने लगा। लोक परंपरा में मनुष्य योनि से इतर पक्षियों (कबूतर, तोता, मैना), पालतू पशुओं के साथ प्रकृति (यानी मेघ, नदी, पवन) आदि से संवाद के कई दृष्टांत मिलते हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा में संवाद की प्राचीनतम अभिव्यक्ति वैदिक ऋचाएँ हैं। इनके माध्यम से वैदिक ऋषि अपने अंतस् भाव को देवता तक संप्रेषित करते थे। 'ऋग्वेद' में वर्णित है कि इंद्र की दूत 'सरमा' पनियण तक इंद्र के संदेश को लेकर जाती है। गायों को वापस करने का निवेदन करती है। ऋग्वेद के दशम मण्डल के 108वें सूक्त में सरमा और पणि का संवाद भारतीय संचार परंपरा में संदेश-प्रेषण और नैतिक आचरण के आदिम प्रतीक के रूप में प्रकट होता है। यह वैदिक युग की संवाद-संस्कृति, कूटनीतिक संचार और नैतिक संवाद शैली का भी महत्वपूर्ण दार्शनिक निरूपण है। वैदिक आख्यान में मिलता है कि इंद्र के पुरोहित बृहस्पति की गौओं का अपहरण असुर बल के अनुचरों, पणियों ने कर लिया था। बृहस्पति की प्रार्थना पर इंद्र ने अपनी दूत सरमा को गायों की खोज में भेजा। सरमा ने नदी पार कर पर्वतों की गुफा में पहुँचकर पणियों को संदेश दिया कि वे गौओं को लौटाएँ और इंद्र से विरोध न करें। पणि सरमा को अपने पक्ष में करने के लिए प्रलोभन देते हैं। भाई-बहन का संबंध जोड़कर गायों के बँटवारे की बात करते हैं, पर सरमा द्वारा इस प्रलोभन

को अस्वीकार करना यह स्पष्ट करता है कि सत्यनिष्ठा ही संचार की सबसे ऊँची नीति है। उसके कथन में केवल वाक् नहीं, ऋत (सत्य का ब्रह्मांडीय नियम) की ऊर्जा विद्यमान है। वस्तुतः सरमा का यह प्रयास वैदिक संचार की मूल भावना—सत्य, निष्ठा, कर्तव्यनिष्ठ संवाद—का द्योतक है। वह संदेशवाहक मात्र नहीं, बल्कि सत्य और नैतिकता की प्रतिनिधि के रूप में कार्य करती है। पणियों के छल और लोभ के सामने उसका अस्थिर न होना दर्शाता है कि वैदिक संचार दर्शन में दूत के लिए स्वहित से ऊपर यथार्थ हित का पालन अनिवार्य है। यह संवाद भारतीय संचार की उस परंपरा का स्मरण कराता है, जहाँ संदेशवाहक का कार्य केवल सूचना देना नहीं, बल्कि धर्म और नीति का संचार करना भी होता है। यह आख्यान भारतीय संचार परंपरा के तीन मूल आयामों—वाक्-शक्ति, सत्यवादिता और सर्वहितबोध—को मूर्त रूप में प्रस्तुत करता है। वैदिक संचार दर्शन में वाणी को देवी सरस्वती और वाक् के रूप में पूज्य माना गया है। वहीं सरमा उस वाक्-संपन्नता की प्रतिनिधि बनकर सामने आती है, जो असत्य, भय और लालच से अप्रभावित रहती है।

किमिच्छन्तीं सरमाप्रेदमानिदं दुरेहध्वा जगुरिः पराचौः।

कास्मेहिंतिः का परितकम्यासीत् कथं रसार्था अतरः पयांसि

(ऋग्वेद मंडल 10, सूक्त 108)

वस्तुतः वेदों में संचार का उद्देश्य केवल सूचना हस्तांतरण नहीं, बल्कि संज्ञान और साधना है। सरमा और पणि का वैदिक संचार परंपरा में दूत-वर्ग की भूमिका को परिभाषित करता है—जहाँ दूत धर्म, नैतिकता और जनहित के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता है, न कि निजी या राजनैतिक स्वार्थ के माध्यम से। सरमा-पणि संवाद भारतीय संचार परंपरा के तत्त्वज्ञान

की दृष्टि से एक आदर्श प्रस्तुत करता है। इसमें संचार केवल वार्ता या दूत-प्रेषण तक सीमित नहीं, बल्कि वह ऋत-सत्य-धर्म के सेतु के रूप में कार्य करता है। दरअसल सरमा का संवाद इस तथ्य का प्रमाण है कि भारतीय परंपरा में संचार का स्वरूप मूलतः नैतिक, दार्शनिक और आध्यात्मिक रहा है। यहाँ शब्द केवल ध्वनि नहीं, बल्कि सत्य का संप्रेषण है। ऐसे ही 'यमी सूक्त' में यमी, संवाद संप्रेषण का माध्यम बनती है। याज्ञिक ऋषियों के हविष्यान्न के संप्रेषण का माध्यम अग्नि है। इसे वैदिक ऋचा में 'दूत' आ हव्यवाह' कहा गया है—

अग्निं दूतं पुरो दधे हव्यवापमुहब्रुवे... (यजुर्वेद, 22/17)

अत्यंत प्राचीन काल से 'वेद', 'ब्राह्मण' और 'उपनिषद्' को अपौरुषेय के रूप में जाना जाता है। वैसे तो अपने मूल ग्रंथ को ईश्वर प्रणीत मानने की परंपरा सभी धर्मों में है। वेद और उपनिषद् के अतिरिक्त बाइबिल और कुरान को भी ईश्वर प्रदत्त माना जाता है। इसलिए यहाँ संवाद को समझने से पहले 'श्रुति' को जानना-समझना रुचिकर होगा। 'श्रुति' का शाब्दिक अर्थ है, सुनी-सुनाई बाता। 'श्रुति' के शाब्दिक अर्थ से परे, अगर तात्त्विक अर्थ पर विचार करें तो एक अर्थ मिलता है कि यह बाह्य संदेश न होकर 'आत्मानुभूति' की जाग्रत अवस्था है, अंतःप्रेरणा है। श्रुति के बारे में 'बृहदारण्यकोपनिषद्' में उल्लेख है कि ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद सब उसी आदि पुरुष के निश्वास से निःसृत हुए हैं। इसी तरह के अभिनव प्रयोग से इतिहास, पुराण, विद्या, उपनिषद्, सूक्त और उसका भाष्य ईश्वर के निश्वास से निःसृत हुए हैं।

एवं वा अरेस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् यदृग्वेदो
(बृहदारण्यकोपनिषद्, 2.4.10)

उपनिषद्, वैदिक वाङ्मय के अंग हैं। उपनिषद् को श्रुति भी माना या कहा गया है। चूँकि ये वेद के अंतिम भाग हैं, इसलिए इन्हें वेदांत भी कहते हैं। उपनिषदों में प्रमुखतया ब्रह्म-विद्या का निरूपण है। उपनिषद्, दो शब्दों 'उप' और 'निषद्' से मिलकर बना है। 'उप' का अर्थ है निकट, समीप और 'निषद्' से आशय है, बैठना। गुरु के निकट बैठकर आत्म-तत्त्व का सम्यक् ज्ञान प्राप्त करना—यह उपनिषद् का अर्थ है। 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' का सुंदर निरूपण उपनिषदों में मिलता है। शंकर, रामानुज, मध्वाचार्य जैसे प्रमुख आचार्यों ने उपनिषदों को 'प्रस्थान-त्रयी' में स्थान दिया है। इन पर अपने मत या सिद्धांत के प्रतिपादक भाष्य लिखे हैं। ब्रह्मसूत्र, एकादश उपनिषद् और भगवद्गीता को 'प्रस्थान-त्रयी' माना गया है।

पाश्चात्य विद्वान् शोपेनहॉवर के शब्दों में, "सारे संसार में उपनिषद् ग्रंथों के समान कोई ऐसा ग्रंथ नहीं, जिसमें मानव-जीवन को इतना ऊँचा उठाने की क्षमता हो।" उपनिषद् में 'संवाद' के अनेक रूप मिलते हैं। ईसा पूर्व बारहवीं शताब्दी से छठी शताब्दी तक का समय प्रायः उपनिषद्-काल माना जाता है। उपनिषद् में संवाद के विविध प्रसंग भी मिलते हैं। बृहदारण्यकोपनिषद् के दूसरे अध्याय में 'गार्ग्य' नामक एक अभिमानि ब्राह्मण की कथा है। अजातशत्रु नामक एक शांत-प्रवृत्ति के राजा के बीच संवाद है। इसी उपनिषद् में तत्त्वज्ञानी ऋषि याज्ञवल्क्य के साथ 'गार्गी' का संवाद भी है। इसी तरह कठोपनिषद् में यम-नचिकेता, छांदोग्य उपनिषद् में ऋषि उद्दालक और श्वेतकेतु का संवाद है। महीदास, ऐतरेय, रैक्व, शांडिल्य, सत्यकाम जाबाल, जैवालि, उद्दालक, श्वेतकेतु, भारद्वाज, गार्गायन, प्रतर्दन, बालाकि, गार्गी और मैत्रेयी—इनके नाम उपनिषदों में दिए गए संवादों में उल्लेखनीय हैं (हरि, 2018)।

योगवासिष्ठ की उत्पत्ति

'योगवासिष्ठ' भारतीय ज्ञान परंपरा का एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है, जो आध्यात्मिक और दार्शनिक विचारों से भरा है। संस्कृत भाषा के इस बृहत् ग्रंथ को 'योगवासिष्ठ महारामायण', 'महारामायण', 'आर्ष रामायण', 'वसिष्ठरामायण', 'ज्ञानवासिष्ठ' और 'वासिष्ठ' आदि नामों से भी जाना जाता है (आत्रेय, 1957)। 'योगवासिष्ठ' भारतीय चिंतन का प्रतिनिधि ग्रंथ है। महर्षि वसिष्ठ ने अपने पिता सृष्टिकर्ता ब्रह्मा से प्राप्त ज्ञान को विश्व कल्याण हेतु भगवान् राम को दिया। इस ग्रंथ की उत्पत्ति के पीछे एक रोचक कथा है, जो एक युवा राजकुमार की आध्यात्मिक यात्रा को दर्शाती है। कथा का आरंभ अयोध्या के राजकुमार राम से होता है। राम युवावस्था में ही जीवन के गहन सवालों से जूझने लगते हैं। उन्हें जीवन की अनिश्चितता, दुख का कारण और जीवन का अंतिम उद्देश्य समझने की तीव्र इच्छा होती है। वे भौतिक सुखों और सांसारिक कामनाओं के मूल्य पर सवाल उठाते हैं। इन अस्तित्ववादी प्रश्नों से आवेशित होकर राम गहन चिंतन में डूब जाते हैं। राम की इस सघन आध्यात्मिक खोज से उनके पिता, राजा दशरथ और राजर्षि विश्वामित्र चिंतित होते हैं। राम का मार्गदर्शन करने के लिए विश्वामित्र उन्हें ऋषि वसिष्ठ के पास ले जाते हैं। ऋषि वसिष्ठ के मार्गदर्शन में राम को गहन आध्यात्मिक शिक्षा मिलती है। गुरु वसिष्ठ, मुमुक्षु राम को वास्तविकता की प्रकृति, आत्मा की प्रकृति और मुक्ति के मार्ग के बारे में गहन ज्ञान देते हैं। इन शिक्षाओं के माध्यम से राम को ब्रह्मांड और उसमें अपने स्थान की गहरी समझ प्राप्त होती है।

वस्तुतः 'योग वसिष्ठ' भगवान् श्रीराम और महर्षि वसिष्ठ के बीच तत्त्वज्ञान की चर्चा पर आधारित ग्रंथ है। इसमें ब्रह्म विषयक ज्ञान ही सर्वोच्च है (जोशी, 2023)। वेद ने भी मनन शक्ति को ही 'मानवता' माना है। अतः 'योगवासिष्ठ' के मत से मानवता-पालनपूर्वक जीवन-यापन करनेवाला ही मानव है। इसी विशिष्ट उपदेश को आत्मसात् कराने के उच्च उद्देश्य से समग्र 'योगवासिष्ठ' प्रवृत्त हुआ है। प्रस्तुत विशिष्ट उपदेश को विश्वहित के लिए प्रसारित करने के कारण ही ग्रंथ का नाम 'वासिष्ठ' रखा गया है। वैदिक भाषा में विशिष्ट का बोधक 'वसिष्ठ' शब्द है (महाराज, 1993)। राम और गुरु वसिष्ठ के बीच के संवाद, 'योगवासिष्ठ' ग्रंथ का मूल आधार है। यह ग्रंथ विभिन्न दार्शनिक विषयों पर चर्चा करता है, जैसे कि क्या दुनिया वास्तविक है या एक माया है? आत्मा क्या है और शरीर और ब्रह्मांड से इसका क्या संबंध है? जन्म और मृत्यु के चक्र से मुक्ति कैसे प्राप्त की जा सकती है? अंततः, योगवासिष्ठ एक व्यापक दार्शनिक प्रणाली प्रस्तुत करता है, जो आध्यात्मिक ज्ञान की तलाश करने वालों के लिए मार्गदर्शन प्रदान करता है। यह ग्रंथ सदियों से विद्वानों और आध्यात्मिक साधकों द्वारा अध्ययन किया जाता रहा है और आज भी मानव चेतना की गहराई को तलाशने में रुचि रखने वालों के लिए एक मूल्यवान् संसाधन है। श्रीराम और महर्षि वसिष्ठ के बीच तत्त्वज्ञान विषयक संवाद, संचार की उच्च भारतीय परंपरा का अनुपम उदाहरण है। यह संवाद केवल एक कथा नहीं, अपितु भक्ति, सेवा और प्रेम के मूल तत्त्वों का उद्घोष है, जो संवाद के माध्यम से मानवीय अनुभूति की सीमा को विस्तृत करता है। वस्तुतः भारतीय ज्ञान परंपरा में आत्मचिंतन को सदैव ही सर्वोच्च स्थान दिया गया है। स्वामी रामतीर्थ इसकी महत्ता का समर्थन करते हुए कहते हैं कि अनुत्तर ज्ञान का केंद्र हमारा हृदय है। आत्मचिंतन से मनुष्य अपनी कमियों से परिचित होकर उन पर विजय पाने में समर्थ होता है। आत्मचिंतन मानव

जीवन का एक अभिन्न अंग है। यह हमें स्वयं को बेहतर ढंग से समझने, अपने जीवन का उद्देश्य ढूँढ़ने और एक अधिक सार्थक जीवन जीने में मदद करता है।

आत्मदर्शन का महत्त्व पश्चिमी सभ्यता में भी स्वीकार किया गया है। पश्चिमी विचारक देकार्त, पैस्कल, बर्नार्ड शॉ, ब्लाइटहेड इत्यादि आत्मदर्शन के ही पंथानुगामी थे। बर्टेंड रसेल ने अपनी पुस्तक 'द कनक्वेस्ट ऑफ हैपिनेस' में आधुनिक (महाराज, 1993) मानव के लिए आत्मविश्लेषण अथवा आत्मचिंतन की आवश्यकता बताई है (त्रिपाठी, 2022)। 'योगवासिष्ठ' एक साधक और एक ऋषि के बीच एक गहन आध्यात्मिक खोज का प्रतिनिधित्व करता है। यह अस्तित्व और मानव स्थिति की प्रकृति पर गहन अंतर्दृष्टि प्रदान करता है, परंतु संचार की दृष्टि से इस ग्रंथ का विश्लेषण अब तक नहीं हुआ। प्रस्तुत शोध आलेख में संचार के दृष्टिकोण से 'योगवासिष्ठ' का विश्लेषण किया गया है, ताकि इससे नई दृष्टि व संकल्पना की प्राप्ति हो।

योगवासिष्ठ की विशिष्टता

योगवासिष्ठ एक स्वतंत्र ग्रंथ है। पारंपरिक रूप से इस ग्रंथ को आदि कवि वाल्मीकि द्वारा प्रणीत माना जाता है। 'योगवासिष्ठ' के लेखक स्वयं अपने ग्रंथ के महत्त्व के बारे में कहते हैं :

शास्त्रं सुबोधमेवेदं सालङ्कारविभूषितम्।

काव्य रसमयं चारु दृष्टान्तै प्रतिपादितम् ॥1॥ (2.18.33)

अस्मिन्श्रुते मते ज्ञाते तपोध्यानजपादिकम्।

मोक्षप्राप्तौ नरस्येह न किंचिदुपयुज्यते ॥2॥ (2.18.35)

अर्थात्—यह शास्त्र सुबोध है। अलंकारों से विभूषित है। सुंदर और रसपूर्ण काव्य है। इसके सिद्धांत दृष्टान्तों द्वारा प्रतिपादित किए गए हैं। मोक्ष प्राप्ति के लिए इस ग्रंथ का श्रवण, मनन और निदिध्यासन कर लेने पर तप, ध्यान और जप आदि किसी साधन की आवश्यकता नहीं रहती।

योगवासिष्ठ की श्लोक संख्या 32 हजार है। विद्वानों के मतानुसार महाभारत के समान इसका भी तीन अवस्थाओं में विकास हुआ : (1) वसिष्ठकवच, (2) मोक्षोपाय (अथवा वसिष्ठ-रामसंवाद), (3) वसिष्ठरामायण (या बृहद्योगवासिष्ठ)। यह तीसरी पूर्णवस्था ई. 11-12वीं शती में पूर्ण मानी जाती है। गौड़ अभिनंद नामक कश्मीर के पंडित द्वारा ई. 9वीं शती में किया हुआ इसका 'लघुयोगवासिष्ठ' नामक संक्षेप 4829 श्लोकों का है। 'योगवासिष्ठसार' नामक दूसरा संक्षेप 225 श्लोकों का है। योगवासिष्ठ में मूलतः छह प्रकरण हैं। 'वैराग्यप्रकरण' (33 सर्ग), 'मुमुक्षु व्यवहार प्रकरण' (20 सर्ग), 'उत्पत्ति प्रकरण' (122 सर्ग), 'स्थिति प्रकरण' (62 सर्ग), 'उपशम प्रकरण' (93 सर्ग) तथा 'निर्वाण प्रकरण' (पूर्वार्ध 128 सर्ग और उत्तरार्ध 216 सर्ग)। श्लोकों की संख्या 27,687 है। (मालवीय, 2001) वाल्मीकि रामायण से लगभग चार हजार अधिक श्लोक होने के कारण इसका 'महारामायण' अभिधान सर्वथा सार्थक है। इसमें रामचंद्र जी की जीवनी न होकर महर्षि वसिष्ठ द्वारा दिए गए आध्यात्मिक उपदेश हैं, परंतु यहाँ पर इसका उल्लेख अनुचित होगा कि सारे छोटे-छोटे उपनिषद् ऐसे हैं जो कि समग्रता में अथवा खंडशः योगवासिष्ठ पर आश्रित हैं। इस विषय पर भीखनलाल आत्रेय का मत है कि महोपनिषद् के प्रथम अध्याय को छोड़कर समस्त छहों अध्यायों में योगवासिष्ठ के बहुत सारे श्लोक प्राप्त होते हैं। अन्नपूर्णोपनिषद् के पाँचों ही

अध्यायों में तीन सौ से अधिक श्लोक योगवासिष्ठ से प्राप्त होते हैं। पूरा-का-पूरा अक्षि उपनिषद्, मुक्तिकोपनिषद् का मुख्य अंश, वाराह उपनिषद् का चौथा अध्याय, सन्यासोपनिषद् के 50 श्लोक योगवासिष्ठ से सीधे-सीधे लिए गए हैं। इसके अतिरिक्त याज्ञवल्क्य उपनिषद्, शांडिल्य उपनिषद्, योगकुंडली उपनिषद्, पैंगल उपनिषद्, जाबालोपनिषद्, तेजोबिंदूपनिषद्, योगशिखोपनिषद्, त्रिपुरातापिन्युपनिषद् तथा सौभाग्यलक्ष्मी उपनिषदों पर योगवासिष्ठ का प्रचुर प्रभाव है। स्वामी भूमानंद जी ने 'इंफ्लुएंस ऑफ द योगवासिष्ठ ऑन शंकराचार्य' नाम की पुस्तिका में तुलनात्मक अध्ययन द्वारा यह भी दिखलाया है कि शंकराचार्य की विवेकचूडामणि, सारतत्त्वयोपदेश, लघुवाक्यवृत्ति, प्रबोधानुभूति, प्रबोधसुधाकर आदि वृत्तियों पर योगवासिष्ठ के किन-किन श्लोकों की छाप या उनका प्रभाव है। उदाहरणार्थ—'प्राणस्पन्दनि रोधात् सत्सङ्गाद् वासनात्यागात्। हरिचरणभक्तियोगान्मनः स्ववेगं जहाति शनैः॥' इस प्रबोधसुधाकर (77) के श्लोक पर 'अध्यात्मविद्याधिगमः साधुसंगम एव च। वासना सम्परित्यागः प्राणस्पन्दनिरोधनम् ॥ एतास्ता युक्तयः पुष्टाः सन्ति चित्तजये किला।' योगवासिष्ठ (51 92 । 35) श्लोक की छाप है (शर्मा, 1993)।

योगवासिष्ठ में संवाद

भारतीय ज्ञान परंपरा में वाक् की व्याप्ति ब्रह्म सदृश मानी गई है—'यावत् ब्रह्म विष्ठितं तावत् वाक्'। औपनिषदिक अवधारणा के अनुसार वाक् ही समिधा है—'जागेव समिता।' जीवन यज्ञ का प्रधान उपकरण और अपरिहार्य आधार। वाक् मनुष्य की विशिष्ट उपलब्धि है, जिसे उसने भाव और चेतना की अभिव्यक्ति तथा समृद्धि के लिए आयास से अर्जित-परिष्कृत किया है। वाग्धारा की उन्नयनशील यात्रा ही वाक् संस्कृति है, जो विदग्ध वाक्य में दीप्त है। वस्तुतः संचार की यह भारतीय परंपरा ध्यान, साधना, परस्पर सम्मान और अंतःकरण की शुद्धि पर आधारित है। इस परंपरा में संवाद केवल सूचना का आदान-प्रदान नहीं, बल्कि 'आंतरिक खोज' है, जो मानसिक, भावात्मक और आध्यात्मिक स्वतंत्रता की ओर ले जाती है। संवाद के माध्यम से समभाव, समानुभूति और एकात्मता का सृजन भी होता है। संचार की यह भारतीय परंपरा एक गहन दार्शनिक और आध्यात्मिक प्रक्रिया है। इसमें अर्थ की आंतरिक खोज, आत्म-जागरूकता, स्वतंत्रता और अंततः सत्य की अनुभूति निहित है। यह परंपरा उच्चतम लोकमंगल के उद्देश्य से संवाद के माध्यम से सम भाव, मम भाव और समानुभूति उत्पन्न करती है। इस परंपरा की विशिष्टता यह है कि यह भाषाई-अर्थव्यवस्था से परे जाकर एक विश्व-दर्शन प्रस्तुत करती है, जहाँ संवाद केवल शब्दों का आदान-प्रदान नहीं, बल्कि एकात्मता की अनुभूति का द्योतक है। संत, ऋषि और कवि इस संचार परंपरा के सजीव वाहक रहे हैं, जिन्होंने लोक में न केवल कथाएँ, गीत, वाणी और संगीत के माध्यम से संचार किया, बल्कि अर्थ की गहन परत तैयार की।

डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने यज्ञ की अवधारणा को स्पष्ट करते लिखा है कि उदात्त भावना का दूसरा नाम यज्ञ है, जिसमें व्यक्ति दूसरे के लिए अपने स्वार्थ और सुख का समर्पण करके दूसरों की सहायता करने की युक्ति प्राप्त करता है। उस जीवन-विधि को यज्ञ कहते हैं। जीवन-यज्ञ में आलोक-रूपा रचने के लिए वाक् की भूमिका सर्वोपरि मानी गई है। (मिश्र, 2016) 'योगवासिष्ठ' वस्तुतः श्रीमद्भगवद्गीता की तरह संवाद

पर आधारित ग्रंथ है। योगवासिष्ठकार ने अपने दार्शनिक सिद्धांतों का प्रतिपादन स्वानुभव, दृष्टांत और उपाख्यानों द्वारा किया है। समस्त ग्रंथ में 55 उपाख्यान हैं। वसिष्ठ और राम का संवाद भी एक उपाख्यान ही के रूप में है। 'योगवासिष्ठ' के दृष्टांतों और कहानियों द्वारा ब्रह्मज्ञान के उपदेश करने की इस रीति का गुजराती भाषा में 'चंद्रकांत', उर्दू में 'चहल दरवेश' और हिंदी में 'ज्ञानवैराग्यप्रकाश' नामक पुस्तकों में भलीभाँति अनुसरण किया गया है। (आत्रेय, 1957) 'योगवासिष्ठ' और श्रीमद्भगवद्गीता, दोनों ही भारतीय दर्शन के महत्त्वपूर्ण ग्रंथ हैं। ये ग्रंथ ज्ञान, मोक्ष और जीवन के अर्थ पर गहन चर्चा करते हैं। हालाँकि, दोनों ग्रंथों में प्रस्तुति के तरीके और दृष्टिकोण में महत्त्वपूर्ण अंतर देखने को मिलता है। 'योगवासिष्ठ' में एक अप्रत्याशित स्थिति दिखती है। आमतौर पर ईश्वर को ज्ञान का स्रोत माना जाता है, लेकिन 'योगवासिष्ठ' में प्रश्नकर्ता की भूमिका ईश्वरावतार राम निभा रहे हैं। यह एक विरोधाभासी स्थिति प्रतीत होती है, क्योंकि सर्वज्ञ ईश्वर को किसी से प्रश्न करने की आवश्यकता क्यों होगी? यह प्रश्न हमें 'योगवासिष्ठ' के दर्शन और इसके उद्देश्य के बारे में गहराई से सोचने के लिए प्रेरित करता है। श्रीमद्भगवद्गीता में मूलतः कृष्ण और अर्जुन के बीच का संवाद है। कृष्ण को साक्षात् नारायण का अवतार माना जाता है। अर्जुन नर हैं। श्रीमद्भगवद्गीता, अर्जुन की मनःदशा और कृष्ण के दार्शनिक उपदेशों का गहन विश्लेषण प्रस्तुत करती है। एक ओर अर्जुन, धर्म और कर्तव्य के प्रति आबद्ध हैं, तो दूसरी ओर अपने प्रियजनों को खोने का दुख और हिंसा का भय उन्हें झकझोर रहा है। अर्जुन युद्धभूमि में किंकर्तव्यविमूढ़ हैं, उन्हें यह नहीं पता है कि वे करें क्या? द्वंद्व की स्थिति है। अर्जुन कृष्ण से पूछते हैं कि वे क्या करें? कृष्ण कर्मयोग की शिक्षा देते हैं, ज्ञानयोग भी बता देते हैं, फिर भी अर्जुन का द्वंद्व नहीं मिटता है। संदेह से घिरे हैं कि वे क्या करें? वे कृष्ण से पूछते हैं—“अगर आपके अनुसार कर्म की अपेक्षा ज्ञान श्रेयस्कर है, तो आप मुझको इस युद्धरूपी घोर कर्म में क्यों नियुक्त कर रहे हैं? मिली-जुली बातों से मेरी बुद्धि को जैसे आप मोहित कर रहे हैं, अच्छा होता अगर आप निश्चित करके कोई एक मार्ग बता देते, जिससे कि मैं श्रेय की प्राप्ति कर सकूँ।” इस जटिल मनःस्थिति में कृष्ण का मार्गदर्शन अत्यंत महत्त्वपूर्ण हो जाता है। कृष्ण, अर्जुन के इस मानसिक संघर्ष को समझते हुए, उन्हें कर्मयोग और ज्ञानयोग का मार्ग दिखाते हैं। कर्मयोग के अनुसार, निष्काम भाव से किया गया कर्म ही मोक्ष का मार्ग है, जबकि ज्ञानयोग के माध्यम से, व्यक्ति ज्ञान प्राप्त करके कर्म के बंधनों से मुक्त हो सकता है। कृष्ण अर्जुन को स्पष्ट करते हैं कि युद्ध करना उनका कर्तव्य है और इसे निष्काम भाव से करना चाहिए।

श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार कर्म, ज्ञान और भक्ति ये तीनों ही मोक्ष प्राप्ति के मार्ग हैं, लेकिन ये मार्ग व्यक्तिगत रुचि और श्रद्धा पर निर्भर करते हैं—“श्रद्धावान् ज्ञानं लभते।” सभी प्रकार के वैदिक ज्ञान की महत्ता उन्हीं मनुष्यों के हृदय में प्रकट होती है, जिनकी भगवान् और गुरु के प्रति अगाध श्रद्धा होती है :

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।

तस्यैते कथिता हार्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

(श्वेताश्वतरोपनिषद्-6.23)

जो एक व्यक्ति के लिए उपयुक्त हो, वह दूसरे के लिए आवश्यक नहीं है। यह औषधि के समान है, जो एक व्यक्ति के लिए लाभदायक हो वह सभी के लिए लाभदायक हो, यह आवश्यक नहीं है। व्यक्तिगत

परिस्थितियाँ नैतिकता और अनैतिकता के मानदंडों को प्रभावित करती हैं। कर्म भी अकर्म में और अकर्म भी कर्म में बदल सकता है। अर्जुन के लिए कृष्ण का उपदेश कर्म के लिए था, क्योंकि अर्जुन की परिस्थिति युद्ध की थी। यदि प्रश्नकर्ता आचार्य शंकर होते तो कृष्ण का उत्तर भिन्न होता।

श्रीमद्भगवद्गीता बताती है एक सार्वभौमिक नैतिकता की अवधारणा सीमित है। नैतिकता और अनैतिकता के मानदंड परिस्थितियों के अनुसार बदलते रहते हैं। 'योगवासिष्ठ' में भी यह विचार प्रतिपादित किया गया है कि ज्ञान का मार्ग सभी के लिए उपयुक्त नहीं है। यह केवल उन व्यक्तियों के लिए उपयुक्त है, जो न तो अत्यंत अज्ञ और न ही ज्ञानवान हैं। इस प्रकार, गीता और 'योगवासिष्ठ' दोनों ही यह दर्शाते हैं कि आध्यात्मिक साधना एक व्यक्तिगत यात्रा है, जो व्यक्तिगत परिस्थितियों और आकांक्षाओं के आधार पर भिन्न होती है।

'योगवासिष्ठ' भी एक संवाद है। यह संवाद है राम तथा वसिष्ठ के मध्य। राम और कृष्ण दोनों ही नारायण के अवतार माने जाते हैं, पर 'योगवासिष्ठ' में ईश्वरावतार राम प्रश्नकर्ता की भूमिका में हैं। सर्वज्ञ ईश्वर स्वयं प्रश्न कर रहा है, और वह भी एक मनुष्य वसिष्ठ से। गीता की स्थिति से यहाँ पर स्थिति एकदम से उल्टी है। प्रश्न होना चाहिए था मनुष्य की ओर से। मनुष्य ईश्वर से पूछेगा तो उसका उत्तर ईश्वर से प्राप्त हो सकेगा, परंतु ईश्वर मनुष्य से पूछेगा तो क्या और क्यों? और यदि ईश्वर प्रश्न पूछेगा तो क्या जीव से उस प्रश्न का उत्तर बनेगा? ईश्वर की अवधारणा में ही सर्वज्ञता अंतर्निविष्ट है और जीव की अवधारणा में अल्पज्ञता। सर्वज्ञ ईश्वर अल्पज्ञ जीव से प्रश्न कर रहा है, यह अपने आपमें विचित्र-सा विरोधाभास है।

आखिर 'योगवासिष्ठ' का लेखक संदेश क्या देना चाहता है? इस प्रश्न को ढूँढ़ने से पूर्व दक्षिणामूर्ति भगवान् की उपासना में बहुधा प्रस्तावित एक श्लोक दृष्टि में रखना अधिक तर्कसंगत होगा। श्लोक इस प्रकार है :

ईश्वरो गुरुतात्मेति मूर्तिभेदविभागिने ।

व्योमवद्याप्तदेहाय दक्षिणामूर्तये नमः ॥

ईश्वर, गुरु तथा आत्मा इस प्रकार से मूर्तियों के विभाग से जिनमें विभाग हैं, ऐसे आकाशवत् व्याप्त शरीर वाले दक्षिणामूर्ति भगवान् को प्रणाम है। यह दर्शाता है कि 'योगवासिष्ठ' का लेखक द्वैतवाद के बजाय अद्वैतवाद में विश्वास रखता है। (मिश्र, 2019) इस दृष्टिकोण से ईश्वर और जीव के बीच का अंतर माया का भ्रम है। इसलिए, राम के प्रश्न को एक सामान्य प्रश्न के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए, बल्कि ज्ञान की गहराइयों को खोजने की एक आध्यात्मिक यात्रा के रूप में देखा जाना चाहिए।

योगवासिष्ठ ग्रंथ का एक महत्त्वपूर्ण अंश है, जो गुरु-शिष्य के संबंध, ज्ञान प्राप्ति और आत्म-साक्षात्कार के विषय में गहन अंतर्दृष्टि प्रदान करता है। गुरु वसिष्ठ राम को उत्तम गुणों से परिपूर्ण शिष्य बताते हैं। यह उनके ज्ञान के प्रति उत्सुकता, प्रश्न करने की क्षमता और समझने की तीव्रता को दर्शाता है। राम का प्रश्न करने का ढंग यह दर्शाता है कि वे गहन दार्शनिक विषयों में रुचि रखते हैं और ज्ञान की गहराई तक जाने की इच्छा रखते हैं। वसिष्ठ कहते हैं, “राम! तुम्हारा मन उत्तम गुणों से परिपूरित है। तुम योग्य शिष्य हो और प्रश्न करने का ढंग भी तुम्हें भलीभाँति ज्ञात है। तुम कही हुई बात को विशेष रूप से समझ लेते हो, इसीलिए मैं तुम्हें उपदेश देने को उद्यत हुआ हूँ। अब तुम अपनी बुद्धि को, जो रजोगुण और तमोगुण से रहित और शुद्ध सत्त्व गुण का अनुसरण करनेवाली है, आत्मा में स्थापित करके ज्ञानोपदेश श्रवण करने के लिए तैयार हो जाओ। प्रश्नकर्ता में जितने गुण होने चाहिए,

वे सभी गुण तुममें विद्यमान हैं और जैसे समुद्र में रत्न आदि संपत्तियाँ भरी रहती हैं, उसी तरह वक्ता के सभी गुण मुझमें विद्यमान हैं। वत्स! जैसे चंद्रमा की किरणों के संपर्क से चंद्रकांतमणि में आर्द्रता आ जाती है, उसी तरह तुम भी ज्ञान के संसर्ग से उत्पन्न हुए वैराग्य को प्राप्त हुए हो।

राम एक जिज्ञासु शिष्य की भूमिका में हैं और वसिष्ठ एक ज्ञानी गुरु के रूप में। 'योगवासिष्ठ' में राम द्वारा पूछे गए प्रश्न बहुत गहन और दार्शनिक हैं। वे ब्रह्मांड की उत्पत्ति, चेतना की प्रकृति और आत्मा के स्वरूप जैसे मौलिक सवालों को उठाते हैं। जैसे केन उपनिषद् में जिज्ञासु शिष्य प्रश्न पूछता है,

केनेषितं पतति प्रेषितं मनः केन प्राणः प्रथमं प्रतियुक्तः ।

केनेषितां वाचमिमां वदन्ति चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति ॥

(के.उ. 1.1)

किसकी इच्छा से मेरे वाक्यों का स्फुरण है? यह प्रश्न चेतना की उत्पत्ति और उसके कार्य करने के तरीके को समझने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। गुरु वसिष्ठ के उत्तर अद्वैत वेदांत के सिद्धांतों पर आधारित होते हैं। वे राम को बताते हैं कि चेतना एक है और यह सभी जीवों में व्याप्त है। व्यक्तिगत चेतना ब्रह्म की एक झलक मात्र है। इस प्रकार, राम के सभी प्रश्नों का उत्तर एक ही है—ब्रह्म। 'योगवासिष्ठ' में अद्वैतवाद का सार यह है कि ब्रह्म ही सब कुछ है। यह सृष्टि, जीव और चेतना का मूल कारण है। व्यक्तिगत आत्मा ब्रह्म से अलग नहीं है, बल्कि उसका ही एक अंश है। जब व्यक्ति इस सत्य को समझ जाता है, तो उसे मोक्ष प्राप्त हो जाता है। 'योगवासिष्ठ' अद्वैत वेदांत के सिद्धांतों को बहुत स्पष्ट और सरल भाषा में प्रस्तुत करता है। 'योगवासिष्ठ' की संवादशैली के अध्ययन के क्रम में एक विशिष्ट पैटर्न दिखता है। प्रश्न-उत्तर शैली ज्ञान प्राप्त करने का एक प्रभावी तरीका है। 'योगवासिष्ठ' में इस शैली का उपयोग करके जटिल दार्शनिक अवधारणाओं को आसानी से समझाया गया है। 'योगवासिष्ठ' में उपमाओं और दृष्टान्तों का उपयोग किया गया है। इससे जटिल दार्शनिक अवधारणाओं को गुरु वसिष्ठ, राम को आसानी से समझा पाते हैं। 'योगवासिष्ठ' के अध्ययन से साक्षात्कारकर्ता के लिए आवश्यक गुणों की जानकारी प्राप्त होती है। 'योगवासिष्ठ' का मानना है कि साक्षात्कारकर्ता में पाँच आवश्यक गुण होने चाहिए। पहला है, धैर्य। दूसरा, विषय की समझ। तीसरा, निडरता। चौथा है, स्पष्टता और पाँचवाँ है, आत्मसात् करने की क्षमता।

निष्कर्ष

'योगवासिष्ठ' ग्रंथ मुमुक्षु शिष्य के संदेहों को दूर करने के लिए

प्रश्नोत्तर शैली में लिखा गया है। इसमें गंभीर दार्शनिक समस्याओं पर चर्चा की गई है, जो श्रीमद्भगवद्गीता में प्रस्तावित सिद्धांतों को भी चुनौती देती है। यह ग्रंथ संवाद शैली में है, जो इसे ब्रह्मसूत्रों पर आचार्य शंकर के शारीरिकभाष्य से भिन्न बनाता है। योगवासिष्ठ एक ऐसा ग्रंथ है, जो भारतीय दर्शन के इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह ग्रंथ अद्वैत वेदांत के सिद्धांतों को गहराई से समझने के लिए एक उत्कृष्ट स्रोत है। योगवासिष्ठ में प्रस्तुत विचार आज भी प्रासंगिक हैं और वे हमें जीवन के अर्थ और आत्मज्ञान प्राप्त करने के मार्ग को खोजने में मदद करते हैं। योगवासिष्ठ का अध्ययन संचार की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। 'योगवासिष्ठ' के संचार सिद्धांत भारतीय संचार परंपराओं के मूल तत्वों को प्रदर्शित करते हैं। इसमें सत्य और निष्ठा को संचार के मूल तत्वों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसमें श्रोता केंद्रित संचार को महत्व दिया गया है, जिसमें संचारक श्रोता की आवश्यकताओं और अभिरुचियों को ध्यान में रखता है। 'योगवासिष्ठ' में स्पष्टता और सरलता को संचार के महत्वपूर्ण तत्वों के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

संदर्भ सूची

- आत्रेय, बी.एल. (1957). *योगवासिष्ठ और उसके सिद्धांत*. बनारस : तारा प्रिंटिंग वर्क्स.
- जोशी, एच.एल. (2023). योगवासिष्ठ एवं हठयोग ग्रंथों में योग की भूमिकाएँ. *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ क्रिएटिव रिसर्च थॉट्स*, 11(3), 964-967.
- महाराज, ए. वी. (1993). एकश्लोकी योगवासिष्ठ. चिम्मनलाल गोस्वामी हनुमानप्रसाद पोद्दार (सं.) में, *संक्षिप्त योगवासिष्ठ* (पृ. 4). गोरखपुर : गीताप्रेस.
- मालवीय, एस. (2001). योगवासिष्ठ. भुवन वाणी ट्रस्ट.
- मिश्र, के.बी. (2016). *संबुद्धि*. कोलकाता : शैली प्रकाशन.
- मिश्र, एस. (2019). उपनिषद्, भगवद्गीता एवं योगवासिष्ठ. राधावल्लभ त्रिपाठी (सं.) में योगवासिष्ठ और भारतीय परंपराएँ. दिल्ली : साहित्य अकादमी.
- शर्मा, जे.एन. (1993). योगवासिष्ठ की श्रेष्ठता और समीचीनता. चिम्मनलाल गोस्वामी हनुमानप्रसाद पोद्दार में, *संक्षिप्त योगवासिष्ठ* (पृ. 5). गोरखपुर : गीताप्रेस.
- हरि. वी. (2018). *श्रुति और स्मृति*. (वियोगी हरि, सं.) नई दिल्ली : सस्ता साहित्य मंडल.



कल्हण कृत 'राजतरंगिणी' में संचार का अध्ययन

डॉ. शिखा सैनी¹

सारांश

प्रस्तुत शोध-पत्र कल्हण कृत 'राजतरंगिणी' में निहित संचार, विशेषतः रणनीतिक संप्रेषण, के बहुआयामी स्वरूप का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है। पारंपरिक रूप से 'राजतरंगिणी' को कश्मीर के राजनीतिक इतिहास, वंश परिवर्तन और प्रशासनिक संरचनाओं का कालक्रम माना गया है, किंतु गहन आलोचनात्मक परीक्षण यह उद्घाटित करता है कि यह ग्रंथ केवल ऐतिहासिक आख्यान नहीं, बल्कि मध्यकालीन राज्यव्यवस्था के संचार आधारित तंत्र का सशक्त दर्पण भी है। कल्हण द्वारा प्रस्तुत राजनीतिक प्रसंगों, राजकीय व्यूह रचनाओं, दूत व्यवस्थाओं, लोक धारणाओं, अफवाह तथा प्रतिष्ठा निर्माण में संचार की निर्णायक भूमिका स्पष्ट दिखाई देती है, जिससे यह सिद्ध होता है कि संचार सत्ता के स्थिरीकरण, वैधता प्राप्ति और जनता के मानस निर्माण का केंद्रीय उपकरण था। शोध से यह तथ्य प्रतिपादित होता है कि 'राजतरंगिणी' में वर्णित अनेक घटनाएँ सहमति निर्माण, राजकीय आदेशों की भाषा, कूट संवाद, सूचना के प्रवाह तथा सत्ता संबंधी छवि के निर्माण का एक सुविचारित संचार रणनीति का संकेत देती हैं। सत्ता का स्थायित्व केवल सैन्य सामरिक शक्ति पर आधारित नहीं था, बल्कि इस पर निर्भर था कि वह जनता के समक्ष कैसी छवि प्रस्तुत करती है और उसका संप्रेषण किस प्रकार होता है। राजा की प्रतिष्ठा, न्यायप्रियता, नैतिकता और प्रजावत्सलता तभी प्रभावी थीं, जब वे सुव्यवस्थित संप्रेषण के माध्यम से जन चेतना में स्थापित होती थीं। अध्ययन यह भी इंगित करता है कि 'राजतरंगिणी' का संचार-तंत्र आधुनिक रणनीतिक संप्रेषण (स्ट्रेटिजिक कम्युनिकेशन) की अवधारणाओं, कथानक निर्माण (नैरेटिव बिल्डिंग), वैधता स्थापन (लेजिटिमेसी क्राफ्टिंग), सूचना प्रबंधन (इंफॉर्मेशन मैनेजमेंट) तथा धारणा नियंत्रण (परसेप्शन कंट्रोल) से अत्यंत निकटता से संबद्ध है। अतः 'राजतरंगिणी' इतिहास के साथ-साथ राजनीतिक संचार का भी प्राचीन और महत्वपूर्ण स्रोत है, जहाँ संचार केवल घटनाओं का वाहक नहीं, बल्कि राजनीतिक वास्तविकता का निर्माता बनकर उभरता है।

संकेत शब्द : राजतरंगिणी, कल्हण, रणनीतिक संप्रेषण, ऐतिहासिक संचार, सूचना प्रबंधन, जनमत निर्माण, राजनीतिक कथानक, संचार रणनीति

प्रस्तावना

भारतीय इतिहास लेखन की परंपरा में कल्हण कृत 'राजतरंगिणी' एक अद्वितीय ग्रंथ माना जाता है। 12वीं शताब्दी (1150 ई.) में रचित यह संस्कृत कृति कश्मीर का प्रथम व्यवस्थित ऐतिहासिक आख्यान मानी जाती है। इसके लेखक कल्हण ने इस ग्रंथ को आठ भागों में (जिन्हें 'तरंग' कहा गया है) विभाजित किया है। 'तरंग' शब्द स्वयं इतिहास धारा की तरलता, उतार-चढ़ाव और निरंतर प्रवाह का प्रतीक है। पूरा ग्रंथ कुल मिलाकर लगभग 7,826 श्लोकों में रचा गया है, जो क्रमशः विभिन्न राजाओं, राजवंशों और राजनीतिक एवं सामाजिक उत्थान एवं पतन का विस्तृत विवरण प्रस्तुत करते हैं (गोयल, 2024)। यह ग्रंथ प्राचीन राजवंशों, राजनीतिक संघर्षों, सामाजिक परिवर्तनों तथा राज्य व्यवस्था के उत्थान-पतन का वर्णन तो करता ही है, साथ ही सत्ता संचालन में संचार की भूमिका को भी अप्रत्यक्ष रूप से अत्यंत तीक्ष्णता से उद्घाटित करता है। 'राजतरंगिणी' की रचना उस कश्मीर में हुई जो भौगोलिक रूप से पृथक्, राजनीतिक रूप से संवेदनशील और सांस्कृतिक रूप से बहुविध था। इस क्षेत्र में शत्रु आक्रमणों, राजवंशीय संघर्षों, मंत्रिपरिषद् की राजनीति और जनता की बदलती धारणाओं ने शासन प्रणाली को संचार पर निर्भर बना दिया। यहाँ संदेशवाहक दूत, गुप्तचर, राजकीय घोषणाएँ, अफवाहें, मानवीय प्रतिक्रियाएँ और जनभावनाएँ शासन की दिशा का निर्धारण करती थीं। कल्हण ने इन सभी संचार माध्यमों को केवल घटनाओं का सहायक तत्त्व नहीं माना, बल्कि उन्हें राज्य संचालन के वास्तविक नियंत्रण तंत्र के रूप में चित्रित किया है।

यहाँ संचार केवल सूचना का आदान-प्रदान नहीं, बल्कि वह शक्ति है जो

प्रतिष्ठा गढ़ती है, जन-विश्वास उत्पन्न करती है, संकटों को रूपांतरित करती है और सत्ता की वैधता स्थापित करती है। इस अर्थ में 'राजतरंगिणी' भारत की वह कृति है, जो आधुनिक 'स्ट्रेटिजिक कम्युनिकेशन', 'परसेप्शन बिल्डिंग', 'नैरेटिव क्राफ्टिंग' और 'लेजिटिमेसी फॉर्मेशन' जैसे सिद्धांतों का प्रारंभिक और स्वाभाविक स्वरूप प्रस्तुत करती है।

'राजतरंगिणी' में अनेक स्थानों पर कल्हण यह संकेत करते हैं कि राजा की प्रतिष्ठा केवल उसके पराक्रम पर निर्भर नहीं थी, बल्कि इस बात पर आधारित थी कि उसकी छवि किस प्रकार संप्रेषित की जाती है और जनता उसे किस भाव में ग्रहण करती है। राजकीय आदेशों की भाषा, दूतों द्वारा दिए जाने वाले संदेश, जनता में फैलने वाली चर्चाएँ, शत्रु के प्रति भेजे गए कूट संकेत, सैनिकों को प्रेरित करने वाले वक्तव्य और मंत्रिमंडल में होने वाले संवाद सभी संचार के विविध रूप हैं, जिनसे राजनीतिक दिशा निर्मित होती है। इसी कारण संचार केवल माध्यम नहीं, बल्कि सत्ता के संचालन का केंद्रीय तत्त्व बन जाता है। प्रस्तुत शोध का उद्देश्य इसी अंतर्निहित संचार तंत्र को समझना है, जिसमें 'राजतरंगिणी' के भीतर संदेश प्रवाह, सूचना प्रबंधन, प्रतिष्ठा निर्माण और राजनीतिक प्रभाव उत्पन्न करने की प्रक्रिया स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। यह दृष्टिकोण इस समझ को दृढ़ करता है कि कोई भी शासन केवल शक्ति से नहीं चलता, बल्कि उस ख्याति से चलता है, जो जनता के मानस में संचारित होती है। अतः 'राजतरंगिणी' का प्रस्तुत अध्ययन यह स्थापित करता है कि भारतीय राजनीति में संचार ही वैधता, स्थिरता और प्रभावोत्पादन का मूलाधार था और यही इसे भारतीय इतिहास लेखन का एक संचार प्रधान प्रमाण ग्रंथ बनाता है।

साहित्य समीक्षा

कल्हणकृत 'राजतरंगिणी' का अधिकांश अध्ययन इसे कश्मीर के ऐतिहासिक और काव्यिक स्रोत के रूप में ही देखता है, जबकि इसमें निहित दूत व्यवस्था, गुप्तचर तंत्र, राजाज्ञा प्रसार और जनधारणा नियंत्रण जैसे संचार आधारित तत्वों पर शोध अत्यल्प है। आधुनिक 'रणनीतिक संप्रेषण' की अवधारणा से इन आयामों का प्रत्यक्ष संबंध अभी तक व्यवस्थित रूप से स्थापित नहीं किया गया, जिससे इस क्षेत्र में स्पष्ट शोध की रिक्तता बनी हुई है। भारतकोश 'राजतरंगिणी' को कश्मीर का प्रथम व्यवस्थित इतिहास मानते हुए यह स्वीकार करता है कि कल्हण घटनाओं को केवल ऐतिहासिक वृत्तांत के रूप में नहीं, बल्कि राजनीतिक, सामाजिक और नैतिक संकेतों के विस्तृत संचार-तंत्र में गूँथकर प्रस्तुत करते हैं। श्रुतिदेव शास्त्री द्वारा अनूदित 2016 के दोनों खंड यह समझ विकसित करते हैं कि राजकीय दूत, राजपत्र, सभा-मंत्रणा, सार्वजनिक घोषणाएँ, धार्मिक अनुष्ठान, दान-व्यवस्थाएँ, विवाह-संधियाँ और शाही उपहार वास्तव में उस समय के योजनाबद्ध संचार उपक्रम थे, जिनके माध्यम से सत्ता की वैधता और प्रभाव का निर्माण होता था।

गोयल (2024) के विवेचन में स्पष्ट किया गया है कि कल्हण का वर्णन राजनीतिक घटनाओं को सूचना संचालित सत्ता व्यवस्था के रूप में देखने का एक विशिष्ट दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है, जहाँ भाषा, रूपक, संकेत और प्रतीक सत्ता संरचना के संचार उपकरण बन जाते हैं। ड्राइडन (2017) के संचार विज्ञान संबंधी ग्रंथों में 'रणनीतिक संप्रेषण' को विशेष लक्ष्य प्राप्ति हेतु संदेशों और प्रतीकों के सुनियोजित प्रयोग, भाव निर्मिति और सूचना नियंत्रण के रूप में परिभाषित किया गया है; इस अवधारणा के आलोक में 'राजतरंगिणी' का पुनःपाठ यह प्रमाणित करता है कि कल्हण का इतिहास वस्तुतः सत्ता संचालन में संचार नीति का अभिनव उदाहरण है। प्रथम खंड में वर्णित दूत प्रणाली, मंत्रिपरिषदों की गोपनीय चर्चाएँ और जनता के असंतोष व समर्थन का अनुमान दर्शाता है कि शासन की दिशा सूचना प्रवाह से निर्धारित होती थी, जबकि दूसरे खंड के गुप्तचर तंत्र, युद्ध पूर्व संदेश विन्यास और भू-राजनीतिक संकेत यह प्रदर्शित करते हैं कि संचार सत्ता की सामरिक शक्ति का केंद्र भी था। विवाह संधियाँ, भूमि दान, धार्मिक अनुष्ठान और उपहार परंपरा कूट संकेतों के रूप में प्रयुक्त होकर राजनीतिक संदेशों का प्रसार करती थीं; और, शासकों द्वारा अपने नैतिक, दैवी या वीरतापूर्ण चित्रण का निरंतर प्रयास जनमानस को प्रभावित करने वाली योजनाबद्ध कथा रणनीति थी, जिसका आधुनिक प्रचार तकनीकों से स्पष्ट साम्य मिलता है।

प्राचीन भारतीय नीतिशास्त्र जैसे कौटिल्य, मत्स्यपुराण और मनुस्मृति में भी दूत नीति, गुप्तचर तंत्र और संदेश व्यवस्था के सिद्धांत मिलते हैं, किंतु इन सिद्धांतों को 'राजतरंगिणी' के विशद और जीवंत राजनीतिक प्रसंगों से जोड़ने का व्यवस्थित प्रयास अब तक नहीं हुआ है। अतः यह अध्ययन 'राजतरंगिणी' को संचार विज्ञान की दृष्टि से पुनःपाठ कर उसकी रणनीतिक संचार संरचना को पहचानने का एक नवोन्मेषी अकादमिक योगदान है। उक्त सभी स्रोतों को एक साथ देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि 'राजतरंगिणी' में संचार तीन स्तरों पर सक्रिय है : राजकीय संचार (दूत, राजाज्ञाएँ, मंत्रणा); सामरिक संचार (गुप्तचर, गुप्त सूचनाएँ, युद्ध संदेश); और, सांस्कृतिक-प्रतीकात्मक संचार (विवाह, दान, धार्मिक भाषा और अनुष्ठान) आदि। इन तीनों का समन्वित प्रभाव यह सिद्ध करता है कि भारत में सत्ता केवल बल से नहीं, बल्कि संचार की सूक्ष्म, योजनाबद्ध और बहुस्तरीय रणनीतियों से संचालित होती थी, और इसी कारण 'राजतरंगिणी' रणनीतिक संप्रेषण का

अद्वितीय और महत्वपूर्ण ऐतिहासिक उदाहरण प्रस्तुत करती है।

शोध उद्देश्य

1. 'राजतरंगिणी' में निहित संचार प्रणालियों, संदेश प्रवाह, सूचना-प्रबंधन और राजनीतिक प्रभाव निर्माण की रणनीतियों की पहचान एवं उनका विश्लेषण करना।
2. यह स्पष्ट करना कि कल्हण किस प्रकार संचार को सत्ता संरचना, नैतिक आचरण, कूटनीति और सामाजिक स्थिरता से जोड़ते हैं तथा यह संचार तंत्र राज्य संचालन को किस प्रकार प्रभावित करता है।

शोध प्रश्न

1. 'राजतरंगिणी' में संचार के कौन-कौन से स्वरूप (घोषणाएँ, अफवाहें, कूट संदेश, राजनीतिक संवाद आदि) रणनीतिक संप्रेषण के रूप में प्रकट होते हैं?
2. कल्हण द्वारा वर्णित घटनाओं और पात्रों में रणनीतिक संप्रेषण किस प्रकार सत्ता प्राप्ति, सत्ता संरक्षण, वैधता निर्माण और जनविश्वास पर प्रभाव डालता है?

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध-पत्र की प्रविधि गुणात्मक, पाठ आधारित और विमर्शात्मक है। अध्ययन में सर्वप्रथम 'राजतरंगिणी' के मूल पाठ का पाठ-समालोचनात्मक विश्लेषण किया गया, जिसमें उन प्रसंगों, संवादों, दूत व्यवस्थाओं, राजकीय आदेशों, कूट-संदेशों, अफवाहों और धार्मिक अनुष्ठानों की पहचान की गई, जो सत्ता संचालन में संचार को सक्रिय बनाते हैं। इसके बाद कल्हण की वर्णन शैली, कथा संरचना और सूचना प्रवाह की तकनीकों का विश्लेषण रणनीतिक संप्रेषण के सैद्धांतिक ढाँचे में किया गया, ताकि यह समझा जा सके कि संचार किस प्रकार सत्ता-निर्माण, वैधता संरक्षण, राजनीतिक प्रभावोत्पादन और सामाजिक स्थिरता को निर्धारित करता है। संपूर्ण प्रविधि का केंद्रीय उद्देश्य यह है कि 'राजतरंगिणी' में निहित संचार-तंत्रों को सीधे पाठ के भीतर से पहचान कर उनका सुसंगत, सैद्धांतिक और संरचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया जाए।

'राजाओं की तरंग', अर्थात् 'राजतरंगिणी' नाम में ही यह संकेत निहित है कि इतिहास किसी स्थिर रचना का नहीं, बल्कि निरंतर प्रवाहित होने वाली सत्ता और समाज की लहरों का दर्पण है। कल्हण द्वारा 12वीं शताब्दी के मध्य में संस्कृत में रचित यह महाकाव्यात्मक ग्रंथ आठ 'तरंगों' में संरचित है और प्रत्येक तरंग सत्ता परिवर्तन, सामाजिक तनाव, कूटनीतिक प्रयास और जनभावनाओं की व्याख्या को एक नई दिशा प्रदान करती है। 'तरंग' शब्द केवल ग्रंथ की संरचना नहीं है, बल्कि समय, शासन और मानवीय क्रियाओं के उत्थान और अवसान की लय का प्रतीक है। यह ग्रंथ केवल इतिहास का कालक्रम नहीं, बल्कि संचार, सत्ता और समाज की अंतर्वर्ती गतियों का साक्ष्य प्रस्तुत करने वाली अद्वितीय कृति है। कल्हण इतिहास को साधारण राजकीय वृत्तांत के रूप में नहीं देखते, बल्कि उसे संदेश, धारणाओं, प्रतीकों और संवादों के माध्यम से संचालित सत्ता का अध्ययन मानते हैं।

सामाजिक एवं राजनीतिक अंतःक्रियाओं का सूक्ष्म विवेचन

भारतीय इतिहास लेखन में 'राजतरंगिणी' अद्वितीय ग्रंथ है, क्योंकि यह

केवल राजाओं के उत्थान एवं पतन का कालक्रम नहीं, बल्कि सत्ता संरचना, संचार योजना और सामाजिक एवं राजनीतिक अंतःक्रियाओं का अत्यंत सूक्ष्म विवेचन प्रस्तुत करता है। कल्हण घटनाओं का वर्णन करते समय केवल बाहरी राजनीतिक गतिविधियों को नहीं दिखाते, बल्कि सत्ता के भीतर सक्रिय उन संचार-तंत्रों का अनावरण करते हैं, जिनके माध्यम से राजकीय निर्णय, जनमत, दमन, प्रतिरोध, छवि निर्माण और नैतिक वैधता निरंतर गढ़ी जाती थी। आधुनिक संदर्भ में जिसे रणनीतिक संप्रेषण (उद्देश्यपूर्ण, योजनाबद्ध और बहुस्तरीय संचार) कहा जाता है, यह संपूर्ण रूप में प्राचीन कश्मीर की राजनीतिक संरचना में विद्यमान था, जैसा कि कल्हण के वृत्तांतों में स्पष्ट दिखता है।

कल्हण के वर्णनों में संचार न तो केवल प्रशासनिक आदेशों तक सीमित है, न ही केवल सूचना के आदान-प्रदान का माध्यम। यह राजकीय शक्ति का मूलभूत आधार (कभी दूत प्रणाली के रूप में, कभी जासूसी नेटवर्क के रूप में, कभी धार्मिक दान और अनुष्ठानों के प्रतीकात्मक संदेशों के रूप में, तो कहीं अफवाह, लोक अपवाद और सामाजिक दबाव जैसे अदृश्य माध्यमों के रूप में) है। राजा नर की दूत नीति, उसकी इच्छाओं का संदेश बनकर नागकन्या तक पहुँचना, और फिर दमनकारी आदेशों का हिंसक संचार में बदल जाना; या नागराज सुश्रवस् द्वारा प्रतिकारात्मक वज्र वर्षा, ये सभी उदाहरण दिखाते हैं कि सत्ता और संचार एक-दूसरे से गहराई से जुड़े थे और संचार के दुरुपयोग से व्यापक सामाजिक संकट उपज सकता था। इसी प्रकार, दामोदर जैसे राजाओं द्वारा सार्वजनिक दान, मंदिर निर्माण, पुल निर्माण और धार्मिक अनुष्ठानों का आयोजन भी 'उपकार संचार' और 'वैधता निर्माण' का साधन था, जिसके माध्यम से राजा जनता के मन में अपनी अनुकूल छवि स्थापित करते थे। कल्हण यह भी दिखाते हैं कि गुप्त संचार जैसे षड्यंत्र, दूतों की गोपनीय यात्राएँ, मंत्रियों की चालें, छिपे हुए संदेश या तांत्रिक उपाय, राजनीतिक स्थिरता और अस्थिरता दोनों को नियंत्रित करते थे। कई अवसरों पर गलत सूचना, विलंबित संदेश या अफवाहें युद्ध के परिणाम तक बदल देती हैं। यह मध्यकालीन 'सूचना विफलता' का स्पष्ट रूप है, जो आज भी राजनीतिक और सैन्य अध्ययन का मुख्य विषय है। इसके विपरीत, कुछ स्थानों पर राजाओं की छवि जनता में केवल इस कारण टिकती है कि उनका संचार स्पष्ट, समयबद्ध और प्रतीकात्मक रूप से प्रभावी था; उदाहरण के लिए शिलान्यास, नगर-निर्माण, विहारों की स्थापना या दान की सार्वजनिकता।

कल्हण के अनुसार, संचार सत्ता की वैधता का केंद्र है। यदि राजा जनता से कट जाए, आदेश अस्पष्ट हों, निर्णय गुप्त रखे जाएँ या नैतिक संचार जैसे धर्म, दया, न्याय और सामाजिक उत्तरदायित्व की अवहेलना हो, तो सत्ता की जड़ें स्वतः क्षीण होने लगती हैं। अनेक अवसरों पर यह भी स्पष्ट होता है कि सत्ता की सबसे बड़ी कमजोरी वही बनती है, जहाँ संचार-तंत्र टूटा हुआ होता है। सेवकों का द्रोह, मंत्रियों का षड्यंत्र, शत्रुओं की गलतफहमी, जनता का भ्रम या दरबार में फैली परोक्ष सूचनाएँ राजसत्ता को गिरा तक देती हैं। अफवाहें, लोक अपवाद और सामाजिक मनोवृत्ति, जिन्हें आज 'परस्पेक्शन वॉफेयर' या 'मिसइनफॉर्मेशन' कहा जाता है, कल्हण की 'राजतरंगिणी' में अत्यंत शक्तिशाली तत्त्व हैं। कई बार जनता की धारणा ही राजा की सत्ता को बना या बिगाड़ देती है। इसी प्रकार धार्मिक चमत्कार, शाप, अनुष्ठान तथा ब्राह्मणों के सामूहिक निर्णय भी राजनीतिक संचार के रूप में कार्य करते थे। ये सभी स्पष्ट करते हैं कि प्राचीन कश्मीर की राजनीति में धर्म और संचार अभिन्न रूप से जुड़े हुए थे।

कुल मिलाकर 'राजतरंगिणी' में संचार का रूप बहु-आयामी (औपचारिक, अनौपचारिक, कूटनीतिक, सैन्य, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और प्रतीकात्मक) है। सत्ता का हर पक्ष निर्णय निर्माण, दंड प्रणाली, सैन्य अभियान, गठबंधन, छवि निर्माण, संकट प्रबंधन और राजकीय वैधता आदि संचार स्तरों पर आधारित था। कल्हण यह गहन सत्य प्रस्तुत करते हैं कि संचार शक्ति का उपकरण नहीं, स्वयं शक्ति है एवं राजनीति का अदृश्य केंद्र है। शासन संचार से ही चलता है, संचार से ही स्थिर होता है और संचार के विघटन से ही टूट भी जाता है। इस दृष्टि से 'राजतरंगिणी' केवल ऐतिहासिक ग्रंथ नहीं, बल्कि प्राचीन भारत में रणनीतिक संप्रेषण के सबसे सुविस्तृत, सुसंगठित और गहरे विश्लेषण का स्रोत है। जहाँ संचार राज्य, समाज और सत्ता को जोड़ने वाली निर्णायक जीवन रेखा के रूप में उपस्थित है।

कल्हण द्वारा प्रस्तुत 'राजतरंगिणी' के श्लोक 247-276 में रणनीतिक संप्रेषण का जटिल रूप स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, जहाँ सत्ता, दमन, संदेश का प्रवाह और जनधारणा एक-दूसरे से गुंथे हुए हैं। नागकन्या पर राजा नर का आकर्षण एक निजी इच्छा होते हुए भी धीरे-धीरे राजकीय अधिकार में परिवर्तित होता है, और इस परिवर्तन की प्रक्रिया संचार आधारित दबाव रणनीतियों के क्रमिक रूप से आगे बढ़ने (पहले परोक्ष संकेत, फिर दूतों द्वारा इच्छा की अभिव्यक्ति और अंततः दमनकारी आदेश (श्लोक 247-256)) से निर्मित होती है। दूतों का प्रयोग यहाँ औपचारिक राजकीय संचार-तंत्र का प्रतिनिधित्व करता है, जहाँ राजा अपना 'अभिप्राय' दूतों के माध्यम से नागकन्या तक पहुँचाता है (श्लोक 254)। इसी क्रम में लोक अपवाद (जनमत) भी संचार का एक अनौपचारिक, किंतु शक्तिशाली माध्यम रूप में उभरता है, जिसे राजा नर नियंत्रित नहीं कर पाता (श्लोक 251)। कल्हण यह भी संकेत करते हैं कि प्रतीकात्मक संकेत जैसे घोड़े पर पड़ी सुनहली छाप, राजकीय कामनाओं के लिए संचार का माध्यम तक बन जाते हैं (श्लोक 253)। जब दूत-प्रेषण और वार्ता असफल हो जाती है, तब राजा द्वारा सैनिकों को दिया गया कठोर आदेश संचार के हिंसक रूप को प्रकट करता है (श्लोक 255-256)।

इसके प्रतिवाद में नागकन्या का पति घर छोड़ देता है, जिससे स्पष्ट होता है कि शरण ग्रहण, पलायन और स्थान परिवर्तन भी संचार-संकट की सामाजिक प्रतिक्रियाएँ थीं (श्लोक 257)। तत्पश्चात् नाग सुश्रवस् तक यह अपमान की सूचना पहुँचती है, जो प्रतिकारात्मक संचार का स्वरूप ग्रहण करती है और उसके वज्र-वर्षण रूपी दंड क्रिया में परिणत होती है (श्लोक 258-259)। यह पूरा प्रसंग बताता है कि अत्याचारपूर्ण संचार और दमनकारी संदेश नीति किस प्रकार प्रतिरोध, विद्रोह तथा सामाजिक विनाश (झेलम का रक्त से भर जाना इसी सामूहिक दंड का प्रतीकात्मक रूप है) को जन्म देती है (श्लोक 259-262)। नागी रमणी द्वारा पर्वतीय शिलाओं का उपयोग भी शक्ति प्रदर्शन और चेतावनी के प्रतीकात्मक संचार का उदाहरण है (श्लोक 263-265)।

कल्हण आगे बताते हैं कि लोक अपवाद, धर्म सम्मत नैतिक संचार, और जनभावना की अनदेखी सत्ता के पतन का कारण (राजा नर के अंत के साथ यह नैतिक संदेश स्पष्ट रूप से उपस्थित है) बनती है (श्लोक 271-272)। अंततः सिद्ध नामक राजा द्वारा प्रजा का पुनर्नवीकरण यह संकेत करता है कि राज्य पुनर्निर्माण भी एक संचार आधारित प्रक्रिया है, जहाँ शासन को पुनः सुव्यवस्थित प्रशासनिक और सामाजिक संप्रेषण तंत्र स्थापित करने होते हैं (श्लोक 276)। इस प्रकार श्लोक 247-276 में संदेश प्रवाह, सूचना प्रबंधन,

जन धारणा, दूत प्रणाली, दमनात्मक आदेश, प्रतीकात्मक संकेत, प्रतिरोधी संचार, नैतिक प्रतिक्रिया तथा पुनर्स्थापनात्मक संचार आदि सभी वे तत्त्व मौजूद हैं, जो रणनीतिक संप्रेषण की अवधारणा को पूर्णतः प्रत्यक्ष करते हैं और यह प्रमाणित करते हैं कि कल्हण संचार को सत्ता संरचना, नैतिक आचरण और सामाजिक स्थिरता का मूल आधार मानते हैं।

कल्हण द्वारा वर्णित श्लोकों (148-177) में राजाओं के धार्मिक दान, सार्वजनिक अनुष्ठानों और सामाजिक संबद्धताओं को सत्ता संचार के प्रभावी माध्यम के रूप में प्रस्तुत किया गया है। राजा द्वारा प्रस्तर प्रासादों का निर्माण, रत्नजटित भूमि का दान और नन्दीश्वर की दीर्घकालिक कामनाओं की पूर्ति (श्लोक 148-150) सत्ता संरचना में धार्मिक प्रतीकों के माध्यम से जनमानस को प्रभावित करने वाली रणनीतिक संप्रेषण प्रक्रिया को दर्शाते हैं। सरोवर उद्भव महोत्सव में अपने अन्तःपुर की स्त्रियों को देवता को समर्पित करना (श्लोक 151) भी प्रतीकात्मक संचार का विशिष्ट रूप है, जिसके द्वारा राजा अपनी भक्ति, दानशीलता और धार्मिक वैधता को सार्वजनिक रूप से स्थापित करता है। दामोदर राजा का प्रभाव, जो सदियों बाद भी लोक-आद्भुत के रूप में स्मरण किया जाता है (श्लोक 154-155), यह स्पष्ट करता है कि शासक अपनी छवि निर्मिति, दान नीति और धार्मिक राजनीतिक आचरण के माध्यम से दीर्घकालीन सामाजिक स्मृति का निर्माण कर सकता है। पुल, बाँध और सेतु निर्माण (श्लोक 156-159) केवल लोकहितकारी प्रशासनिक कार्य नहीं थे, बल्कि इन्हें सत्ता द्वारा संचरित 'उपकारात्मक संदेश-प्रवाह' के रूप में भी देखा जा सकता है, जो जनता के सामने राज्य को रक्षक, संरक्षक और करुणाशील शक्ति के रूप में प्रस्तुत करते हैं।

इसके विपरीत, ब्राह्मणों के प्रभाव, शाप और तांत्रिक-धार्मिक दंड के कारण राजा का पतन (श्लोक 160-167) यह दर्शाता है कि कल्हण संचार को केवल राजकीय उपकरण नहीं मानते; उनके लिए धार्मिक प्राधिकार, नैतिक दंड, लोक विश्वास और चमत्कारी संचार भी समान रूप से प्रभावी राजनीतिक शक्तियाँ हैं। ब्राह्मणों द्वारा नदी की अद्भुत उपस्थिति कराना (श्लोक 163-164) और असम्मान के कारण राजा को शाप देना इस बात का प्रमाण है कि प्राचीन कश्मीर में धार्मिक एवं सामाजिक संचार राजनीतिक निर्णयों और राजकीय आचरण को गहराई से नियंत्रित करता था। आगे हुष्क, जुष्क और कनिष्क आदि राजाओं द्वारा नगरों, विहारों, चैत्य और बौद्ध संस्थानों का निर्माण (श्लोक 168-171) यह बताता है कि स्थापत्य निर्माण, बौद्ध संरक्षण और धर्म संस्थाओं का संवर्धन भी सत्ता का दीर्घकालिक संदेश था, जिसके द्वारा शासक स्वयं को पुण्यप्रधान, सांस्कृतिक संरक्षक और धर्मोपासक के रूप में स्थापित करते थे। इसी क्रम में नागार्जुन जैसे बोधिसत्त्व राजा (श्लोक 173) अथवा अभिमन्यु द्वारा आगमिक साहित्य, व्याकरण और बौद्ध तंत्र का प्रवर्तन (श्लोक 174-176) यह सूचित करता है कि ज्ञान व्यवस्था, शास्त्रीय कर्म और दार्शनिक दिशा निर्देशन भी राज्य प्रेरित संचार के महत्वपूर्ण अंग थे, जिनके माध्यम से शासक अपनी विचारधारा का व्यापक प्रसार करते थे।

इन समस्त प्रसंगों से स्पष्ट है कि कल्हण संचार के औपचारिक, अनौपचारिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और प्रतीकात्मक सभी रूपों को सत्ता संरचना, नैतिक अनुशासन और सामाजिक स्थिरता के लिए अनिवार्य मानते हैं और इसी कारण 'राजतरंगिणी' रणनीतिक संप्रेषण के अध्ययन के लिए एक अद्वितीय और समृद्ध ऐतिहासिक स्रोत बन जाती है।

'राजतरंगिणी' के श्लोक (69-129 एवं 190-199) में कल्हण सत्ता

संचार की जटिलता, दरबारी संबंधों की गुप्त राजनीति, जनमत, संकेत व्यवहार और दुष्प्रचार की शक्ति को अत्यंत सूक्ष्मता से प्रस्तुत करते हैं। राजा यशस्कर का डोमों और अपवित्र संसर्ग से जुड़ा व्यवहार (श्लोक 69, 84) उसके राजनीतिक 'संचार-चरित्र' को क्षति पहुँचाता है, जिससे जनधारणा उसके विरुद्ध हो जाती है। नगराधिकारियों द्वारा धन-संग्रह (श्लोक 70) और शपथ-भंग की घटनाएँ (श्लोक 71) राजकीय संपर्क-संरचना की विफलताओं को दिखाती हैं। लल्ला वेश्या और चंडाल युवक के गुप्त संकेतों, आँखों की भाषा तथा मध्यस्थ 'हाडी' द्वारा उसका अनावरण (श्लोक 77-82) यह दर्शाता है कि प्राचीन कश्मीर में अवैध संबंध भी गोपनीय संचार की विशिष्ट प्रणाली से चलते थे और सत्ता के लिए खतरा बन जाते थे।

राजा द्वारा अपराधिनी को न मारना (श्लोक 83) नैतिक संचार के स्तर पर उसे दोषारोपण का पात्र बनाता है। इसके बाद राजा का साम्राज्य ब्राह्मणों को सौंप देना (श्लोक 85-88) 'प्रायश्चित्त संचार' का उदाहरण है, जहाँ सत्ता एक प्रतीकात्मक दान बन जाती है। पुत्र संक्रमण, उत्तराधिकार, षड्यंत्र और राज्याभिषेक के प्रसंग (श्लोक 90-97) बताते हैं कि सूचना प्रबंधन, सलाहकारों की चाल, संदेशों की गुप्त अदला-बदली और भ्रम का निर्माण राजनीतिक सत्ता के मूल उपकरण थे। सेवकों की द्रोह प्रवृत्ति, प्रतिज्ञा भंग और अंततः राजा की मृत्यु हेतु विषप्रयोग (श्लोक 102-106) दर्शाते हैं कि अंदरूनी संचार जाल किस प्रकार सत्ता को भीतर से नष्ट करता है। इसी प्रकार पर्वगुप्त का जन समर्थन अर्जित करने हेतु स्वयं को 'राजा और राजानक' दोनों रूपों में प्रस्तुत करना (श्लोक 117), शिशु राजा की सेवा का सार्वजनिक नाटक (श्लोक 118) तथा गुप्त तांत्रिक उपायों और दैवी भविष्यवाणियों का प्रयोग (श्लोक 121-123) राजकीय संचार के नाटकीय और प्रतीकात्मक स्तरों को उजागर करते हैं।

हिमपात के दिन राजधानी को घेरना और मंत्री वध के बाद सिंहासन हरण (श्लोक 124-129) संकट-संचार और सैन्य संदेश रणनीति का स्पष्ट उदाहरण हैं। बाद के प्रसंगों (श्लोक 190-199) में अग्निकांड का उपयोग 'राजकीय शुद्धि' के प्रतीक के रूप में तथा राजमाता के मन में मंत्री के विरुद्ध शंका रोपने हेतु दुष्प्रचार का प्रयोग यह दर्शाता है कि राजनीतिक संचार कभी-कभी अफवाह, मनोवैज्ञानिक संकेत और भावनात्मक वशीकरण पर आधारित होता था। फल्गुण जैसे मंत्रियों का प्रभाव, राजा की दुर्बलता और राजनीतिक प्रतिस्पर्धा में संचार का भय कारक रूप यह सिद्ध करता है कि कल्हण सत्ता व्यवस्था को केवल प्रशासनिक ढाँचा नहीं, बल्कि संचार-आधारित मनोवैज्ञानिक संरचना के रूप में देखते हैं।

'राजतरंगिणी' में वर्णित प्रसंगों में (श्लोक 1-8, 13-19, 372-381, 1188-1197, 225-234, 1041-1050, 2578-2587, 3001-3009, 3142-3151) कल्हण सत्ता संरचना के भीतर चलने वाली बहुस्तरीय संचार प्रणालियों का अत्यंत सूक्ष्म चित्र प्रस्तुत करते हैं। रानी दिदा द्वारा संग्रामराज और तुङ्ग को परस्पर स्नेहपूर्वक रहने की शपथ दिलवाना (कोश पान, श्लोक 8) शपथ अनुष्ठान को एक नैतिक राजनीतिक संचार उपकरण के रूप में दिखाता है, जिसके द्वारा भविष्य के आचरण पर वैचारिक नियंत्रण स्थापित किया जाता है। आगे ब्राह्मण मंत्रियों द्वारा परिहासपुर में ब्राह्मण परिषद् के प्रायोपवेशन का आयोजन (श्लोक 13-15) राजसत्ता पर दबाव बनाने वाली संगठित प्रतीकात्मक संचार रणनीति है, जहाँ सामूहिक उपवास, शव यात्रा और केश होम के माध्यम से नैतिक आक्रोश को सार्वजनिक रूप देकर राजनीतिक निर्णय (तुंग का निष्कासन) करवाया जाता है (श्लोक 17-

19)। सूर्यमती द्वारा विश्वस्त ब्राह्मण दूतों के माध्यम से पुत्र कलश को युद्ध से रोकने हेतु भेजा गया गुप्त संदेश (श्लोक 372-381) संकट प्रबंधन और सलाह संचार का श्रेष्ठ उदाहरण है, जिसमें वह भाग्य, धर्म, पिता पुत्र संबंध, और सेनाबल से तुलना के तर्कों से पुत्र की युद्ध इच्छा को प्रभावित करती है।

मधुमती नदी के युद्ध वर्णन (श्लोक 1188-1197) में भग्न अनुशासन, डूबते सैनिकों और बिखरी सेना का चित्र यह दर्शाता है कि रण संचार के टूटने से सत्ता की सैन्य क्षमता क्षणभर में ध्वस्त हो जाती है; वहीं मल्लपुत्रों का अकेले टिके रहना नेतृत्व संचार की दृढ़ता को दर्शाता है। राजनैतिक उत्तराधिकार के प्रसंग में शिशु राजकुमार को नदी में फेंककर बचाना, देशांतर में आश्रय देना और पुनः प्रवेश रोकने हेतु सीमावर्ती राजाओं से गुप्त संधियाँ करना (श्लोक 225-231) कल्हण के कूट-संचार, गोपनीय संदेश प्रवाह और राजनैतिक संतुलन निर्माण के गहरे बोध को व्यक्त करता है। भिक्षाचर की मृत्यु के बाद उसके नाम पर अन्य शिशु को प्रतिष्ठित कर देना (श्लोक 233-234) यह सिद्ध करता है कि नाम प्रतिष्ठा स्वयं एक संचार निर्मित सत्ता पूँजी है, जो तथ्य और मिथ्या से परे सामाजिक स्वीकृति अर्जित कर लेती है।

उल्हण, सिंब आदि के दमन और बंधन (श्लोक 1041-1046), राजसेवकों का शंका के कारण राजा को छोड़कर शत्रु-शरण में जाना (श्लोक 1047-1049), तथा शासन का भय आधारित संचार नेटवर्क यह स्पष्ट करता है कि जब राजकीय संचार विश्वास के स्थान पर आशंका पर आधारित हो जाए, तो निष्ठा स्वतः नष्ट होती है। सल्हण पुत्र के रात्रि प्रस्थान, अग्नि से प्रदीप्त दुर्ग, स्त्रियों की रोक-टोक, और डामर प्रमुख के साथ गुप्त सुरंग से पलायन का प्रसंग (श्लोक 2578- 2587) घिरे हुए पक्ष की गुप्त सूचना प्रणाली, गोपनीय मार्गों और संकट संचार की अत्यधिक परिष्कृत संरचना का उदाहरण है। भोज, राजवदन और खशवासियों की कथा (श्लोक 3001-3007) शंका, छल, शर्त पत्र और रक्त चर्म पर शपथ जल पीने जैसी विधियों के माध्यम से राजनीतिक विश्वास निर्माण और भय निवारण की प्रक्रिया को दर्शाती है; सिंहदेव का विषाद में भी कर्तव्य और विजय विधान पर दृढ़ रहना (श्लोक 3008-3009) आदर्श राजकीय संचार आचरण का परिचायक है।

अंततः, संध्या रूपक, राजा के उदय और अस्त का दृश्य, डामरों के विरुद्ध भेजे गए आदेश पत्र, नदी तट पर असहाय मंत्रिगण तथा शत्रु द्वारा पुनर्घेरा (श्लोक 3142-3151) यह दिखाता है कि संकट काल में राजसत्ता का अधिकांश कार्य दूत संचार, गोपनीय आदेश, युद्ध संकेत और प्रतीकात्मक संदेशों के माध्यम से संचालित होता है। इन समस्त प्रसंगों से स्पष्ट रूप से सिद्ध होता है कि कल्हण के लिए संचार केवल वर्णन की विधा नहीं, बल्कि सत्ता निर्माण, वैधता प्रतिष्ठा, दंड विधान, युद्ध नीति, षड्यंत्र, और राजकीय स्मृति निर्माण का केंद्रीय आधार है। यही 'राजतरंगिणी' को रणनीतिक संप्रेषण के अध्ययन के लिए एक अद्वितीय प्राचीन स्रोत बनाता है।

रणनीतिक संप्रेषण (स्ट्रैटेजिक कम्युनिकेशन) का विश्लेषण

'राजतरंगिणी' के चौथे तरंग के श्लोक 404-408 में कश्मीर के राजनीतिक जीवन में संचार की रणनीतिक भूमिका को कल्हण अत्यंत स्पष्टता के साथ उभारते हैं। संचार यहाँ केवल सूचना-प्रेषण नहीं, बल्कि सत्ता के निर्णय, वैधता और सामरिक व्यवहार को निर्देशित करने वाले एक व्यवस्थित तंत्र के रूप में उभर कर सामने आता है।

स्वदेशादेव नयविद् वशं नीतैः समं नृपैः ॥

वृद्धान् पप्रच्छ निर्गच्छन् कश्मीरद्वार गोचरान् ॥404॥

इस बात का संकेत देता है कि राजा अपने अधीनस्थ नृपतियों तथा विश्वसनीय व्यक्तियों के साथ प्रस्थान करते समय कश्मीर द्वार पर स्थित वृद्धों से परामर्श करता है। यह संवाद सामान्य सूचना-संग्रह नहीं, बल्कि सिचुएशनल अवेयरनेस कम्युनिकेशन (सिचुएशनल अवेयरनेस कम्युनिकेशन) का रूप है, जिसके माध्यम से वह जन-स्मृति और अनुभवाधारित सामरिक जानकारी प्राप्त करता है। यह प्राचीन शासनव्यवस्था में इंटेलिजेंस आधारित संचार का संकेतक है।

इसी क्रम में श्लोक 405 है :

पितामहस्य नः सैन्यं कियन्निर्गच्छतोऽभवत् ॥

इतिबूताद्य यात्रासु यूयं संख्यात सैनिकाः ॥405॥

यह श्लोक दर्शाता है कि राजा अपने पितामह के सैन्य-विन्यास के बारे में वृद्धों से प्रश्न करता है। यह केवल सेना की संख्या जानने का प्रयत्न नहीं, बल्कि 'हिस्टोरिकल नैरेटिव बिल्डिंग' का रूप है, जिसके माध्यम से राजा अपनी विजय यात्रा को पूर्वजों की परंपरा से जोड़कर वैधता-निर्माण करता है। यह सत्ता की परंपरागत छवि-निर्माण के लिए प्रयुक्त एक रणनीतिक संदेश है। वृद्धों का उत्तर श्लोक 406 में इस प्रकार है:

कृतस्मितास्तमूचुस्ते किं प्रश्नेनामुना प्रभो ॥

वस्तु कश्चिदतिक्रान्तं नानुकर्तुं क्षमोऽधुना ॥406॥

यह स्पष्ट रूप से बताता है कि संचार कभी एक-दिशीय नहीं होता। उनकी मुस्कान और कथन राजा के संदेश आशय को समझते हुए भी उसे स्वीकार न करने का संकेत है। यह कम्युनिकेटिव रेसिस्पेंस का प्राचीन उदाहरण है, जो दर्शाता है कि प्रजा की अनुभवी परत सत्ता संचालित संदेशों पर प्रतिक्रिया देने की क्षमता रखती थी। यह फीडबैक कम्युनिकेशन की ऐतिहासिक उपस्थिति को प्रमाणित करता है।

कर्णारिथानां तस्यासीत् सपादं लक्ष्मीशितुः ॥

अशीतिस्तु सहस्राणि देवस्याद्य जयोद्यमे ॥407॥

वृद्धों द्वारा दी गई तुलनात्मक सूचना केवल सैन्य सत्य का वर्णन नहीं, बल्कि राजा को यथार्थ बताने वाला रियलिटी-चेक मैसेजिंग है। यह संचार का वह रूप है, जिसमें काउंटर-नैरेटिव के माध्यम से राजा की भ्रम-प्रवृत्ति को दूर किया जाता है। इस प्रकार संचार का उद्देश्य निर्णय को यथार्थ के आधार पर पुनर्संरचित करना होता है।

तदाकर्ण्य जयापीडो बहु मने न निर्जयम् ॥

क्षिप्रं क्षितेः संकुचन्त्याः कालस्य बलवत्तया ॥408॥

यह दर्शाता है कि वृद्धों की सूचना सुनकर जयापीड की विजय धारणा परिवर्तित हो जाती है। यह संचार के माध्यम से उत्पन्न धारणा-परिवर्तन (परसेप्शन शिफ्ट) का प्रभाव है। यह प्रक्रिया आधुनिक स्ट्रैटेजिक रियलिज्म कम्युनिकेशन के समान है, जिसमें सटीक और यथार्थपरक सूचना नेतृत्व के निर्णय को अधिक व्यावहारिक बनाती है।

चौथे तरंग की ही तरह 'राजतरंगिणी' के पाँचवें तरंग के श्लोकों (51-60) में राजा, मंत्री शूर, डामर धन्व और स्थानीय धार्मिक-सामाजिक सत्ता-संरचना के बीच संचार का जटिल तंत्र स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आता है। श्लोक 51-52 में वर्णित है :

डामरो धन्वनामास्ति लहरे विषये बली ।

शूरस्य मन्त्रिणे देव सेवको यः सुतोपमः ॥51॥

हतेषु तेन ग्रामेषु निरवग्रहशक्तिना ।

निवेद्यमेतदेवास्मै भूतेशाय निवेद्यते ॥52॥

अर्थ : लहरे प्रदेश में धन्व नामक एक बलवान डामर था, जो मंत्री शूर का अत्यंत प्रिय अनुचर था और देवालय का सेवक भी। उसकी शक्ति का कोई प्रतिरोधी नहीं था, इसलिए उसने देवोत्तर ग्रामों पर अधिकार कर लिया। यह सब भूतेश्वर महादेव को चढ़ावे (सूचना-निवेदन) के रूप में प्रस्तुत किया जाता था।

श्लोक 53-54 में घटना की गंभीरता पर राजा और मंत्री की प्रतिक्रिया मिलती है—

अकाण्डशूलजनितां पार्थिवः कथयन्व्यथाम् ।

श्रुतमश्रुतवत्कृत्वा व्यक्तपूजोथ निर्ययौ ॥53॥

पूजां संत्यज्य गमनं शूलं चाकस्मिकं प्रभोः ।

सहेतुकं विदशूरो वृत्तान्तान्वेषकोऽभवत् ॥54॥

अर्थ : राजा अचानक उठे शूल की व्यथा कहकर सुनी बात अनसुनी कर तुरंत पूजा छोड़ बाहर निकल पड़ा। राजा का पूजा छोड़कर अचानक जाना और शूल का उठना, इन दोनों को शूर ने एक कारण-युक्त संकेत समझा और घटना की सच्चाई तलाशने लगा।

श्लोक 55-56 में शूर का दूत चालित निर्णयात्मक संचार दिखता है—

ज्ञाततत्त्वस्ततस्तूर्णं भूतेशाभ्यर्णवर्तिनः ।

क्रुद्धः समातृचक्रस्य भैरवस्याविशङ्गहम् ॥55॥

निषिद्धजनबाहुल्याद्धृत्वा विरलपार्श्वगः ।

प्राहिणोद्धन्वमानेतुं ततो दूतान्पुनः पुनः ॥56॥

अर्थ : भूतेश क्षेत्र के लोगों से वास्तविक जानकारी पाकर शूर क्रुद्ध हो गया और भाई-बंदों के साथ भैरव मंदिर में घुस गया। फिर वहाँ भीड़ हटाकर उसने बार-बार दूत भेजकर धन्व को बुलवाया।

श्लोक 57-58 में धन्व का आगमन और सार्वजनिक दमनात्मक कार्यवाई दर्ज है—

स क्षितिं पत्तिपृतनासमर्देन प्रकम्पयन् ।

अप्रकम्पतनुः प्राप क्रूरः शूरान्तिकं शनैः ॥57॥

तस्य प्रविष्टमात्रस्य शास्त्रिणः शूरचोदिताः ।

मुण्डं सजीवितस्यैव चिच्छिदुर्भैरवाग्रतः ॥58॥

अर्थ : धन्व पैदल सेना की भीड़ से भूमि को हिलाता हुआ, पर स्वयं ढीठ बना, धीरे से शूर के निकट पहुँचा, किंतु मंदिर में बैठते ही शूर के आदेश से शस्त्रधारियों ने भैरव के सामने ही उसका जीवित सिर काट दिया।

श्लोक 59-60 में इस घटना का राजनीतिक मानसिक प्रभाव सामने आता है—

आसन्ने सरसि क्षिप्त्वा रूधिरोद्गारि तद्रूपः ।

क्षमापतेः क्षालितामर्षो धीरः शूरो विनिर्ययौ ॥59॥

तस्य श्रुत्वा शिरश्छिन्नं स्वपुत्रस्येव मन्त्रिणा ।

क्षीणमन्युः क्षितिपतिः सवैलक्ष्य इवाभवत् ॥60॥

अर्थ : रक्त बहते उसके शरीर को पास के तालाब में फेंककर राजा के क्रोध को शांत करने के उद्देश्य से शूर धीरता से बाहर निकला। मंत्री द्वारा अपने पुत्र-तुल्य धन्व का सिर काटे जाने की सूचना सुनकर राजा आश्चर्य और संताप से भर गया।

उपर्युक्त श्लोकों में संचार सत्ता संचालन का केवल औपचारिक उपकरण नहीं, बल्कि राजनीतिक-रणनीति का अभिन्न घटक बनकर उभरता है। सबसे पहले, धन्व द्वारा देवोत्तर ग्रामों पर कब्जे की सूचना ‘भूतेशाय निवेद्यते’ के रूप में देवालय तंत्र को सूचित की जाती है, यह इनफॉर्मेशन रिले चैन

का पारंपरिक रूप है, जहाँ धार्मिक संस्थान राजनीतिक सूचना-प्रवाह का केंद्र थे। राजा का पूजा छोड़कर अचानक बाहर निकल जाना (श्लोक 53) एक सिमल-आधारित संचार (सिमल-बेस्ड कम्युनिकेशन) है, जिसका उद्देश्य मंत्रियों को परिस्थितिजन्य गंभीरता का संकेत देना है। इसे आधुनिक राजनीतिक सिद्धांत में नॉन-वर्बल स्ट्रेटजिक सिग्नलिंग कहा जाता है। शूर का तुरंत घटना की पड़ताल में लग जाना क्राइसिस कम्युनिकेशन रिस्रॉन्स की आदर्श प्रक्रिया है, जहाँ नेतृत्व संकेत को जानकारी मानकर त्वरित सूचना-संग्रह करता है। भूतेश क्षेत्र के लोगों से तथ्य प्राप्त करना ग्रासरूट इंटेलिजेंस कम्युनिकेशन का उदाहरण है। शूर द्वारा बार-बार दूत भेजना (श्लोक 56) एक मल्टी-स्टेज्ड कम्युनिकेशन प्रोटोकॉल है, जिसमें दूत-प्रेषण के माध्यम से सत्ता अपने आदेश की वैधता स्थापित करती है।

धन्व का मंदिर में प्रवेश करते ही सार्वजनिक वध विशेषतः धार्मिक स्थल में, एक अत्यंत तीव्र ‘सिंबॉलिक पावर कम्युनिकेशन’ है, जिसका उद्देश्य न केवल अपराधी का दमन, बल्कि पूरे समुदाय को संदेश देना है। रक्तस्नात शरीर को तालाब में फेंकना और शूर द्वारा राजा के क्रोध को शांत करना ‘अफेक्टिव पॉलिटिकल कम्युनिकेशन’ अर्थात् भावनात्मक-राजनीतिक संप्रेषण का उदाहरण है। अंत में राजा का संतप्त होना सत्ता और मंत्री-मंडल के बीच मौजूद मानसिक संचार-तंत्र को दर्शाता है, जहाँ जानकारी केवल औपचारिक नहीं, बल्कि भावनात्मक प्रभाव भी उत्पन्न करती है। इस प्रकार श्लोक 51-60 यह सिद्ध करते हैं कि ‘राजतरंगिणी’ में संचार सूचना, संकेत, दूत, सार्वजनिक प्रदर्शन, दमन और भावनात्मक प्रतिक्रिया मध्यकालीन कश्मीर की सत्ता-प्रक्रिया का मूलभूत और रणनीतिक आधार था।

उक्त सभी श्लोकों का समेकित अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि ‘राजतरंगिणी’ में संचार सत्ता संरचना का मूल तत्त्व है। अनुभव संपन्न समूहों से संवाद, परंपरा आधारित संदेश, तुलनात्मक सैन्य सूचना, सामाजिक प्रतिक्रिया और नेतृत्व की मानसिक संरचना पर प्रभाव, ये सभी रणनीतिक संप्रेषण के व्यवस्थित घटक हैं। इस प्रकार ‘राजतरंगिणी’ यह सिद्ध करती है कि संचार मात्र सूचना नहीं, बल्कि राजनीतिक यथार्थ, निर्णय प्रक्रिया और राज्य संचालन का सक्रिय शक्ति तंत्र है।

चर्चा एवं निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध-पत्र के समग्र विश्लेषण से यह तथ्य स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आता है कि कल्हण कृत ‘राजतरंगिणी’ को केवल कश्मीर के राजवंशों का क्रमबद्ध इतिहास मान लेना उसके वास्तविक स्वरूप के साथ अन्याय होगा। यह ग्रंथ दरअसल मध्यकालीन कश्मीर की सत्ता संरचना के भीतर सक्रिय बहुस्तरीय संचार तंत्रों का अत्यंत सूक्ष्म, उद्देश्यपूर्ण और परिपक्व विवेचन है। नागकन्या प्रकरण (247-276), धार्मिक दान, नगर-निर्माण और धर्म-संस्थानों की स्थापना (148-177), दरबारी षड्यंत्र, उत्तराधिकार संकट और द्रोह (69-129, 190-199), ब्राह्मण परिषद्, शाप, प्रायश्चित और दान कर्म, युद्ध वर्णन, जासूसी, पलायन और गोपनीय संधियों से जुड़े प्रसंग आदि सभी का समेकित अध्ययन यह सिद्ध करता है कि कल्हण के लिए संचार सत्ता प्रक्रिया का केंद्रीय तत्त्व है, न कि कोई गौण, सजावटी तत्त्व।

कल्हण के वृत्तांतों में राजकीय संचार एक आयामी नहीं, बल्कि बहुआयामी है। एक ओर औपचारिक (दूत प्रेषण, राजाज्ञाएँ, शपथ, घोषणाएँ, अनुशासन निर्देश) संचार है; दूसरी ओर अनौपचारिक (लोक अपवाद, अफवाहें, संकेत व्यवहार, संवादों के सूक्ष्म स्वर और दरबारी

फुसफुसाहटें) संचार है। इसी के समानांतर धार्मिक संचार (दान, अनुष्ठान, तीर्थ, मंदिर निर्माण, बौद्ध विहार, चमत्कार और शाप) चलता है; और इनके भीतर सत्ता द्वारा रचा गया एक निहित संदेश छिपा रहता है कि शासक धर्मरक्षक, लोक हितैषी और पुण्य संपन्न है। कूट संचार के स्तर पर षड्यंत्र, गुप्त संदेश, गुप्त संधियाँ, तांत्रिक उपक्रम और जासूसी तंत्र दिखाई देते हैं; जबकि मनोवैज्ञानिक संचार के स्तर पर भय, वैधता, प्रतिष्ठा, दुष्प्रचार, सामाजिक दबाव और नैतिक अनुशासन का जाल बुना जाता है। युद्ध पूर्व घोषणाएँ, सेना का मनोबल, शत्रु को भ्रमित करने वाली सूचनाएँ, रणभूमि में संदेश प्रवाह और पराजय के बाद जनता को दिए जाने वाले आश्वासनों के रूप में सैन्य संचार एक अलग ही परत बनाता है। और जब सत्ता संकट में पड़ती है, तब पुनर्स्थापनात्मक संचार—जैसे कि प्रजा का पुनर्गठन, दान, मठ निर्माण, नए नगरों की स्थापना और नए राजवंश की घोषणा आदि—राज्य के पुनर्निर्माण की प्रक्रिया को वैधता प्रदान करता है।

इन सभी आयामों को एक साथ देखने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि संचार सत्ता के निर्माण, संरक्षण और विनाश का निर्णायक माध्यम है। राजा की सफलता या विफलता, जनता का समर्थन या विरोध, सामाजिक शांति या विद्रोह ये सब अंततः इस बात पर निर्भर करते हैं कि संचार कैसा (स्पष्ट या भ्रमित, धर्मसम्मत या दमनकारी, विश्वसनीय या अविश्वसनीय, समावेशी या द्रोह उद्दीपक) है। कल्हण अनेक उदाहरणों के माध्यम से यह दिखाते हैं कि जहाँ संचार सुव्यवस्थित, संतुलित और नैतिक है, वहाँ राज्य अपेक्षाकृत स्थिर रहता है; और, जहाँ संचार हिंसक, छलपूर्ण, अस्पष्ट या अव्यवस्थित हो जाता है, वहाँ राजसत्ता का अवसान अनिवार्य हो जाता है। इस दृष्टि से 'राजतरंगिणी' यह गहन सत्य उद्घाटित करती है कि सत्ता केवल बल, धन या प्रशासनिक क्षमता से नहीं चलती; वह संचार की वैधता और प्रभावशीलता पर निर्भर करती है।

प्रस्तुत अध्ययन से यह भी स्पष्ट हुआ कि 'राजतरंगिणी' सत्ता की नैतिकता को भी संचार निर्मित मानती है। जनता की दृष्टि में राजा के न्याय, दया, धर्मनिष्ठा और नीति सम्मत आचरण की जो धारणा बनती है, वह वास्तविकता से कम और संचार से अधिक निर्मित होती है। राजकीय आदेशों की भाषा, दान और अनुष्ठानों की सार्वजनिकता, दरबारी व्यवहार, दूतों के संवाद, शत्रुओं के प्रति प्रयुक्त शब्दावली, तथा लोक प्रचार की दिशा, ये सब मिलकर वह नैतिक छवि बनाते हैं, जिसे जनता सत्य मान लेती है। यही वह बिंदु है, जहाँ आधुनिक संचार चर्चा का कथन 'लेजिटिमेसी इज ए कम्प्यूनिकेटिव कंस्ट्रक्ट' अपने प्राचीन ऐतिहासिक संदर्भ में प्रत्यक्ष पुष्ट होता दिखाई देता है। अर्थात् वैधता कोई स्थिर दैवी देन नहीं, बल्कि सतत चलने वाली संचार प्रक्रिया का परिणाम है।

दूत व्यवस्था और जासूसी तंत्र के विश्लेषण से राजकीय संचार की रणनीतिक प्रकृति और स्पष्ट हो जाती है। दूत केवल संदेश ले जाने वाले साधन नहीं हैं, बल्कि वे स्वयं घटनाओं के सक्रिय निर्माता बन जाते हैं। संदेश का स्वर, समय, शब्द चयन और गोपनीयता राजनीतिक परिणामों को बदल देते हैं। जासूसों द्वारा संगृहीत सूचना की गुणवत्ता और समयबद्धता कई बार राजकीय निर्णयों की सफलता या असफलता को निर्धारित करती है; गलत या अपूर्ण सूचना शासन को गंभीर संकट में धकेल देती है। यह आधुनिक 'इंटेलिजेंस फेल्योर', 'इंफोर्मेशन वॉरफेयर' और 'इंटेलिजेंस कम्प्यूनिकेशन' की अवधारणाओं का मध्यकालीन ऐतिहासिक पूर्वरूप है।

अफवाहों, लोक धारणाओं और जनमत की भूमिका 'राजतरंगिणी' में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। अनेक प्रसंगों में यह देखा गया कि सब कुछ विधिवत होने के बावजूद यदि जनता में राजा के प्रति नकारात्मक धारणा बन जाती है, तो राजकीय प्रतिष्ठा गिरने लगती है। जनता की मानसिकता को प्रभावित करने वाले संदेश चाहे वे शत्रु द्वारा प्रेषित हों, दरबारी गुटों द्वारा फैलाए गए हों या स्वतः विकसित हुई अफवाहें हों सत्ता के लिए उतने ही घातक सिद्ध हो सकते हैं जितने बाहरी युद्ध। कल्हण इस बात को बार-बार रेखांकित करते हैं कि राजदरबार की टूटन और गठजोड़, अक्सर जनता में निर्मित या विकृत धारणा का परिणाम होते हैं। यहाँ संचार 'मनोवैज्ञानिक शक्ति' के रूप में सामने आता है।

राजकीय संकटों, युद्धों, षड्यंत्रों और द्रोहों में संचार की भूमिका और भी स्पष्ट एवं सघन हो जाती है। युद्ध पूर्व सैनिकों को दिए जाने वाले उत्साह भाषण, शत्रु पक्ष को भ्रमित करने हेतु चतुर संदेश, गठबंधनों को बचाने या तोड़ने के लिए कूट संवाद, पराजय के बाद जनता में भय कम करने के लिए आश्वास्तिकारक घोषणाएँ आदि ये सभी क्रियाएँ संचार के रणनीतिक प्रयोग की सशक्त मिसाल हैं। यह आधुनिक साइकोलॉजिकल ऑपरेशंस (साइ-ऑप्स) का ऐतिहासिक, रूपक आधारित चित्रण कहा जा सकता है, जहाँ युद्ध केवल तलवारों से नहीं, बल्कि संदेशों और प्रतीकों से भी लड़ा जाता है।

एक अन्य महत्वपूर्ण निष्कर्ष यह है कि कल्हण की भाषा और कथा विन्यास स्वयं एक सुसंगठित संचार रणनीति का रूप धारण करते हैं। संवादों के चयन, उपमाओं, रूपकों और प्रतीकों के प्रयोग से वे केवल इतिहास नहीं लिखते, बल्कि पाठक के सामने सत्ता संचार की जटिलता को बौद्धिक और भावनात्मक दोनों स्तरों पर उपस्थित करते हैं। इतिहास यहाँ घटनाओं का निष्प्राण ब्यौरा नहीं, बल्कि अर्थ संपृक्त, संचारित और पुनर्निर्मित कथा है। 'राजतरंगिणी' इस अर्थ में 'राजनीतिक संचार ग्रंथ' के रूप में भी देखी जा सकती है, जहाँ सत्ता की भाषा, सत्ता का संदेश और सत्ता का संचार, तीनों मिलकर इतिहास की संरचना का निर्माण करते हैं।

'राजतरंगिणी' में वर्णित संचार तंत्र केवल मध्यकालीन कश्मीर की शासन व्यवस्था का तटस्थ अंग नहीं, बल्कि सत्ता संरचना का मूल आधार है; आधुनिक संदर्भ में जिसको रणनीतिक संप्रेषण कहा जाता है; और, जिसका उपयोग आज राजनीतिक अभियानों, सैन्य नीति, कूटनीतिक संबंधों और जन धारणा के निर्माण में होता है। उसका प्रारंभिक, परिपक्व और ऐतिहासिक रूप कल्हण के इस ग्रंथ में पूर्ण रूप से विद्यमान है। संचार ही वह प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से सत्ता जन्म लेती है, जनता में वैधता प्राप्त करती है, संकटों से जूझती है और पुनर्निर्माण की दिशा में आगे बढ़ती है।

अतः इस शोधकार्य का व्यापक निष्कर्ष यह है कि 'राजतरंगिणी' इतिहास, राजनीति और संचार तीनों के अंतर्गुप्त का असाधारण उदाहरण है। यह ग्रंथ प्रमाणित करता है कि सत्ता का वास्तविक आधार केवल राजकीय बल, सेना या अर्थ संपदा नहीं, बल्कि संचार का सुव्यवस्थित, नैतिक और प्रभावशाली प्रवाह है। इस दृष्टि से 'राजतरंगिणी' न केवल भारतीय इतिहास लेखन का क्लासिक ग्रंथ है, बल्कि राजनीतिक संचार अध्ययन के लिए भी एक अनमोल, प्राचीन और प्रासंगिक स्रोत के रूप में पुनः पाठ की माँग करता है।

संदर्भ सूची

गोयल, पी.पी. (2024). कल्हण कृत राजतरंगिणी (संक्षिप्त भूमिका एवं

- अनुवाद सहित; खण्ड प्रथम) (अनुवाद : डॉ. प्रीतिप्रभा गोयल).
जोधपुर: राजस्थानी ग्रंथागार.
- गोयल, पी.पी. (2024). कल्हण कृत राजतरंगिणी (संक्षिप्त भूमिका एवं
अनुवाद सहित; खण्ड द्वितीय) (अनुवाद : डॉ. प्रीतिप्रभा गोयल).
जोधपुर: राजस्थानी ग्रंथागार.
- ड्राइडन, ए. (2017). स्ट्रैटेजिक कम्युनिकेशन. इन द सेज एनसाइक्लोपीडिया
ऑफ कम्युनिकेशन रिसर्च मेथड्स. <https://methods.sagepub.com/ency/edvol/the-sage-encyclopedia-of-communication-research-methods/chpt/strategic-communication> से पुनःप्राप्त.
- तरंग 1 : श्लोक 1-8, 13-19
- तरंग 3 : श्लोक 225-234
- तरंग 4 : श्लोक 372-381
- तरंग 4 : श्लोक 404-408
- तरंग 5 : श्लोक 69-129
- तरंग 5 : श्लोक 51- 60
- तरंग 5 : श्लोक 190-199
- तरंग 5 : श्लोक 372-381
- तरंग 5 : श्लोक 1188-1197
- तरंग 6 : श्लोक 1041-1050
- तरंग 6 : श्लोक 2578-2587
- तरंग 6 : श्लोक 3001-3009
- तरंग 6 : श्लोक 3142-3151
- तरंग 7 : श्लोक 148-177
- तरंग 7 : श्लोक 247-276
- पांडेय, एस.टी.एस. (2019). राजतरंगिणी (श्रीरामतेजशास्त्री पांडेय,
हिंदीव्याख्या). नई दिल्ली : चौखंबा संस्कृत प्रतिष्ठान. (मूल ग्रंथ 12वीं
शताब्दी में रचित).
- शास्त्री, एस.डी. (2016). राजतरंगिणी (1-6 तरंग) (श्रुतिदेव शास्त्री, हिंदी
अनुवाद एवं टिप्पणी). पटना : बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्.
- शास्त्री, एस.डी. (2016). राजतरंगिणी (7-8 तरंग) (श्रुतिदेव शास्त्री, हिंदी
अनुवाद एवं टिप्पणी). पटना : बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्.



भारतवर्षीय संचार दृष्टि: एक संक्षिप्त परिचय

डॉ. कपिल कुमार भट्टाचार्य¹

सारांश

संचार अनुसंधान का एक महत्वपूर्ण विषय है। जब तीसरी दुनिया के देशों ने संचार को अपने उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम में शामिल करने पर विचार किया तो उन्होंने कथित विकसित देशों के विद्वानों की संचार संबंधी सोच को ही वरीयता दी। आधुनिक भारत के संचार चिंतकों ने भी यही मार्ग चुना, जबकि भारत में संचार की एक समृद्ध एवं दीर्घ परंपरा रही है। प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य यह समझना है कि भारतवर्ष के प्राचीन ज्ञान-भंडार में संचार-अनुसंधान से संबंधित कौन से तथ्य उपलब्ध हैं, जिनके अध्ययन और अन्वेषण पर ध्यान देने की तत्काल आवश्यकता है। जरूरत इस बात की भी है कि हम अपने संचार शिक्षा पाठ्यक्रम में भारतवर्षीय संचार दृष्टि को उचित स्थान दें और उसे संचार-अनुसंधान एवं शिक्षा की परिधि में शामिल करें। शोधकर्ता ने इस विचार के पक्ष में भारतवर्ष के कुछ प्राचीन ग्रंथों का उल्लेख किया है, जिनमें संचार से जुड़े महत्वपूर्ण तथ्य उपलब्ध हैं।

संकेत शब्द : भारतवर्षीय संचार दृष्टि, संचार अनुसंधान, भारतीय ज्ञान परंपरा

प्रस्तावना

सामाजिक विज्ञान में मानव संचार का अध्ययन एक विशिष्ट स्थान रखता है, क्योंकि यह मानव समाज में संस्कृति और परंपरा की समझ के लिए एक मूलभूत प्रक्रिया है। संचार के माध्यम से ही मनुष्य अपने विचारों, भावनाओं और अनुभवों को अभिव्यक्त करता है तथा दूसरों के विचारों और व्यवहार को समझ पाता है। यह प्रक्रिया सामाजिक संरचनाओं, समूह-गतिविधियों, सांस्कृतिक मान्यताओं और सामूहिक पहचान के निर्माण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। मानव संचार का अध्ययन केवल मात्र सूचना के आदान-प्रदान के विभिन्न आयामों को समझने तक सीमित नहीं है। इसमें सूचना के आदान-प्रदान होने के पूर्व अंतर्निहित प्रक्रियाओं तथा उनके होने के पश्चात् प्रकट प्रभावों को समझने का प्रयास भी अंतर्निहित है। इसीलिए, संचार का अध्ययन सामाजिक विज्ञान में मानव संचार-व्यवहार, सामाजिक शक्ति-संबंधों तथा सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन की प्रक्रियाओं एवं विविधताओं को समझने के लिए अनिवार्य माना जाता है; तथापि संचार को सामाजिक विज्ञान शोध एवं शिक्षण की परिधि में आए हुए कम ही समय हुआ है।

आधुनिक युग में संचार शोध एवं शिक्षा को पाठ्यचर्या में पहली बार अमेरिका के शिक्षाविद् बीसवीं शताब्दी की शुरुआत में लेकर आए (दिसानायके, 1985, 1988)। प्रथम एवं द्वितीय विश्वयुद्ध में संचार की महत्वपूर्ण सामाजिक एवं राजनीतिक भूमिका ने इस विषय पर और अधिक गंभीरता से अनुसंधान करने के लिए शोधार्थियों को प्रेरित किया। अमेरिका के शोधार्थियों का मुख्य उद्देश्य संचार के प्रकट प्रभावों को बेहतर ढंग से समझना था। वहीं दूसरी ओर यूरोप के शोधार्थियों का मानना था कि संचार को बेहतर ढंग से समझने के लिए उसकी सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक संदर्भ में विवेचना करनी चाहिए। जब तृतीय विश्व के देशों ने संचार को अपने उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम में शामिल करने की सोची तो उन्होंने प्रथम विश्व के शोधार्थियों एवं विद्वानों की सोच एवं समझ पर ही आस्था रखी। आधुनिक स्वतंत्र भारत के संचार चिंतकों, शोधार्थियों एवं विद्वानों ने भी पश्चिम में स्थापित संचार चिंतन एवं शोध-दृष्टि को ही अपना लिया।

इस प्रसंग में दिसानायके (1985, पृ.1) लिखते हैं कि तृतीय विश्व के विश्वविद्यालयों में जिस प्रकार के संचार सिद्धांतों की पढ़ाई एवं चर्चा की जाती है, वह एक चिंता का विषय है, क्योंकि वह अनिवार्य रूप से मूल एवं सार में उत्तर अमेरिकी विचारधारा है। वे यह भी लिखते हैं कि तृतीय विश्व के अनुसंधान की परिधि में विस्तार लाने के लिए गैर-पश्चिमी समाजों से उभरी संचार अवधारणाओं का समावेश करना आवश्यक है (दिसानायके, 1985, पृ-2)। प्रस्तुत शोध-पत्र के माध्यम से ऐसी ही एक चेष्टा की गई है। इस चेष्टा का उद्देश्य यह स्थापित करना है कि भारतवर्ष के प्राचीन ज्ञान-भंडार में संचार-अनुसंधान एवं शिक्षा से संबंधित विपुल तथ्य उपलब्ध हैं, जिनके अन्वेषण करने की आवश्यकता तो है ही, साथ ही आधुनिक भारत के संचार शिक्षा संस्थानों के पाठ्यक्रम में भारतवर्षीय संचार दृष्टि को शिक्षा एवं अनुसंधान की परिधि में लाने की तत्काल आवश्यकता है, क्योंकि भारतीय संदर्भ में संचार-प्रकृति को भारतीय सामाजिक, सांस्कृतिक, जातीय और दार्शनिक दृष्टि से समझना अत्यंत आवश्यक है। इस बात को विमल दिसानायके के विचारों से स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है। दिसानायके (2003) कहते हैं : “यदि एशिया में, और विश्व के अन्य भागों में भी, संचार को एक अधिक अर्थपूर्ण अनुशीलन पद्धति बनाना है तो उसे यहाँ की अपनी विद्वत् जड़ों, स्थानीय ज्ञान-परंपराओं और देशज सोच से जुड़ना होगा। इसी कारण एशियाई दृष्टिकोणों, सिद्धांतों, अवधारणाओं और संचार-आधारों के निर्माण की दिशा में आगे बढ़ने की आवश्यकता है” (दिसानायके, 1985, पृ.-18)।

भारतवर्षीय संचार दृष्टि

वर्ष 2015 में लोहोचौधुरी व भट्टाचार्य ने ‘भारतवर्षीय संचार दृष्टि’ (Indian Communication Thought) उक्ति का नामकरण किया। उनके अनुसार ‘भारतवर्षीय संचार दृष्टि’ हर उस सोच को दर्शाती है, जो संचार को भारतवर्षीय सामाजिक-जातीय-सांस्कृतिक एवं दार्शनिक दृष्टि से जोड़ती है (भट्टाचार्य, 2016, पृ-124)। लोहोचौधुरी व भट्टाचार्य ‘भारतवर्षीय संचार दृष्टि’ को भारतवर्ष के इतिहास के अनुरूप तीन उपशाखाओं में वर्गीकृत करते हैं :

¹सहायक आचार्य, द भवानीपुर एजुकेशन सोसाइटी कॉलेज, कोलकाता, पश्चिम बंगाल. ईमेल : kapilkrbhattacharyya@gmail.com

1. **प्राचीन भारतवर्षीय संचार दृष्टि** : यह शाखा प्राचीन भारतवर्ष के ज्ञान-भंडार से उपलब्ध तथ्यों के माध्यम से संचार को समझने की कोशिश करती है।
2. **मध्यकालीन भारतवर्षीय संचार दृष्टि** : यह शाखा आदि भारतवर्षीय संचार दृष्टि में मध्य-युग में विदेशी प्रभाव के कारण आए परिवर्तन को समझने की कोशिश करती है।
3. **आधुनिक भारतवर्षीय संचार दृष्टि** : यह शाखा आदि भारतवर्षीय संचार विचारधारा में आधुनिक-युग में पश्चिमी भौतिकवाद के कारण आए परिवर्तन को समझने की कोशिश को व्यक्त करती है।

प्रस्तुत शोध-पत्र प्राचीन भारतवर्षीय संचार दृष्टि के अवलोकन तक ही सीमित है। संचार को अधिक अर्थपूर्ण बनाने के लिए उसे “देशज विद्वत् परंपराओं, स्थानीय ज्ञान-प्रणालियों और स्थानीय सोच के तरीकों” से जोड़ने की आवश्यकता पर जोर देते हुए विमल दिसानायक (2009) ने पाँच ऐसे क्षेत्रों की पहचान की है, जो एशियाई संचार-अध्ययन के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। ये पाँच क्षेत्र इस प्रकार हैं :

1. ऐसे शास्त्रीय ग्रंथों का अध्ययन, जिनमें संचार से जुड़े संभावित विचार या अवधारणाएँ मिलती हैं।
2. शास्त्रीय परंपराओं तथा समकालीन सांस्कृतिक प्रथाओं का विश्लेषण, ताकि संचार-संबंधी अवधारणाओं को खोजा जा सके।
3. अनुष्ठानों, समारोहों और प्रस्तुतियों में निहित संचार-धारणाओं और दृष्टिकोणों का अध्ययन करना।
4. ‘परंपरागत समझ’ के ढाँचों के संदर्भ में समकालीन संचार व्यवहार को समझना।
5. विभिन्न धार्मिक और विद्वत् परंपराओं में प्रस्तुत भाषा-संबंधी संचार-धारणाओं का अध्ययन करना।

प्रस्तुत शोध-पत्र में विमल दिसानायक द्वारा बताए गए पहले क्षेत्र पर ही ध्यान केंद्रित किया गया है। प्रसिद्ध जर्मन विचारक फ्रेडरिक मैक्समूलर अपनी कृति ‘इंडिया : व्हाट कैन इट टीच अस’ में लिखते हैं : “...ज्ञान का शायद ही कोई ऐसा क्षेत्र है, जिसे भारत के प्राचीन साहित्य से नई रोशनी और नया जीवन न मिला हो...” (मैक्समूलर, 1992, पृ-141)। इस संदर्भ में यह कहना आवश्यक है कि प्राचीन भारतवर्ष के विशाल साहित्य-कोष ने संचार की विषय-वस्तु को समझने में भी मार्गदर्शन किया है।

भारतवर्ष का इतिहास संचार की एकीकृत शक्ति को दर्शाता है। यह भारतवर्ष के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन की प्रकृति से भी मेल खाता है। यदि हम चारों वेदों, वेदों से उत्पन्न पुराणों और बाद के वेदों—जैसे नाट्यवेद—का ध्यानपूर्वक अध्ययन करें तो हमें अनेक संकेत मिलते हैं कि प्राचीन भारतवर्ष के ऋषि-मुनि किस प्रकार संचार के विभिन्न पहलुओं, जैसे ध्वनि, वाणी, भाषा, संदेश की मंशा, भावनाओं की भूमिका, संदेश की संरचना इत्यादि को समझने एवं सैद्धांतिक रूप देने का प्रयास कर रहे थे (लोहोचौधुरी, 2014, पृ-72)।

परंतु, प्राचीन भारतवर्ष के विशाल साहित्य-कोष का अध्ययन सरल कार्य नहीं है, क्योंकि यह एक विशाल महासागर है। जैसा कि मॉरिस विंटरनिट्ज (1996) कहते हैं : “भारतीय साहित्य का इतिहास कम-से-कम तीन हजार वर्षों की मानसिक गतिविधि का इतिहास है, जो वाणी और लेखन में व्यक्त हुआ है... विषय-वस्तु की दृष्टि से भारतीय साहित्य में वह सब सम्मिलित है, जिसे ‘साहित्य’ शब्द के सबसे व्यापक अर्थ

में समझा जाता है : धार्मिक और लौकिक, महाकाव्य और गद्य-काव्य, नाटकीय और उपदेशात्मक काव्य, साथ ही कथात्मक और वैज्ञानिक गद्य... भारतीय मन की एक विशेषता यह है कि उसने कभी भी कला-सृजन और वैज्ञानिक कार्य के बीच कोई स्पष्ट रेखा नहीं खींची। इस कारण भारत में ‘सुंदर साहित्य’ और ‘वैज्ञानिक साहित्य’ के बीच विभाजन करना वास्तव में संभव नहीं है। जो ग्रंथ हमें परियों की कहानियों और दंतकथाओं का संग्रह लगते हैं, उन्हें भारतीय लोग राजनीति और नैतिकता की पाठ्य-पुस्तक मानते हैं” (विंटरनिट्ज, 1996, पृ.1-2)।

इस प्रसंग में भट्टाचार्य (2016) का विचार है कि यदि हमें भारतवर्ष के प्राचीन ज्ञान-भंडार से संचार संबंधी जानकारी का अन्वेषण करना है, तो हमें पहले उन प्राचीन ग्रंथों की पहचान करनी होगी, जो इस विषय में हमारा मार्गदर्शन कर सकें। उन ग्रंथों में संचार संबंधी तथ्यों (श्लोक, मंत्र इत्यादि) को चिह्नित करना होगा। चूँकि प्राचीन भारतवर्ष का ज्ञान-भंडार विशाल है, इसलिए इस कार्य को व्यवस्थित करने के लिए हमें भारतवर्ष के प्राचीन ग्रंथों को मूलतः तीन वर्गों में विभाजित कर लेना चाहिए। ये तीन वर्ग हैं : दार्शनिक ग्रंथ, शास्त्रीय अथवा विश्लेषणात्मक ग्रंथ एवं अन्य ग्रंथ। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि भारतवर्ष के प्राचीन ग्रंथों में दर्शन, शास्त्र एवं अन्य विषयों के बीच कोई निर्दिष्ट विभाजन की गई है, परंतु ऐसा करने से आधुनिक संचार चिंतकों, शोधार्थियों एवं विद्वानों को अनुसंधान करने में अवश्य ही सहजता होगी।

दार्शनिक ग्रंथ

दर्शन-शास्त्र प्राचीन भारतवर्षीय सभ्यता एवं विद्वत् परंपरा की प्राथमिक एवं प्रमुख पहचान है। भारतवर्षीय दार्शनिक परंपरा की शुरुआत वेदों से होती है। वेद मानव सभ्यता के इतिहास के सबसे आरंभिक ग्रंथों में से एक हैं। कुल मिलाकर चार वेद हैं—ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद। ऋग्वेद प्राचीनतम वेद है और इसे मुख्य वेद माना जाता है। ऋग्वेद के बाद यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद आते हैं। वेदों के बाद उपनिषद् और पुराणों की परंपरा विकसित होती है। दार्शनिक परंपरा आगे चलकर भगवद्गीता और नौ दार्शनिक शास्त्रों—चार्वाक, बौद्ध, जैन, न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदांत—से जुड़े ग्रंथों में विस्तार पाती है। ये नौ दार्शनिक शास्त्र वेदों में व्यक्त विभिन्न दार्शनिक विचारों की अपने-अपने तरीकों से व्याख्या करते हैं। सामान्यतः आधुनिक संचार चिंतकों, शोधार्थियों एवं विद्वानों का मानना है कि इन दार्शनिक ग्रंथों का संचार को समझने में बहुत कम योगदान है। लेकिन ऐसा मानना केवल इन ग्रंथों के सही अध्ययन और उनके गहरे अर्थों की अपर्याप्त समझ को ही दर्शाता है। सच तो यह है भारतवर्षीय दर्शन-शास्त्र संचार की प्रकृति को समझने में अत्यंत महत्वपूर्ण है (भट्टाचार्य, 2016, पृ.-124)।

वेद भारतवर्षीय दर्शन-शास्त्र का मूल स्रोत हैं। मानव सभ्यता के इतिहास में पहली बार ऋग्वेद में अंतरवैक्तिक संचार (Intra-Personal Communication) की प्रक्रिया की व्याख्या एवं विश्लेषण मिलता है (ऋग्वेद संहिता, 10.071.02):

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।

अत्रा सख्यायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीनिर्हिताधिवाचि॥

अर्थात् जैसे बुद्धिमान लोग सक्तू को छलनी से छानकर काम में लाते हैं, वैसे ही वे लोग वाक् को मन में छानकर सम्यक् विचार से उसे निर्दोष

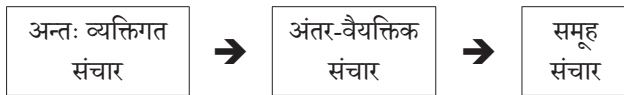
करके बोलते हैं। वे पहले तोलते हैं, फिर बोलते हैं। ऐसी वाणी बोलने वाले के सब लोग मित्र होते हैं; तथा ऐसी वाणी पर जीवन में सफलता निहित है (शास्त्री, 2022, पृ.-2)।

स्पष्ट रूप से इस श्लोक में अंतःव्यक्तिगत संचार का वर्णन किया गया है। इस श्लोक से अंतःव्यक्तिगत संचार के शेष संचार प्रकारों से जुड़े संबंधों का भी पता चलता है। कोई भी मनुष्य मंगलमय आंतरिक संचार (Intra-Personal Communication), समूह संचार (Group Communication) इत्यादि में तभी अंतर कर सकता है जब उसका मन मंगलमय अंतर्व्यक्तिगत संचार (Inter-Personal Communication) की स्थापना में उसकी सहायता करे। जैसा कि भगवद्गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं :

**उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥**

(भगवद्गीता, अध्याय 6, श्लोक-5)

अर्थात् मनुष्य को अपनी ही मनोसंपदा (या अपने ही मन की क्षमता) से स्वयं को ऊपर उठाना चाहिए, नीचे नहीं गिराना चाहिए; क्योंकि मन ही मनुष्य का परम मित्र है और परम शत्रु भी है।



ऋग्वेद में अंतःव्यक्तिगत संचार के विभिन्न स्तरों का भी वर्णन मिलता है (ऋग्वेद संहिता, 1.164.45):

चत्वारि वाक् परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः।

गुहा त्रीणि निहिता नेऽङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति॥

अर्थात् वाणी (वाक्) के चार स्तर होते हैं, परंतु इन चारों स्तरों का अनुभव केवल विद्वान्-मनीषी ही कर सकते हैं। साधारण मनुष्य केवल चौथे स्तर (वैखरी) को ही अनुभव कर पाते हैं, क्योंकि प्रथम तीन स्तर (परा, पश्यंति एवं मध्यमा) मन की गहराई में गुप्त ही रह जाते हैं। चौथे स्तर अर्थात् वैखरी में भावनाओं को व्यक्त किया जाता है। केवल इसी स्तर को साधारण मनुष्य समझ पाते हैं।

ऋग्वेद में कई प्रकार की वाणियों का उल्लेख है। इनमें से कुछ प्रकार हैं :

- सत्यवाचम् (ऋग्वेद संहिता, 3.026.09, 7.002.03, 10.012.01)
- मधुवाचः (ऋग्वेद संहिता, 4.006.05, 5.043.02, 7.007.04)
- द्यूमतिम वाचम् (ऋग्वेद संहिता, 10.098.02, 10.098.03)
- अध्रोघवाचम् (ऋग्वेद संहिता, 6.005.01, 6.022.02)
- भद्रवाचो (ऋग्वेद संहिता, 6.028.06, 6.022.02)
- असतो वाचसा (ऋग्वेद संहिता, 5.012.04)
- मिध्रावाचः (ऋग्वेद संहिता, 5.029.10, 5.032.08, 10.023.05)
- अनिरेण वाचसा (ऋग्वेद संहिता, 4.005.14)
- उद्यतम वाचः (ऋग्वेद संहिता, 9.103.01, 10.050.06)
- पूर्वियम वाचो (ऋग्वेद संहिता, 3.010.05)
- विविदुषो वाचः (ऋग्वेद संहिता, 8.019.12)
- नव्यसा वाचः (ऋग्वेद संहिता, 2.031.05, 6.048.11, 6.062.05,

8.039.02)

- पुनानो वाचम् (ऋग्वेद संहिता, 9.030.01, 9.064.25, 9.086.33, 9.106.12)
- स्वादमानं वाचः (ऋग्वेद संहिता, 2.021.06) (भट्टाचार्य एट आल., 2023)।

इस प्रकार संचार से जुड़े कई तथ्य विभिन्न दार्शनिक ग्रंथों; जैसे, बाकी तीन वेदों, आरण्यकों, उपनिषदों, पुराणों, भगवद्गीता इत्यादि में उपलब्ध हैं।

भारतवर्षीय दर्शनशास्त्र का आरंभ अवश्य वेदों से होता है, परंतु इसकी पराकाष्ठा नौ दार्शनिक शास्त्रों—चार्वाक, बौद्ध, जैन, न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदांत—के विभिन्न ग्रंथों की सृष्टि में पाई जाती है। भारतवर्षीय दर्शन-शास्त्र को वेदों की स्वीकार्यता के आधार पर दो भागों में वर्गीकृत किया गया है—आस्तिक एवं नास्तिक। आस्तिक दर्शन-शास्त्र वेदों की सत्ता को स्वीकार करते हैं। कुल मिलाकर ऐसे छह दर्शन-शास्त्र हैं—न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा एवं वेदांत। इन छह दर्शनों को एकसाथ षड्दर्शन भी कहा जाता है। नास्तिक दर्शन-शास्त्र वेदों की सत्ता को स्वीकार नहीं करते। ऐसे तीन दर्शन-शास्त्र हैं—चार्वाक, बौद्ध एवं जैन। इन सभी दर्शन शास्त्रों में संचार से संबंधित कई तथ्य मिल सकते हैं, परंतु इन तथ्यों को उद्धाटित करने की बहुत ही कम कोशिश की गई है। इस क्षेत्र में कुछ प्रयास किए गए हैं, जिनका उल्लेख भट्टाचार्य व लोहोचौधुरी (2016) ने अपने अध्ययन में किया है।

प्राचीन भारत के दार्शनिक ग्रंथों में आधुनिक संचार से जुड़े कई समानांतर या उच्च विचार भी मिलते हैं। उदाहरण के लिए बीसवीं शताब्दी के एक अत्यंत प्रभावशाली संचार सिद्धांतकार, दार्शनिक और आधुनिक मीडिया अध्ययन के प्रवर्तक माने जाने वाले मार्शल मैक्लुहान ने पिछली शताब्दी के उत्तरार्ध में 'ग्लोबल विलेज' की अवधारणा को लोकप्रिय बनाया, परंतु उससे कई शताब्दियों पहले प्राचीन भारतवर्ष के ऋषि-मुनियों ने 'विश्वं भवत्येकनीडम्' (यजुर्वेद, अध्याय 32, मंत्र 8) की अवधारणा से एकीकृत विश्व की कल्पना सामने रखी थी। बाद में महोपनिषद् (अध्याय 6, मंत्र 71) ने स्पष्ट रूप से कहा कि मनुष्य के आचरण की उच्चतम अवस्था यह है कि वह पूरे विश्व को एक परिवार समझे—'उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्'। भगवद्गीता आदर्श संचार के स्वरूप पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालती है। इस ग्रंथ में भगवान् श्रीकृष्ण शारीरिक, वाचिक और मानसिक कर्मों में संयम और अनुशासन की आवश्यकता पर बल देते हुए वाणी-संबंधी आचरण के बारे में कहते हैं (अध्याय 17, श्लोक 15) (भट्टाचार्य, 2016, पृ.-124) :

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।

स्वाध्यायाभ्यासनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते॥

सरल अर्थ में इसका मतलब है : “वाणी का तप यह है कि शब्द ऐसे हों, जो किसी को उद्विग्न न करें। वे सत्य हों, प्रिय हों और सुनने वाले के लिए हितकारी हों। ऐसी वाणी का अभ्यास आत्म-निरीक्षण और निरंतर अभ्यास से आता है।” इस आधार पर आदर्श संचार में निम्न गुण होने चाहिए : (भट्टाचार्य, 2016, पृ. 124)।

1. वाणी श्रोता को विचलित या परेशान न करे।
2. वाणी असत्य से मुक्त हो।
3. वाणी सुनने वाले के लिए हितकारी हो।
4. वाणी सुनने वाले को सुखद लगे।

भारतवर्ष में संचार-सिद्धांत और उसकी अभ्यास-शैली पूर्ण रूप से विभिन्न दार्शनिक शास्त्रों की स्थापना के साथ विकसित हुई। जब चार्वाकों, बौद्धों और जैनो ने वेदों की प्रामाणिकता पर प्रश्न उठाए, तब वेद-समर्थक दर्शनों—न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदांत—को तर्क, प्रति-तर्क और वाक्-कौशल की अभ्यास-शैली को विकसित करना पड़ा। इसी प्रक्रिया में प्राचीन भारतवर्ष में वाक्-कला, तर्कशास्त्र और विचार-विमर्श की परंपरा अत्यंत विकसित हुई। यह प्राचीन परंपरा संचार के अध्ययन में विशेष महत्त्व रखती है, क्योंकि यही वह आधार है, जिस पर भारतवर्षीय संचार-चिंतन सुदृढ़ खड़ी है; तथापि भारतवर्षीय दर्शन-शास्त्र से जुड़े ग्रंथों पर अब तक संचार के संदर्भ में अनुसंधान की चेष्टा प्रायः नगण्य है। अतः इन ग्रंथों पर अविलंब विस्तृत रूप से शोध-चिंतन एवं प्रकाशन करने की आवश्यकता है (भट्टाचार्य, 2016, पृ. 124)।

शास्त्रीय अथवा विश्लेषणात्मक ग्रंथ

प्राचीन भारतवर्ष से हमें दार्शनिक ग्रंथों के अतिरिक्त कई अन्य शास्त्रीय अथवा विश्लेषणात्मक ग्रंथ भी प्राप्त होते हैं, जो संचार-अनुसंधान एवं शिक्षा में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। इस संक्षिप्त शोध-पत्र में मात्र तीन ऐसे ग्रंथों की ही संक्षेप में चर्चा की गई है।

1. नाट्यशास्त्र

नाट्यशास्त्र की रचना का श्रेय भरत मुनि को जाता है, हालाँकि भरत मुनि स्वयं इसका श्रेय प्रजापति ब्रह्मा जी को देते हैं। इस ग्रंथ को भारतवर्षीय नाट्य-शैली एवं काव्य-शास्त्र का आदि स्रोत माना जाता है। चूँकि नाट्य-शैली मूलतः मनुष्य भावनाओं के आदान-प्रदान का अभ्यास है, नाट्यशास्त्र में संचार से जुड़े अनेक तथ्य विपुल मात्रा में उपलब्ध हैं। उल्लेखनीय है कि प्राचीन भारतवर्षीय ग्रंथों में नाट्यशास्त्र एकमात्र ऐसा ग्रंथ है, जिसमें मानव-संचार की विविधताओं का पूर्ण उल्लेख प्रत्यक्ष रूप से किया गया है। नाट्यशास्त्र में मौखिक तथा सांकेतिक दोनों प्रकार के संचार की विस्तृत व्याख्या उपलब्ध है। संभवतः इन्हीं कारणों से यह एकमात्र प्राचीन भारतवर्षीय ग्रंथ है, जिस पर कुछ आधुनिक संचार-शोधकर्ताओं ने अनुसंधान किया है।

भरत मुनि के अनुसार संचार क्रियाएँ चार प्रकार की होती हैं : वाचिक (मौखिक संचार), आंगिक (शरीर के माध्यम से संचार), आहार्य (वेशभूषा एवं सज्जा के माध्यम से संचार) एवं सात्त्विक (अंतर-भावना का संचार)। नाट्यशास्त्र में वाचिक (मौखिक संचार) पर पाँच अध्याय हैं, आंगिक (शरीर के माध्यम से संचार) पर छह अध्याय, आहार्य (वेशभूषा एवं सज्जा के माध्यम से संचार) पर एक अध्याय और सात्त्विक (अंतर-भावना का संचार) पर तीन अध्याय हैं। इससे स्पष्ट है कि नाट्यशास्त्र में संचार का एक बहुआयामी दृष्टिकोण मिलता है। संभवतः इन्हीं गुणों के कारण नाट्यशास्त्र आधुनिक संचार अनुसंधान में अपनी पहचान बनाने में सक्षम हुआ है। अब तक जिन आधुनिक संचार शोधकर्ताओं ने इस नाट्यशास्त्र पर शोध किया है, उनमें प्रमुख हैं—प्रो. आर्. पी. तिवारी, प्रो. जे. एस. यादव, नंदिता कपाडिया कुंडू, प्रो. बिप्लब लोहोचौधुरी एवं डॉ. निर्मल मणि अधिकारी।

2. वाक्यपदीय

संस्कृत व्याकरण के ग्रंथों में वाक्यपदीय एक प्रसिद्ध ग्रंथ है। इस ग्रंथ

की रचना का श्रेय प्रख्यात संस्कृत वैयाकरण भर्तृहरि को जाता है। संचार शोध में वाक्यपदीय के महत्त्व के संदर्भ में प्रो. विमल दिसानायक कहते हैं कि संचार के सभी छात्रों के लिए वाक्यपदीय चार तरह की विचारधाराएँ प्रस्तुत करती है। ये चारों विचारधाराएँ अत्यंत प्रेरणादायक हैं एवं गहरे अनुसंधान को आमंत्रण देती हैं। ये विचारधाराएँ निस्संदेह परस्पर जुड़ी हुई हैं एवं ये सभी भर्तृहरि के गहरे अद्वैतवाद/एकत्ववाद विश्वदृष्टि को दर्शाती हैं, जो वेदों एवं उपनिषदों से काफी जुड़ी हुई है। इनमें से पहला है, भर्तृहरि की मानव अनुभूति में भाषा की भूमिका (role of language in human cognition) के प्रसंग में प्रस्तुत तर्क। दूसरा महत्त्वपूर्ण विचार, जो वाक्यपदीय में उपलब्ध है, वह अर्थ की इकाई (unit of meaning) से संबंधित है। वाक्यपदीय में उपलब्ध तीसरी महत्त्वपूर्ण सोच है, संचार की प्रासंगिकता (contextualization of communication)। भर्तृहरि की इस कृति में चौथी एवं कई प्रकारों से संचार के दृष्टिकोण से सबसे महत्त्वपूर्ण धारणा 'स्फोट' (notion of sphota) से संबंधित है (दिसानायक, 1985, पृ. 10, 11, 13, 15)।

हालाँकि भर्तृहरि को ही स्फोट-सिद्धांत का प्रमुख श्रेय दिया जाता है, लेकिन यह सिद्धांत उनसे पहले भी था। महर्षि पाणिनि अष्टाध्यायी में आचार्य स्फोटायन का उल्लेख करते हैं, जिससे यह प्रतीत होता है कि स्फोट-सिद्धांत के संस्थापक आचार्य स्फोटायन रहे होंगे, परंतु इस बात को कोई नकार नहीं सकता कि स्फोट-सिद्धांत को संपूर्ण रूप भर्तृहरि ने ही दिया था। वाक्यपदीय में पाए जाने वाले इस सिद्धांत के संचार शोध में महत्त्व के संदर्भ में प्रो. विमल दिसानायक कहते हैं कि एक संचार के छात्र के लिए स्फोट की धारणा का सबसे रोचक पहलू यह है कि यह पहली ऐसी कोशिश प्रस्तुत करती है, जहाँ पर प्राप्तकर्ता (receiver) की दृष्टि से मौखिक संचार को देखने की रूपावली (paradigm) के निर्माण का प्रयास हुआ है (दिसानायक, 1985, पृ. -17)।

3. अर्थशास्त्र

आचार्य चाणक्य द्वारा रचित 'अर्थशास्त्र' प्राचीन भारतवर्ष की व्यावहारिक राज्य-व्यवस्था, शासन-चिंतन एवं नीति पर आधारित एक सुप्रसिद्ध ग्रंथ है। इस ग्रंथ में आचार्य चाणक्य ने राज्यव्यवस्था के विभिन्न पहलुओं पर अपने विचार प्रस्तुत करते हुए संचार के कुछ आयामों पर भी अपना मत व्यक्त किया है। हालाँकि यह कहा जा सकता है कि चूँकि अर्थशास्त्र मूलतः राज्य-व्यवस्था से संबंधित ग्रंथ है, अतएव यह अनुमान लगाना स्वाभाविक है कि इस ग्रंथ में संचार-चिंतन भी मूलतः राज्य-व्यवस्था के संदर्भ तक ही सीमित होगा, पर उल्लेखनीय है कि आचार्य चाणक्य ने अर्थशास्त्र में एक संपूर्ण अध्याय केवल संचार के विभिन्न विषयों पर आलोचना करने के लिए समर्पित किया है। यह अध्याय अर्थशास्त्र के द्वितीय अधिकरण का दसवाँ अध्याय है (द्वितीय अधिकरण, अध्याय-10)।

इस अध्याय में संचार से जुड़े ऐसे और भी कई विषयों का उल्लेख है। आचार्य चाणक्य उत्तम संचार के छह गुणों का उल्लेख करते हैं :

1. **अर्थक्रम** : विषय-वस्तु का विधान इच्छित क्रम में बनाए रखना
2. **संबंध** : सभी कथनों के बीच निरन्तरता एवं सुसंगति का संबंध बनाए रखना
3. **परिपूर्णता** : तर्क, उदाहरण और स्पष्टीकरण के माध्यम से अर्थ को

संपूर्ण रूप से अभिव्यक्त करना

4. **माधुर्य** : शब्द-प्रयोग में माधुर्य एवं सरलता बनाए रखना
5. **औदार्य** : शब्द-प्रयोग में सम्मान एवं गरिमा बनाए रखना; अपभ्रंश या अशिष्ट (अग्राम्य) शब्दों का प्रयोग नहीं करना
6. **स्पष्टत्व** : अर्थ-संप्रेषण हेतु शब्दों की स्पष्टता बनाए रखना।

संचार की उपादेयता तथा उपयुक्त अर्थ को इच्छित परिणाम के साथ संप्रेषित करने की उसकी क्रियात्मक क्षमता को पहचानते हुए चाणक्य यह भी दृष्टिगत करते हैं कि उपयुक्त शब्द-संयोजन के माध्यम से तेरह प्रकार के अर्थ व्यक्त किए जा सकते हैं—निंदा, प्रशंसा, पृच्छा, आख्यान, अर्थना, प्रत्याख्यान, उपात्त, प्रतिषेध, आदेश, सांत्वना, अभ्यवपत्ति, भर्त्सना, और अनुनय (शास्त्री, 1925)। इस अध्याय में आचार्य चाणक्य आधिकारिक संचार के अष्ट-विध वर्गीकरण का भी उल्लेख करते हैं। आचार्य चाणक्य के अनुसार आधिकारिक संचार निम्नलिखित आठ प्रकार का हो सकता है :

1. **प्रज्ञापन** : गोपनीय संचार (अधिकारियों को और अधिकारियों से)
2. **आज्ञा** : अधिकारियों द्वारा दिया गया निर्देशात्मक संचार
3. **परिदान** : सांत्वनात्मक अथवा सहानुभूति-युक्त संचार
4. **परिहार** : अधिकारियों द्वारा दी गई आज्ञाओं के अनुपालन/पालन से संबंधित संचार
5. **निसृष्टि** : राज्य-कार्यों हेतु अधिकारियों के नाम से किया जाने वाला संचार
6. **प्रवृत्तिका** : संकट (प्राकृतिक या मानवीय) से संबंधित सूचना या चेतावनी-प्रधान संचार
7. **प्रतिलेख** : अधिकारी की सहमति से उसके पक्ष से संबंधित पत्रों के व्यक्तिगत उत्तर
8. **सर्वत्रग** : जनसामान्य हेतु प्रसारित संचार (जन संचार)

काव्यात्मक और कथात्मक ग्रंथ

उपरोक्त ग्रंथों के अतिरिक्त, प्राचीन भारतवर्ष में कई काव्यात्मक और कथात्मक ग्रंथों की भी रचना हुई है, जो संचार की प्रकृति को समझने में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान कर सकते हैं, परंतु शोध-पत्र में ऐसे केवल चार ग्रंथों पर संक्षेप में चर्चा की गई है, जो मूलतः भारतवर्षीय कथाकथन परंपरा के अंतर्गत आते हैं।

रामायण

रामायण प्राचीन भारतवर्ष की संचार-परंपरा को समझने की दृष्टि से महत्वपूर्ण ग्रंथ है। यह महाकाव्य व्यक्ति-व्यवहार, नैतिकता, संस्कृति और कथा-परंपरा से जुड़े संचार के आयामों को अति सुंदर रूप से प्रस्तुत करता है। रामायण की कथा राम को एक आदर्श संप्रेषक के रूप में दिखाती है—उनकी वाणी संयमित, स्पष्ट, करुणामय और उत्तरदायित्व से भरी है। इसी कारण उन्हें नेतृत्वकारी एवं नैतिक संचार का आदर्श उदाहरण माना जाता है। इस महाकाव्य में राम-सीता, राम-लक्ष्मण, राम-भरत और यहाँ तक कि राम-रावण के संबंध एवं संवाद नित्य मानव जीवन में अनुभव किए जाने वाले संवाद के कई पहलुओं को बहुत सूक्ष्म रूप से सामने लाते हैं, जैसे पारिवारिक संवाद, भावनाओं की अभिव्यक्ति, संघर्ष और नैतिक निर्णय इत्यादि। राम और विभिन्न ऋषियों के बीच हुए संवाद, सीता और

रावण के बीच हुआ संवाद एवं हनुमान का आदर्श दूत के रूप में व्यवहार और वक्तव्य—ये सब संचार के विभिन्न आयामों को उजागर करते हैं। रामायण ग्रंथ यह भी दर्शाता है कि कथा किस प्रकार सांस्कृतिक संचार का एक सशक्त माध्यम बन सकती है। इसकी प्राचीन मौखिक एवं सार्वजनिक पाठ-परंपरा तथा रामलीला जैसी प्रदर्शनात्मक रूपों में प्रस्तुति इस बात का आदर्श दृष्टांत है कि किस प्रकार किसी सभ्यता में सामूहिक स्मृति, नैतिक मूल्य और सांस्कृतिक पहचान सदियों तक एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक अक्षत रूप से आगे बढ़ सकती है। अतएव रामायण महाकाव्य संचार-अध्ययन के दृष्टिकोण से एक अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रंथ है।

महाभारत

महाभारत प्राचीन भारतवर्ष में संचार, संघर्ष, प्रभाव और वाणी-कौशल को समझने के लिए एक अपरिहार्य ग्रंथ है। रामायण की तुलना में महाभारत नित्य मानव जीवन में संचार की जटिलताओं, विरोधाभासों और नैतिक उलझनों को और प्रखर रूप से प्रस्तुत करता है। इसकी बहुस्तरीय कथात्मक संरचना—जिसमें वाद-विवाद, संवाद, सलाह, प्रतिज्ञाएँ, भ्रम, भ्रांति और मौनता शामिल हैं—संचार के कई आयामों को प्रस्तुत करती है। भगवद्गीता, जो महाभारत का एक अंग है और जिसमें कृष्ण तर्क तथा विचार के माध्यम से अर्जुन के मन और भावनाओं को परिवर्तित करने का प्रयास करते हैं, यह दर्शाती है कि संचार किस प्रकार गहरे जीवन-मार्गदर्शन का रूप ले सकता है। कौरव सभा के वाद-विवाद संचार की प्रयोग-शैली एवं प्रभाव को भी दर्शाते हैं। जहाँ एक ओर विदुर जैसी हस्तियाँ नैतिक सलाह का प्रतीक हैं, वहीं दूसरी ओर शकुनि जैसी हस्तियाँ छलपूर्ण भाषा और मनोवैज्ञानिक प्रभाव के उदाहरण हैं। कौरव सभा के वाद-विवाद, जिनमें सत्ता-संबंध, नैतिक तनाव एवं मनोवैज्ञानिक प्रभाव-चिंतन के अनुसार संचार-रणनीतियों की रचना स्पष्ट दिखाई देती है, आधुनिक संचार संस्थाओं की संचार-रणनीतियों (पक्षपात, प्राइमिंग, फ्रेमिंग, एजेंडा-निर्धारण इत्यादि) और उनके प्रभावों को समझने के लिए भी अत्यंत उपयोगी प्रतिरूप एवं उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। महाभारत के अनेक संघर्ष, जिनमें कृष्ण का असफल शांति-प्रयास भी शामिल है, यह स्पष्ट करते हैं कि संवाद के टूटने; जैसे—गलत संदेश, हठ, धोखा और अलग-अलग दृष्टिकोण—से छोटे विवाद बड़े विनाश का कारण बन सकते हैं। महाभारत यह दर्शाता है कि संचार केवल सूचना के आदान-प्रदान तक सीमित नहीं है। यह शक्ति, उद्देश्य, सामाजिक संरचना और नैतिकता से गहराई से जुड़ा हुआ है। इस प्रकार, संचार-अध्ययन के दृष्टिकोण से महाभारत मानव संबंधों, राजनीतिक निर्णयों और सामूहिक भाग्य के निर्धारण में संवाद की महत्वपूर्ण भूमिका को समझने की दृष्टि से अपरिहार्य है।

जातक कथाएँ

ईसा पूर्व (पाँचवीं से दूसरी शताब्दी के बीच) रचित जातक कथाएँ, कहानी-कथन (स्टोरीटेलिंग) को संचार के माध्यम के रूप में सामाजिक, सांस्कृतिक एवं नैतिक शिक्षा प्रदान हेतु उपयोग करने के सबसे प्रारंभिक और व्यवस्थित उदाहरणों में माना जाता है। बुद्ध के पिछले जन्मों का वर्णन करने वाले आख्यानों के रूप में जातक कथाएँ मुख्य रूप से भिक्षुक तथा सामान्य समुदायों, दोनों को नैतिक आचरण सिखाने के लिए तैयार की गई थीं। इसी कारण वे उपदेशात्मक संचार में अनुकरणीय ग्रंथ बन

गई। पशु-चरित्रों और सरल-सहज संबंधित स्थितियों का उनका विशिष्ट उपयोग दर्शाता है कि रूपक और प्रतीकात्मकता के माध्यम से करुणा, सत्यता, धैर्य, संयम और बुद्धिमत्ता जैसे जटिल मानवीय मूल्यों को कैसे सहज और स्मरणीय रूप में व्यक्त किया जा सकता है। आकर्षक कहानियों के भीतर नैतिक सिद्धांतों को सम्मिलित करके, जातक कथाएँ एक दृष्टांत प्रस्तुत करती हैं कि कैसे कहानियों के माध्यम से श्रोताओं तक नैतिकता के पाठ अत्यंत सरल रूप में पहुँचाए जा सकते हैं, अर्थात् श्रोताओं पर किसी सिद्धांत को अधिरोपित करने के बजाय, कहानियों के माध्यम से उन्हें धीरे-धीरे नैतिक सोच की ओर आकर्षित किया जा सकता है। ये कथाएँ प्राचीन भारत में संचार के सांप्रदायिक आयाम को भी उजागर करती हैं; इन्हें विहारों, गाँव की बैठकों और जनस्थलों में सुनाया जाता था, जहाँ वे सामाजिक एकता और सांस्कृतिक शिक्षा के साधन का कार्य करती थीं। उनकी दोहराई जाने वाली, सूत्रात्मक संरचनाएँ आसान मौखिक संचरण को बढ़ावा देती हैं, जो इस बात की प्रारंभिक समझ का प्रदर्शन करती हैं कि कथा-रचना की सहायता से संज्ञानात्मक प्रतिधारण और नैतिक आत्मसात् को कैसे बढ़ाया जा सकता है। इस प्रकार, जातक कथाएँ एक उत्कृष्ट उदाहरण हैं कि कैसे कहानियाँ सामूहिक सीख और स्मृति का वाहन बन सकती हैं, जो व्यक्तिगत अनुभव को सामूहिक नैतिक ढाँचों से जोड़ती हैं। संचार-अध्ययन के लिए ये कथाएँ यह मूल्यवान उदाहरण प्रस्तुत करती हैं कि कैसे कहानियाँ मानव समाज में सामाजिक, सांस्कृतिक एवं नैतिक शिक्षा के साधन के रूप में उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं।

पंचतंत्र

पंचतंत्र, जिसकी रचना लगभग ईसापूर्व (दूसरी शताब्दी) के आसपास मानी जाती है, नेतृत्व और सामाजिक बुद्धिमत्ता में व्यावहारिक निर्देशरूपी संचार के लिए कहानियों का उपयोग करने के अत्यंत विकसित और प्रभावशाली उदाहरणों में से एक है। मूल रूप से युवा राजकुमारों को राज्य कला, बातचीत और व्यावहारिक बुद्धि की कलाओं में शिक्षित करने के लिए इनकी रचना की गई थी। इसी कारण इनमें कहानी के भीतर कहानी जैसी बहु-स्तरीय संरचना का प्रयोग मिलता है, जो स्मरण-शक्ति, ध्यान और समझ को प्रभावपूर्ण बनाती है। पंचतंत्र मानव व्यवहार की एक गहन समझ को प्रकट करता है, जो दर्शाता है कि कैसे संचार अभिन्न रूप से उद्देश्यों, भावनाओं, शक्ति-संबंधों और रणनीतिक चिंतन के साथ जुड़ा हुआ है। अपनी पशु-दंतकथाओं और मानवीय समानताओं के माध्यम से ये कहानियाँ दर्शाती हैं कि कैसे वाणी के विभिन्न रूप—सत्य, भ्रम, प्रेरणा, करुणा, मैत्री, सहानुभूति इत्यादि—सामाजिक स्थितियों, संघर्षों, कूटनीति, गठबंधनों और परिणामों को आकार देते हैं।

नैतिक साहित्य की तुलना में पंचतंत्र अर्थ अर्थात् व्यावहारिक सफलता और सामाजिक कौशल पर अधिक ध्यान देता है। यह दिखाता है कि व्यक्ति जटिल सामाजिक परिस्थितियों और संबंधों में किस प्रकार समझदारी से कदम बढ़ा सकता है। इसकी कहानियाँ संचार के कई मूलभूत सिद्धांतों को सामने लाती हैं; जैसे—बात को सही ढंग से प्रस्तुत करना, परिस्थिति के अनुसार ढालना, भाषा का प्रभावी प्रयोग, भावनाओं की समझ, विवादों का समाधान, और श्रोताओं की मनःस्थिति को पहचानना। चूँकि पंचतंत्र की कहानियाँ मनोरंजन और शिक्षा दोनों का कार्य एक साथ करती हैं, तो वे यह प्रदर्शित करती हैं कि कहानी संचार के माध्यम के

रूप में किस प्रकार कोई भी स्पष्ट उपदेश दिए बिना भी आचरण के नियम सिखा सकती है और सामाजिक-राजनीतिक प्रशिक्षण का प्रभावी साधन बन सकती है। समय के साथ पंचतंत्र की कहानियाँ अनेक संस्कृतियों में पहुँचीं। इन कहानियों का संस्कृत से पहलवी, अरबी, फारसी और अनगिनत वैश्विक भाषाओं में रूपांतरण हुआ, जो इनकी संचार-शक्ति और अनुकूलनशीलता को प्रदर्शित करता है। संचार-अध्ययन के लिए पंचतंत्र एक मूलभूत पाठ के रूप में कार्य करता है, जो दर्शाता है कि किस प्रकार कथात्मक रूप का उपयोग रणनीतिक ज्ञान को प्रसारित करने, नेतृत्व गुणों को विकसित करने और जटिल सामाजिक वास्तविकताओं के आंतरिकीकरण हेतु किया जा सकता है।

इन चारों ग्रंथों—रामायण, महाभारत, जातक कथाएँ और पंचतंत्र—को एक साथ देखें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन भारत में कहानी को संचार, सामाजिक सीख और सांस्कृतिक परंपरा को आगे बढ़ाने के एक अत्यंत विकसित साधन के रूप में व्यवहार किया गया था। रामायण अपने आदर्श पात्रों और परिस्थितियों के माध्यम से कर्तव्य, संयम, नेतृत्व और संवाद की स्पष्टता जैसे मूल्यों के दृष्टांत देते हुए नैतिक और पारस्परिक संचार का उदाहरण प्रस्तुत करता है। महाभारत सामाजिक और राजनीतिक जीवन में तनावों और रणनीतिक आयामों के संदर्भ में मानव वाणी की जटिलताओं को सामने लाता है, और यह दर्शाता है कि संवाद, अनुनय और गलत संचार किस प्रकार सामूहिक परिणामों और भाग्यों का निर्धारण कर सकते हैं। जातक कथाएँ नैतिक मूल्यों और सामाजिक आदर्शों को सरल परंतु प्रभावी ढंग से स्थापित करने के लिए रूपक और प्रतीकात्मक कहानियों का उपयोग करके—जिससे श्रोता सहज रूप से चिंतन और व्यावहारिक सुधार की ओर बढ़ते हैं—शिक्षा के क्षेत्र में संचार की क्षमता को और सुदृढ़ करती हैं। पंचतंत्र, अपनी बहु-स्तरीय कथा-संरचना और व्यावहारिक दृष्टि के साथ, यह दिखाता है कि कहानी-कौशल किस प्रकार राज्य-चालन और सामाजिक बुद्धिमत्ता जैसे कौशलों के प्रशिक्षण का एक सुव्यवस्थित साधन बन सकता है। इन चारों परंपराओं को मिलाकर देखें तो कथा केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं रहती, बल्कि एक शक्तिशाली संचार-माध्यम बन जाती है—जो सिखाती है, समझाती है, मार्गदर्शन करती है, सावधान करती है, पहचान बनाती है और सांस्कृतिक स्मृति को सुरक्षित रखती है। समग्र रूप से ये चारों ग्रंथ दर्शाते हैं कि भारतवर्षीय परंपरा में कहानियाँ हमेशा संचार का एक महत्वपूर्ण माध्यम रही हैं—एक ऐसा माध्यम, जो नैतिक आदर्शों को व्यक्त करता है, मानवीय समस्याओं का संबोधन करता है और सामूहिक सोच व समझ को आकार देता है। इस प्रकार, प्राचीन भारतवर्ष की कथा-संपदा संचार-अध्ययन के लिए एक स्थायी और महत्वपूर्ण आधार प्रदान करती है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत अध्ययन में भारतवर्ष के कुछ प्राचीन ग्रंथों में उपलब्ध संचार-संबंधी तथ्यों एवं अवधारणाओं को सामने लाने का प्रयास किया गया है, तथापि यह स्वीकार करना आवश्यक है कि यह प्रयास भारतवर्षीय संचार-दृष्टि के महासागर से मात्र एक बूँद ही है। भारतीय ज्ञान परंपरा को सिर्फ यह कहकर नकार देना उचित नहीं है कि यह ज्ञान प्राचीन है और यह संचार की आधुनिक चुनौतियों के संदर्भ में प्रासंगिक नहीं है। वास्तव में प्राचीन भारतीय संचार परंपरा आधुनिक युग में उभर रही तकनीकी, सामाजिक एवं

नैतिक जटिलताओं सहित अनेक संचार-चुनौतियों का दूरदर्शी एवं सार्थक समाधान प्रस्तुत करती है। प्राचीन भारतीय ज्ञान परंपरा कृत्रिम बुद्धिमत्ता से उत्पन्न चुनौतियों का भी मूल्याधारित, नैतिक एवं मानव-केंद्रित दृष्टिकोण से बखूबी सामना करती है। अतः इस दिशा में और अधिक एवं गहन, व्यवस्थित तथा अंतर्विषयी शोध कार्य किए जाने की आवश्यकता है। आधुनिक संचार के संदर्भ में भारतीय ज्ञान परंपरा के विविध आयामों (भाषिक, दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक इत्यादि) का अध्ययन करना चाहिए। इसके लिए शिक्षाविदों, शोधार्थियों तथा उच्च शिक्षा संस्थानों को आत्म-प्रेरित होकर इस दिशा में सक्रिय भूमिका पालन करने के लिए आगे आना होगा। यदि केवल सरकारी प्रयासों एवं नीतिगत पहलों की प्रतीक्षा होती रहेगी तो इस मूल्यवान धरोहर के अनुसंधान एवं शिक्षण में और भी विलंब होगा। अतः संचार-शिक्षा एवं अनुसंधान से जुड़े विद्वत् समुदाय द्वारा संयुक्त रूप से इस दिशा में तत्पर होकर कार्य करना चाहिए। इस नाते भी कि आधुनिक युग में भारतीय संचार-चिंतन की प्रासंगिकता को वैश्विक स्तर पर स्थापित करना आवश्यक है।

संदर्भ सूची

- दिसानायके, वी. (1985). *द नीड फॉर द स्टडी ऑफ एशियन अप्रोचेस टु कम्युनिकेशन*. एमिक-थम्मासत यूनिवर्सिटी सिम्पोजियम ऑन मास कम्युनिकेशन थ्योरी : द एसियन पर्सपेक्टिव, बैंकाक, अक्टूबर 15-17, 1985. सिंगापुर : एशियन मास कम्युनिकेशन रिसर्च एंड इनफार्मेशन सेंटर.
- दिसानायके, वी. (1988). *द नीड फॉर एशियन अप्रोचेस टु कम्युनिकेशन*. विमल दिसानायके (संपादित), *कम्युनिकेशन थ्योरी : द एशियन पर्सपेक्टिव* (पृ. 1-19) में प्रकाशित. सिंगापुर : एशियन मास कम्युनिकेशन रिसर्च एंड इनफार्मेशन सेंटर.
- दिसानायके, वी. (2009). *द प्रोडक्शन ऑफ एशियन थ्योरीज ऑफ कम्युनिकेशन : कॉण्टेक्स्ट्स एंड चैलेंजेज*. *एशियन जर्नल ऑफ कम्युनिकेशन*, 19(4), 453-468, DOI: 10.1080/01292980903293411
- भट्टाचार्य, के. के. & लोहोचौधुरी, बी. (2016). सम कम्युनिकेशन थॉट्स इन जैन फिलॉसोफी. *मीडिया मीमांसा*, 10(2), 9-16.
- भट्टाचार्य, के. के. (2016). एक्सप्लोरिंग द पॉसिबिलिटी ऑफ इंकॉर्पोरेटिंग इंडियन कम्युनिकेशन थॉट इन द कोर्स करिकुलम ऑफ कम्युनिकेशन स्टडीज : ए लुक ईंटू द पॉसिबल रिसोर्सेज टुवर्ड्स फरदरिंग द सेम. के. बी. नागराज, पी. पुडुसेरी & आर. कलियादान (संपादित), *क्वालिटी कॉन्फिगरेशन ऑफ मीडिया एजुकेशन इन इंडिया* (पृ. 321-348) में प्रकाशित. कोजीकोड : मीडिया एनालिसिस & रिसर्च सेंटर.
- भट्टाचार्य, के. के., लोहाचौधुरी, बी., राव, आर. एन. (2023). *नाट्यशास्त्र : ए स्टडी ऑन कंटीन्यूइटी एंड प्रोग्रेस ऑफ इंडियन कम्युनिकेशन थियोराइजिंग एंड प्रैक्सिस*. मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशिंग हाउस. मैक्समूलर. (1992). इंडिया: व्हाट कैन इट टीच अस. लंदन : लॉड्जमैस, ग्रीन एंड कंपनी.
- लोहोचौधुरी, बी. (2014). एविडेन्सेज ऑफ कम्युनिकेशन फ्रॉम द वेदाज एंड नाट्यवेद. बिप्लब लोहोचौधुरी और मृत्युञ्जय चट्टोपाध्याय (संपादक), *मीडिया एंड कम्युनिकेशन : प्रैक्टिसेज एंड इश्यूज* (पृष्ठ 70-79) में. कोलकाता: एस. बी. एंटरप्राइज.
- विंटरनिट्ज, एम. (1996). *ए हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर* (वॉल्यूम-1) (जर्मन से अंग्रेजी में अनुवाद: वी. श्रीनिवास शर्मा). दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड.
- शास्त्री, यू.वी. (1925). *कौटलीय अर्थशास्त्र* (हिंदी अनुवाद सहित). लाहौर : संस्कृत पुस्तकालय.
- शास्त्री, एस.एन.ए. (2022). ऋग्वेद संहिता में भाषा-दर्शन. *संवर्धिनी*, 4(2), 1-16.



दीनदयाल उपाध्याय की पत्रकारिता का राष्ट्रधर्म

कृपाशंकर चौबे¹

साराश

अंत्योदय और एकात्म मानव दर्शन के प्रणेता राजनेता दीनदयाल उपाध्याय पत्रकार भी थे। वे ऐसे पत्रकार थे, जिन्होंने अपना प्रत्यय भारतीय राष्ट्रीयता से जोड़ लिया था। उनकी पत्रकारिता का उद्देश्य राष्ट्र जागरण तथा राष्ट्रीय विचारों और मानवीय संवेदना का प्रचार-प्रसार था। राष्ट्रीय सम्मान और मर्यादा की रक्षा के लिए उन्होंने पत्रकारिता का मानदंड सदैव ऊँचा बनाए रखा। 'राष्ट्रधर्म', 'पाञ्चजन्य' और 'ऑर्गनाइजर' में प्रकाशित दीनदयाल उपाध्याय के लेखों से पता चलता है कि जातीय चेतना, युगबोध और अपने महत् दायित्व के प्रति वे कितने सचेत थे और सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय मुद्दों पर उनकी चेतना कितनी प्रखर थी। राष्ट्रीय प्रश्नों पर वे पूर्वग्रह से विरत होकर अपना मत प्रकट करते रहे। तभी उनकी पत्रकारिता देश दशा को सही दिशा की ओर प्रेरित करती है, दृष्टि देती है। उनकी समूची पत्रकारिता भारतीय राष्ट्रीयता से संपृक्त रही है। प्रस्तुत शोध पत्र मुख्य रूप से 'राष्ट्रधर्म', 'पाञ्चजन्य' और 'ऑर्गनाइजर' में प्रकाशित दीनदयाल उपाध्याय के लेखों पर आधारित है।

संकेत शब्द : दीनदयाल उपाध्याय, 'राष्ट्रधर्म', 'पाञ्चजन्य', 'ऑर्गनाइजर', राष्ट्रीयता, भारतीयता

प्रस्तावना

भारत में एक मौलिक चिंतक एवं विचारक के रूप में विख्यात पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने राजनीतिक क्षेत्र में ही नहीं, बल्कि पत्रकारिता के क्षेत्र में भी एक अमिट छाप छोड़ी है। 15 अगस्त, 1947 को जब मासिक 'राष्ट्रधर्म' निकला, तो उसके प्रवेशांक में दीनदयाल उपाध्याय ने भारतीय 'राष्ट्र धारा का मुख्य प्रवाह (गौतम बुद्ध से शंकराचार्य तक)' शीर्षक से लेख लिखकर बौद्ध धर्म के जन्म से लेकर शंकराचार्य के काल तक बौद्ध धर्म के विकास और प्रवृत्तियों तथा हिंदू धर्म की भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियों का गंभीर अनुशीलन प्रस्तुत किया। उस लेख में दीनदयाल जी ने लिखा, "जिस समय महात्मा बुद्ध का जन्म हुआ, उस समय वैदिक कर्मकांड के विरुद्ध विद्रोह का सूत्रपात हो चुका था। कर्मकांड इतना बढ़ गया था कि लोग अपने हृदय की सद्प्रवृत्तियों के विकास के स्थान पर केवल यज्ञ-यागादि को ही महत्त्व देते थे। आत्मा की उन्नति के स्थान पर बाह्योपचारों एवं कर्मकांड की ओर ही ध्यान था तथा विश्वास था कि इसी के सहारे हमको स्वर्ग प्राप्त हो जाएगा। परिणामस्वरूप स्वर्णपात्र में विष भरा जाने लगा। बाह्यतः धार्मिक पंडितों के मन में भी जघन्य वृत्तियों का समावेश होने लगा। दया, शांति, अक्रोध और अहिंसा का स्थान क्रूरता, क्रोध और हिंसा ने ले लिया। क्षमा कायरता का चिह्न समझी जाने लगी। सामाजिक विभेद बढ़ने लगे; एक वर्ण दूसरे वर्ण से द्वेष करने लगा। त्यागहीन, वृत्तिहीन तथा पतित विचारों से पूर्ण ब्राह्मण अपनी श्रेष्ठता का दावा करते थे और समाज का नेतृत्व अपनी बपौती समझ बैठे थे। उधर क्षत्रिय ढोल में पोल देखकर उनका उच्च स्वर सुनकर उसकी प्रभुता स्वीकार करने को तैयार नहीं थे। फलतः चारों ओर घृणा और द्वेष का साम्राज्य था। आत्म-प्रवंचना का सबसे ऊपर अधिकार था। समाज की जब ऐसी स्थिति रहती है, तब उसकी शक्ति क्षीण होने लगती है। ऐसे समय में शरीर के मोटापे को दूर करके उसकी जीवन-शक्ति बढ़ानी पड़ती है। महात्मा बुद्ध के पूर्व ही यह विचारों में क्षोभ पैदा हो चुका था। उपनिषदों में विद्रोह का क्षीण स्वर सुनाई देता है, किंतु भागवत धर्म, बौद्ध धर्म और जैन धर्म के रूप में यह विद्रोह हमको स्पष्ट और निश्चित स्वरूप धारण किए हुए मिलता है"

(शर्मा, 2016, पृ. 93)।

इसी लेख में श्री उपाध्याय उस समय की कर्म चेतना के उभार को इस तरह रेखांकित करते हैं, "अपूर्व और व्यापक कर्म-चेतना महात्मा बुद्ध से लेकर स्वामी शंकराचार्य के संपूर्ण युग में पाई जाती है। एक ओर तो महात्मा बुद्ध ने सोई हुई जनता को जगाकर जो असाधारण विचारक्रांति उत्पन्न की, उसके परिणामस्वरूप तथा दूसरी ओर वैदिक धर्म के संग और समन्वय के परिणामस्वरूप उस युग में जैसी कर्म-चेतना जाग्रत हुई, वैसी व्यापक प्रभाव करने वाली कर्म-चेतना राष्ट्रों के जीवन में यदा-कदा ही मिलती है" (शर्मा, 2016, पृ. 96)। दीनदयाल जी के अनुसार बुद्ध भगवान् ने जब वैदिक धर्म के प्रति विद्रोह का सूत्रपात किया तो वैदिक धर्म शांत चित्त से बैठा नहीं रहा। उसने समय की गति को पहचाना और साथ ही इस विद्रोह से देश को होने वाली हानियों को भी पहचाना। अतः वैदिक मनीषियों के सम्मुख प्रश्न था कि वैदिक धर्म को सब प्रकार से सुदृढ़ और युगानुकूल कैसे बनाएँ? उन्होंने विद्रोह के कारणों को समझा तथा उनको दूर भी किया। इतना ही नहीं, बौद्ध धर्म की समस्त अच्छाइयों को भी उन्होंने अपना लिया। यहाँ तक कि स्वामी शंकराचार्य ने तो भगवान् बुद्ध को विष्णु का अवतार ही घोषित कर दिया" (शर्मा, 2016, पृ. 98)।

उस युग की उपलब्धियों का वृत्तांत श्री उपाध्याय इस तरह देते हैं, "कर्म, भक्ति और ज्ञान की तीनों धाराओं का भी समन्वय हम इस युग में पाते हैं। भगवान् कृष्ण ने स्वयं ही गीता में इन तीनों का सुंदर समन्वय कर दिया था और गीता का इस युग में अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान हो गया था। स्वयं शंकराचार्य ने अपने जीवन में ज्ञान, कर्म और भक्ति का सुंदर समन्वय किया। उन्हीं के प्रयत्नों के कारण प्रस्थानत्रयी को मान्यता प्राप्त हो गई। प्रस्थानत्रयी को महत्त्व देकर जहाँ एक ओर उन्होंने बौद्धों के वेद-विरोधी दुराग्रह से मुक्ति पा ली, वहीं वेदों की आत्मा को भी उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और गीता के ज्ञान द्वारा जीवित रखा" (शर्मा, 2016, पृ. 102)। दीनदयाल जी इस लेख में निष्कर्षतः कहते हैं कि अखंड राष्ट्रीयता का आज हमें पुनः आह्वान करना होगा और सिंधु से ब्रह्मपुत्र तक एवं सेतुबंध से हिमाचल के सारे उपांगों

तक विस्तृत मातृभूमि को गौरव तथा स्वाभिमान प्राप्त कराने के लिए अपने त्यागपूर्ण एवं कर्मठ पूर्वजों के प्रयत्नों की परंपरा को अपनाना होगा (शर्मा, 2016, पृ. 105)।

राष्ट्र के अभ्युदय में चिति की भूमिका

राष्ट्र और राष्ट्रीयता किस कदर दीनदयाल जी के चिंतन के केंद्र में थे, इसे 1947 में 'राष्ट्रधर्म' में चिति शीर्षक से दो भागों में प्रकाशित दीनदयाल उपाध्याय के लेख में भी देखा जा सकता है। 'राष्ट्रधर्म' के 28 नवंबर, 1947 के अंक में चिति-1 शीर्षक से प्रकाशित अपने आलेख में दीनदयाल उपाध्याय ने लिखा है, "चिति ही राष्ट्रत्व का द्योतक है। यही चिति जनसमूह के देश विशेष पर रहने के कारण उसकी संस्कृति, साहित्य और धर्म में व्यक्त होती है। चिति की एकता ही समान परंपरा, इतिहास और सभ्यता का निर्माण करती है। अतः किसी भी राष्ट्र की एकता के लिए मूल कारण संस्कृति, सभ्यता, धर्म, भाषा आदि की एकता नहीं किंतु ये तो मूल कारण एक चिति के व्यक्त परिणाम हैं। अतः ऊपर से प्रयत्न करके भी भिन्न-भिन्न चिति के लोगों में भाषा, धर्म, सभ्यता आदि की एकता निर्माण करने पर भी राष्ट्रीय एकता नहीं हो सकती है। शरीर के अंगों के केवल एकत्रीकरण मात्र से जीवन नहीं होता है, किंतु आत्मा की स्थिति ही जीवन और चैतन्य की दात्री होती है। व्यक्ति की आत्मा की एकता ही उसके व्यक्तित्व की विशिष्टताओं तथा उसके चरित्र की एकता में व्यक्त होती है। शरीर और अंग का एक दूसरे का संबंध प्रत्येक अंग का शरीर के लिए काम करना और परिणामस्वरूप संपूर्ण शरीर के साथ-साथ प्रत्येक अंग का भी पालन-पोषण और पुष्ट होते जाना, यह समष्टि जीवन का भाव भी आत्मा की उपस्थिति के कारण ही है, कोई स्वार्थ भावना इसके पीछे नहीं है। बस राष्ट्र की संपूर्ण एकता, उसका समष्टि जीवन राष्ट्र की आत्मा चिति के परिणामस्वरूप ही होता है" (शर्मा, 2016, पृ. 118)।

दीनदयाल जी राष्ट्र के अभ्युदय में चिति की बड़ी भूमिका मानते थे। उन्होंने लिखा है, "चिति के प्रकाश से ही राष्ट्र का अभ्युदय होता है और चिति के विनाश से राष्ट्र का अधःपतन होता है। परतंत्र अवस्था में चिति आक्रांत होती है। जनमानस में उसका प्रकाश अत्यंत क्षीण हो जाता है। केवल कुछ शुद्ध और सात्विक वृत्ति लोगों में ही उसका आविर्भाव रहता है। चिति के इस प्रकाश को उज्ज्वलतर बनाने का ही कार्य देशभक्त का मुख्य कार्य होता है। इसी के परिणामस्वरूप देश के बंधन कटते हैं और उसके पश्चात् भी इसका प्रकाश बढ़ते-बढ़ते राष्ट्र जीवन को पुष्ट बनाता है, उसको चिरंतन करने मानव कल्याण की ओर जाता है। यही आत्म-साक्षात्कार राष्ट्र-जीवन का मुख्य ध्येय होता है। राष्ट्र को इस आत्म-साक्षात्कार के मार्ग पर ले चलने वाला ही देशभक्त होता है, केवल विदेशियों का विरोध करने वाला नहीं। राष्ट्र की आत्मा का यदि यह साक्षात्कार न हुआ, अपितु आत्मा उसी प्रकार आक्रांत और निम्नगामी रही अथवा अपनी चिति के ऊपर अन्य राष्ट्र की चिति का प्रभाव रहा तो जातीय जीवन के उत्कर्ष के स्थान पर अपकर्ष ही होता है। इस प्रकार चितियों के संघर्ष में यदि देशीय चिति बलवती न हुई तो अंत में राष्ट्र जीवन नष्ट हो जाता है तथा उसका स्थान दूसरा राष्ट्र ले लेता है। आज भारत के समक्ष यही प्रश्न है। अभी तक हमारे राष्ट्रीय कहे जाने वाले आंदोलनों का केवल अंग्रेज-विरोधी स्वरूप था। सब प्रकार के कारणों को इकट्ठा करके एक संयुक्त मोर्चा खड़ा करने का प्रयत्न किया गया। चिति का आधार न होने के कारण उस राष्ट्रीयता का रचनात्मक स्वरूप दृढ़ न हो सका।

यह आज स्पष्ट ही है। बाह्यांगों से आत्मा का सृजन संभव नहीं है" (शर्मा, 2016, पृ. 118-119)।

दीनदयाल जी का जोर रचनात्मक देशभक्ति पर था। उन्होंने लिखा है, "आज हमारे विरोध का आश्रय स्थान अप्रत्यक्ष हो गया है। ऐसे समय में हमको रचनात्मक देशभक्ति की ओर विशेष दृष्टि देने की आवश्यकता है तथा अपने जातीय जीवन की चिति को पहचानकर उसको प्राकृत संस्कारों के द्वारा बलवती करने का प्रयत्न करें, इसी में हमारे राष्ट्र का चिरकल्याण है और इसी के द्वारा हम मानवता की सेवा करने में समर्थ हो सकेंगे और तभी सफल होगा हमारा चिराकांक्षित ध्येय—सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः" (शर्मा, 2016, पृ. 119)। 'राष्ट्रधर्म' के 16 नवंबर, 1948 के अंक में चिति-2 शीर्षक लेख में दीनदयाल जी ने चिति के व्यक्त परिणाम की मीमांसा की। उन्होंने लिखा, "आज तक चली आने वाली राष्ट्रपुरुषों की परंपरा के भीतर छिपे हुए सूत्र को यदि हम ढूँढ़ें तो संभवतया चिति के व्यक्त परिणाम की मीमांसा से उसके अव्यक्त कारण की भी हमको अनुभूति हो सके। जिन महान् विभूतियों के नाम स्मरण मात्र से हम अपने जीवन में दुर्बलता के क्षणों में शक्ति का अनुभव करते हैं, कायरता की वृत्ति का स्थान वीरव्रत ले लेता है, उनके जीवन में कौन-सी बात है, जो हममें इतना सामर्थ्य भर देती है? कौन-सी चीज है, जिसके लिए हम मर-मिटने को तैयार हो जाते हैं? हमारा मस्तक श्रद्धा से किसके सामने नत होता है और क्यों? वह कौन-सा लक्ष्य है, जिसके चारों ओर हमारा राष्ट्र-जीवन घूमता आया है? अपने राष्ट्र के किस तत्त्व को बचाने के लिए हमने बड़े-बड़े युद्ध किए? किसके लिए लाखों का बलिदान हुआ? उत्तर हो सकता है, भारत की भूमि के लिए। किंतु, भारत से तात्पर्य क्या जड़ भूमि से है? क्या हमने हिमालय के पत्थर और गंगा के जल की रक्षा की है? हमारे अवतारों ने किस हेतु जन्म लिया था? उनको हम भगवान का अवतार क्यों कहते हैं? उपर्युक्त अनेक प्रकार के प्रश्न हैं। इन प्रश्नों का यदि हम उत्तर दें तो हमको अपनी चिति का पता चल सकता है। हमारे शास्त्रकारों ने इसको 'धर्म' के नाम से पुकारा है" (शर्मा, 2016, पृ. 233)।

दीनदयाल जी के अनुसार हमारा धर्म हमारे राष्ट्र की आत्मा है। बिना धर्म के राष्ट्र जीवन का कोई अर्थ नहीं रहता। भारतीय राष्ट्र न तो हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक फैले हुए भू-खंड से बन सकता है और न तीस करोड़ मनुष्यों के झुंड से। एक ऐसा सूत्र चाहिए, जो तीस करोड़ को एक-दूसरे से बाँध सके, जो तीस कोटि को इस भूमि में बाँध सके। वह सूत्र हमारा धर्म ही है। बिना धर्म के भारतीय जीवन का चैतन्य ही नष्ट हो जाएगा, उसकी प्रेरक शक्ति ही जाती रहेगी। अपनी धार्मिक विशेषता के कारण ही संसार के भिन्न-भिन्न जन समूहों में हम भी राष्ट्र के नाते खड़े हो सकते हैं। धर्म के पैमाने से ही हमने सबको नापा है। धर्म की कसौटी पर ही कसकर हमने खरे-खोटे की जाँच की है। हमने किसी को महापुरुष मानकर पूजा है तो इसलिए कि उनके जीवन में पग-पग पर हमको धार्मिकता दृष्टिगोचर होती है। राम हमारे आराध्य देव बनकर रहे हैं और रावण सदा से घृणा का पात्र बना है। क्यों? राम धर्म के रक्षक थे और रावण धर्म का विनाश करना चाहता था। युधिष्ठिर और दुर्योधन दोनों भाई भाई थे, दोनों राज्य चाहते थे, एक के प्रति हमारे मन में श्रद्धा है तो दूसरे के प्रति घृणा (शर्मा, 2016, पृ. 233-234)।

दीनदयाल जी याद दिलाते हैं कि हम अपने जीवन में धर्म को महत्त्व देकर ही प्रत्येक कार्य करते हैं। हमारा उठना-बैठना, सोना और खाना-पीना सबके पीछे धर्म का भाव रहता है। इसलिए स्मृति ग्रंथों में उनके संबंध में नियम दिए गए हैं। स्मृति-ग्रंथों को सभी धर्म-ग्रंथ मानते हैं। हमारा साहित्य

लोक-कल्याण की धार्मिक भावना से ही प्रेरणा लेता है, कवि अपनी रचना 'स्वान्तः सुखाय' करते हुए भी अंतःकरण में आत्मा के साक्षात्कार की अनुभूति में सुख लेता हुआ धार्मिक प्रवृत्ति की उच्चतम अवस्था को प्राप्त करता है। क्या कोई कवि भारत में हुआ है, जिसके काव्य के एक-एक पद में राष्ट्र-आत्मा की पुकार न हो और वह धार्मिक भावना से परिपूर्ण न हो। हमारे वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, तुलसी, सूर (सूरदास), ज्ञानदेव, समर्थ (रामदास), चैतन्य और नानक कवि थे, साथ ही ऋषि और संत भी थे। हमारे धर्म को अपने आचरण में लाने वाले आदर्श महापुरुष थे। इसीलिए उनके शब्द राष्ट्र के शब्द हो गए हैं; उनकी वाणी युग-युग में राष्ट्र जीवन का संचार करती आई है (शर्मा, 2016, पृ. 234)।

राष्ट्र-जीवन की समस्याओं का विहंगावलोकन

दीनदयाल जी देश में एक संस्कृति के हिमायती थे। 'राष्ट्रधर्म' के 6 अक्तूबर, 1949 के अंक में 'राष्ट्र-जीवन की समस्याएँ' शीर्षक से प्रकाशित अपने लेख में इस पर विहंगम दृष्टि डालते हुए उन्होंने लिखा, "भारत में एक ही संस्कृति रह सकती है; एक से अधिक संस्कृतियों का नारा देश के टुकड़े-टुकड़े करके हमारे जीवन का विनाश कर देगा। अतः आज लीग (मुस्लिम) का द्विसंस्कृतिवाद, कांग्रेस का प्रच्छन्न द्विसंस्कृतिवाद तथा साम्यवादियों का बहुसंस्कृतिवाद नहीं चल सकता। आज तक एक-संस्कृतिवाद को संप्रदायवाद कहकर ठुकराया गया, किंतु अब कांग्रेस के विद्वान् भी अपनी गलती समझकर इस एक संस्कृतिवाद को अपना रहे हैं। इसी भावना और विचार से भारत की एकता तथा अखंडता बनी रह सकती है, तभी हम अपनी संपूर्ण समस्याओं को सुलझा सकते हैं" (शर्मा, 2016, पृ. 254)।

दीनदयाल जी के अनुसार मनुष्य की अनेक जन्मजात प्रवृत्तियों के समान वह देशभक्ति की भावना को भी स्वभाव से ही प्राप्त करता है। परिस्थितियों एवं वातावरण के दबाव से किसी व्यक्ति में यह प्रवृत्ति सुप्त होकर विलीन प्राय हो जाती है। इस प्रकार विकसित देशप्रेम के व्यक्ति अपने कार्यकलापों की प्रेरणा अस्पष्ट एवं क्षीण भावना से न पाकर अपने स्वप्नों के अनुसार अपने देश का निर्माण करने की प्रबल ध्येयवादिता से पाते हैं। भारत में भी प्रत्येक देशभक्त के सम्मुख इस प्रकार का एक ध्येयपथ है तथा वह समझता है कि अपने पथ पर चलाकर ही वह देश को समुन्नत बना सकेगा। आज यह ध्येय-पथ यदि एक ही होता तथा सब देशभक्तों के आदर्श भारत का स्वरूप भी एक ही होता, तब तो किसी भी प्रकार के विवाद या संघर्ष का प्रश्न नहीं था, किंतु वस्तुस्थिति यह है कि आज भिन्न-भिन्न मार्गों से लोग देश को आगे ले जाना चाहते हैं तथा प्रत्येक का विश्वास है कि उसी का मार्ग सही मार्ग है। अतः हमको इन मार्गों का विश्लेषण करना होगा और उसी समय हम प्रत्येक की वास्तविकता को भी समझ सकेंगे (शर्मा, 2016, पृ. 254-255)।

दीनदयाल जी ने लिखा है कि चार प्रधान वर्ग हैं—अर्थवादी, राजनीतिवादी, मतवादी तथा संस्कृतिवादी। पहला वर्ग अर्थवादी संपत्ति को ही सर्वस्व समझता है तथा उसके स्वामित्व एवं वितरण में ही सब प्रकार की दुरवस्था की जड़ मानकर उसमें सुधार करना ही अपना एकमेव कर्तव्य समझता है। उसका एकमेव लक्ष्य 'अर्थ' है। साम्यवादी एवं समाजवादी इस वर्ग के लोग हैं। इनके अनुसार भारत की राजनीति का निर्धारण अर्थनीति के आधार पर होना चाहिए तथा संस्कृति एवं मत को वे गौण समझकर अधिक महत्त्व देने को तैयार नहीं हैं। राजनीतिवादी दूसरा वर्ग है। यह जीवन का संपूर्ण महत्त्व राजनीतिक प्रमुखता प्राप्त करने में ही समझता है तथा राजनीतिक

दृष्टि से ही संस्कृति, मजहब तथा अर्थनीति की व्याख्या करता है। अर्थवादी यदि एकदम उद्योगों का राष्ट्रीयकरण अथवा बिना मुआवजा दिए जमींदारी उन्मूलन चाहता है तो राजनीतिवादी अपने राजनीतिक कारणों से ऐसा करने में असमर्थ हैं। उसके लिए इस प्रकार संस्कृति एवं मजहब का भी मूल्य अपनी राजनीति के लिए ही है, अन्यथा नहीं। इस वर्ग के अधिसंख्य लोग कांग्रेस में हैं, जो आज भारत की राजनीतिक बागडोर संभाले हुए हैं (शर्मा, 2016, पृ. 255)। तीसरा वर्ग मतवादी मजहबपरस्त है। इसे धर्मनिष्ठ कहना ठीक नहीं होगा; क्योंकि धर्म मजहब या मत से बड़ा तथा विशाल है। यह वर्ग अपने-अपने मजहब के सिद्धांतों के अनुसार ही देश की राजनीति अथवा अर्थनीति को चलाना चाहता है। इस प्रकार का वर्ग मुल्ला मौलवियों अथवा रूढ़िवादी कट्टरपंथियों के रूप में अब भी थोड़ा बहुत विद्यमान है, यद्यपि आजकल उसका बहुत प्रभाव नहीं रह गया है। चौथा वर्ग संस्कृतिवादी है। इसका विश्वास है कि भारत की आत्मा का स्वरूप प्रमुखतया संस्कृति ही है। अतः अपनी संस्कृति की रक्षा एवं विकास ही हमारा कर्तव्य होना चाहिए। यदि हमारा सांस्कृतिक हास हो गया तथा हमने पश्चिम के अर्थप्रधान अथवा भोगप्रधान जीवन को अपना लिया तो हम निश्चित ही समाप्त हो जाएंगे। यह वर्ग भारत में बहुत बड़ा है। इसके लोग राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में तथा कुछ अंशों में कांग्रेस में भी हैं। कांग्रेस के ऐसे लोग राजनीति को केवल संस्कृति का पोषकमात्र ही मानते हैं, संस्कृति का निर्णायक नहीं। हिंदीवादी सब लोग इसी वर्ग के हैं (शर्मा, 2016, पृ. 255)।

दीनदयाल जी लिखते हैं, "उपर्युक्त चार अंगों की विवेचना में यद्यपि हमने आधुनिक शब्दों का प्रयोग किया है, किंतु प्राचीन काल में भी ये चार प्रवृत्तियाँ उपस्थित थीं तथा इनमें से एक प्रवृत्ति को ही अपनाकर हमने अपने जीवन के आदर्श का मानदंड बनाया है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में चार प्रवृत्तियाँ हैं। धर्म संस्कृति का, अर्थ नैतिक वैभव का, काम राजनीतिक आकांक्षाओं का तथा मोक्ष पारलौकिक उन्नति का द्योतक था। इनमें से हमने धर्म को ही अपने जीवन का अंग बनाया है, क्योंकि उसके द्वारा ही हमने शेष सबको सधते हुए देखा है" (शर्मा, 2016, पृ. 256)।

दीनदयाल जी के अनुसार भारतीय जीवन को धर्मप्रधान बनाने का प्रमुख कारण यह था कि इसी में जीवन के विकास की सबसे अधिक संभावना है। आर्थिक दृष्टिकोण वाले लोग यद्यपि आर्थिक समानता के पक्षपाती हैं, किंतु वे व्यक्ति की राजनीति एवं आत्मिक सत्ता पूर्णतः समाप्त कर देते हैं। राजनीतिवादी प्रत्येक व्यक्ति को मतदान का अधिकार देकर उसके राजनीतिक व्यक्तित्व की रक्षा तो अवश्य करते हैं, किंतु आर्थिक एवं आत्मिक दृष्टि से वे भी अधिक विचार नहीं करते। अर्थवादी यदि जीवन को भोगप्रधान बनाते हैं तो राजनीतिवादी उसको अधिकार प्रधान बना देते हैं। मतवादी बहुत कुछ अव्यावहारिक, गतिहीन एवं संकुचित हो जाते हैं। किसी-किसी व्यक्ति विशेष अथवा पुस्तक विशेष के विचारों के वे इतने गुलाम हो जाते हैं कि समय के साथ वे अपने आपको नहीं रख पाते तथा इस प्रकार पूर्णतः नष्ट हो जाते हैं। इन सबके विपरीत संस्कृति प्रधान जीवन की यह विशेषता है कि इसमें जीवन के केवल मौलिक तत्त्वों पर तो जोर दिया जाता है, शेष बाह्य बातों के संबंध में प्रत्येक को स्वतंत्रता रहती है। इसके अनुसार व्यक्ति की स्वतंत्रता का प्रत्येक क्षेत्र में विकास होता है। संस्कृति किसी काल विशेष अथवा व्यक्ति विशेष के बंधन से जकड़ी हुई नहीं है! अपितु यह तो स्वतंत्र एवं विकासशील जीवन की मौलिक प्रवृत्ति है। इस संस्कृति को ही हमने धर्म कहा है। अतः जब कहा जाता है कि भारतवर्ष धर्मप्रधान देश है तो इसका अर्थ मजहब,

मत या रिलीजन नहीं, किंतु यह संस्कृति ही होता है (शर्मा, 2016, पृ. 257)।

भारत में संस्कृतिवाद, द्वि-संस्कृतिवाद तथा बहुसंस्कृतिवाद के नाम से तीन वर्ग दिखाई पड़ने के बारे में दीनदयाल जी लिखते हैं, “इन तीनों प्रकार के वर्गों का प्रमुख कारण यह है कि उनके सम्मुख संस्कृति-प्रधान जीवन न होकर मजहब, राजनीति अथवा अर्थनीति प्रधान जीवन ही है। मुस्लिम लीग ने अपने अमूर्त तत्त्व का आधार मुस्लिम मजहब समझकर ही भिन्न मुस्लिम संस्कृति एवं राष्ट्र का नारा लगाया तथा उसके आधार पर ही अपनी सब नीति निर्धारित की। कांग्रेस का जीवन एवं लक्ष्य राजनीति प्रधान होने के कारण उसने अँग्रेजों का मुकाबला करने के लिए तथा शासन चलाने के लिए सब वर्गों को मिलाकर खड़ा करने का विचार किया, जिसके कारण अप्रत्यक्ष रूप से वर्गों को मिलाकर खड़ा करने का विचार किया, जिसके कारण अप्रत्यक्ष रूप से यह भी द्वि-संस्कृतिवाद का शिकार बन गई। बहु-संस्कृतिवादी जीवन को अर्थप्रधान मानते हैं, अतः वे आर्थिक एकता की चिंता करते हुए सांस्कृतिक एकता की ओर से उदासीन रह सकते हैं” (शर्मा, 2016, पृ. 259)।

दीनदयाल जी मानते थे कि संस्कृति ही भारतीयता की रक्षा करती है। उन्होंने लिखा है, “केवल एक-संस्कृतिवादी लोग ही ऐसे हैं, जिनके समक्ष और कोई ध्येय नहीं है तथा जैसा कि हमने देखा, संस्कृति ही भारत की आत्मा होने के कारण वे भारतीयता की रक्षा एवं विकास कर सकते हैं। शेष सब तो पश्चिम का अनुकरण करके या तो पूँजीवाद अथवा रूस की तरह आर्थिक प्रजातंत्र तथा राजनीतिक पूँजीवाद का निर्माण करना चाहते हैं। अतः उनमें सब प्रकार की सद्भावना होते हुए भी इस बात की संभावना कम नहीं है कि उनके द्वारा भी भारतीय आत्मा का तथा भारतीयत्व का विनाश हो जाए। अतः आज की प्रमुख आवश्यकता तो यह है कि एक संस्कृतिवादियों के साथ पूर्ण सहयोग किया जाए। तभी हम गौरव और वैभव से खड़े हो सकेंगे तथा भारत-विभाजन जैसी भावी दुर्घटनाओं को रोक सकेंगे” (शर्मा, 2016, पृ. 260)।

भारतीय राजनीति की मौलिक भूल पर विचार

दीनदयाल उपाध्याय की सजग दृष्टि भारतीय राजनीति की मौलिक भूल पर भी जाती है। उन्होंने ‘राष्ट्रधर्म’ के 5 दिसंबर, 1949 के अंक में ‘भारतीय राजनीति की एक मौलिक भूल’ शीर्षक से लेख में लिखा, “भारतीय राजनीतिज्ञों की सबसे बड़ी भूल यह है कि वे भारत के भिन्न-भिन्न वर्गों का स्वतंत्र अस्तित्व मानते हैं। उनके इस अस्तित्व को स्वीकार करके फिर वे इस बात का प्रयत्न करते हैं कि यह अस्तित्व किसी प्रकार राष्ट्र के हितार्थ काम में आए। आज तक उनका संपूर्ण प्रयत्न इस प्रकार की भिन्न-भिन्न स्वतंत्र मानी हुई इकाइयों के बीच एकता और सामंजस्य स्थापित करने का ही रहा है। उनमें महत्तम समापवर्तक ढूँढ़ने का उन्होंने प्रयत्न किया है, किंतु संख्या में यह इतनी रूढ़ होती जाती है कि उनका समापवर्तक ही नहीं मिल पाता। किसी भी वर्ग के अस्तित्व को, जो अस्तित्व के वास्तविक नहीं, संकट न पहुँचाते हुए बल्कि उनका संवर्धन ही करते हुए, आज तक के राजनीतिक प्रश्न हल करने का प्रयत्न किया गया है और उसका परिणाम सदा ही असफलता हुआ है” (शर्मा, 2016, पृ. 268)।

दीनदयाल जी इस लेख में उस मौलिक भूल की तह में जाते हैं और उसके बाद उसके परिमार्जन की आवश्यकता पर बल देते हैं। वे लिखते हैं कि अँग्रेजों के राज्य-काल में हमने यह स्वीकार किया कि देश में मुसलमान,

ईसाई आदि अनेक वर्ग हैं। उनके स्वतंत्र अस्तित्व की रक्षा करते हुए ही राष्ट्रीयता का निर्माण हो सकेगा। वास्तव में तो राष्ट्रीयता के स्तर पर उनका स्वतंत्र अस्तित्व स्वीकार करना एक बड़ी भारी भूल है, क्योंकि मुसलमान एवं ईसाई आदि का वर्गीकरण मजहब के आधार पर है, जो राष्ट्रीयता से भिन्न वस्तु है। एक मजहब के मानने वाले अनेक राष्ट्रों के अंग हो सकते हैं और एक ही राष्ट्र में अनेक मजहब के मानने वालों का समावेश हो सकता है। राष्ट्रीयता यदि कोई शक्तिशाली प्रेरणा है तो उसके चेतना क्षेत्र में मजहब का प्रवेश नहीं होता, किंतु आज तक हमारा प्रयत्न यही रहा है कि इन वर्गों का स्वतंत्र अस्तित्व मानकर उनका एकीकरण करें—ऐसा एकीकरण, जिसमें किसी को कुछ भी न छोड़ना पड़े। मजे की बात यह भी है कि यह जो सबको मिलाकर एक निर्माण होने वाला है, उसकी भी स्पष्ट कल्पना किसी को नहीं। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अनेक बार कहा है कि स्वतंत्र भारत का राज्य न हिंदू का होगा, न मुसलमान का होगा और न ईसाई का। प्रश्न आता है कि फिर किसका होगा? इसका उत्तर बहुत लोगों ने यह कहकर देने का प्रयत्न किया है कि वह ‘हिंदुस्तानियों’ का होगा, किंतु फिर झगड़ा आता है कि यह ‘हिंदुस्तानी’ कौन? इसमें किसका कितना समावेश होगा? और किस आधार पर होगा? क्या संख्या-बल के आधार पर या और किसी अन्य आधार पर? अभी तक हमने संख्या बल का आधार माना है तथा जिस-जिस चीज को ये वर्ग अपना कहकर खड़े हुए हैं, उनको मिलाने का प्रयत्न किया है। अँग्रेजों से होने वाले सभी समझौतों तथा उस काल के सभी आंदोलनों में यही प्रश्न प्रमुख रहा है तथा उसका परिणाम ‘पाकिस्तान’ हुआ, यह मानने में किसी समझदार व्यक्ति को आपत्ति नहीं होगी (शर्मा, 2016, पृ. 268)।

दीनदयाल जी के अनुसार इस प्रकार का वर्गीकरण केवल सांप्रदायिक आधार पर ही नहीं, भाषा और आर्थिक आधारों पर भी किया जाता है। आज हमारे सभी नेता यह मानकर चलते हैं कि प्रत्येक भाषा-भाषी वर्ग का एक स्वतंत्र अस्तित्व है। ऐसे अनेकों स्वतंत्र वर्गों को मिलाकर समूचे भारत की रचना करनी चाहिए। इसी का परिणाम है हमारी ‘इंडियन यूनियन’ तथा उसका प्रस्तुत विधान। इस कल्पना ने ‘प्रांतीय स्वतंत्रता’ नाम के सिद्धांत को जन्म दिया है। आज जब प्रांतों का एक भी अधिकार केंद्र अपने हाथ में लेता है तो प्रांत के प्रतिनिधि प्रांतीय स्वतंत्रता की दुहाई देकर प्रांतों को म्युनिसिपैलिटी के समकक्ष बनाने के प्रयत्नों की निंदा करने लगते हैं। सांप्रदायिक स्वतंत्रता का परिणाम यदि पाकिस्तान हुआ है तो इस प्रांतीय स्वतंत्रता का परिणाम क्या होगा, यह तो भविष्य ही बतलाएगा। आर्थिक आधार पर भी स्वतंत्र वर्गों की कल्पना की जाती है। एक जमींदार तो दूसरा कृषक, एक पूँजीपति तो दूसरा मजदूर एवं एक शोषक तो दूसरा शोषित, इस प्रकार का वर्गीकरण करके या तो एक को दबाकर दूसरे का प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयत्न होता है या अधिक-से-अधिक दोनों में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया जाता है। उपर्युक्त सभी एवं ऐसे अनेक वर्ग, जिनको राजनीतिज्ञ कठोर सत्य मानकर चलते हैं, वास्तव में मिथ्या हैं। जब तक उनका अस्तित्व मानकर, उनको संतुष्ट करने की नीति अपनाकर उनके अहंकार और स्वार्थ की वृद्धि करते रहेंगे, तब तक राजनीति विपरीत दिशा में ही बहती रहेगी। सत्य तो यह है कि संपूर्ण भारत एक है तथा भारत की संपूर्ण संतान एक है और उसको इस एकता का अनुभव करते हुए रहना चाहिए। अनेक अंगों को इकट्ठा करके शरीर की सृष्टि नहीं होती, किंतु शरीर के अनेक अंग होते हैं। इसलिए प्रत्येक अवयव अपने स्वतंत्र अस्तित्व के लिए नहीं, अपितु शरीर के अस्तित्व के लिए प्रयत्न करता है। इसी प्रकार राष्ट्र के सभी अंगों को अपनी रूपरेखा

राष्ट्रीय स्वरूप और हितों के अनुकूल बनानी चाहिए, न कि राष्ट्र को ही इन अंगों के अनुसार काटा-छाँटा जाए। संप्रदायों, प्रातों, भाषाओं और वर्गों का तभी तक मूल्य है, जब तक वे राष्ट्रहित के अनुकूल हैं, अन्यथा उनका बलिदान करके भी राष्ट्र की एकता की रक्षा करनी होगी। प्रथम दृष्टिकोण में अनेक को सत्य मानकर एक की कल्पना का प्रयत्न है तो दूसरे में एक को सत्य मानकर अनेक उसके रूपमात्र हैं। जैसे नदी के जल में आवर्त-विवर्त तरंग आदि अनेक रूप होते हैं, किंतु उनका अस्तित्व नदी के जल से भिन्न और स्वतंत्र नहीं और न उनके समुच्चय का ही नाम नदी है। दुःख का विषय है कि आज भी देश की बागडोर जिनके हाथ में हैं, वे प्रथम दृष्टिकोण से ही समस्त समस्याओं को देखते हैं। जब तक राजनीति की इस मौलिक भूल का परिमार्जन नहीं होगा, तब तक राजनीतिक भारत का निर्माण सुदृढ़ नींव पर नहीं हो सकता” (शर्मा, 2016, पृ. 268-269)।

1967 के चुनाव के बाद ‘पाञ्चजन्य’ रजत जयंती विशेषांक में प्रकाशित ‘चैवेति! चैवेति!’ शीर्षक लेख में दीनदयाल उपाध्याय ने नए नेतृत्व की जरूरत पर जोर दिया। उन्होंने लिखा, “आम चुनाव में कांग्रेस की पराजय तथा जनसंघ की विजय का नया मोड़ आया। नए युग का आविर्भाव हो रहा है। उसके लिए नए विचार, नई नीति और नए नेतृत्व की आवश्यकता है। पुरानी पीढ़ी अपना काम कर गई, अब नई पीढ़ी को आगे आना होगा। आज की राजनीति दो युगों के संधिकाल की राजनीति है। संक्रमण की कामचलाऊ व्यवस्था है। उसे टिकाऊ समझने की भूल न करें और न उसे भावी राजनीति का नमूना ही समझें। अतीत एक तथ्य है, वर्तमान अस्थिर है और भविष्य अज्ञात। अज्ञात से कुछ लोगों को डर लगता है, इसलिए वे वर्तमान से चिपके रहना चाहते हैं या बीते को वापस लाना चाहते हैं। प्रकृति के नियम और काल के क्रम के विपरीत काम करनेवाले सफल नहीं हो सकते। भविष्य से डरिए मत, बल्कि उसके निर्माण में रुचि लीजिए। संजोए सपनों को सँवारिए, कल्पना को कर्म से गढ़िए और योजना को युक्ति से पूरा कीजिए” (शर्मा, 2016, पृ. 104)।

दीनदयाल जी ने तप की प्रेरणा और धर्म की दिशा प्राप्त करने की राह इस तरह बताई, “वादों के विवादों में फँसने की जरूरत नहीं। अपने अंतःकरण की प्रवृत्ति को ही प्रमाण मानकर चलिए। वही धर्म है। उसी में से तप की प्रेरणा मिलेगी और धर्म की दिशा प्राप्त होगी। जो प्रवृत्ति और व्यवस्था, जो राजनीति और अर्थनीति, जो सामाजिक नियम और शिक्षा पद्धति हमें कर्मविहीन, आलसी और निद्रालु बनावे, वह कलियुगी है। उसे बदलना होगा। कृतयुग का उद्घोष है-चैवेति” (शर्मा, 2016, पृ. 104)। अतः राजा और रंक, पूँजीपति और श्रमिक, अमीर और गरीब, सबको श्रम की भावना में जुटाना होगा। श्रम से राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक संरक्षण प्राप्त करने होंगे। श्रम के लिए फड़कती भुजाओं को काम देना होगा। जहाँ राष्ट्रव्यापी श्रम है, वहाँ निर्धनता और विषमता टिक नहीं सकती। जहाँ समता और संपन्नता है, वहाँ सत्य है और वहीं शिव और सुंदर है। नया युग श्रमयुग हो, तभी कृतयुग होगा। हममें से प्रत्येक इस युग निर्माण में जुट जाए, यही कामना है” (शर्मा, 2016, पृ. 105)।

‘पाञ्चजन्य’ में ‘विचार वीथी’ स्तंभ के अंतर्गत दीनदयाल उपाध्याय ने विभिन्न विषयों पर एक लेखमाला प्रकाशित की। विचार वीथी स्तंभ 4 जुलाई, 1955; 11 जुलाई, 1955; 18 जुलाई, 1955; 25 जुलाई, 1955; 1 अगस्त, 1955; 29 अगस्त, 1955; 10 अक्टूबर, 1955; 24 अक्टूबर, 1955; 31 अक्टूबर, 1955; 28 नवम्बर, 1955; 19 दिसंबर, 1955;

2 जनवरी, 1956; 23 जनवरी, 1956; 30 जनवरी, 1956; 13 फरवरी, 1956; 20 फरवरी, 1956; 5 मार्च, 1956; 26 मार्च, 1956; 9 अप्रैल, 1956; 16 अप्रैल, 1956; 7 मई, 1956; 14 मई, 1956; 21 मई, 1956; 4 जून, 1956; 11 जून, 1956; 18 जून, 1956; 2 जुलाई, 1956; 9 जुलाई, 1956; 23 जुलाई, 1956; 30 जुलाई, 1956; 20 अगस्त, 1956; 27 अगस्त, 1956; 10 सितम्बर, 1956; 17 सितम्बर, 1956; 28 सितम्बर, 1956; 1 अक्टूबर, 1956; 15 अक्टूबर, 1956; 5 नवम्बर, 1956; 26 नवम्बर, 1956; 3 दिसंबर, 1956; 17 दिसंबर, 1956 के अंकों में छपा। इसे पढ़कर दीनदयाल उपाध्याय के दर्शन, चिंतन व कार्य को भलीभाँति समझा जा सकता है। अपने पत्रकारीय लेखों के माध्यम से दीनदयाल जी ने देश की तात्कालिक समस्याओं के समाधान पर विचार किया।

‘विचार वीथी’ स्तंभ के अतिरिक्त ‘पाञ्चजन्य’ में एक और शृंखला ‘हमारा जीवन दर्शन’ नाम से 1960 में प्रकाशित हुई। उसमें नौ लेख छपे जिनके शीर्षक इस प्रकार हैं : परकीय प्रेरणा स्रोत देश में स्वावलंबन की प्रेरणा नहीं जगा सकता; देश में दुर्व्यवस्था तथा जीवन में अनिश्चितता पैदा करने वाले मूल कारण: परानुकरण से राष्ट्र की सृजनात्मक शक्ति समाप्त हो रही है; भारतीय जीवन पद्धति आज भी मार्गदर्शन कर सकती है; हमारे यहाँ ग्राम पंचायतें स्वतंत्र एवं स्वयंभू इकाइयाँ रही हैं; यह मेरा नहीं सबका है और इसलिए राष्ट्र का है आदि। इन लेखों में दीनदयाल जी यह मत प्रतिपादित करते हैं कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भी भारत अपना गंतव्य निर्धारित नहीं कर पा रहा है। जब तक यह गंतव्य निर्धारित नहीं होता, तब तक हमारी प्रगति अवरुद्ध रहेगी। अतः राष्ट्र निर्माण के कार्य में लगे हुए लोगों को सर्वप्रथम यह गंतव्य निर्धारित करना होगा। यह गंतव्य क्या हो, इस पर वे प्रकाश डालते हैं।

पाञ्चजन्य में ‘आपका मत’ नाम से भी दीनदयाल उपाध्याय द्वारा लिखी गई एक अन्य लेखमाला नौ भागों में वर्ष 1962 में प्रकाशित हुई। उन लेखों के शीर्षक हैं : ‘मताधिकार कागज का टुकड़ा नहीं, लोकाज्ञा है’; ‘मतदाता समय की चुनौती का उत्तर देंगे?’; ‘दक्षिणपंथ व वामपंथ के आधार पर दलों का विभाजन अनुचित : राष्ट्र की सुरक्षा के प्रश्न को सर्वोपरि महत्त्व दिया जाए’; ‘अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक की संज्ञाएँ घातक हैं’; ‘उद्देश्य में समानता परन्तु साधनों में विचलन’; ‘योजनाओं के प्रति भारतीय जनसंघ का दृष्टिकोण व्यावहारिक’; ‘दल और किसान’; ‘सरकार की ओर से कृषि और किसानों की उपेक्षा जारी : हर मतदाता को निभानी है भूमिका’।

दीनदयाल उपाध्याय अंग्रेजी साप्ताहिक ‘आर्गनाइजर’ में पोलिटिकल डायरी नामक स्तंभ लिखते थे। उस स्तंभ में उन्होंने भाषा, आर्थिक दशा, वैदेशिक मामलों, संसदीय जनतंत्र के प्रश्नों पर विचार किया है। दीनदयाल जी संस्कृतनिष्ठ हिंदी के किस कदर हिमायती थे, इसे ‘संस्कृतनिष्ठ हिंदी क्यों?’ शीर्षक उनके लेख में देखा जा सकता है। उसमें उन्होंने लिखा है, “भाषा की सरलता के बारे में ही कुछ उलझन है। इस बात से कोई इनकार नहीं करता कि भाषा सरल होनी चाहिए। किंतु सरलता का मानदंड क्या है? उसे सर्वाधिक जनता की समझ में आना चाहिए। यदि यही हमारा उद्देश्य हो, तो नई हिंदी संस्कृतनिष्ठ होनी चाहिए। वह गांधीजी द्वारा बताई गई ‘हिंदुस्तानी’ नहीं हो सकती। वस्तुतः गांधीजी ने ‘हिंदुस्तानी’ की वकालत इसलिए नहीं की थी कि वह सरल है, बल्कि हिंदी और उर्दू को मिलाकर एक कृत्रिम भाषा के निर्माण द्वारा केवल मुसलमानों को खुश करने के लिए की थी; किंतु वह ‘हिंदुस्तानी’ न कहीं बोली जाती है और न समझी जाती है। पंडित नेहरू की हिंदी विंध्याचल पर्वत के दक्षिण में नहीं समझी जाती और मौलाना आजाद

की हिंदुस्तानी तो उत्तरप्रदेश में भी नहीं समझी जाती थी। जिनकी पढ़ाई उर्दू में हुई है, वे संस्कृत पर आधारित हिंदी को सदा कठिन बतानेवाले हैं, किंतु देश के बाकी सब लोगों के लिए वह सरल होगी। गत वर्ष पंडित नेहरू Planetarium के लिए 'कृत्रिम नभोमंडल' शब्द पर चिढ़ गए थे, किंतु वे कोई अन्य सरल शब्द नहीं सुझा सके। उनका फारसी का समकक्ष शब्द और भी कठिन होता" (उपाध्याय, 2019, पृ. 101)।

‘स्वभाषा और सुभाषा’ का प्रश्न

‘स्वभाषा और सुभाषा’ शीर्षक लेख में दीनदयाल जी लिखते हैं, “यह सच है कि अखिल भारतीय स्तर पर हिंदी अँग्रेजी का स्थान लेगी। वह स्थान किसी भी अन्य भारतीय भाषा को दिया जा सकता है, किंतु सुस्पष्ट कारणों से हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में उपयुक्त माध्यम माना गया। वस्तुतः संविधान स्वीकृत होने के बहुत पहले से ही उसे यह स्थान प्राप्त था। संस्कृत यदि विद्वानों और भद्रपुरुषों की संपर्क-भाषा थी, तो सामान्य लोगों की संपर्क-भाषा हिंदी थी। मध्यकाल के साधुओं ने इसका खुलकर और बारंबार प्रयोग किया। उन लोगों द्वारा रचित अनेक हिंदी कविताएँ हमें मिलती हैं, यद्यपि उनकी मातृभाषा हिंदी नहीं थी। हमारे सुदीर्घ स्वातंत्र्य-संघर्ष-काल में हिंदी अंतर-संपर्क का स्वाभाविक माध्यम थी। भूषण ने छत्रपति शिवाजी पर हिंदी में काव्य-रचना की। गुरु गोविंद सिंह ने अपने अनुयायियों को हिंदी में उपदेश दिए। 1857 में अँग्रेजों को भगा देने की योजना हिंदी के माध्यम से बनी। स्वामी दयानंद सरस्वती ने हिंदी के माध्यम से ही राष्ट्र का तेजस्वितापूर्ण आह्वान किया। गांधीजी ने अँग्रेजों के विरुद्ध शांतिपूर्ण विद्रोह के निमित्त सन्नद्ध करने की दृष्टि से जनता को उत्साहित करने के लिए हिंदी को ही उचित माध्यम माना। हमारे स्वातंत्र्य-संघर्ष में भाषा ने उतना ही योगदान किया, जितना उसने आयरलैंड में किया था” (उपाध्याय, 2019, पृ. 104)।

दीनदयाल जी ‘राष्ट्रभाषा’ की जगह ‘राजभाषा’ नाम दिए जाने का भाष्य इस तरह करते हैं, “यदि संविधान में हिंदी को परंपरागत रूप से सुप्रचलित नाम ‘राष्ट्रभाषा’ के बदले ‘राजभाषा’ नाम दिया गया तो उसका उद्देश्य अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के बारे में केवल कुशंकाएँ दूर करना ही था और यह प्रकट करना भी था कि वे सब भी समान रूप से राष्ट्रीय हैं। राष्ट्रीयता एक गुणप्रधान कल्पना है, परिमाणप्रधान नहीं। भू-क्षेत्रीय राष्ट्रवाद के आदर्श पर चलने वालों के लिए इसका गूढार्थ कठिन होगा। ऐसे लोग यह भी नहीं समझ सकते कि भाषाविषयक एवं अन्य प्रसंगों में मंद एकरूपता थोपे बिना भी राष्ट्रीय एकता कैसे अक्षुण्ण रखी जा सकती है। फिर भी, सांविधानिक अभिव्यक्ति ने लोगों को भ्रमित किया है और इस कारण वे यह अनुभव करते हैं कि यदि कोई हिंदी का विरोध करता है और अँग्रेजी की वकालत करता है तो इससे उसकी राष्ट्रीयता की भावना पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उनकी दृष्टि से सरकारी कार्य जागतिक विषय हैं, वे किसी भी भाषा में किए जा सकते हैं, और इसमें हानि ही क्या है यदि अँग्रेजी का प्रयोग चलता रहे। इसके परिणामस्वरूप भाषा के प्रश्न के प्रति उदासीनता की मनोवृत्ति पैदा हुई है। व्यावहारिक कारणों से जो समझौतामूलक कार्यवाही हुई, उससे भी अँग्रेजी के स्थान पर हिंदी को लाने का उत्साह ठंडा पड़ा। यह स्मरण रखना चाहिए कि यदि अँग्रेजी हटेगी तो हमारे राष्ट्रीय स्वाभिमान की भावना को संतुष्ट करने के लिए। इसलिए अँग्रेजी के गुणों और लोगों की रट लगाने से कोई लाभ नहीं है। हम अँग्रेजी शासन को नहीं रख सकते थे, चाहे उससे जो लाभ रहे हों। हमारे स्वातंत्र्य-संग्राम के प्रारंभिक दिनों में ब्रिटिश समर्थक तत्त्वों को

हमारा यह सामान्य उत्तर होता था कि ‘स्वराज्य’ (Self rule) की प्यास को ‘सुराज्य’ (Good rule) से नहीं बुझाया जा सकता। आज भी ‘स्वभाषा’ की आवश्यकता की पूर्ति ‘सुभाषा’ से नहीं हो सकती” (उपाध्याय, 2019, पृ. 104-105)।

सहकारिता कृषि कार्यक्रम पर सरकार की अदूरदर्शिता पर गहरी चिंता प्रकट करते हुए दीनदयाल जी ने ‘सहकारिता कृषि : किंकर्तव्यविमूढ़ता की कहानी’ शीर्षक से लेख लिखा। उसमें उन्होंने लिखा, “पंडित नेहरू को यह शिकायत है कि सहकारिता-कृषि के विरोधियों ने कोई विकल्प नहीं सुझाया है। कठिनाई यह है कि वे अपनी सुनहली कल्पनाओं से इस प्रकार अभिभूत हैं कि उन्हें कोई विकल्प दिखाई ही नहीं देता। ऐसा केवल इसी मामले में नहीं है। नीति संबंधी अन्य विषयों में भी उन्हें केवल एक ही मार्ग दिखाई देता है, और वह है केवल उनका अपना मार्ग। किसी के स्वामित्व के आधार पर कृषि की बात भी है। जापान एवं अन्य देशों में इससे सर्वाधिक अच्छा परिणाम निकला है। पोलैंड को सहकारिता-कृषि के प्रयोग में असफलता प्राप्त करने के बाद फिर से इसी पद्धति का सहारा लेना पड़ा। यदि वे मनमोदक खानेवालों के मत पर निर्भर न रहकर चित्र के दूसरे पहलू पर ठंडे मन से विचार करें, तो उन्हें सच्चाई समझ में आ जाएगी। वे तथा काँग्रेस अध्यक्ष, दोनों ही विरोध को और संभावित तथा वास्तविक कठिनाइयों को घटाकर बताने का प्रयत्न कर रहे हैं। वे इस कल्पना से अभिभूत हैं कि हर स्थान पर किसानों ने सहकारिता-कृषि के कार्यक्रम का हृदय से स्वागत किया है। पंडित नेहरू जोश के साथ बोले हैं, पर उनके निष्कर्ष से सहकारिता-कृषि के पक्ष का समर्थन नहीं होता। डॉ. मेहताब ने यह मत व्यक्त किया कि काँग्रेस के नेताओं में से ‘अनेक अब भी इस कार्यक्रम के बारे में किंकर्तव्यविमूढ़ हैं, जिसे वे जनता से व्यवहार में लाने का अनुरोध कर रहे हैं।’ हाँ, यहाँ किंकर्तव्यविमूढ़ता है और वह ऊपर से लेकर नीचे तक विद्यमान है। पहले काँग्रेस के नेताओं को चाहिए कि वे इस योजना के सभी पहलुओं तथा पक्ष-विपक्ष पर सविस्तर विचार करें और तब जनता को उसके बारे में स्पष्ट और असन्दिग्ध शब्दों में बताएँ। बहुमुखी वाक्शूरता की अपेक्षा, जो इन दिनों काफी मात्रा में हमें कर्णगोचर हो रही है, उससे अधिक भलाई होगी” (उपाध्याय, 2019, पृ. 48)।

वैदेशिक मामलों पर मत

विदेशी मामलों पर दीनदयाल जी की चेतना तीक्ष्ण थी। ‘पाकिस्तान को अमरीकी सैन्य-सहायता’ शीर्षक से लेख में दीनदयाल जी भारत के प्रति पाकिस्तान का द्वेष यथावत् बने रहने पर इस तरह टिप्पणी करते हैं, “यह कह सकना कठिन है कि पाकिस्तान के राष्ट्राध्यक्ष जनरल अयूब खान की अमरीकी-यात्रा का उद्देश्य सफल हुआ है या नहीं। फिर भी, यह स्पष्ट है कि अपने जन्म-काल से पाकिस्तान भारत के विरुद्ध जो कट्टर द्वेष की भावना रखता आया है, वह ज्यों-की-त्यों चल रही है। अयूब खान की अमरीका-यात्रा का एक उद्देश्य भारत के विरुद्ध विष-वमन करना था, और इस उद्देश्य को उन्होंने तहेदिल से पूरा किया है। प्रेसीडेंट केनेडी और जनरल अयूब ने वार्ता के बाद जो संयुक्त विज्ञप्ति जारी की है, उससे इस बात का आभास मिल जाता है कि पाकी राष्ट्राध्यक्ष के भारत-विरोधी अभियान का अमरीकी सरकार एवं अमरीकी जनता के मानस-पटल पर कितना प्रभाव पड़ा है। स्पष्ट है कि अयूब खान अमरीका के साथ अपनी मैत्री का प्रयोग इस प्रकार करना चाहते हैं कि अमरीका भारत के प्रति शत्रु-भाव रखने लगे” (उपाध्याय, 2019, पृ. 57)।

‘क्या हमने चीनी आक्रमण से शिक्षा ली?’ शीर्षक से लेख में दीनदयाल जी पड़ोसी देशों के प्रति समान मानदंड नहीं अपनाए जाने की जमकर खबर लेते हैं। वे लिखते हैं, “यह आश्चर्यजनक है कि प्रधानमंत्री ने चीन और पाकिस्तान के प्रति व्यवहार में दो मानदंड अपनाए हैं। वे पाकिस्तान की बढ़ रही शत्रु-भावना को ठीक-ठीक समझते हैं और कहते हैं, यह स्पष्ट है कि वर्तमान परिस्थितियों में, अर्थात् जब पाकिस्तान चीन के साथ अधिकाधिक मैत्री का प्रयत्न कर रहा है, पाकिस्तान के साथ संतोषजनक निबटारे की आशा नहीं है। उनका यह भी मत है कि किसी भी समझौते पर पहुँचने से पूर्व यह आवश्यक है कि पाकिस्तान अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन करे। इस संबंध में पाकिस्तान का उतना ही दोष है जितना चीन का। यदि अपनी भारतद्वेषी मनोवृत्ति के कारण पाकिस्तान चीन के साथ साँठ-गाँठ कर रहा है, तो चीन भी पाकिस्तान से हाथ मिला रहा है। स्पष्ट ही, चीन के साथ कोई समझौता किया जा सके, इसके पूर्व चीन के रुख में भी परिवर्तन होना चाहिए। इसलिए क्या प्रधानमंत्री को पाकिस्तान की भाँति ही चीन के साथ भी समझौते की संभावना को समाप्त नहीं मानना चाहिए? केवल यही सम्मानास्पद और यथार्थ होगा” (उपाध्याय, 2019, पृ. 113)।

‘चीनी आक्रमण और भारत सरकार’ शीर्षक से लेख में दीनदयाल जी चीन द्वारा कब्जा किए गए स्थान को वापस लाने के लिए कदम नहीं उठाने पर निराशा प्रकट करते हैं। वे लिखते हैं, “प्रधानमंत्री का चीनी प्रधानमंत्री के नाम पिछला पत्र, यद्यपि इच्छित से बहुत कम था, फिर भी उसके पूर्व-पत्राचारों की तुलना में सुधार का द्योतक है। उसकी ध्वनि दृढ़ है और अधिकांश तर्क ठोस तथा भौगोलिक तथ्यों, ऐतिहासिक अभिलेखों, संधियों और परंपराओं पर आधारित हैं। पहली बार चीनियों से यह स्पष्ट कहा गया कि सीमा के बारे में तब तक समझौता वार्ता नहीं हो सकती जब तक वे लोंगजू और उपूसी (NEFA) तथा पूर्वी लद्दाख की अन्य भारतीय चौकियों पर अवैध कब्जा किए हुए हैं। भाषा की सटीकता के अभाव तथा उन स्थानों के बारे में, जहाँ चीनियों ने अतिक्रमण किया है, विवरण के अभाव से बचा जा सकता था, यदि पत्र का प्रारूप तैयार करते समय कुछ और सतर्कता बरतने का कष्ट उठाया गया होता। फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि अक्षयचिन्मय क्षेत्र से—जहाँ चीनियों ने एक सड़क बना ली है—आक्रमण समाप्त करने की माँग का जानबूझ कर समावेश नहीं किया गया है। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि भारत सरकार उस क्षेत्र में अपने दावे पर बल देना नहीं चाहती। उस पत्र का सारा अच्छा प्रभाव प्रधानमंत्री के हाल के इस वक्तव्य से निष्फल हो गया है कि चीनियों ने अब तक भारत के जिस क्षेत्र पर कब्जा कर रखा है, वहाँ से उन्हें हटाने के लिए भारत शक्ति का प्रयोग नहीं करेगा। पंडित नेहरू का मत है कि जब समस्याओं का राजनीतिक हल ढूँढ़ा जा रहा है, तब सैनिक कार्यवाही करना भारत के लिए अनुत्तरदायित्वपूर्ण कार्य होगा” (उपाध्याय, 2019, पृ.129)।

संपूर्णानंद का अभिमत और उसका विस्तार

‘पोलिटिकल डायरी’ की प्रस्तावना संपूर्णानंद ने लिखी है। राजनीतिक मतभिन्नता के बावजूद उन्होंने मन की बात इस तरह लिखी है, “यह स्मरण रखना चाहिए कि वे विचार किसी ऐ-गैरे के विचार नहीं हैं। ये शब्द हमारे समय के अत्यंत महत्वपूर्ण नेताओं में से एक नेता की कल्पनाओं की अभिव्यक्ति करते हैं, जो अपने देश के सर्वश्रेष्ठ हित-संपादन के लिए अपने को अर्पित कर चुका था, जो निर्मल चरित्रवाला था और जो ऐसा नेता था,

जिसके वजनदार शब्द हजारों-हजारों शिक्षित व्यक्तियों को भावाभिभूत कर देते थे। यदि हम उनसे सहमत नहीं हैं, तो भी हमें उनका उचित आदर करना चाहिए और हमें उनकी विवेचना करनी चाहिए। वे चुनाव तथा अस्थायी महत्त्व की अन्य घटनाएँ बीत चुकी हैं, पर देश कायम है—वह देश, जिसके नाम पर वे सारी गतिविधियाँ हुई थीं। पुराने योद्धाओं से, जो हाथ में तलवार लिए धराशायी हो गए, हम जो कुछ भी प्रकाश पा सकते हैं, उसे ग्रहण कर हमें देश के लिए अभी भी कार्य करना है। जो सफाई से लड़े और जिसके हृदय में कोई दुर्भावना नहीं थी, वे लोग किस दल के थे, इसका कोई महत्त्व नहीं है। वे एक दूसरे की सज्जनता को पहचानते थे और कभी किसी क्षण उनमें से कोई अस्थायी रूप से किसी मानवी दुर्बलता का शिकार भी हो गया हो, तो हमें रामचंद्र जी द्वारा विभीषण की उपदिष्ट इन शब्दों को याद रखना चाहिए—मरणानुनिर्वैराणि” (उपाध्याय, 2019, पृ. vi)।

संपूर्णानंद ने दीनदयाल जी की पत्रकारिता पर जो मंतव्य प्रकट किए थे, उसका विस्तार हम कई पुस्तकों में देख सकते हैं। प्रो. प्रमोद कुमार ने दीनदयाल जी द्वारा रचित और उन पर रचित पुस्तकों का विवरण ‘दीनदयाल उपाध्याय वर्ल्ड आफ लिटरेचर एनोटेटेड बिब्लियोग्राफी’ पुस्तक के रूप में तैयार किया है। अंबाला के मून आर्क क्रिएशन ने इसे छापा है। ‘दीनदयाल उपाध्याय शोध के विभिन्न आयाम’ पुस्तक में प्रो. प्रमोद कुमार ने ठीक लिखा है कि दीनदयाल उपाध्याय के लिए पत्रकारिता अर्थोपार्जन का जरिया नहीं, बल्कि राष्ट्र जागरण और राष्ट्रीय विचारों के प्रचार-प्रसार का माध्यम थी (कुमार, 2023, पृ.186)। इसी तरह आकाशदीप जरयाल ने अपनी पुस्तक ‘लोक संचारक दीनदयाल उपाध्याय’ में उन्हें मिशनरी पत्रकार माना है। जरयाल ने ठीक लिखा है कि दीनदयाल उपाध्याय के संपादकीय आलेखों और स्तंभों को पढ़कर उनके बारे में जो चित्र मस्तिष्क में उभरता है, वह यह है कि उनका पत्रकार प्रोफेशनल नहीं है, वह व्रती है, मिशनरी है (जरयाल, 2025, पृ. 75)। जरयाल ने दीनदयाल उपाध्याय की पत्रकारिता का विशद विवेचन करने के अलावा एक स्वतंत्र अध्याय में उनके साहित्य का भी अध्ययन किया है। उस अध्याय का शीर्षक है साहित्यकार दीनदयाल उपाध्याय। उसमें दीनदयाल जी की पुस्तकों- ‘सम्राट चंद्रगुप्त’, ‘जगद्गुरु श्री शंकराचार्य’, ‘अखंड भारत क्यों’, ‘हमारा कश्मीर’, ‘जोड़ें कश्मीर-मुखर्जी, नेहरू और अब्दुल्ला का पत्र व्यवहार’, ‘टैक्स या लूट’, ‘बेकारी की समस्या और उसका हल’, ‘दो योजनाएँ—वायदे, अनुपालन, आसार’, ‘सिद्धांत और नीतियाँ’, ‘एकात्म मानववाद’, ‘विश्वासघात’, ‘वचन भंग : ताशकंद घोषणा की शव परीक्षा’, ‘अवमूल्यन : एक बड़ा पतन’, ‘पोलिटिकल डायरी’, ‘राष्ट्र जीवन की दिशा’, ‘भारतीय अर्थ नीति : विकास की एक दिशा’, ‘जनसंख्या का सिद्धांत और नीति’ का वर्णन किया गया है।

दीनदयाल जी के लगातार लिखते जाने का ध्येय क्या था? इसका उत्तर हृदय नारायण दीक्षित ने अपनी पुस्तक ‘पंडित दीनदयाल उपाध्याय : द्रष्टा, दृष्टि और दर्शन’ में इस प्रकार दिया है, “उनके लगातार लिखते जाने का एक ही ध्येय था—विश्व के मानचित्र पर भारत की प्रतिष्ठा और स्वराष्ट्र का परम वैभवा। वे भारत के जन-जन के बीच राष्ट्रीय तत्त्व ज्ञान फैलाते रहे। वे मानव की महिमा और गरिमा की पुनर्प्रतिष्ठा के लिए ही लिखते रहे। उनके रचना संसार में भारत देशवाचक ही नहीं, एक सनातन साधना की संज्ञा है। पंडित जी भारत भूमि की चिरंतन प्रतिष्ठा के लिए ही लिखते थे” (दीक्षित, 2021, पृ. 157)।

निष्कर्ष

पत्रकारिता का राष्ट्रधर्म है कि वह राष्ट्र की महान संस्कृति और परंपरा का प्रसार करे। इस कसौटी पर दीनदयाल उपाध्याय इसलिए खरे उतरते हैं, क्योंकि उन्हें राष्ट्र की महान परंपरा की सही अभिज्ञता थी। इसीलिए राष्ट्रीय प्रश्नों पर वे पूर्वग्रह से विरत होकर अपना मत प्रकट करते रहे। तभी उनकी पत्रकारिता देश-दशा को सही दिशा की ओर प्रेरित करती है, दृष्टि देती है। उनकी समूची पत्रकारिता भारतीय राष्ट्रीयता से संपृक्त रही है। उन्होंने राष्ट्रीयता और भारतीयता के मूल वैशिष्ट्य को जातीय चेतना और सांस्कृतिक संचेतना के आलोक में अभिव्यक्त किया और जातीय चेतना प्रवाह को गत्वरता दी। दीनदयाल जी ने विविध धाराओं का मूल्यांकन कर सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और नैतिक कलुष प्रक्षालन के उपक्रम किए, ताकि राष्ट्रीय चेतना का विकास हो सके। भारतीय राष्ट्र के उन्नयन का कोई दूसरा पथ नहीं है।

संदर्भ सूची

- उपाध्याय, डी.डी. (पंचम संस्करण 2019). पोलिटिकल डायरी. नई दिल्ली : सुरुचि प्रकाशन. पृष्ठ-101.
- उपाध्याय, डी.डी. (पंचम संस्करण 2019). पोलिटिकल डायरी. नई दिल्ली : सुरुचि प्रकाशन. पृष्ठ-104.
- उपाध्याय, डी.डी. (पंचम संस्करण 2019). पोलिटिकल डायरी. नई दिल्ली : सुरुचि प्रकाशन. पृष्ठ-104-105.
- उपाध्याय, डी.डी. (पंचम संस्करण 2019). पोलिटिकल डायरी. नई दिल्ली : सुरुचि प्रकाशन. पृष्ठ-48.
- उपाध्याय, डी.डी. (पंचम संस्करण 2019). पोलिटिकल डायरी. नई दिल्ली : सुरुचि प्रकाशन. पृष्ठ-57.
- उपाध्याय, डी.डी. (पंचम संस्करण 2019). पोलिटिकल डायरी. नई दिल्ली : सुरुचि प्रकाशन. पृष्ठ-113.
- उपाध्याय, डी.डी. (पंचम संस्करण 2019). पोलिटिकल डायरी. नई दिल्ली : सुरुचि प्रकाशन. पृष्ठ-129.
- उपाध्याय, डी.डी. (पंचम संस्करण 2019). पोलिटिकल डायरी. नई दिल्ली : सुरुचि प्रकाशन. पृष्ठ-v.
- कुमार, पी. (सं.). (2023). दीनदयाल उपाध्याय : शोध के विविध आयाम. दिल्ली : यूनीस्टार. पृष्ठ-186.
- जरयाल, ए.डी. (2025). लोक संचारक दीनदयाल उपाध्याय. दिल्ली : यश पब्लिकेशंस. पृष्ठ-75.
- दीक्षित, एच. एन. (2021). पंडित दीनदयाल उपाध्याय : द्रष्टा, दृष्टि और दर्शन. प्रयागराज : अनामिका प्रकाशन. पृष्ठ-157.
- शर्मा, एम.सी. (सं.). (2016). दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय खंड एक. दिल्ली : प्रभात प्रकाशन. पृष्ठ-93.
- शर्मा, एम.सी. (सं.). (2016). दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय खंड एक. दिल्ली : प्रभात प्रकाशन. पृष्ठ-96.
- शर्मा, एम.सी. (सं.). (2016). दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय खंड एक. दिल्ली : प्रभात प्रकाशन. पृष्ठ-98.

- शर्मा, एम.सी. (सं.). (2016). दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय खंड एक. दिल्ली : प्रभात प्रकाशन. पृष्ठ-102.
- शर्मा, एम.सी. (सं.). (2016). दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय खंड एक. दिल्ली : प्रभात प्रकाशन. पृष्ठ-105.
- शर्मा, एम.सी. (सं.). (2016). दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय खंड एक. दिल्ली : प्रभात प्रकाशन. पृष्ठ-118.
- शर्मा, एम.सी. (सं.). (2016). दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय खंड एक. दिल्ली : प्रभात प्रकाशन. पृष्ठ-118-119.
- शर्मा, एम.सी. (सं.). (2016). दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय खंड एक. दिल्ली : प्रभात प्रकाशन. पृष्ठ-119.
- शर्मा, एम.सी. (सं.). (2016). दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय खंड एक. दिल्ली : प्रभात प्रकाशन. पृष्ठ-233.
- शर्मा, एम.सी. (सं.). (2016). दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय खंड एक. दिल्ली : प्रभात प्रकाशन. पृष्ठ-233-234.
- शर्मा, एम.सी. (सं.). (2016). दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय खंड एक. दिल्ली : प्रभात प्रकाशन. पृष्ठ-234.
- शर्मा, एम.सी. (सं.). (2016). दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय खंड एक. दिल्ली : प्रभात प्रकाशन. पृष्ठ-254.
- शर्मा, एम.सी. (सं.). (2016). दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय खंड एक. दिल्ली : प्रभात प्रकाशन. पृष्ठ-254-255.
- शर्मा, एम.सी. (सं.). (2016). दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय खंड एक. दिल्ली : प्रभात प्रकाशन. पृष्ठ-255.
- शर्मा, एम.सी. (सं.). (2016). दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय खंड एक. दिल्ली : प्रभात प्रकाशन. पृष्ठ-255.
- शर्मा, एम.सी. (सं.). (2016). दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय खंड एक. दिल्ली : प्रभात प्रकाशन. पृष्ठ-256.
- शर्मा, एम.सी. (सं.). (2016). दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय खंड एक. दिल्ली : प्रभात प्रकाशन. पृष्ठ-257.
- शर्मा, एम.सी. (सं.). (2016). दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय खंड एक. दिल्ली : प्रभात प्रकाशन. पृष्ठ-259.
- शर्मा, एम.सी. (सं.). (2016). दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय खंड एक. दिल्ली : प्रभात प्रकाशन. पृष्ठ-260.
- शर्मा, एम.सी. (सं.). (2016). दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय खंड एक. दिल्ली : प्रभात प्रकाशन. पृष्ठ-268.
- शर्मा, एम.सी. (सं.). (2016). दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय खंड एक. दिल्ली : प्रभात प्रकाशन. पृष्ठ-268.
- शर्मा, एम.सी. (सं.). (2016). दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय खंड एक. दिल्ली : प्रभात प्रकाशन. पृष्ठ-268-269.
- शर्मा, एम.सी. (सं.). (2016). दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय खंड 14. दिल्ली : प्रभात प्रकाशन. पृष्ठ-104.
- शर्मा, एम.सी. (सं.). (2016). दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय खंड 14. दिल्ली : प्रभात प्रकाशन. पृष्ठ-104.
- शर्मा, एम.सी. (सं.). (2016). दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय खंड 14. दिल्ली : प्रभात प्रकाशन. पृष्ठ-105.



भारत की देशज ज्ञान परंपरा में आपदा संचार का अध्ययन

प्रो. (डॉ.) प्रमोद कुमार¹

सारांश

पारिस्थितिक विविधताओं के कारण भारत एक आपदा-उन्मुख क्षेत्र है, जहाँ भूकंप, बाढ़, चक्रवात, सूखा, भूस्खलन और वनाग्नि जैसी प्राकृतिक आपदाएँ अक्सर घटित होती रहती हैं। मानव निर्मित आपदाएँ भी बहुत पहले से घटित होती रही हैं। इसीलिए औपचारिक आपदा चेतावनी और संचार प्रणाली स्थापित होने से बहुत पहले से भारतवासियों ने आपदाओं की पूर्वचेतावनी एवं सामुदायिक सुरक्षा हेतु देशज संचार प्रणालियाँ विकसित की हुई हैं। इन प्रणालियों में अनुभवजन्य ज्ञान पर आधारित मौखिक परंपराएँ, लोकगीत, लोककथाएँ, कहावतें, लोकोक्तियाँ, प्रतीक संकेत, प्राकृतिक संकेत, पशु-पक्षियों के व्यवहार, पंचांग-ज्ञान, ध्वनि-संकेत, सामुदायिक नेटवर्क और मौसम-आकाश संकेत शामिल हैं। ये प्रणालियाँ आज भी सामान्य जनजीवन में प्रचलित हैं और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक स्वतः हस्तांतरित होती रहती हैं। ग्राम सभा, चौपाल, तीर्थ-यात्राओं, पंचायतों और बाजारों के माध्यम से जोखिम की सूचना सरकुलर रूप में पूरी बस्ती तक पहुँचती है। इस संबंध में लोकगीतों की जहाँ ग्रामीण एवं जनजातीय क्षेत्रों में एक समृद्ध परंपरा है, वहीं आपदाओं के संबंध में लोगों को जागरूक करती हुई अनेक कहावतें भी हैं। कहावतों में मुख्य रूप से घाघ-भड्डरी की कहावतें हिंदी भाषी क्षेत्रों में जनजीवन में रची-बसी हैं। बंगाल में 'खानर बचन' भी आपदा संचार का एक प्रमुख स्रोत है। इस प्रकार की कहावतें राजस्थान, हरियाणा, पंजाब और अन्य प्रदेशों में भी स्थानीय भाषाओं और बोलियों में मिलती हैं। इन सभी कहावतों की अहम खूबी यह है कि पढ़े-लिखे लोग ही नहीं, कथित निरक्षर लोग भी इनसे परिचित हैं और वे दैनंदिन जीवन में इनका खास खयाल रखते हैं। इन पारंपरिक पद्धतियों ने न केवल आपदाओं के संबंध में जोखिम को कम किया, बल्कि लोगों में सहयोग, जागरूकता और तत्परता को भी बढ़ाया है। प्रस्तुत शोध-पत्र भारत के इसी देशज ज्ञान तंत्र में आपदा संचार की अवधारणा, ऐतिहासिक परंपरा, सामाजिक संरचना, क्षेत्रवार उदाहरण, सामुदायिक उपयोगिता, आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण से इसकी पुनःपुष्टि तथा आधुनिक आपदा प्रबंधन प्रणाली में इसके एकीकरण का अध्ययन प्रस्तुत करता है। अध्ययन दर्शाता है कि पारंपरिक प्रणालियाँ आज भी व्यावहारिक हैं तथा आधुनिक चेतावनी प्रणालियों के पूरक का कार्य कर सकती हैं। ये आपदा जोखिम न्यूनीकरण में सहायक हैं। देशज ज्ञान को वैज्ञानिक प्रणाली के साथ एकीकृत करने के लिए नीतिगत सुझाव भी प्रस्तुत किए गए हैं।

संकेत शब्द : देशज ज्ञान, आपदा संचार, आपदा जोखिम न्यूनीकरण, पारंपरिक चेतावनी प्रणाली, आपदा प्रबंधन, मौखिक परंपराएँ, प्रतीक संकेत, लोकगीत, प्राकृतिक संकेत, पशु-पक्षियों के व्यवहार, पंचांग-ज्ञान, ध्वनि-संकेत, घाघ-भड्डरी, खानर बचन.

प्रस्तावना

भारत की भौगोलिक सीमाओं का वर्णन करते हुए 'विष्णु पुराण' में कहा गया है—“उत्तरं यत् समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्। वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः॥ (विष्णु पुराण, 2.3.1)। यानी समुद्र के उत्तर में और हिमालय के दक्षिण में जो देश है, उसे भारत कहते हैं तथा उसकी संतानों (नागरिकों) को भारती कहते हैं। पुराणों में वर्णित भारत की इन भौगोलिक सीमाओं से अहसास होता है कि प्रकृति ने भारत को कम से कम दो तरफ से तो बाह्य आक्रमणों से सुरक्षित किया है। लेकिन गहराई से देखा जाए तो ये सुरक्षा कवच प्राकृतिक आपदाओं की दृष्टि से अनेक प्रकार के जोखिमों का कारण भी बनता है। हिमालयी क्षेत्र जहाँ भूकंप, भूस्खलन और हिमस्खलन के प्रति संवेदनशील है; वहीं भारत के तटीय क्षेत्र चक्रवात, सुनामी और दूसरे समुद्री तूफानों के लिए अत्यंत संवेदनशील हैं। यही नहीं, मैदानी क्षेत्रों में बाढ़ तथा शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में सूखा और गर्मी की लहरें आम हैं। इसके अलावा विभिन्न प्रकार की महामारियाँ और बाह्य हमले भी एक प्रकार से आपदाएँ ही हैं। आधुनिक तकनीक आधारित आपदा चेतावनी प्रणाली की उपलब्धता तो बीते कुछ दशकों का परिणाम है, किंतु भारत में विभिन्न समुदायों ने हजारों वर्षों से प्राकृतिक संकेतों की व्याख्या कर प्रभावी संचार प्रणाली विकसित की है, जो वैज्ञानिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक सभी स्तरों पर निहित है। भले ही आधुनिकता और नगरीकरण के कारण इन परंपरागत प्रणालियों का

क्षरण हुआ है, किंतु अनेक अध्ययनों से यह सिद्ध होता है कि भारतीय देशज ज्ञान आज भी अनेक क्षेत्रों में प्रभावी और प्रामाणिक है।

समुद्र में अक्सर तूफान, सुनामी और चक्रवात की खबरें आती हैं, लेकिन अंडमान निकोबार के विभिन्न द्वीपों में जनजातीय पद्धति से जीवन जी रहे लोगों को इनसे बहुत कम नुकसान पहुँचता है। वास्तव में वे देशज ज्ञान पर आधारित आपदा संचार पद्धतियों के माध्यम से आपदा पूर्व ही सुरक्षित स्थानों पर पहुँच जाते हैं। बीबीसी की एक रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2004 में आए विनाशकारी सुनामी के बाद भी अंडमान निकोबार द्वीप समूह पर बसी पाँच आदिम जनजातियों को सुनामी की लहरों से कोई नुकसान नहीं पहुँचा, क्योंकि लहरों के आने से पूर्व ही वे समुद्र तट से दूर चले गए थे। एंथ्रोपॉलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया के तत्कालीन निदेशक डॉक्टर वी.आर. राव के हवाले से बीबीसी रिपोर्ट में कहा गया था कि ये आदिम जनजातियाँ प्रकृति से निकटता और उसको समझने की सदियों की पुरानी अपनी पद्धतियों के कारण जीवित बचीं। “जनजातियों को प्राकृतिक आपदा का अनुमान पहले से हो जाता है, क्योंकि वे जीव-जंतुओं और प्रकृति के संकेतों को समझते हैं। यही वजह है कि इन जनजातियों में किसी को कोई क्षति नहीं पहुँची है।” जिन पाँच जनजातियों की जान बची, उनमें शामिल हैं—ओंगी, जारवा, शॉम्पनी, सेंटनली और ग्रेट अंडमानीजा। इनके पूर्वजों ने आपदाओं की चेतावनी को समझने की पूरी प्रणाली विकसित की है, जिनमें फल-फूल, मिट्टी, जीव-जंतुओं के व्यवहार और

¹अध्यक्ष, रणनीतिक संचार विभाग, भारतीय जन संचार संस्थान समविश्वविद्यालय, नई दिल्ली-110 067. ईमेल : drpk.iimc@gmail.com

पानी में आने वाले परिवर्तनों पर निगरानी रखी जाती है। ये जनजातियाँ करीब छह हजार साल पहले से इन द्वीपों पर रह रही हैं। हालाँकि अभी तक उनके परंपरागत ज्ञान को कलमबंद नहीं किया गया है। डॉ. राव कहते हैं कि “जनजातियों के इस दुर्लभ ज्ञान को दस्तावेज के रूप में एकत्र किया जाना चाहिए, जिसके आधार पर तटीय इलाकों में सुरक्षा और चेतावनी के प्रबंध किए जा सकते हैं” (बीबीसी, 2005)। इस जानकारी से सिद्ध होता है कि अंडमान की जनजातियों के पास आपदाओं से बचने के लिए जो परंपरागत ज्ञान है, उसी के कारण हर आपदा में ये अपनी जान बचा लेते हैं।

आधी सदी से आधुनिक शोधकर्ता ऐसे पूर्वसूचक संकेतों की खोज में लगे हुए हैं, जो यह बता सकें कि धरती के हिलने से पहले मिनटों, घंटों या दिनों में भूकंप कहाँ आएगा। अमेरिकन एसोसिएशन फॉर द एडवांसमेंट ऑफ साइंस द्वारा प्रकाशित प्रतिष्ठित वैज्ञानिक शोध पत्रिका ‘साइंस’ में प्रकाशित एक नए अध्ययन से पता चलता है कि एक पूर्व संकेत मौजूद हो सकता है और किसी बड़े भूकंप से दो घंटे पहले जीपीएस डेटा द्वारा दर्ज की गई गतिविधियों के जरिये उसे ट्रैक किया जा सकता है (ओवेन, 2023)। इसी प्रकार भारतीय ज्योतिष शास्त्र में भूकंप, तूफान और अन्य प्राकृतिक आपदाओं के आने के पूर्व संकेतों का उल्लेख मिलता है। भूकंप आने से कई दिन पहले चूहे, नेवले, साँप और कनखजूरे कथित तौर पर अपने घरों को छोड़कर सुरक्षा के लिए भागने लगते हैं। भूकंप की जानकारी जानवरों, मछलियों, पक्षियों, सरीसृपों और कीड़ों को पहले ही हो जाती है और वे असामान्य व्यवहार करने लगते हैं। कुत्ते अजीब तरह से भौंकने लगते हैं और पक्षियों की चहचहाहट भी अलग तरह की हो जाती है। वे अपना घोंसला छोड़कर इधर-उधर उड़ने लगते हैं। अन्य जानवर भी चीखने-चिल्लाने लगते हैं। साँप और चूहों को इसका आभास सबसे पहले हो जाता है। भूकंप आने से पहले आसमान में अजीब तरह का उजाला दिखने लगता है, जिसे ‘अर्थक्वेक लाइट’ भी कहते हैं। इस प्रकार, कई तरह के संकेत हैं, जिनसे भूकंप के पहले की जानकारी मिल सकती है। पूर्व संकेतों में वातावरण में तापमान का अचानक बढ़ जाना और मौसम में अचानक बदलाव आ जाना भी शामिल हैं। भूकंप आने से पहले कुँओं का पानी भी बढ़ने या घटने लगता है। 20 घंटे पहले रेडियो सिग्नल में खराबी आने लगती है। टीवी सिग्नल में भी खराबी आने लगती है। उसके ऑडियो विजुअल स्पेक्ट्रम में खराबी आ जाती है। मोबाइल के सिग्नल में भी खराबी आ जाती है। साथ ही भूकंप वाले क्षेत्र में भूगर्भ से हीलियम गैस का रिसाव बढ़ जाता है। इससे एक-दो दिन पहले भूकंप का अंदाजा लगाया जा सकता है। इसके अलावा अचानक जलस्तर घट या बढ़ जाता है। नालों से पानी अचानक गायब हो जाएगा या फिर बहुत अधिक बढ़ जाएगा। अगर इन संकेतों पर ध्यान दिया जाए तो कुछ हद तक भूकंप से होने वाले नुकसान को कम किया जा सकता है (कुमारी, 2023)। नीदरलैंड के वैज्ञानिक फ्रैंक हूगरबीट्स ने 3 फरवरी, 2023 को भविष्यवाणी की थी कि तुर्की और सीरिया में भूकंप आ सकता है और उसकी तीव्रता 7.5 या उससे ज्यादा भी सकती है। उसके तीन दिन के बाद ही ये विनाशकारी भूकंप आ गया (शर्मा, 2023)।

भारत के जिन-जिन क्षेत्रों में आपदाओं का खतरा है, उन सभी क्षेत्रों में उन जोखिमों से बचने के लिए एक देशज ज्ञान की परंपरा सदियों से है। जोखिम से बचाव हेतु निर्मित परंपरागत प्रणालियों में अनुभवजन्य ज्ञान पर आधारित मौखिक परंपराएँ, प्रतीक संकेत, लोकगीत, प्राकृतिक संकेत,

पशु-पक्षियों के व्यवहार, पंचांग-ज्ञान, ध्वनि-संकेत, सामुदायिक नेटवर्क और मौसम-आकाश संकेत मिलते हैं। ये प्रणालियाँ आज भी प्रासंगिक मानी जाती हैं। इन पारंपरिक पद्धतियों से न केवल जोखिम को कम किया जा सकता है, बल्कि लोगों में सहयोग, जागरूकता और तत्परता को भी बढ़ाया जा सकता है।

साहित्य पुनरावलोकन

सुनंदा डे (2012) ने अपने शोध पत्र “इंडिजेनस नॉलेज इन डिजास्टर रिस्क रिडक्शन एंड क्लाइमेट चेंज एडाप्टेशन: स्टडी ऑफ हाउसिंग पैटर्न एंड एग्रीकल्चरल प्रैक्टिसेज ऑफ मिशिंग कम्युनिटी ऑन माजुली आइलैंड, असम” में असम की मिशिंग जनजाति के लोगों द्वारा बनाए जाने वाले घरों और उनके द्वारा अपनाई जाने वाले कृषि पद्धतियों का अध्ययन किया है। इन घरों और कृषि पद्धतियों में आपदाओं से बचाव का विशेष ध्यान रखा जाता है। अध्ययन में सुझाव दिया गया है कि भारतीय देशज ज्ञान को आपदा नीति निर्माण में शामिल किया जाना चाहिए। आमिर अली खान (2008) ने अपने अध्ययन “अर्थक्वेक सेफ ट्रेडिशनल हाउस कंस्ट्रक्शन प्रैक्टिसेज इन कश्मीर” में जम्मू-कश्मीर में बनाए जाने वाले घरों के निर्माण की पद्धति का मूल्यांकन किया है (खान, 2008)। इसी प्रकार अंशु शर्मा और मिहिर जोशी ने अपने अध्ययन “इंडिजेनस नॉलेज एंड मॉडर्न साइंस गिव एनवायरनमेंट फ्रेंडली शेल्टर सोलुशन इन फ्लड अफेक्टेड डेजर्ट रीजन ऑफ इंडिया” में भारत के बाढ़ पीड़ित परंतु सूखाग्रस्त क्षेत्रों का अध्ययन किया है, जहाँ परंपरागत ज्ञान और आधुनिक विज्ञान की सहायता से लोगों को पर्यावरण के अनुकूल घरों के निर्माण में सहायता मिली है (शर्मा & जोशी, 2008)। इसी प्रकार इरेन स्टेफन, राजीव दत्त चौधरी और देवशीश नाथ ने अपने अध्ययन “सोइल एंड वाटर कन्जर्वेशन थ्रू बंबू प्लांटेशन : अ डिजास्टर मैनेजमेंट टेक्निक अदोप्टेड बाय द पीपल ऑफ नंदेस्वर, असम” में बाँस के माध्यम से भूमि और जल संरक्षण का प्रयोगों पर आपदा प्रबंधन की दृष्टि से अध्ययन किया है (स्टेफन, चौधरी & नाथ, 2008)। अपर्णा पारीक और पी.सी. त्रिवेदी ने अपने अध्ययन “कल्चरल वैल्यूज एंड इंडिजेनस नॉलेज ऑफ क्लाइमेट चेंज एंड डिजास्टर प्रेडिक्शन इन राजस्थान, इंडिया” में इस बात का अध्ययन किया है कि राजस्थान की सांस्कृतिक परंपराएँ और देशज ज्ञान जलवायु परिवर्तन और आपदाओं की भविष्यवाणियों में कैसे मदद करते हैं (पारीक & त्रिवेदी, 2011)। साहित्य पुनरावलोकन से स्पष्ट है कि आपदा प्रबंधन और आपदा संचार से संबंधित भारतीय देशज ज्ञान पर कुछ अध्ययन अवश्य हुए हैं, परंतु प्रत्येक अध्ययन विषय के बहुत छोटे बिंदु का अध्ययन प्रस्तुत करता है।

शोध उद्देश्य

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य आपदा-संचार से संबंधित देशज परंपराओं का अध्ययन करना है। साथ ही यह भी समझना है कि इन पारंपरिक ज्ञान प्रणालियों को आधुनिक चेतावनी प्रणालियों के साथ कैसे जोड़ा जा सकता है। प्रस्तुत शोध के निम्नलिखित तीन प्रमुख उद्देश्य हैं :

1. भारत की देशज ज्ञान परंपराओं में आपदा-संचार के ऐतिहासिक और सामाजिक स्वरूपों की पहचान करना।
2. विभिन्न समुदायों तथा भौगोलिक क्षेत्रों में प्रचलित पारंपरिक चेतावनी

प्रणालियों का अध्ययन करना।

3. आधुनिक आपदा प्रबंधन प्रणाली में देशज ज्ञान के एकीकरण हेतु नीतिगत सुझाव प्रस्तुत करना।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध मुख्यतः गुणात्मक अध्ययन है। तथ्यों के संकलन हेतु शोध आलेखों, पुस्तकों, सरकारी रिपोर्टों, राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण और राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन संस्थान के दस्तावेजों और मौसम विज्ञान से संबंधित स्रोतों का अध्ययन किया गया है। पूर्व प्रकाशित वैज्ञानिक रिपोर्टों, जिनमें पारंपरिक ज्ञान की उपयोगिता का वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है, का भी अध्ययन किया गया है। इसके अलावा भारत के विभिन्न क्षेत्रों में प्रचलित लोककथाओं, लोकगीतों और सांस्कृतिक दस्तावेजों का भी अध्ययन किया गया है।

देशज ज्ञान से अभिप्राय

देशज ज्ञान से अभिप्राय उन प्राकृतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक ज्ञान प्रणालियों से है, जो किसी समुदाय ने पर्यावरण के साथ दीर्घकालीन अंतःक्रिया के आधार पर परंपरागत ढंग से विकसित की हुई हैं (अग्रवाल, 1995)। देशज ज्ञान परंपरा स्थानीय समुदायों, जनजातियों और पारंपरिक समाजों द्वारा अनुभव और पर्यावरण के साथ बातचीत के माध्यम से विकसित ज्ञान, नवाचारों और प्रथाओं का एक समूह है। यह ज्ञान पीढ़ियों से मौखिक रूप से, लोकगीतों, कलाओं और दैनिक जीवन के माध्यम से हस्तांतरित होता रहता है, जो प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन से लेकर स्वास्थ्य, खाद्य सुरक्षा और टिकाऊ कृषि तक विभिन्न क्षेत्रों पर लागू होता है। यह पारंपरिक, स्थानीय और सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक है।

देशज ज्ञान को मोटे तौर पर उस ज्ञान के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जो एक देशज यानी स्थानीय समुदाय एक विशेष पारिस्थितिक वातावरण में रहते हुए पीढ़ियों से संचित करता रहता है। इस परिभाषा में सभी प्रकार के ज्ञान—प्रौद्योगिकी, ज्ञान कौशल, प्रथाएँ तथा विश्वास शामिल हैं—जो समुदाय को अपने पर्यावरण में स्थिर आजीविका प्राप्त करने में सक्षम बनाते हैं। देशज ज्ञान की अवधारणा को संदर्भित करने के लिए कई शब्दों का यथा पारंपरिक ज्ञान (ट्रेडिशनल नॉलेज), देशज तकनीकी ज्ञान (इंडिजनस टेक्निकल नॉलेज), स्थानीय ज्ञान (लोकल नॉलेज) तथा देशज ज्ञान प्रणाली (इंडिजनस नॉलेज सिस्टम) का परस्पर उपयोग किया जाता है। यह ज्ञान और विश्वासों का एक संचयी निकाय है, जो पीढ़ियों से सांस्कृतिक प्रसरण द्वारा मनुष्यों और उनके पर्यावरण के साथ मनुष्यों सहित जीवित प्राणियों के संबंधों के बारे में दिया जाता है। देशज ज्ञान हर संस्कृति और समाज के लिए अद्वितीय है और यह सामुदायिक प्रथाओं, संस्थानों, रिश्तों और अनुष्ठानों में अंतर्निहित है। देशज ज्ञान को स्थानीय ज्ञान का एक हिस्सा इस अर्थ में माना जाता है कि यह एक विशेष समुदाय में निहित है और व्यापक सांस्कृतिक परंपराओं के भीतर स्थित है। यह उन समुदायों में रहने वाले लोगों द्वारा उत्पन्न अनुभवों का एक समूह है। देशज ज्ञान स्थानीय अनुभव और ऐतिहासिक वास्तविकता पर आधारित है और गहराई से अंतर्निहित है। इसलिए उस विशिष्ट संस्कृति के लिए अद्वितीय है। यह समुदाय की पहचान को परिभाषित करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल है

और सदियों के प्रयोग के पश्चात् विकसित हुआ है। इसलिए यह सामूहिक ज्ञान का प्रतीक है।

देशज ज्ञान पश्चिमी ज्ञान प्रणाली की तरह नहीं है। पारंपरिक ज्ञान, विज्ञान की तरह सत्य की खोज भी नहीं है। देशज ज्ञान यह देखता रहा है कि वर्तमान में जीने का वास्तव में सही स्वरूप क्या है। यह मानव समाज की भलाई के लिए कार्य करता है। इसलिए पारंपरिक ज्ञान अस्तित्व के लिए ज्ञान है। प्राथमिक विचार जिस पर पारंपरिक ज्ञान स्थापित है, वह जीने का साधन है, न कि कुछ समझने के लिए या विषय के मूल सत्य पर आने के लिए। यह स्थानीय लोगों के विश्वास और सांस्कृतिक जीवन शैली की चिंता का विषय है, जिसे समाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से समाज के भीतर पहुँचाया, प्रलेखित और प्रसारित किया जाता है। अतः यह आधुनिक या पश्चिमी ज्ञान से अलग है, जो वहाँ सीखने पर जोर देता है। देशज ज्ञान की विशेषताओं में शामिल हैं—प्रायोगिक और अनुभवजन्य, प्राकृतिक और स्थानीय संदर्भ आधारित, सामुदायिक साझा संपत्ति और पीढ़ी-दर-पीढ़ी मौखिक माध्यमों से संचारित। भारत की व्यापक पारिस्थितिक विविधताओं के कारण यहाँ का देशज ज्ञान अत्यंत समृद्ध और बहुस्तरीय है।

आपदा संचार और देशज ज्ञान

आपदा संचार में देशज ज्ञान की भूमिका महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह स्थानीय समुदायों को आपदाओं को समझने, तैयार रहने और उनसे निपटने में मदद करता है। यह पारंपरिक ज्ञान सदियों के अनुभव और पर्यावरण के साथ घनिष्ठ संबंध से विकसित हुआ है और वैज्ञानिक तरीकों का पूरक है। यह प्रभावी संचार, पूर्व-चेतावनी प्रणाली और सामुदायिक लचीलापन बनाने में योगदान देता है। आपदा संचार में देशज ज्ञान परंपरा को समझने के लिए इसे अलग-अलग बिंदुओं के माध्यम से समझा जा सकता है। प्रथम बिंदु है मौखिक परंपराएँ। मौखिक परंपराओं में शामिल हैं लोकगीत, कहावतें, सूक्तियाँ और कहानियाँ, जो आपदा चेतावनी को संस्कृति का हिस्सा बनाती हैं। दूसरा बिंदु है ध्वनि संकेत और सामुदायिक प्रणाली, जो खासतौर से ग्रामीण इलाकों में प्रयुक्त होती रही है। गाँवों में ढोल, नगाड़ा, शंख आदि आपदा चेतावनी के प्राथमिक संकेत रहे हैं। भारत के ग्रामीण हिस्सों में सूखे की स्थिति में एक विशेष ताल के प्रयोग की जानकारी मिलती है। इसी प्रकार बाढ़ में चौकीदार द्वारा रातभर थाली पीटने की परंपरा है। चक्रवात की स्थिति में मछुआरों द्वारा 'सीप शंख' से चेतावनी दी जाती है। तीसरा बिंदु है, पशु-पक्षियों का व्यवहार। वैज्ञानिक शोध भी यह प्रमाणित करते हैं कि कई पशु भूकंप या तूफानी दबाव को पहले अनुभव कर लेते हैं। प्रायः देखा जाता है कि भूकंप अथवा समुद्री तूफान की स्थिति में कुत्ते समुद्र तट पर समुद्र से विपरीत दिशा में भागने लगते हैं। पक्षी भी अचानक शांत हो जाते हैं और चींटियाँ ऊँचाइयों पर जाना शुरू कर देती हैं। चौथा बिंदु है पारंपरिक मौसम विज्ञान। भारतीय किसान सदियों से मौसम के संकेतों को पढ़ते रहे हैं। वे अक्सर चंद्रमा की कोपल, नक्षत्र-आधारित वर्षा—विशेषकर 'स्वाति नक्षत्र' की स्थिति और हवा की दिशा और ऋतुचक्र के माध्यम से आने वाली आपदाओं के संकेत प्राप्त कर लेते हैं। पाँचवाँ बिंदु है जलस्रोत और भूवैज्ञानिक संकेत। हिमालयी क्षेत्रों में झरनों के बहाव का अचानक बढ़ना भूस्खलन का संकेत माना जाता है। तटीय क्षेत्रों में समुद्री लहरों की आवाज से तूफान की

चेतावनी समझी जाती है।

देशज ज्ञान को यदि क्षेत्रवार समझने की कोशिश करें तो उत्तरपूर्व भारत के राज्यों में दिमासा, नागा और मिजो जनजातियाँ भूकंप एवं भूस्खलन के संकेत प्रकृति के परिवर्तनों से पहचानती रही हैं। वे बादलों के रंग और पर्वतीय ध्वनियों से भारी वर्षा का अनुमान लगाती हैं। इसी प्रकार नागा जनजाति 'हवा की गति और दिशा' को चक्रवात का संकेत मानती है। ये जनजातियाँ धान के खेतों में जल-स्तर परिवर्तन या कीड़ों की गतिविधि से बाढ़ संकेत प्राप्त कर लेते हैं। इसी प्रकार हिमालयी क्षेत्र की बात करें तो उत्तराखंड के गढ़वाली समुदाय धान के खेतों की नमी में परिवर्तन से भूस्खलन का अनुमान लगाते रहे हैं। इसी प्रकार भोटिया समुदाय पर्वतीय ध्वनियों, चट्टानों के खिसकने और झरनों की धारा से भूस्खलन का अनुमान लगाते हैं।

हिमाचल प्रदेश में भोटिया समुदाय बर्फ-स्तर, हवा के तापमान और हिमनदों की आवाज से हिमस्खलन की चेतावनी पहचान लेते हैं। इसी प्रकार तटीय भारत (ओडिशा, तमिलनाडु और महाराष्ट्र) की बात करें तो ओडिशा के मछुआरे 'आकाश-बात' परंपरा के आधार पर चक्रवात की भविष्यवाणी करते हैं। तमिलनाडु में समुद्री लहरों की ध्वनि, आकाश के रंग और बादलों की आकृति से चक्रवात के संकेत मिलते हैं। रेगिस्तानी क्षेत्र (राजस्थान-गुजरात) में रेतीले तूफानों का अनुमान ऊँटों और पक्षियों के व्यवहार से लगाया जाता रहा है। इसी प्रकार हवा में अचानक गर्माहट और 'रेत के कणों का चुभना' आँधी का संकेत माना जाता है।

आपदा संचार और घाघ भड्डरी की कहावतें

भारतीय लोक साहित्य में घाघ और भड्डरी दो ऐसे नाम हैं, जिनकी कहावतें आज भी ग्रामीण जनजीवन में प्रयोग में आती हैं। ये कहावतें कृषि, ज्योतिष, मौसम विज्ञान और सामाजिक मान्यताओं का एक अनूठा संगम हैं। घाघ और भड्डरी की रचनाएँ अनुभवजनित ज्ञान का खजाना हैं, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी मौखिक रूप से प्रसारित होती रही हैं। इन कहावतों का महत्त्व केवल साहित्यिक या ऐतिहासिक नहीं है, बल्कि ये व्यावहारिक जीवन में भी उपयोगी हैं, विशेष रूप से कृषि कार्यों और मौसम की भविष्यवाणी के संदर्भ में। घाघ और भड्डरी का जीवन और काल इतिहास में स्पष्ट रूप से दर्ज नहीं है। फिर भी उनकी कहावतों की लोकप्रियता और प्रासंगिकता आज भी बरकरार है। घाघ को मुख्य रूप से खेती, नीति और स्वास्थ्य से संबंधित कहावतों के लिए जाना जाता है, जबकि भड्डरी की रचनाएँ ज्योतिष, मौसम और आचार-विचार पर केंद्रित हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि ये दोनों एक ही व्यक्ति हो सकते हैं, लेकिन अधिकतर शोधकर्ता इन्हें अलग-अलग व्यक्तित्व मानते हैं। इन दोनों लोक कवियों की कहावतें सरल, सहज और लयबद्ध हैं, जो ग्रामीण जनमानस में गहराई तक रच-बस गई हैं। इनकी रचनाओं में ज्योतिषीय संकेतों, नक्षत्रों की स्थिति और मौसम के पैटर्न का गहरा ज्ञान झलकता है। ये कहावतें न केवल मनोरंजन का साधन हैं, बल्कि जीवन के विभिन्न पहलुओं में मार्गदर्शन भी प्रदान करती हैं। इन कहावतों को एक कपोलकल्पना अथवा अन्धविश्वास कहकर नकार देना उस वैज्ञानिक सत्य को नकारना है, जिसके सहारे भारतवासी सदियों से जीवन के तमाम झंझावातों का सामना करते रहे हैं (सिंह, 2013)।

घाघ की कहावतों का प्रथम संकलन डॉ. ग्रियर्सन के 'पीजेंट लाइफ

आफ बिहार' में प्राप्त होता है। तदनंतर बी.एन. मेहता आई.सी.एस. ने 'युक्त प्रांत की कृषि संबंधी कहावतें' और मुकुंदलाल गुप्त 'विशारद' ने 'कृषि रत्नावली' में घाघ की कुछ कहावतें प्रस्तुत की हैं। घाघ-भड्डरी की कहावतों का प्रथम विस्तृत और प्रामाणिक संकलन पं. राम नरेश त्रिपाठी ने किया, जो 'घाघ और भड्डरी' नाम से सन् 1931 में प्रयाग से प्रकाशित हुआ। इसका अंतिम संस्करण सन् 1949 में 'हिंदुस्तानी एकेडमी' प्रयाग से प्रकाशित हुआ, जो इस समय प्राप्य नहीं है। इसके बाद घाघ और भड्डरी की कहावतों के अनेक संग्रह प्रकाशित हुए, जिनमें श्रीदेव नारायण द्विवेदी की 'घाघ भड्डरी' (प्रयाग), घाघ-भड्डरी की कहावतें (सावित्री ठाकुर प्रकाशन, वाराणसी), डॉ. अशोक त्रिपाठी की 'घाघ भड्डरी की कहावतें' (लखनऊ) आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं (सिंह, 2013, पृष्ठ-xy)। वर्तमान में उपलब्ध 'घाघ और भड्डरी की कहावतें' शीर्षक से उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ ने वर्ष 2008 में प्राचीन एवं दुर्लभ ग्रंथ प्रकाशन योजना के अंतर्गत इन्हें प्रकाशित किया था, जिसका संपादन डॉ. रमेश प्रताप सिंह ने किया। इस संकलन में वर्षा संबंधी, अकाल संबंधी, खेती संबंधी, किसान संबंधी, वायु ज्ञान संबंधी, जुताई संबंधी, बुवाई संबंधी, सिंचाई संबंधी, खाद संबंधी, निराई-गुड़ाई संबंधी, फसल रोग संबंधी, खेत रक्षा संबंधी, कटाई संबंधी, मड़ाई संबंधी, पैदावार संबंधी, पशु संबंधी, नीति संबंधी, ज्योतिष संबंधी, शुभाशुभ संबंधी और स्वास्थ्य संबंधी कुल 539 कहावतें शामिल हैं।

घाघ-भड्डरी की वर्षा संबंधी कहावतें

वर्षा भारतीय कृषि का आधार रही है और घाघ-भड्डरी की कहावतें मौसम के संकेतों को समझने में किसानों की सहायता करती रही हैं। इन कहावतों में बादलों की स्थिति, हवा की दिशा और ग्रह-नक्षत्रों की चाल का उल्लेख मिलता है। कुछ कहावतें देखिए :

असनी गलिया अंत विनासै। गली रेवती जल को नासै।।

भरनी नासै तृनौ सहूतो। कृतिका बरसै अंत बहुतो।।

(सिंह, 2013, पृष्ठ-1)

यदि चैत माह के अश्विनी नक्षत्र में वर्षा हो गई तो चौमासे यानी बरसात के मौसम में सूखा पड़ेगा। और यदि रेवती नक्षत्र में वर्षा हुई तो आगे बारिश नहीं होगी। भरणी नक्षत्र में यदि पानी बरसा तो घास का भी नाश हो जाएगा, लेकिन यदि कृतिका नक्षत्र में पानी बरसा तो अंत तक वर्षा अच्छी होगी।

अद्रा बरसे पुनर्बस जाय। दीन अन्न कोऊ नहि खाय।।

(सिंह, 2013, पृष्ठ-2)

यदि आर्द्रा नक्षत्र में बरसता पानी पुनर्वसु तक बरसता रहे, तो ऐसे अनाज को यदि कोई मुफ्त में भी दे तो नहीं खाना चाहिए, क्योंकि वह अनाज विषैला हो जाता है।

अगहन दूना पूस सवाई। फागुन बरसे घर से जाई।।

(सिंह, 2013, पृष्ठ-2)

यदि अगहन में बारिश होती है, तो रबी की फसल को दूना लाभ होता है। पौष मास में पानी बरसता है तो सवाया लाभ होता है और यदि फाल्गुन मास में पानी बरसे तो किसान की फसल नष्ट हो जाती है। उसकी फसल की लागत भी चली जाती है।

आसाढ़ी पूनो दिना, निर्मल उगै चंद।

पीव जाव तुम मालवै, अट्ट है दुख द्वंद।। (सिंह, 2013, पृष्ठ-2)

यदि आषाढ़ की पूर्णिमा के दिन आसमान में स्वच्छ (बादल रहित) चंद्रमा निकले, तो भड्डरी कहती है कि हे स्वामी! तुम मालवा चले जाना क्योंकि यहाँ कठिन दुःख देखना पड़ेगा, अर्थात् वर्षा अच्छी नहीं होगी।

अगहन द्वादस मेघ अकास, असाढ़ बरसै अखनाधारा।

(सिंह, 2013, पृष्ठ-3)

यदि अगहन की द्वादशी को आकाश में बादलों के समूह घुमड़ रहे हों तो आषाढ़ में मूसलधार वर्षा होगी।

अद्रा गैलै तीनि गैल, सन, साठी औ कपास।

हथिया गैलै सबै गैल, आगिल पाछिल नासा।

(सिंह, 2013, पृष्ठ-3)

यदि आर्द्रा नक्षत्र चला गया और वर्षा न हुई तो सनई, साठी और कपास इन तीनों में से कोई फसल नहीं होगी। इसी प्रकार यदि हस्त नक्षत्र (वैदिक ज्योतिष में 13वाँ नक्षत्र) में वर्षा न हुई तो अगली पिछली दोनों बोई फसलें नष्ट हो जाएँगी।

उलटे गिरगिट ऊँचे चढ़े। बरखा होई भूँ जल बुड़े।

(सिंह, 2013, पृष्ठ-6)

यदि गिरगिट उलटा पेड़ पर चढ़े तो वर्षा इतनी अधिक होगी कि धरती पर जल ही जल दिखेगा।

जब बरखा चित्रा में होय। सगरी खेती जावै खोय।

(सिंह, 2013, पृष्ठ-12)

यदि चित्रा नक्षत्र में वर्षा होती है तो संपूर्ण खेती नष्ट हो जाती है।

जै दिन भादौं बहें पछारा। तै दिन पूस में पड़े तुसारा।

(सिंह, 2013, पृष्ठ-13)

भाद्र मास में जितने दिन पछिवाँ हवा बहेगी, पौष मास में उतने ही दिन पाला पड़ेगा।

जो कहूँ हवा अकासे जाय, परै न बूंद काल पर जाय।

(सिंह, 2013, पृष्ठ-15)

यदि आषाढ़-सावन में हवा ऊपर (आकाश) की ओर उठे तो यह समझना चाहिए की पानी नहीं बरसेगा और अकाल पड़ जाएगा।

माघ में बादर लाल धिरै। तब जान्यो साँचो पथरा परै।

(सिंह, 2013, पृष्ठ-24)

यदि माघ के महीने में लाल रंग के बादल दिखाई पड़ें तो ओले अवश्य गिरेंगे।

घाघ-भड्डरी की अकाल संबंधी कहावतें

अकाल और सूखा भी एक प्रकार से आपदा हैं। अकाल के कारण भोजन की गंभीर और व्यापक कमी हो जाती है, जिसके कारण कुपोषण, भुखमरी और मृत्यु होती है। बारिश नहीं होने से अन्न की पैदावार नहीं होगी तो लोग क्या खाएँगे? अकाल के संबंध में घाघ-भड्डरी की 56 कहावतें हैं। कुछ कहावतें निम्नलिखित हैं :

आगे मघा पीछे भाना। पानी पानी रटै किसान।

(सिंह, 2013, पृष्ठ-36)

यदि मघा (वैदिक ज्योतिष में दसवाँ नक्षत्र) के पीछे सूर्य हो तो वर्षा नहीं होगी और किसान पानी की एक-एक बूंद के लिए तरस जाएगा। वर्षा न होने से कोई फसल पैदा नहीं होगी।

कातिक मावस देखो जोसी। रवि सनि भौमवार जो होखी।

स्वाति नखत अरु आयुष जोगा। काल पड़े अरु नासैं लोगा।

(सिंह, 2013, पृष्ठ-36)

ज्योतिषी को कार्तिक की अमावस्या को यह देख लेना चाहिए कि उस दिन रविवार, शनिवार और मंगलवार, स्वाति नक्षत्र तथा आयुष्य योग तो नहीं है। यदि ऐसा है तो अकाल पड़ेगा और मनुष्यों का नाश होगा।

काहे पंडित पढ़ि पढ़ि मरो, पूस अमावस की सुधि करो।

मूल विसाखा पूरबाषाढ़, झूरा जान लो बहिरें ठाढ़।

(सिंह, 2013, पृष्ठ-36)

हे पंडितो! पढ़-पढ़कर क्यों जान देते हो? पौष की अमावस्या को देखो, यदि उस दिन मूल, विसाखा या पूर्वाषाढ़ नक्षत्र हों तो समझ लो सूखा पड़ेगा और अकाल घर के बाहर ही खड़ा है।

कृतिका तो कोरी गई, अद्रा मेह न बूंद।

तो यों जानो भड्डरी, काल मचाये कुंदा। (सिंह, 2013, पृष्ठ-37)

यदि आर्द्रा नक्षत्र (भारतीय ज्योतिष में छठा नक्षत्र) में पानी न बरसा, कृतिका नक्षत्र भी वर्षा से खाली गया तो अकाल पड़ना तय है।

कर्क संक्रमी मंगलवार। मकर संक्रमी सनिहि बिचारा।

पंद्रह महरतवारी होय। देस उजाड़ करै यों जोय।

(सिंह, 2013, पृष्ठ-37)

यदि कर्क नक्षत्र की संक्रांति मंगल को पड़े और मकर की संक्रांति शनि को और वह पंद्रह मुहूर्त की हो तो ऐसा भीषण अकाल पड़ेगा कि देश उजड़ जाएगा।

कर्क रासि में मंगलवारी। ग्रहण परै दुर्भिक्ष बिचारी।

(सिंह, 2013, पृष्ठ-37)

यदि चन्द्रमा कर्क राशि में हो तथा मंगल के दिन चंद्रग्रहण पड़े तो अकाल पड़ना निश्चित है।

चित्रा स्वाति विसाखड़ी, जो बरसै आसाढ़।

भागो लोग विदेस को, पड़े अकाल प्रगाढ़। (सिंह, 2013, पृष्ठ-38)

यदि आषाढ़ के महीने के चित्रा, स्वाती और विसाखा नक्षत्रों में वर्षा न हुई तो अकाल पड़ना निश्चित है। ऐसे में लोगों को घर छोड़ कर विदेश में शरण लेनी पड़ेगी।

चटका मघा पटकिया ऊसर। दूध भात में परिगा मूसरा।

(सिंह, 2013, पृष्ठ-38)

यदि मघा नक्षत्र सूखा चला जाए तो समझो कि सारी जमीन ऊसर बन जाएगी और किसान को दूध-भात भी नहीं मिलेगा।

चैत मास उजियाले पाख, आठें दिवस बरसत राख।

नव बरसे जित बिजली जोय, ता दिसि काल हलाहल होय।

(सिंह, 2013, पृष्ठ-38)

यदि चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी को धूल उड़े और नवमी को पानी बरसे तो जिस दिशा में बिजली चमकी, समझो उस दिशा में अकाल पड़ने वाला है।

ढेकी बोलै जाय अकास। अब नाहीं बरखा कै आस।

(सिंह, 2013, पृष्ठ-39)

ढेकी यानी वनमृगी पक्षी यदि आकाश में (जमीन से थोड़ा ऊपर) उड़-उड़कर बोले तो वर्षा नहीं होगी, अर्थात् सूखा पड़ने वाला है, वर्षा की कोई उम्मीद नहीं है।

बोली लोखरि फूली काँस। अब नाहिं बरखा कै आस।।

(सिंह, 2013, पृष्ठ-41)

यदि लोमड़ी बोलने लगे और काँस फूलने लगे तो समझ लेना चाहिए कि अब वर्षा की कोई आशा नहीं है।

मंगल पड़े तो भू चलै, बुध को पड़े अकाल।

जो तिथि होय सनीचरी, निहचै पड़े अकाल।। (सिंह, 2013, पृष्ठ-44)

यदि फाल्गुन मास का अन्तिम दिन मंगलवार पड़े तो भूकंप आएगा और यदि बुधवार और शनिवार पड़े तो निश्चय ही अकाल पड़ेगा।

वायु ज्ञान संबंधी कहावतें

मानव जीवन में वायु का ज्ञान अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि वायु हमें जीवित रहने के लिए आवश्यक ऑक्सीजन प्रदान करती है और वायु की गुणवत्ता हमारे स्वास्थ्य और जीवन की गुणवत्ता को सीधे प्रभावित करती है। स्वच्छ हवा के स्वास्थ्य लाभों में श्वसन रोगों और कैंसर से बचाव शामिल है, जबकि खराब वायु गुणवत्ता कई बीमारियों को जन्म दे सकती है। इसके अलावा, वायु के ज्ञान से हम इसके अन्य लाभों को भी समझते हैं, जैसे ध्वनि संचरण, मौसम का प्रभाव और परागण जैसी प्राकृतिक प्रक्रियाओं में इसकी भूमिका है। घाघ-भड्डरी ने वायु के संबंध में भी अनेक कहावतें कही हैं, जिनमें से कुछ निम्नलिखित हैं:

आसाढ़ी पूनो की साँझ। वायु देखिये नभ के माँझ।।

नैऋत भूँ बूँद ना पड़े। राजा परजा भूखों मरें।।

अगिन कोन जो बहे समीरा। पड़े काल दुख सहे सरीरा।।

उत्तर से जल फूहो परें। मूस साँप दोनों अवतरें।।

पच्छिम समै नीक करि जान्यो। आगे बहै तुसार प्रमान्यो।।

जो कहूँ बहै इसाना कोना। नाप्यो बिस्वा दो दो दोना।।

जो कहूँ हवा अकासे जाय। परै न बूँद काल परि जाय।।

दक्खिन पच्छिम आधो समयो। भड्डर जोसी ऐसे भनयो।।

(सिंह, 2013, पृष्ठ-65)

आषाढ़ पूर्णिमा की शाम को आकाश में हवा की परीक्षा कर लेनी चाहिए। यदि नैऋत्य कोण (दक्षिण और पश्चिम दिशा के बीच का कोना) की हवा हो तो पृथ्वी पर एक बूँद पानी नहीं बरसेगा और राजा-प्रजा दोनों भूखे मरेंगे। यदि हवा अग्निकोण (दक्षिण-पूर्व दिशा) की हो तो अकाल पड़ेगा और शरीर को कष्ट मिलेगा। यदि हवा उत्तर की हो तो वर्षा साधारण होगी, चूहे और साँप अधिक पैदा होंगे। हवा यदि पश्चिम की हो तो समय अच्छा बीतेगा, लेकिन पाला पड़ेगा। यदि हवा ईशान कोण (उत्तर-पूर्व दिशा) की हो तो पैदावार अत्यल्प होगी अर्थात् दो बिस्वे में दो दोना अनाज पैदा होगा। हवा आकाश की ओर जा रही हो तो वर्षा एक बूँद नहीं होगी और अकाल पड़ेगा। यदि हवा दक्षिण-पश्चिम की हो तो पैदावार आधी होगी, ऐसा भड्डरी ज्योतिषी का कहना है।

घाघ-भड्डरी की फसल रोग संबंधी कहावतें

यह सर्वविदित है कि फसलों में यदि रोग लग जाए तो किसानों को ही आर्थिक नुकसान नहीं होता, बल्कि संपूर्ण राष्ट्र का विकास प्रभावित होता है। इनसे फसल की पैदावार कम होना, गुणवत्ता में गिरावट, पोषक तत्वों में कमी और बाजार में बिक्री न हो पाना शामिल हैं। इसके कारण खाद्य पदार्थों की कीमतें बढ़ सकती हैं, जिससे उपभोक्ताओं की क्रय शक्ति

प्रभावित होती है और मुद्रास्फीति बढ़ती है। इसके अतिरिक्त, फसल रोग कृषि निर्यात को प्रभावित कर सकते हैं और खाद्य सुरक्षा के लिए एक बड़ा खतरा पैदा कर सकते हैं। चूंकि फसल रोग प्राचीन काल से ही एक आपदा का स्वरूप रहे हैं, इसलिए इनके संबंध में लोगों को जागरूक करने के लिए विभिन्न प्रकार के तरीके अपनाए जाते रहे हैं। घाघ-भड्डरी ने इस संबंध में लोक जागरण हेतु अनेक कहावतें लिखी हैं। उनमें से कुछ का विवरण निम्नलिखित है :

ऊख कनाई काहे से। स्वाती क पानी पाये से।।

(सिंह, 2013, पृष्ठ-95)

स्वाती नक्षत्र (वैदिक ज्योतिष में 15वाँ नक्षत्र) का पानी पाने से ईख कन्नी हो जाती है, अर्थात् उसमें रोग लग जाता है।

कुम्भे आवै मीने जाय। पेड़ी लागै पातौ खाय।।

(सिंह, 2013, पृष्ठ-95)

कुम्भ राशि में गेहूँ की फसल में गेरुई रोग लगने लगता है और मीन राशि में समाप्त हो जाता है। यह रोग तने से शुरू होकर पत्तियों को खा जाता है।

कर्क बुवावै काकरी, सिंह अबोनो जाय।

ऐसा बोले भड्डरी, कीड़ा फिर फिर खाय।। (सिंह, 2013, पृष्ठ-95)

ककड़ी की बुवाई कर्क राशि में करनी चाहिए, क्योंकि सिंह राशि में बोन से उसमें कीड़ा बार-बार लग जाता है, ऐसा भड्डरी का कथन है।

गोहूँ गेरुई गाँधी धान। बिना अन्न के मरा किसान।।

(सिंह, 2013, पृष्ठ-96)

जब गेरुई नामक रोग गेहूँ में और गंधी नामक कीड़ा धान में लग गया तब समझो कि किसान को अन्न मिलने वाला नहीं है। वह अन्न के बिना ही मरेगा।

चना में सरदी बहुत समाई। ताको जान गधैला खाई।।

(सिंह, 2013, पृष्ठ-96)

चना अधिक पानी नहीं चाहता क्योंकि उसमें सर्दी अधिक लगती है और जब ऐसा हो तो समझो उसको गंधैला नामक कीड़ा खा जाएगा और पैदावार कम हो जाएगी।

जेकरे ऊखर लगे लोहाई। तेहि पर आवै बड़ी तबाही।।

(सिंह, 2013, पृष्ठ-96)

जिस किसान के ईख में सूखा रोग लग गया, उसकी फसल पूरी तरह नष्ट हो जाती है और किसान तबाह हो जाता है।

नीचे ओद ऊपर बदराई, घाघ कहै गेरुई अब धाई।।

(सिंह, 2013, पृष्ठ-96)

घाघ का कहना है कि जब खेत नीचे से गीला हो और ऊपर बादल कई दिनों तक छाये रहें तो समझो कि अनाज (गेहूँ) में गेरुई नामक रोग लग जाएगा।

घाघ-भड्डरी की ज्योतिष संबंधी कहावतें

मानव जीवन में ज्योतिष का महत्व आत्म-जागरूकता, भविष्य की योजना और आध्यात्मिक विकास को बढ़ावा देने में है। यह ग्रहों की स्थिति के आधार पर व्यक्ति को भविष्य की अनिश्चितताओं को समझने और बेहतर निर्णय लेने में मदद करता है, जिससे जीवन में मार्गदर्शन और समृद्धि मिलती है। घाघ-भड्डरी ने ज्योतिष संबंधी भी अनेक कहावतें

कहीं हैं, जिनमें से कुछ का विवरण निम्नलिखित है:

छः ग्रह एकै रासि बिलोकौ। महाकाल को दीन्हों कोकौ॥

(सिंह, 2013, पृष्ठ-141)

जब छः ग्रह एक ही राशि में हों तो समझो महाकाल को निमन्त्रण दिया गया है।

जेठ आगली परवा देबू। कौन बासरा है यों पेखू॥

रबिबासर अति बाढ़ बढ़ावा। मंगलवारी व्याधि बताय॥

बुधा नाज महंगा जो करई। सनिवासर परजा परिहरई॥

चन्द्र सुक्र सुरगुरु के बारा। होय तो अन्न भरो संसारा॥

(सिंह, 2013, पृष्ठ-142)

यदि ज्येष्ठ कृष्ण प्रतिपदा को रविवार पड़े तो बाढ़ आएगी, मंगल पड़े तो रोग बढ़ेंगे, बुध पड़े तो अन्न महंगा होगा, शनि पड़े तो प्रजा को कष्ट होगा, यदि सोम शुक्र और वृहस्पति पड़े तो संसार अन्न से भर जाएगा।

जेठ बदी दसमी दिना, जो सनिबासर होइ।

पानी होय न धरनि पर, बिरला जीवै कोइ॥

(सिंह, 2013, पृष्ठ-142)

यदि ज्येष्ठ कृष्ण दशमी को शनिवार पड़े तो पृथ्वी पर वर्षा नहीं होगी और शायद ही कोई जीवित बचेगा।

पाँच सनीचर पाँच रवि, पाँच मंगर जो होय।

छत्र टूट धरनी परै, अन्न महंगो होय॥ (सिंह, 2013, पृष्ठ-144)

यदि एक महीने में पाँच शनिवार, पाँच रविवार और पाँच मंगलवार पड़ें तो महा अशुभ होता है। यदि ऐसा होता है तो या तो राजा का नाश होगा या अन्न महंगा होगा।

माघ उज्यारी तीज को, बादर बिज्जू जु देखा।

गेहूँ जौ संचय करौ, महंगो होसी पेखा॥ (सिंह, 2013, पृष्ठ-146)

यदि माघ शुक्ल तृतीया को बादल और बिजली दिखाई पड़े तो अन्न महंगा होगा। इसलिए गेहूँ और जौ का संचय शुरू कर दो।

माघ जु परिवा ऊजली, बादर वायु जु होय।

तेल और सुरही सबै, दिन दिन महंगो होय॥ (सिंह, 2013, पृष्ठ-146)

यदि माघ शुक्ल प्रतिपदा को बादल हों और हवा धीरे-धीरे चल रही हो तो तेल और घी दिन-प्रति-दिन महंगे होंगे।

माघ उँजरी चौथ को, मेह बादरो जाना।

पान और नारेल ये, महंगो अवसि बखाना॥ (सिंह, 2013, पृष्ठ-146)

यदि माघ शुक्ल चौथ को बादल हों और पानी बरसे तो पान और नारियल अवश्य महंगे होंगे।

माघ छठी गरजै नहीं, महंगो होय कपास।

सातें देखा निर्मली, तो नाहीं कुछ आसा॥ (सिंह, 2013, पृष्ठ-146)

यदि माघ शुक्ल पक्ष की छठ को आसमान में बादल न गरजें तो कपास महंगा होगा, लेकिन यदि सप्तमी को आकाश बिल्कुल स्वच्छ रहा तो कुछ भी होने की आशा नहीं है।

स्वास्थ्य संबंधी कहावतें

स्वास्थ्य हर समाज के लिए हमेशा से एक बड़ी चुनौती रहा है। इतिहास साक्षी है कि स्वास्थ्य संबंधी महामारियों के कारण अकेले भारत में ही लाखों लोगों की जान चली जाती है। कुछ वर्ष पहले हमने कोविड महामारी का सामना किया, उससे पहले प्लेग जैसी महामारियों के कारण

लाखों लोग काल कलवित हुए। यह सही है कि आज जनस्वास्थ्य ढाँचे में बहुत अधिक सुधार हुआ है लेकिन फिर भी चुनौतियाँ कम नहीं हैं। महामारी की बात अलग है, अन्यथा अधिकतर बीमारियाँ खराब जीवन शैली के कारण होती हैं। भारत में प्राचीन काल से ही स्वास्थ्य को लेकर जनजागरूकता पर जोर रहा है। सिंधु घाटी सभ्यता (5500-1300 ईसा पूर्व) में 'आरोग्य' का उल्लेख 'समग्र कल्याण' के रूप में हुआ है। घाघ-भट्टरी की स्वास्थ्य संबंधी कहावतों में स्वस्थ खानपान, दैनिक व्यायाम पर जोर है। उनमें से कुछ कहावतों का विवरण निम्नलिखित है:

अँतरे खोतरे डंडे करै। ताल नहाय ओस माँ परै॥

दैव न मारे अपुवड़ मरै। (सिंह, 2013, पृष्ठ-160)

जो व्यक्ति कभी-कभी व्यायाम करता है अर्थात् नियमित नहीं करता, तालाब में स्नान करता है और ओस में सोता है, उसे भगवान या भाग्य नहीं मारता वह स्वयं अपनी मूर्खता से मरता है।

ऊँचे चढ़िके बोला मँडुवा। सब नाजों का मैं हूँ भँडुवा॥

आठ बिना मुझको जो खाय। भले मर्द से उठा न जाय॥

(सिंह, 2013, पृष्ठ-160)

मंडुआ नामक अन्न ऊँचे खड़े होकर कहता है कि मैं सब अन्नो में भँडुआ (निर्लज्ज) हूँ। यदि मुझे आठ दिन खा ले तो वह कितना भी शक्तिशाली मर्द हो निर्बल हो जाएगा और उठकर चल नहीं पाएगा।

खाइ के मूतै सूतै बाउँ। काहै के चैव बसावै गाउँ।

(सिंह, 2013, पृष्ठ-161)

यदि व्यक्ति खाना खाने के पश्चात् पेशाब करके बाथी करवट सो जाए, तो उसे अपने गाँव में वैद्य बसाने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ेगी अर्थात् ऐसा करने वाला व्यक्ति सदैव स्वस्थ रहता है।

गाय दुहे, बिन छाने लावै, गरमा, गरम तुरन्त चढ़ावै।

बाढ़े बल अउर बुद्धि भाई, घाघ कहे सच्ची बतलाई।

(सिंह, 2013, पृष्ठ-161)

गाय को दूहकर उसी समय बिना छाने गरमागरम कच्चा दूध पीने से बल और बुद्धि दोनों बढ़ती हैं।

चड़त सोवै रोगी, बड़साख सोवै जोगी।

जेठ सोवै राजा, असाढ़ सोवै अभाग॥ (सिंह, 2013, पृष्ठ-161)

चैत मास में सोने वाला व्यक्ति रोगी होता है, वैशाख में योगी पुरुष दिन में आराम करते हैं, जेठ माह में बड़े आदमी (रईस) लोग सोते हैं क्योंकि इस समय लू एवं तपन रहती है, लेकिन आषाढ़ महीने में सोने वाला व्यक्ति अभाग होता है, क्योंकि यह समय खेती-किसानी के लिए सबसे महत्वपूर्ण होता है।

चैते गुड़ बैसाखे तेल, जेठे पन्थ असाढ़े बेल।

सावन साग न भादो दही, क्वार करेला न कार्तिक मही॥

अगहन जीरा पूसे धना, माघे मिश्री फागुन चना।

ई बारह जो देय बचाय, वहि घर बैद कबौ न जाय॥

(सिंह, 2013, पृष्ठ-162)

चैत में गुड़, वैशाख में तेल, जेठ में यात्रा, आषाढ़ में बेल, सावन में साग, भादों में दही, क्वार में करेला, कार्तिक में मट्ठा, अगहन में जीरा, पूस में धनिया, माघ में मिश्री और फागुन में चना स्वास्थ्य के लिए कष्टकारक होते हैं। जिस घर में इनसे बचा जाता है, उस घर में वैद्य कभी नहीं आता क्योंकि लोग स्वस्थ बने रहते हैं।

जाको मारा चाहिए, बिन लाठी बिन घावा।

वाको यही बताइए, घुइयाँ पूरी खावा। (सिंह, 2013, पृष्ठ-162)

यदि किसी व्यक्ति को बिना लाठी या बिना हथियार के मारना चाहते हो तो उसे घुइयाँ (अरुई) और पूड़ी खाने की सलाह दो क्योंकि घुइयाँ और पूड़ी स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होती हैं।

प्रातः समै खटिया से उठिकै, पीवै ठंडा पानी।

ता घर वैद कबी नहि आवै, बात घाघ की मानी।

(सिंह, 2013, पृष्ठ-162)

घाघ का मानना है कि जो व्यक्ति प्रातःकाल खाट से उठते ही ठंडा पानी पीता है, उसका स्वास्थ्य इतना अच्छा रहता है कि कभी वैद्य की जरूरत नहीं पड़ती।

सावन हरे भादों चीता। क्वार मास गुड़ खायउ मीता।

कातिक मूली अगहन तेल। पूस में करै दूध से मेल।

माघ मास घिउ खींचरि खाया। फागुन उठि के प्रातः नहाया।

चैत मास में नीम बेसहनी। बैसाखे में खाय जड़हनी।

जेठ मास जो दिन में सोवै। ओकर जर असाढ़ में रोवै।

(सिंह, 2013, पृष्ठ-163)

सावन मास में हरे, भादों मास में चिरायता, क्वार मास में गुड़, कार्तिक में मूली, अगहन में तेल, पौष मास में दूध, माघ मास में घी और खिचड़ी, फागुन मास में प्रातः स्नान, चैत मास में नीम का सेवन, वैशाख मास में जड़हन का भात खाना चाहिए। जेठ मास में दिन में सोने वाले व्यक्ति को आषाढ़ में ज्वर नहीं होता और वह स्वस्थ रहता है।

अतीत और वर्तमान के बीच सेतु

घाघ-भड्डरी की कहावतें भारतीय लोक ज्ञान का वह हिस्सा हैं जो वर्षों के अनुभव के आधार पर निर्मित हुई हैं। ये कहावतें ग्रामीण जनजीवन में इतनी गहराई तक रची बसी हैं कि एक निरक्षर व्यक्ति भी इनसे पूरी तरह परिचित है और वह अपने दैनंदिन जीवन में इनका पालन करता है। ये कहावतें कृषि, मौसम और जीवनशैली के क्षेत्र में मार्गदर्शन करती हैं। इनका वैज्ञानिक आधार प्रकृति के अवलोकन में निहित है, जो आधुनिक विज्ञान से भी मेल खाता है। सांस्कृतिक रूप से ये कहावतें ग्रामीण भारत की पहचान हैं और पीढ़ियों तक जीवित रहने वाली परंपरा का उदाहरण हैं। इन कहावतों का अध्ययन और विश्लेषण न केवल ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि व्यावहारिक रूप से भी उपयोगी है। आधुनिक तकनीक के साथ इनका समन्वय करके कृषि और मौसम विज्ञान में नई संभावनाएँ तलाशी जा सकती हैं। घाघ-भड्डरी की कहावतें अतीत और वर्तमान के बीच एक सेतु हैं, जो हमें प्रकृति और संस्कृति के सामंजस्य का पाठ पढ़ाती हैं।

खनार बचन

घाघ-भड्डरी के बाद भारतीय लोक साहित्य में दूसरा नाम है 'खना' का। उन्होंने अनेक कहावतें लिखीं जो आज भी बांग्लादेश के ग्रामीण समाज में लोकप्रिय हैं। पश्चिम बंगाल और उत्तर पूर्वांचल के कुछ राज्यों के जनजीवन में ये कहावतें रची-बसी हैं। खना के जीवनकाल की अवधि 800 ईस्वी से 1200 ईस्वी के मध्य बताई जाती है। कुछ विद्वानों का मानना है कि खना पश्चिम बंगाल के 24 परगना के बारासात स्थित देउली गाँव में

रहती थीं। एक अन्य विवरण के अनुसार खना श्रीलंका के राजा की पुत्री थीं। शुभ मुहूर्त में जन्म लेने के कारण उनका नाम 'क्षण' या खना रखा गया। इसी बीच, विक्रमादित्य के दरबार में ज्योतिषी वराह की पत्नी ने मिहिर नाम के एक बालक को जन्म दिया। मिहिर से खना का विवाह हुआ। मिहिर और खना दोनों ने ज्योतिष का गहन अध्ययन किया और कुशल ज्योतिषी बन गए। एक दिन मिहिर के पिता और उनमें ज्योतिष की एक समस्या पर चर्चा हुई लेकिन समाधान नहीं निकला। खना आगे आई और सफलतापूर्वक समस्या का समाधान कर दिया। इसने राजा विक्रमादित्य का ध्यान आकर्षित किया। खना ने मौसम, ज्योतिष, फसलों, उत्पादकता आदि के बारे में कई लोकप्रिय कहावतें लिखीं हैं, जिन्हें 'खनार बचन' के रूप में जाना जाता है। खना की सलाह लंबे समय से किसानों के लिए मार्गदर्शक का काम कर रही है। खना ने बताया है कि कब पौधे लगाने चाहिए और विभिन्न उत्पादों के लिए मिट्टी को कैसे जोतना चाहिए। उन्होंने यह भी सुझाव दिया कि घर का मुख किस ओर होना चाहिए, पेड़ कहाँ लगाने चाहिए और तालाब कहाँ खोदना चाहिए। क्या और कितना खाना चाहिए, इस बारे में उनकी सलाह अक्सर माताओं द्वारा बच्चों को दी जाती है (बंगलापीडिया, 2021)।

यात्रा पर निकलने के सही समय पर खना कहती हैं: "मंगल के दिन सुबह होते ही और अगले दिन बुद्ध की सुबह में कदम रखते ही, तुम जहाँ चाहो जा सकते हो।" प्राकृतिक आपदाओं के बारे में खना की कहावतें बताती हैं कि यदि चैत्र माह में घना कोहरा हो या भाद्रपद माह में बाढ़ आए, तो प्राकृतिक आपदा आणी और धरती मानव खोपड़ियों से ढक जाएगी। यदि आषाढ़ माह में दक्षिणावर्त हवा चले, तो बाढ़ निश्चित है। संभावित वर्षा के बारे में खना कहती हैं कि यदि ठंडी हवा में ताज़ी मिट्टी जैसे बादल दिखाई दें तो किसान को सूचित करें कि वह वर्षा जल संचयन की व्यवस्था कर ले। यदि आज वर्षा नहीं होती है, तो कल अवश्य होगी। कुछ कहावतें वर्षा ऋतु की अप्रत्याशित समस्याओं के बारे में हैं। यदि अग्रहायण मास में जब खेत पकी हुई फसल से लदे हों, वर्षा हो जाए तो राजा को भीख माँगनी पड़ेगी, क्योंकि सारी फसलें नष्ट हो जाएँगी। यदि यह पौष माह में वर्षा हो तो अपेक्षित लाभ पूरी तरह से नष्ट हो जाएगा। यदि माघ माह के अंत में वर्षा हो तो राजा महान और प्रजा भाग्यशाली होती है। यदि यह फाल्गुन माह में हो तो 'चीन' (चीना) और 'कोण' (कंगनी) की फसलें दोगुनी होती हैं (राजेंद्रन, 2025)।

राजस्थानी कहावतें

ग्रामीण जनजीवन में रची-बसी कहावतें लगभग सभी राज्यों में मिलती हैं। बिहार में अलग हैं, पंजाब में अलग हैं, हरियाणा में अलग हैं, छत्तीसगढ़-मध्य प्रदेश में अलग हैं तो राजस्थान में भी अलग हैं। कुछ कहावतें ऐसी हैं, जिनका भाव अलग-अलग भाषाओं और बोलियों में एक जैसा ही है। इसका मतलब है कि कहावतें एक स्थान से दूसरे स्थान तक लोगों के माध्यम से पहुँची हैं। राजस्थान की कहावतों पर एक पुस्तक वर्ष 1958 में प्रकाशित हुई थी, जिसका शीर्षक है 'राजस्थानी कहावतें— एक अध्ययन'। इसके लेखक कन्हैयालाल सहल हैं। पुस्तक इसी विषय पर उनके पी.एचडी. शोध प्रबंध पर आधारित है। श्री सहल बिडला आर्ट्स कॉलेज, पिलानी में हिंदी तथा संस्कृत विभाग के अध्यक्ष रहे। पुस्तक का प्रकाशन भारती साहित्य मंदिर, दिल्ली द्वारा वर्ष 1958 में किया गया।

पुस्तक में विविध प्रकार की कहावतों का संकलन किया गया है। इनमें जातियों से संबंधित कहावतें भी हैं और महिलाओं से संबंधित भी जैसे कि कन्या जन्म, फूहड़ स्त्री, विधवा, लाडी, बड़ी बहू, सास-बहू, आदर्श नारी, आदि। इसके अलावा कुछ सामाजिक कहावतें हैं, जिनमें मुख्य रूप से त्यौहार, विवाह, संयुक्त परिवार, शूरीरता, प्रतिज्ञा पालन, अतिथि सत्कार, संबंध, भोज्य एवं पेय पदार्थ, स्वास्थ्य, व्यवसाय, आभूषण प्रेम और राजनीतिक चेतना जैसे सामाजिक विषय शामिल हैं। पुस्तक में शिक्षा संबंधी, मनोवैज्ञानिक, ईश्वर संबंधी, नैतिकता और धर्म, लोक विश्वास, शकुन, जीवन दर्शन और कृषि संबंधी कहावतें भी हैं। कृषि संबंधी कहावतों में वायु, नक्षत्र, खेती के उपकरण, जोताई और बोआई, फसल, दुर्भिक्ष, वर्षा शामिल हैं। इनमें पक्षियों, पशुओं, कीट पतंगों, हवा, अंतरिक्ष, बादल, आकाश, बिजली, इन्द्रधनुष, आँधी, आदि कहावतें भी हैं।

राजस्थान की अकाल संबंधी कहावतें

राजस्थान में अकाल पड़ना आम बात है। इसलिए वहाँ अकाल को लेकर बहुत सी कहावतों का निर्माण हुआ है। कुछ उदाहरण देखिए:

न भैवै काकड़ो तो क्यूँ टैरै हाली लाकड़ो।

(सहल, 1958, पृष्ठ-235)

हे किसान! अगर कर्क-संक्रांति के दिन वर्षा न हो तो तुम क्यों व्यर्थ में हल जोतते हो? कर्क-संक्रांति के दिन वर्षा न होने से अकाल पड़ता है।

दो सावण, दो भादवा, दो काती, दो माह।

ढाँडा धोरी बेचकर, नाज विसावण जाहा।

(सहल, 1958, पृष्ठ-235)

यदि दो सावन, दो भाद्रपद, दो कार्तिक अथवा दो माघ हों तो चौपायों को बेचकर अनाज खरीदने के लिए चले जाओ, क्योंकि अकाल का पड़ना निश्चित है।

परभाते मेह डँबरा, साँजे सीला बावा।

डंक कहै हे भड्डली, काला तरला सुभावा।

(सहल, 1958, पृष्ठ-235)

डंक भड्डली से कहता है कि यदि प्रातःकाल मेघ भागे जा रहे हों और शाम को ठंडी हवा चले तो समझना चाहिए कि अकाल पड़ेगा।

चैत मास उजियाले पाख, नो दिन बीज लुकोई राख।

आठे, नौम निरख कर जोय, ज्याँ बरसै ज्याँ दुरभख होया।

(सहल, 1958, पृष्ठ-235)

चैत्र शुक्ल पक्ष में प्रतिपदा से नवमी तक बिजली को छिपाये रखो, अष्टमी और नवमी को जहाँ-जहाँ बिजली चमकती दिखाई दे, वहाँ-वहाँ दुर्भिक्ष होगा।

निबाँ अधर निबोली सूले, काल पड़े कबहुँ नहि चूके।

(सहल, 1958, पृष्ठ-235)

नीम के फल पककर यदि नीम पर ही सूख जायें और जमीन पर न गिरें तो अवश्य अकाल पड़ेगा।

दिन में स्याल शब्ब जो करे, निश्चय ही काल हलाहल पड़े।

दिन में शृगाल शब्द करें तो भयंकर दुर्भिक्ष पड़ेगा।

(सहल, 1958, पृष्ठ-235)

राजस्थान में आँधी-तूफान को लेकर भी कुछ कहावतें हैं। कुछ कहावतें तो लगता है कि घाघ-भड्डरी की कहावतों का ही राजस्थानी

बोली में रूपांतरण है। कहावतों के संबंध में यह अनुभव-सिद्ध बात है कि हमारे पूर्वज कहावतों का जितना प्रयोग करते थे, उतना हम नहीं करते। शहरों की अपेक्षा गाँवों में कहावतों का अधिक प्रसार है, किंतु अब गाँवों के भी बहुत से लोग शहरों की तरफ जाने लगे हैं। इसके अतिरिक्त गाँवों में भी अब क्रमशः बढ़ते हुए आधुनिक शिक्षा-प्रसार के कारण कहावतें अपेक्षाकृत कम सुनने में आ रही हैं। ऐसी स्थिति में नई कहावतों का बनना भी एक प्रकार से रुक-सा गया है। इसका अर्थ यह नहीं है कि इस जमाने में एक भी नई कहावत नहीं बनती। कुछ कहावतें नई बनती ही होंगी, किंतु वे प्रकाश में उतनी नहीं आतीं।

छत्तीसगढ़ की कहावतें

कभी मध्य प्रदेश का हिस्सा रहे छत्तीसगढ़ में भी कहावतों की एक समृद्ध परंपरा है। वहाँ लोकोक्तियों के लिए 'हाना' शब्द प्रयोग होता है। ये लोकोक्तियाँ लोक जीवन को समझने में सहायता करती हैं। एक लोकोक्ति है—“खेती धान के नास, जब खेले गोसइयाँ तास”। किसान जब तास खेलता रहता है, उसकी खेती स्वाभाविक रूप से नष्ट हो जाती है। इस 'हाना' के माध्यम से किसान अपने बच्चों को बचपन से ताश खेलने से रोकते रहे हैं। ताश एक ऐसा खेल है जो लोगों को आलसी बना देता है। जबकि खेती करने वालों को बहुत ही कर्मठ होना जरूरी है। एक और लोकोक्ति है—“बरसा पानी बहे न पावे, तब खेती के मजा देखावो” इससे पता चलता है कि हमारे किसान कितने ज्ञानी रहे हैं। आजकल 'वाटर हार्वेस्टिंग' की बात होती है, लेकिन वहाँ की लोकोक्तियों में बहुत पहले से किसानों को जल संरक्षण के लिए प्रेरित किया जाता रहा है। एक और कहावत है—“डार के चूके बेंदरा अऊ, असाढ़ के चूके किसान।” इस लोकोक्ति के माध्यम से सही समय पर कार्य करने के लिए कहा गया है। नहीं तो वही हालत होगी जो उस बंदर की होती है, जो डाल को पकड़ नहीं पाया या उस किसान की, जिसने आषाढ़ में गलती की है (मुखर्जी, 2004)।

देशज ज्ञान और आपदा जोखिम न्यूनीकरण (डी.आर.आर.)

आपदाओं के पूर्वानुमान की समझ भारतीय जनजीवन में बहुत स्पष्टता से दिखाई देती है। आप भारत के किसी भी क्षेत्र में जाइए, आपको खान-पान, रहन-सहन, वेशभूषा, भवन निर्माण आदि की भिन्न शैलियाँ मिलती हैं। इसका कारण वास्तव में स्थानीय पर्यावरण में होने वाले बदलाव और आपदाओं के खतरों का पूर्वानुमान ही है। हर क्षेत्र में लोगों को मालूम है कि वहाँ के मौसम, पेयजल आदि के कारण स्वास्थ्य में क्या बदलाव हो सकते हैं, उसी के अनुरूप उनका खानपान और रहन-सहन निर्धारित होता है। कहीं पर भोजन बहुत तीखा होता है तो कहीं बहुत सामान्य। इसका सीधा संबंध आपदाओं से होता है। आपदा सिर्फ भूकंप और आधी-तूफान या फिर सुनामी के रूप में ही नहीं होती, बीमारियाँ और महामारियाँ भी आपदा ही होती हैं। अनेक क्षेत्रों में लोगों ने स्थानीय रूप से उपलब्ध सामग्री और पारंपरिक तकनीकों का उपयोग करके ऐसी संरचनाएँ विकसित की हैं, जो स्थानीय खतरों, जैसे भूकंप, बाढ़ या भूस्खलन का सामना कर सकें। हिमालय में पारंपरिक पत्थर और लकड़ी के घर बनाए जाते हैं, जो लचीलेपन और स्थिरता के सिद्धांतों पर आधारित होते हैं। ऐसे मकान भूकंप के झटकों का सामना करने में आधुनिक कंक्रीट संरचनाओं की तुलना में बेहतर साबित होते

हैं। बाढ़-प्रवण क्षेत्रों में ऊँचे मंचों पर घर बनाना या जल-प्रतिरोधी सामग्री का उपयोग करना भी इसका उदाहरण है। इसी प्रकार भूमि उपयोग की परंपराएँ हैं, जो प्राकृतिक खतरों के जोखिम को कम करती हैं। इसमें ढलानों पर खेती के लिए सीढ़ीदार खेत बनाना (जो मिट्टी के कटाव को रोकता है), विशिष्ट क्षेत्रों में वनीकरण करना (जो भू को नियंत्रित करता है) और जल स्रोतों का प्रबंधन करना शामिल है। दूरदराज के क्षेत्रों में भी लोग जानते हैं कि कौन से क्षेत्र बाढ़ या भूस्खलन के प्रति संवेदनशील हैं, इसलिए उन क्षेत्रों में बस्तियों बनाने से वे बचते हैं।

भारत में लोगों ने परंपरागत रूप से खेती की ऐसी पद्धतियाँ विकसित की हैं, जो स्थानीय जलवायु और मिट्टी की स्थिति के अनुकूल होती हैं और मौसमी घटनाओं का सामना कर सकती हैं। वे सूखे-प्रतिरोधी फसलों की किस्मों, पारंपरिक सिंचाई विधियों और खाद्य भंडारण तकनीकों का उपयोग करते हैं, जो आपदा के समय खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने में मदद करती हैं। देशज ज्ञान में पारिस्थितिकी तंत्र के संरक्षण और पुनर्निर्माण के तरीके भी शामिल हैं। लोग जानते हैं कि कौन से पेड़ और पौधे मिट्टी को स्थिर करने, जल स्रोतों को रिचार्ज करने और जैव विविधता को बनाए रखने में मदद करते हैं। वनों का सतत प्रबंधन और प्राकृतिक संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग आपदाओं के प्रभावों को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। आपदा के बाद, स्थानीय समुदाय अपने पारंपरिक ज्ञान का उपयोग करके प्रभावित क्षेत्रों तक पहुँचने, फंसे हुए लोगों को खोजने और प्राथमिक उपचार प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उनके पास इलाके का गहरा ज्ञान होता है और वे अक्सर बाहरी सहायता के पहुँचने से पहले ही बचाव कार्य शुरू कर देते हैं। भारतीय जनमानस में सामाजिक संरचना और एकजुटता की भावना भी मजबूत है। आपदा के समय लोग एक दूसरे का सहयोग, संसाधनों को साझा करने और सामूहिक रूप से पुनर्निर्माण के कार्य में मदद करते हैं। पारंपरिक नेतृत्व और सामुदायिक निर्णय लेने की प्रक्रियाएँ आपदा के बाद की चुनौतियों का सामना करने में महत्वपूर्ण होती हैं। देशज ज्ञान में पारंपरिक औषधीय पौधों का ज्ञान और स्वास्थ्य प्रथाएँ भी शामिल हैं, जो आपदा के बाद की स्थितियों में बीमारियों से निपटने और स्वच्छता बनाए रखने में मदद कर सकती हैं।

देशज ज्ञान को आधुनिक आपदा प्रबंधन में एकीकृत करने में कुछ चुनौतियाँ हैं, जैसे ज्ञान का दस्तावेजीकरण करना, इसे वैज्ञानिक रूप से मान्यता प्रदान करना और इसे आधुनिक प्रणालियों के साथ जोड़ना। देशज ज्ञान को शामिल करने से आपदा प्रबंधन योजनाएँ अधिक प्रासंगिक, प्रभावी और समुदाय-केंद्रित बन सकती हैं। यह स्थानीय स्वामित्व और भागीदारी को बढ़ावा देता है, जिससे समाधान अधिक स्थायी, सतत और टिकाऊ होते हैं। देशज ज्ञान को आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान और प्रौद्योगिकी के साथ एकीकृत करना आवश्यक है। उदाहरण के लिए, उपग्रह इमेजरी और मौसम पूर्वानुमान डेटा को स्थानीय पूर्वानुमान संकेतों के साथ जोड़कर एक अधिक व्यापक प्रारंभिक चेतावनी प्रणाली बनाई जा सकती है। यह तालमेल स्थानीय समुदायों को अधिक सशक्त बनाएगा और आपदा जोखिम न्यूनीकरण में समग्र लचीलापन बढ़ाएगा। आपदा जोखिम न्यूनीकरण में देशज ज्ञान की भूमिका अति महत्वपूर्ण है। आधुनिक आपदा प्रबंधन को देशज ज्ञान को मान्यता देनी चाहिए और उसे अपनी रणनीतियों में सक्रिय रूप से एकीकृत करना चाहिए।

आधुनिक विज्ञान और देशज ज्ञान : चुनौतियाँ और संभावनाएँ

आधुनिक विज्ञान का मानना है कि स्थानीय समुदायों के पास अत्यंत सूक्ष्म पर्यावरणीय अवलोकन कौशल होता है। कई देशज संकेत वैज्ञानिक रूप से प्रमाणित भी हुए हैं। उदाहरण के लिए भूकंप पूर्व संकेत की बात करें तो अनेक अध्ययनों से पता चलता है कि पशु विद्युत-चुंबकीय तरंगों के परिवर्तन को महसूस कर लेते हैं (ग्रांट & हालीडे, 2010)। इसी प्रकार चक्रवात की बात करें तो समुद्र का तापमान, हवा की दिशा तथा बादलों की आकृति पारंपरिक भविष्यवाणियों में महत्वपूर्ण रहे हैं। बाढ़ के संबंध में भी कुछ पूर्व संकेत मिले लगते हैं, जैसे कि नदियों के जलस्तर का अचानक बदलना, कीचड़ की गंध में वृद्धि तथा भूमि का कंपन। आवश्यकता इस बात की है कि इस देशज ज्ञान को आधुनिक तकनीक के साथ जोड़कर आपदा नियंत्रण के लिए ठोस तंत्र विकसित किया जाए।

देशज ज्ञान को लेकर आज अनेक प्रकार की चुनौतियाँ हैं। आधुनिकता के कारण लोक-संस्कृति का तीव्र गति से क्षरण हो रहा है। आधुनिकता का मतलब अपने अतीत की परंपराओं से दूर हो जाना हो गया है। युवा पीढ़ी में मौखिक परंपराओं के प्रति अरुचि है। इसका सबसे बड़ा कारण हमारी दूषित शिक्षा व्यवस्था है, जो हमें अपनी संस्कृति और परंपराओं से दूर ले जाती है। सरकारी नीतियों में भी देशज ज्ञान की उपेक्षा होती रही है। आज भले ही भारतीय ज्ञान परंपरा की बात हो रही हो, लेकिन इतिहास साक्षी है कि आजादी के बाद करीब साठ साल तक भारत को उसकी जड़ों से काटने का सुनियोजित प्रयास हुआ है। जनजातीय और ग्रामीण समुदायों के विस्थापन के कारण भी देशज ज्ञान नष्ट होता जा रहा है। देशज ज्ञान को लेकर एक सबसे बड़ी चुनौती यह भी है कि इसके जानकार आगे की पीढ़ी को इस संबंध में प्रशिक्षित नहीं कर पा रहे हैं। यदि यह ज्ञान नई पीढ़ी को सुरक्षित हस्तांतरित नहीं होता है तो जो बचा है वह भी नष्ट हो जाएगा।

निष्कर्ष

अध्ययन से स्पष्ट है कि भारत की देशज आपदा संचार प्रणाली न केवल ऐतिहासिक रूप से समृद्ध है, बल्कि आज के बदलते पर्यावरणीय जोखिमों में भी अत्यंत उपयोगी है। इन प्रणालियों ने सदियों तक भारतीय समुदायों को प्राकृतिक आपदाओं से बचाया और उनका मार्गदर्शन किया। आधुनिक आपदा प्रबंधन तकनीक की विश्वसनीयता तब और बढ़ जाएगी जब इसे स्थानीय ज्ञान के साथ जोड़ा जाए। भारत की नीति-व्यवस्था, शिक्षा प्रणाली तथा सामुदायिक नेटवर्क यदि मिलकर कार्य करें तो देशज ज्ञान को संरक्षित कर आधुनिक आपदा चेतावनी प्रणाली को अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है। देशज ज्ञान का वैज्ञानिक प्रलेखन आवश्यक है। सरकार और विश्वविद्यालयों को मिलकर देशज चेतावनी संकेतों का व्यवस्थित संग्रह करना चाहिए। स्थानीय स्तर पर प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जाने चाहिए। राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन प्राधिकरण (एनडीएमए) और राज्य सरकारों को स्थानीय भाषाओं में प्रशिक्षण कार्यक्रम तैयार करने चाहिए। इसके अलावा देशज और आधुनिक प्रणालियों का एकीकरण किया जाना चाहिए। मोबाइल ऐप में देशज संकेतों को शामिल करना चाहिए। आपदा सायरन सिस्टम में पारंपरिक ध्वनि संकेतों का भी उपयोग किया जाना चाहिए। इसके अलावा कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई) आधारित मॉडल में लोकसंकेत डेटा

का संग्रह होना चाहिए। शैक्षणिक पाठ्यक्रमों में देशज ज्ञान का समावेश होना चाहिए। विद्यालयों से लेकर विश्वविद्यालयों तक देशज ज्ञान को औपचारिक रूप से पढ़ाया जाना चाहिए।

संदर्भ सूची

- अग्रवाल, ए. (1995). डिस्मेंटलिंग द डिवाइड बिटवीन इंडिजेनस एंड साइंटिफिक नॉलेज. डेवलपमेंट एंड चेंज, 26(3), 413–439.
- ओवेन, आर. (2023). क्या भूकंप आने से पहले संकेत देते हैं? वैज्ञानिकों का कहना है कि शायद ऐसा होता है? <https://www.preventionweb.net/news/do-earthquakes-produce-signals-they-rupture-maybe-scientists-say> से पुनःप्राप्त.
- कुमारी, के. (2023). भूकंप आने से पहले मिलते हैं ये संकेत, कुत्तों-चिड़ियों की बदल जाती है आवाज, रुक जाती है हवा, जानिए और क्या? <https://www.indiatv.in/india/national/signs-before-the-earthquake-the-sound-of-birds-and-dogs-changes-the-wind-stops-know-details-2023-02-07-929351> से पुनःप्राप्त.
- खान, ए.ए. (2008). अर्थक्वेक सेफ ट्रेडिशनल हाउस कंस्ट्रक्शन प्रैक्टिसेज इन कश्मीर. https://www.unisdr.org/files/3646_IndigenousKnowledgeDRR.pdf से पुनःप्राप्त.
- ग्रांट, आर. & हालीडे, टी. (2010). प्रेडिक्टिंग अर्थक्वेक्स : द रोल ऑफ एनिमल बिहेवियर. जर्नल ऑफ सिस्मोलॉजिकल स्टडीज, 14(2), 85–96.
- डे, एस. (2012). इंडिजेनस नॉलेज इन डिजास्टर रिस्क रिडक्शन एंड क्लाइमेट चेंज एडाप्टेशन : स्टडी ऑफ हाउसिंग पैटर्न एंड एग्रीकल्चरल प्रैक्टिसेज ऑफ मिशिंग कम्युनिटी ऑन माजुली आइलैंड, असम. https://nidm.gov.in/journal/PDF/Journal/1_Dec_2012/1_Dec_2012j.pdf से पुनःप्राप्त.
- पांडा, जी.के. (2023). इंडिजेनस नॉलेज एंड डिजास्टर रिस्क रिडक्शन. स्प्रिंगर नेचर. <https://link.springer.com/book/10.1007/978-3-031-26143-5> से पुनःप्राप्त.
- पारीक, ए. & त्रिवेदी, पी.सी. (2011). इंडियन जर्नल ऑफ इंडिजेनस नॉलेज. कल्चरल वैल्यूज एंड इंडिजेनस नॉलेज ऑफ क्लाइमेट चेंज एंड डिजास्टर प्रेडिक्शन इन राजस्थान, इंडिया. https://prod-qt-images.s3.amazonaws.com/indiawaterportal/import/sites/default/files/iwp2/Cultural_values_and_indigenous_knowledge_of_climate_change_and_disaster_prediction_in_Rajasthan_India_Indian_Journal_of_Traditional_Knowledge_2011.pdf से पुनःप्राप्त.
- बंगलापीडिया. (2021). खाना. <https://en.banglapedia.org/index.php/Khana> से पुनःप्राप्त.
- बीबीसी. (2005). कैसे बर्ची अंडमान की जनजातियाँ? https://www.bbc.com/hindi/regionalnews/story/2005/01/050104_andman_tirbes से पुनःप्राप्त.
- मुखर्जी, आई. (2004). छत्तीसगढ़ी लोकोक्तियों (हाना). <https://ignca.gov.in/coilnet/chgr0028.htm> से पुनःप्राप्त.
- राजेंद्रन, ए. (2022). खाना या खोना की कहावतें. <https://www.hindu-blog.com/2022/05/sayings-of-khana-or-khona.html> से पुनःप्राप्त.
- रे. एस. (2012). ट्रेडिशनल मेट्रोलोजी ऑफ इंडियन फार्मर्स. इंडियन जर्नल ऑफ ट्रेडिशनल नॉलेज, 11(3), 495–501.
- शर्मा, एम. (2023). भारत-अफगानिस्तान-पाकिस्तान में भी आया भीषण भूकंप? तुर्की की भविष्यवाणी करने वाले रिसर्चर ने किया दावा. <https://www.aajtak.in/world/story/earthquake-will-occur-in-india-afghanistan-and-pakistan-dutch-researcher-frank-hoogerbeets-predicts-ntc-1635471-2023-02-13> से पुनःप्राप्त.
- शर्मा, ए. & जोशी, एम. (2008). इंडिजेनस नॉलेज एंड मॉडर्न साइंस गिव एनवायरनमेंट फ्रेंडली शेल्टर सोलुशन इन फ्लड अफेक्टेड डेजर्ट रीजन ऑफ इंडिया. https://www.unisdr.org/files/3646_IndigenousKnowledgeDRR.pdf से पुनःप्राप्त.
- स्टेफन, आई., चौधरी आर. डी., & नाथ, डी. (2008). सोइल एंड वाटर कंजर्वेशन थ्रू बंबू प्लांटेशन : अ डिजास्टर मैनेजमेंट टेक्निक अदोप्टेड बाय द पीपल ऑफ नंदेस्वर, असम. https://www.unisdr.org/files/3646_IndigenousKnowledgeDRR.pdf से पुनःप्राप्त.
- सिंह, के. (2014). फोक वार्निंग सिस्टम्स इन इंडियन कोस्टल कम्युनिटीज. जर्नल ऑफ एन्विरोमेंटल एंथ्रोपोलॉजी, 6(1), 22–36.
- सिंह, आर. पी. (2013). घाघ और भड्डरी की कहावतें. लखनऊ : उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान.



न्यायिक संचार : भारतीय सामाजिक व्यवस्था की रीढ़

डॉ. बीनम यादव¹ और प्रो. प्रशांत कुमार²

सारांश

प्राचीन भारतीय सामाजिक संरचना का आधार नैतिक (धर्म) मूल्यों पर आधारित शांतिपूर्ण जीवन का विचार था। लोग विधि और न्यायिक प्रणालियों में पारंगत थे। वे कुल, श्रेणी, गण, अधिकारिता सहित न्यायालय पदानुक्रम के अस्तित्व को महत्व देते थे। चूंकि सत्य भारतीय सामाजिक व्यवस्था का पहला गुण है, इसलिए न्याय भी उसका पहला गुण है। भारतीय कानूनों का प्राथमिक स्रोत वेद हैं। ऋग्वेद में कानून या रीति-रिवाज के लिए प्रयुक्त शब्द आमतौर पर 'धर्म' है। वैदिक संस्कृति के समय से लेकर मुगलों के आगमन तक, भारत में सभी लोग धर्म के सिद्धांत से बंधे हुए थे। क्रिया 'धृ' 'धर्म' शब्द का मूल है, जिसका अर्थ धारण करना या पोषण करना है। ऋषियों द्वारा इसका प्रयोग प्रायः 'ऋत' और 'सत्य' शब्दों के साथ किया जाता है। प्राचीन भारत की न्यायिक व्यवस्था कानूनों, रीति-रिवाजों, धार्मिक सिद्धांतों और न्याय प्रशासन का एक अंतर्संबंध थी। इस व्यवस्था के अंतर्गत संचार यह सुनिश्चित करता था कि न्याय निष्पक्ष रूप से हो, विवादों का कुशलतापूर्वक निपटारा हो और सामाजिक समरसता बनी रहे। न्यायिक संचार प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था और भारत की न्यायिक संरचना की रीढ़ के रूप में कार्य करता था। प्राचीन भारत में आधुनिक अर्थ में एकीकृत 'सिविल कोड' या लिखित संवैधानिक कानून नहीं था, बल्कि धर्म पर आधारित विविध परंपराओं का ऐसा तंत्र था, जो जीवन के लगभग हर क्षेत्र को नियंत्रित करता था। आज प्राचीन भारतीय विधि-ग्रंथ प्रत्यक्ष रूप से लागू कानून नहीं हैं, लेकिन विधि-इतिहास, हिंदू न्यायशास्त्र और राजनीतिक चिंतन के अध्ययन में महत्वपूर्ण स्रोत हैं।

संकेत शब्द : न्यायिक संचार, भारतीय सामाजिक संरचना, धर्म, सत्य, धर्म के सिद्धांत, वेद.

प्रस्तावना

प्राचीन भारतीय सामाजिक संरचना का आधार नैतिकता (धर्म) पर आधारित जीवन का विचार था। सत्य भारतीय सामाजिक व्यवस्था का प्रथम गुण है, इसलिए न्याय भी उसका मूल है। भारतीय कानूनों का प्राथमिक स्रोत वेद हैं। ऋग्वेद में कानून या रीति-रिवाज के लिए शब्द सामान्यतः 'धर्म' है। यहाँ तक कहा गया है कि यदि सबसे सुंदर और रक्षित सिद्धांत झूठे हैं, तो उन्हें अस्वीकार या परिवर्तित कर देना चाहिए। इसी प्रकार, यदि सबसे प्रभावी और सुव्यवस्थित कानून और संस्थाएँ अन्यायपूर्ण हैं, तो उन्हें भी बदल देना चाहिए या समाप्त कर देना चाहिए। हिंदू व्यवस्था के विधायी प्रणाली की ओर विकसित होने के कारण राजा को बार-बार चेतावनी दी जाती थी कि कोई भी निर्णय तब तक सही नहीं होता, जब तक कि वह शास्त्रों की शिक्षाओं के अनुसार न दिया जाए। प्राचीन भारत की न्यायिक व्यवस्था कानूनों, रीति-रिवाजों, धार्मिक सिद्धांतों और न्याय प्रशासन का एक जटिल अंतर्संबंध थी। इस व्यवस्था के अंतर्गत संचार यह सुनिश्चित करता था कि न्याय निष्पक्ष रूप से हो, विवादों का कुशलतापूर्वक निपटारा हो और सामाजिक समरसता बनी रहे। न्यायिक संचार प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था और भारत की न्यायिक संरचना की रीढ़ की हड्डी के रूप में कार्य करता था।

प्राचीन भारत में कोई एकल संहिता (सिंगल कोड) नहीं थी, बल्कि धर्म पर आधारित परंपरा थी, जो व्यक्तिगत आचरण, परिवार, अपराध-दंड और राजा के कर्तव्यों तक सबको नियंत्रित करती थी। यहाँ कानून, धर्म और नैतिकता एक-दूसरे से अलग नहीं थे, बल्कि सामाजिक और ब्रह्मांडीय व्यवस्था बनाए रखने का साधन माने जाते थे, सिर्फ राज्य की शक्ति नहीं। प्राचीन भारत में कानून के तीन बड़े आधार माने गए, धर्मशास्त्र (धार्मिक-नैतिक विधि ग्रंथ), अर्थशास्त्र या राज्य नीति और रीति-रिवाज।

प्राचीन भारतीय कानून व्यवस्था के मुख्य स्रोत धर्मशास्त्र और स्मृति थे (लगभग 200 ई.पू.-200 ई.), जिनमें कर्तव्यों, सामाजिक नियमों और विधिक सिद्धांतों को व्यवस्थित करने की कोशिश की गई। आज प्राचीन भारतीय विधि-ग्रंथ प्रत्यक्ष रूप से लागू कानून नहीं हैं, लेकिन विधि-इतिहास, हिंदू न्यायशास्त्र और राजनीतिक चिंतन के अध्ययन में महत्वपूर्ण स्रोत हैं। धर्म, न्याय, सत्य, दया, दान और निर्बलों की रक्षा—ये सब प्राचीन विधि के महत्वपूर्ण नैतिक आदर्श थे। शास्त्रों में बार-बार कहा गया कि राजा का प्रमुख कर्तव्य प्रजा का संरक्षण, न्याय की स्थापना और सामाजिक संतुलन बनाए रखना है। न्यायाधीशों के लिए भी निष्पक्षता, गोपनीयता, साक्ष्य की सावधानी से जाँच, झूठे मुकदमों पर दंड और गरीब-कमजोर पक्ष की विशेष सुरक्षा जैसी बातें निर्देशित की गई। सिद्धांत के स्तर पर एक ऐसी न्याय-व्यवस्था की कल्पना की गई जो 'धर्म' के मार्गदर्शन में कमजोरों की रक्षा करने वाली हो।

शोध उद्देश्य

प्रस्तुत शोध के निम्नलिखित उद्देश्य हैं :

- प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था और भारत की न्यायिक संरचना का विश्लेषण करना।
- प्राचीन भारतीय सामाजिक संरचना का आधार नैतिकता (धर्म) पर आधारित जीवन को समझना।
- आधुनिक समय में प्राचीन भारतीय न्यायिक संरचना की प्रासंगिकता और अनुप्रयोग को ज्ञात करना।

शोध प्रविधि

यह अध्ययन गुणात्मक, ऐतिहासिक-विश्लेषणात्मक और वर्णनात्मक

¹तिलक पत्रकारिता एवं जनसंचार स्कूल, चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ, उत्तर प्रदेश. ईमेल : beenum.yadav@gmail.com

²निदेशक, तिलक पत्रकारिता एवं जनसंचार स्कूल, चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ, उत्तर प्रदेश. ईमेल : prashantmrsingh@gmail.com

स्वरूप का है, जिसका उद्देश्य प्राचीन भारत की न्यायिक प्रणाली में संप्रेषण की विधियों, माध्यमों और सिद्धांतों का विश्लेषण करना है। प्राचीन ग्रंथों का भाषिक और सांस्कृतिक स्तर पर अध्ययन किया गया है। विषयात्मक विश्लेषण न्याय, संवाद, राजा-प्रजा संबंध जैसे विषयों के आधार पर वर्गीकरण कर ऐतिहासिक दृष्टिकोण समयक्रमानुसार न्याय व्यवस्था में संवाद की भूमिका की प्रगति का अध्ययन किया गया है। प्राचीन भारतीय संचार परंपरा पर शोध पत्रों, पुस्तकों और लेखों का विश्लेषण, ऑनलाइन संसाधन जैसे कि डिजिटल पुस्तकालय, शैक्षणिक डेटाबेस और वेबसाइट के रूप में उपलब्ध द्वितीयक सामग्री का संकलन एवं अध्ययन किया गया है। तथ्यों के विश्लेषण से प्राचीन संचारकों की संचार शैलियों में आवर्ती विषयों और पैटर्न की पहचान करने का प्रयास किया गया है। साथ ही प्राचीन संचारकों द्वारा उपयोग की गई भाषा, उच्चारण और आलंकारिक उपकरणों की जाँच की गई है।

महाभारत के शांतिपर्व में एक श्लोक है—

सत्यं सत्सु सदा धर्मः सत्यं धर्मः सनातनः।

सत्यमेव नमस्येत् सत्यं हि परमा गतिः॥

(महाभारत, शांतिपर्व, अध्याय 156, श्लोक 4)

सत्य ही सज्जनों में सदा धर्म है, सत्य ही शाश्वत धर्म है। सत्य की ही पूजा करनी चाहिए, क्योंकि सत्य ही परम गति है। यहाँ सत्य को धर्म का मूल और विश्वव्यापी शक्ति के रूप में वर्णित किया गया है, जो न्याय और समृद्धि का आधार बनता है। प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था में सत्य और धर्म की केंद्रीय भूमिका है। सत्य और धर्म न केवल व्यक्तिगत आचरण के आधार थे, बल्कि सामाजिक, नैतिक और न्यायिक प्रणालियों के मूलभूत सिद्धांत भी थे। प्राचीन भारत में न्यायिक संचार केवल कानूनी प्रक्रियाओं तक सीमित नहीं था, बल्कि यह सामाजिक सद्भाव, नैतिकता और शासन व्यवस्था को बनाए रखने का एक अभिन्न अंग था। विदुर नीति (उद्योगपर्व) में भी विदुर सत्य को राजधर्म का प्रथम अंग बताते हैं, जहाँ असत्य से विनाश होता है। यह प्राचीन भारत में न्यायिक संचार की ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और दार्शनिक भूमिका का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत करता है (शास्त्री, 2015)।

प्राचीन भारत में न्यायिक संचार का परिचय

प्राचीन भारतीय सामाजिक संरचना की नींव धर्म पर आधारित थी, जो नैतिक और सामाजिक कर्तव्यों का समन्वय करती थी। धर्म ने न केवल व्यक्तिगत जीवन को शांतिपूर्ण और समृद्ध बनाने में योगदान दिया, बल्कि सामूहिक व्यवस्था और न्यायिक प्रणालियों को भी संचालित किया। न्यायिक संचार का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना था कि कानून निष्पक्ष रूप से लागू हों, विवादों का समाधान कुशलतापूर्वक हो और सामाजिक सामंजस्य बना रहे। यह संचार केवल कानूनी निर्णयों को लागू करने तक सीमित नहीं था, बल्कि यह सामाजिक मूल्यों और नैतिकता को सुदृढ़ करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता था।

भारतीय कानूनों का प्राथमिक स्रोत वेद हैं। ऋग्वेद में, कानून या रीति-रिवाज के लिए शब्द आमतौर पर 'धर्म' है। यहाँ तक कहा गया है कि सबसे सुंदर और किफायती सिद्धांतों को, यदि वे झूठे हों तो अस्वीकार या परिवर्तित कर देना चाहिए; इसी प्रकार, सबसे प्रभावी और सुव्यवस्थित कानूनों और संस्थाओं को भी, यदि वे अन्यायपूर्ण हों, तो परिवर्तित या

समाप्त कर देना चाहिए। हिंदू व्यवस्था के विधायी प्रणाली की ओर विकास के कारण राजा को बार-बार चेतावनी दी गई थी कि कोई भी निर्णय तब तक सही नहीं होता, जब तक कि वह शास्त्रों की शिक्षाओं के अनुसार न दिया जाए। प्राचीन भारत में, न्यायिक संचार सामाजिक व्यवस्था, न्याय और शासन को बनाए रखने के लिए मूलभूत था (शर्मा, 2024, पृष्ठ 47)।

तैत्तिरीय उपनिषद् में कहा गया है : **सत्यं वद, धर्मं चर, स्वाध्यायान्मा प्रमदः।** यानी “सत्य बोलो, धर्म का पालन करो।”—यह सूत्र सत्य और धर्म को न्यायिक प्रक्रियाओं के आधार के रूप में स्थापित करता है। प्राचीन भारत में न्यायिक संचार मौखिक परंपराओं, लिखित दस्तावेजीकरण और सामाजिक संस्थाओं जैसे सभा और समिति के माध्यम से संचालित होता था। ये संस्थाएँ न केवल कानूनी निर्णयों को संप्रेषित करती थीं, बल्कि समाज में नैतिकता, सत्य और सामाजिक एकता को बढ़ावा देती थीं। यह अध्याय प्राचीन भारत की न्यायिक प्रणालियों, उनके संचार तंत्रों और उनकी आधुनिक प्रासंगिकता का गहन विश्लेषण प्रस्तुत करता है। यह दर्शाता है कि कैसे प्राचीन भारत की न्यायिक प्रणालियाँ सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने में महत्वपूर्ण थीं और कैसे उनकी विरासत आज भी प्रासंगिक है।

प्राचीन भारत में न्यायिक प्रणालियों का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

प्राचीन भारत की न्यायिक प्रणालियाँ वैदिक काल से लेकर मौर्य और गुप्त साम्राज्यों तक एक लंबी विकास यात्रा से गुजरीं। ये प्रणालियाँ धर्म के सिद्धांतों पर आधारित थीं, जो सामाजिक व्यवस्था और नैतिकता को बनाए रखने का आधार थीं। वैदिक काल में न्यायिक प्रणालियाँ सरल थीं और मुख्यतः मौखिक परंपराओं और सामुदायिक सहमति पर आधारित थीं। इस काल में विवादों का समाधान सामुदायिक बुजुर्गों, कुल या गण के माध्यम से होता था। उत्तर वैदिक काल में सभा और समिति जैसी संस्थाएँ विकसित हुईं, जो सामाजिक और न्यायिक निर्णयों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थीं। मौर्य काल में, कौटिल्य के ‘अर्थशास्त्र’ ने न्यायिक संचार को औपचारिक रूप प्रदान किया, जिसमें लिखित दस्तावेजीकरण और पदानुक्रमित न्यायालयों की स्थापना शामिल थी। गुप्त काल में ये प्रणालियाँ और अधिक परिष्कृत हुईं, जिसमें सामाजिक और आर्थिक विवादों के समाधान के लिए विशेष न्यायालय स्थापित किए गए। यह खंड प्राचीन भारत की न्यायिक प्रणालियों के विकास और उनके संचार तंत्रों का विस्तृत अवलोकन प्रस्तुत करता है, जो समय के साथ उनकी प्रगति और परिवर्तन को दर्शाता है (शर्मा, 2020, पृ. 45)।

प्राचीन भारत में न्यायिक संचार की प्रारंभिक प्रणालियाँ

वैदिक काल : मौखिक परंपराएँ और धर्म

वैदिक काल में न्यायिक संचार मुख्यतः मौखिक था और धर्म तथा ऋत (वैश्विक व्यवस्था) के सिद्धांतों पर आधारित था। ऋग्वेद में विभिन्न अपराधों, जैसे—चोरी, संधमारी और डकैती, का उल्लेख मिलता है, जिनका समाधान सामुदायिक चर्चाओं के माध्यम से किया जाता था (आल्टेकर, 1999)। इस काल में औपचारिक वकील या न्यायाधीशों की अवधारणा नहीं थी। विवादों का समाधान सामुदायिक बुजुर्गों, कुल (परिवार परिषद्) या गण (गाँव सभा) द्वारा किया जाता था। दंड प्रणाली में प्रायः “आँख के बदले आँख” या जुर्माना जैसे उपाय शामिल थे, जिसमें

पीड़ित के परिवार को मुआवजा दिया जाता था। यह प्रणाली सामाजिक विश्वास, नैतिकता और सामुदायिक सहमति पर आधारित थी, जो समाज में सामंजस्य और व्यवस्था बनाए रखने में सहायक थी (शास्त्री, 2015)।

धर्म और सत्य की अवधारणा

धर्म प्राचीन भारत में न्यायिक संचार का मार्गदर्शक सिद्धांत था। 'धृ' धातु से व्युत्पन्न 'धर्म' का अर्थ है—बनाए रखना, पोषण करना और व्यवस्था स्थापित करना। यह ऋत (वैश्विक व्यवस्था) और सत्य (सच्चाई) के साथ गहराई से जुड़ा था। शंकराचार्य ने सत्य को सच्चाई की मौखिक अभिव्यक्ति और धर्म को उसके व्यावहारिक पालन के रूप में परिभाषित किया। के. बालसुब्रमण्यम अय्यर के अनुसार, ऋत मानसिक जागरूकता और सत्य की प्राप्ति है; सत्य मन द्वारा अनुभव किए गए सत्य का शब्दों में प्रतिनिधित्व है और धर्म जीवन में सत्य को लागू करने का अभ्यास है। यह त्रयी ऋत, सत्य और धर्म न्यायिक संचार की नींव थी, जो निष्पक्षता, नैतिकता और सामाजिक व्यवस्था को सुनिश्चित करती थी। यह अवधारणा प्राचीन भारतीय समाज में न्यायिक प्रक्रियाओं को दिशा देने और सामाजिक मूल्यों को सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण थी (अय्यर, 1982)।

सभा और समिति : सामाजिक और न्यायिक मंच

वैदिक काल में सभा और समिति दो प्रमुख संस्थाएँ थीं, जो सामाजिक और न्यायिक संचार के मंच के रूप में कार्य करती थीं।

सभा : यह कुलीनों और विद्वानों की सभा थी, जो न्यायिक विवादों, कानूनी निर्णयों और सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने के लिए जिम्मेदार थी। सभा में सभासद (सदस्य) और पार्षद (सलाहकार) शामिल होते थे, जो राजा को निर्णय लेने में सहायता करते थे।

समिति : यह अधिक समावेशी सभा थी, जिसमें सामान्य जनता भी शामिल होती थी। समिति युद्ध, शांति और राजा के चयन जैसे महत्वपूर्ण मामलों पर चर्चा करती थी। यह लोकतांत्रिक भावना को दर्शाती थी, जहाँ सामूहिक सहमति पर जोर दिया जाता था (शर्मा, 1999, पृ. 45; आल्टेकर, 1962, पृ. 72)।

अथर्ववेद में एक श्लोक है—“**नाम नरिष्टं नाम यद् विश्वमासीत् सवाचसः सन्नादति सभायाम्**। यानी “सभा में सभी सदस्य एक स्वर में सन्नादति (गूँजते) हैं, जो विश्व के साथ समृद्ध होता है।” सभा और समिति ने राजा के अधिकारों पर नियंत्रण और संतुलन प्रदान किया। ये संस्थाएँ सामाजिक और न्यायिक मामलों में सामूहिक सहमति और सत्य के आधार पर निर्णय लेने में महत्वपूर्ण थीं, जिससे सामाजिक व्यवस्था और नैतिकता को बल मिला (शर्मा, 2005)।

मनु और प्रारंभिक कानूनी ढाँचा

मनु को सामाजिक जीवन का प्रथम आयोजक माना जाता है, जिन्होंने न्यायिक प्रणाली को औपचारिक रूप प्रदान किया। 'मनुस्मृति' में 18 प्रकार के विवादों (विवाद-मूल) का उल्लेख है, जो निम्नलिखित हैं :

1. ऋण का भुगतान न करना
2. जमा खोरी
3. स्वामित्व के बिना बिक्री
4. साझेदारी

5. उपहारों का उचित वितरण न होना
6. मजदूरी का भुगतान न करना
7. अनुबंध का उल्लंघन
8. बिक्री या खरीद का रद्दीकरण
9. मालिकों और चरवाहों के बीच विवाद
10. सीमा विवाद
11. हिंसक हमला
12. शारीरिक हमला
13. चोरी
14. हिंसा
15. डकैती
16. व्यभिचार
17. बदनामी
18. महिलाओं के विरुद्ध यौन अपराध

(मनु, 'मनुस्मृति', अध्याय 8, श्लोक 4-8; डोनिगर & स्मिथ, 1991, पृ. 150)।

बृहस्पति स्मृति में एक श्लोक है—“**लिखितं सर्वं सन्नादति, यद् धर्मेन समृद्धति**।” यानी “लिखित सर्व धर्म के साथ सन्नादति (गूँजता) है, जो समृद्धि लाता है।” यह श्लोक बताता है कि लिखित शास्त्र (वेद, स्मृति) न्याय और धर्म के साथ मिलकर ही समाज को गूँजते (प्रभावशाली) बनाते हैं। बिना धर्म के कोई ज्ञान या लिखित विधि स्थायी समृद्धि नहीं ला सकती। यह ज्ञान-परंपरा के महत्त्व पर जोर देता है, जहाँ शास्त्र 'सन्नादति' (गूँजते) हैं, जैसे वेदों की ध्वनि विश्व को कंपित करती है। मनु ने राजा को सलाह दी कि वे अपनी अनुपस्थिति में ब्राह्मणों को न्याय का अधिकार सौंपें। सभासद और पार्षद राजा के सलाहकार थे, जो निष्पक्षता और धर्म के आधार पर निर्णय लेते थे। यह प्रणाली सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने और विवादों के निष्पक्ष समाधान में सहायक थी (शर्मा, 2008)।

वैदिक काल : कानून, धर्म और सामाजिक संगठन

वैदिक काल (लगभग 1500-1000 ई.पू.) भारतीय इतिहास का एक प्रारंभिक और महत्वपूर्ण काल था, जिसमें वैदिक सभ्यता ने भारत की सांस्कृतिक, धार्मिक और सामाजिक नींव रखी। इस काल में कानून और न्याय की व्यवस्था धर्म पर आधारित थी और सामाजिक संगठन को सभा और समिति जैसी संस्थाओं के माध्यम से संचालित किया जाता था। वैदिक काल का सबसे प्राचीन और महत्वपूर्ण ग्रंथ ऋग्वेद इस काल की सामाजिक, राजनीतिक और कानूनी संरचना का एक प्राथमिक स्रोत है। इस काल में राजा भी कानून से ऊपर नहीं था और न्याय हमेशा धर्म और कानून के अनुसार ही किया जाता था। वैदिक काल में अपराध, कानूनी विवाद और सामाजिक संगठन की एक जटिल प्रणाली थी, जो धर्म और स्मृति ग्रंथों द्वारा निर्देशित थी (शर्मा, 1999, पृ. 48; आल्टेकर, 1962, पृ. 70)।

कानून और अपराध

वैदिक काल में कानून और न्याय की व्यवस्था धर्म पर आधारित थी और इसका उद्देश्य सामाजिक सामंजस्य को बनाए रखना था। ऋग्वेद में विभिन्न प्रकार के अपराधों का उल्लेख किया गया है, जो इस बात का

संकेत देते हैं कि वैदिक समाज में कानूनी और सामाजिक व्यवस्था अत्यंत विकसित थी। इन अपराधों में चोरी, संधमारी, राजमार्ग डकैती और हिंसा जैसे अपराध शामिल थे। इसके साथ ही, स्मृतियों में विवादों के अठारह प्रमुख कारणों का वर्णन किया गया है, जो वैदिक समाज में कानूनी विवादों की जटिलता को दर्शाते हैं। इनमें निम्नलिखित शामिल हैं :

- **ऋण** : किसी व्यक्ति द्वारा उधार ली गई राशि को न चुकाने से उत्पन्न विवाद।
- **उचित शीर्षक के बिना बिक्री** : बिना स्वामित्व के संपत्ति की बिक्री से उत्पन्न विवाद।
- **सीमा निर्धारण** : भूमि की सीमाओं को लेकर उत्पन्न विवाद।
- **विभाजन** : संयुक्त परिवार की संपत्ति के विभाजन से उत्पन्न विवाद।
- **मजदूरी का भुगतान न करना** : श्रमिकों को उनकी मजदूरी न देने से उत्पन्न विवाद।
- **अनुबंध का उल्लंघन** : व्यापारिक या सामाजिक अनुबंधों को तोड़ने से उत्पन्न विवाद।
- **व्यभिचार, साझेदारी, हिंसा, बदनामी, चोरी और डकैती** : ये सामाजिक और नैतिक अपराध थे, जिनके लिए कठोर दंड निर्धारित किए गए थे।

इन अपराधों और विवादों को सुलझाने के लिए एक व्यवस्थित न्यायिक प्रणाली थी, जिसमें सभा और समिति जैसी संस्थाएँ महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थीं। वैदिक काल में अपराधों के लिए दंड भी निर्धारित थे, जो अपराध की गंभीरता पर निर्भर करते थे। उदाहरण के लिए, चोरी या डकैती के लिए अपराधी को संपत्ति जब्त करने, निर्वासन, या शारीरिक दंड का सामना करना पड़ सकता था। यह दर्शाता है कि वैदिक समाज में कानून और व्यवस्था को बनाए रखने के लिए एक संरचित प्रणाली मौजूद थी (आल्टेकर, 1962, पृ. 73)।

धर्म : एक मार्गदर्शक सिद्धांत

वैदिक काल में धर्म की अवधारणा नैतिक और सामाजिक कर्तव्यों का आधार थी, जो समाज के प्रत्येक व्यक्ति के लिए मार्गदर्शक सिद्धांत के रूप में कार्य करती थी। धर्म का अर्थ केवल धार्मिक अनुष्ठानों तक सीमित नहीं था, बल्कि यह सामाजिक व्यवस्था, नैतिकता और कानून का एक व्यापक सिद्धांत था। धर्म ने वैदिक समाज में कानून और व्यवस्था के लिए एक नैतिक ढाँचा प्रदान किया और इसका पालन करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य माना जाता था। धर्म के सिद्धांत सामाजिक सामंजस्य को बनाए रखने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण थे, क्योंकि यह व्यक्तियों और समुदायों को एकजुट करता था (शर्मा, 1999, पृ. 50; आल्टेकर, 1962, पृ. 72)।

धर्मशास्त्र, जो प्राचीन भारत का एक महत्वपूर्ण कानूनी और नैतिक संग्रह था, धर्म के सिद्धांतों को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करता था। धर्मशास्त्र ने न केवल कानूनी प्रशासन को निर्देशित किया, बल्कि जीवन के हर पहलू में उचित आचरण को भी परिभाषित किया। यह ग्रंथ हिंदू पारिवारिक कानून की नींव के रूप में कार्य करता था और पारंपरिक हिंदू समाज में इसके सिद्धांत गहरे रूप से समाए हुए थे (मिश्रा, 2000, पृ. 22-24)।

धर्मशास्त्र के कुछ मूलभूत विचार, जो पारंपरिक परिवेश में पले-बढ़े हिंदुओं के बीच प्रचलित थे, निम्नलिखित थे :

- **दायित्व अधिकारों से अधिक महत्वपूर्ण हैं** : धर्मशास्त्र में यह सिद्धांत दिया गया कि व्यक्ति के कर्तव्य (दायित्व) उसके अधिकारों से अधिक महत्वपूर्ण हैं। यह विचार सामाजिक सामंजस्य और पारिवारिक एकता को बढ़ावा देता था (जैन, 1995, पृ. 35)।
- **महिलाओं की स्थिति** : धर्मशास्त्र के अनुसार, महिलाओं को हमेशा अपने निकटतम पुरुष रिश्तेदारों (पिता, पति, या पुत्र) की देखरेख में रहना चाहिए। यह विचार उस समय की सामाजिक संरचना को दर्शाता है, जिसमें पुरुषों को परिवार का संरक्षक माना जाता था।
- **राजा की जिम्मेदारी** : राज्य या राजा को अपने प्रजा की सभी नुकसानों से रक्षा करने की जिम्मेदारी दी गई थी। यह सिद्धांत राजा को प्रजा के कल्याण के लिए उत्तरदायी बनाता था और धर्म के अनुसार शासन करने के लिए बाध्य करता था (जैन, 1995, पृ. 40)। धर्मशास्त्र साहित्य की संख्या 5,000 से अधिक है और इसे तीन प्रमुख श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है :
- **सूत्र** : ये संक्षिप्त और सूत्रबद्ध नियम थे, जो धर्म और आचरण के सिद्धांतों को प्रस्तुत करते थे। सूत्र प्रायः मौखिक परंपरा के माध्यम से प्रसारित किए जाते थे।
- **स्मृति** : स्मृति ग्रंथों में धर्म के आधार पर कानूनों को संहिताबद्ध किया गया। ये ग्रंथ समाज के विभिन्न पहलुओं, जैसे—विवाह, उत्तराधिकार और व्यापार, को नियंत्रित करते थे।
- **निबंध** : ये स्मृति श्लोकों का सार थे, जो विभिन्न दृष्टिकोणों से धर्मशास्त्र की व्याख्या करते थे। निबंध ग्रंथ स्मृतियों के गहन विश्लेषण और टिप्पणियों को प्रस्तुत करते थे (शर्मा, 2001, पृ. 12-14)।

विदुर नीति

धृतराष्ट्र ने विदुर को बुलाया। विदुर ने आदेशानुसार उनसे भेंट की। राजा का हृदय जल रहा था, क्योंकि वे नहीं जानते थे कि सर्वोच्च राजधर्म क्या है। यह व्यवस्था राजा के नैतिक बल, सभ्य प्रजा और न्याय के प्रति उसकी गहन प्रतिबद्धता से परिभाषित होती 'रामराज्य' के आदर्शों पर आधारित थी, जहाँ राजधर्म सर्वोच्च था। यह व्यवस्था राजा के नैतिक बल, सभ्य प्रजा और न्याय के प्रति उसकी गहन प्रतिबद्धता से परिभाषित होती थी। वे इतने व्याकुल थे कि उन्हें नींद भी नहीं आ रही थी। वे शांत भी नहीं थे। वे बहुत विचलित थे। इसलिए उन्होंने विदुर से अनुरोध किया कि वे उन्हें सलाह दें कि उनके लिए क्या अच्छा है। विदुर ने उत्तर में कहा कि जो दुर्बल व्यक्ति किसी बलवान का विरोध करता है या जिसने अपना सारा धन खो दिया है, या जो कामी है या चोर है, उसे नींद नहीं आती। फिर उन्होंने पूछा कि क्या राजा स्वयं को इनमें से किसी एक प्रकार में पाते हैं? तब धृतराष्ट्र ने उनसे कुछ धर्मी और हितकारी वचन कहने की विनती की। तब विदुर ने ज्ञानी और अज्ञानी के स्वभाव के बारे में समझाया और धर्म की महानता का उपदेश दिया।

न्याय व्यवस्था, राज्य-शासन और दंड-नीति पर 'विदुर नीति' के मुख्य विचार से संबंधित कई महत्वपूर्ण सिद्धांत मिलते हैं।

राजा के कर्तव्य और राज्य-शासन : 'विदुर नीति' में कहा गया है कि राजा का परम धर्म अपनी प्रजा का पालन करना और उनकी रक्षा करना है। राजा को अपनी प्रजा के प्रति पिता जैसा व्यवहार करना चाहिए। राजा को ईर्ष्या रहित और गुप्त-रक्षा करने वाले विश्वसनीय व्यक्तियों को ही

अपना मंत्री बनाना चाहिए। विदुर ने धृतराष्ट्र को आलस्य और निद्रा का त्याग करके जागरूक रहने की शिक्षा दी, क्योंकि आलसी राजा का राज्य शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

न्याय और दंड-नीति : विदुर नीति में राजा को क्षमा और दंड, दोनों का संतुलित उपयोग करने की सलाह दी गई है। अत्यधिक क्षमा से लोग राजा को कमजोर समझते हैं और अपराध बढ़ जाते हैं, जबकि अत्यधिक कठोरता से प्रजा राजा से दूर हो जाती है (व्यास, 2017, अध्याय 33-40)।

‘एको धर्मः परमं श्रेयः क्षमैका शान्तिरुत्तमा। विद्वैका परमा तृप्तिरहिंसैका सुखावहा॥’ (विदुर नीति 1.75)

अर्थात्, धर्म ही परम कल्याणकारी है। राजा को हमेशा धर्म के मार्ग पर चलना चाहिए।

न्याय करते समय राजा को निष्पक्ष रहना चाहिए। उसे अपने और पराये, मित्र और शत्रु के प्रति समान भाव रखना चाहिए। राजा को राज्य में चोरी, अनीति और अधर्म का दमन सख्ती से करना चाहिए, ताकि प्रजा भयमुक्त होकर जी सके। राजा का दायित्व है कि वह बलवान के विरोध में आए हुए साधनहीन दुर्बल मनुष्य की रक्षा करे। सामाजिक और व्यक्तिगत नीति, ज्ञान (विद्या) को सबसे बड़ा धन बताया गया है, जो संतोष प्रदान करता है। नारियों को घर की लक्ष्मी और पूजनीया बताया गया है। उनका सम्मान करना और उनकी रक्षा करना राजा के लिए आवश्यक है। ये उपदेश नीति, धर्म और राजधर्म के सिद्धांतों को दर्शाते हैं, जो विदुर ने धृतराष्ट्र को युद्ध से पहले सही मार्ग पर लाने के प्रयास में दिए थे।

महाभारत के उद्योग पर्व में एक श्लोक है—**हिंसा बलमसाधूनां राज्ञा दण्डविधिर्बलम्। शुश्रूषा तु बलं स्त्रीणां क्षमा गुणवतां बलम्॥** (महाभारत, उद्योग पर्व, अध्याय 34, श्लोक 75)

अर्थात्, राजा को हिंसा या दुर्बलता के बजाय, न्यायसंगत दंड को अपनी शक्ति बनाना चाहिए। कानून को सही तरीके से लागू करने से ही राज्य में व्यवस्था बनी रहती है और प्रजा सुरक्षित महसूस करती है।

स्मृतियाँ : कानूनी ग्रंथ

स्मृतियाँ वैदिक काल और उसके बाद के समय में कानूनी और नैतिक मार्गदर्शन के लिए महत्वपूर्ण ग्रंथ थीं। इन ग्रंथों में धर्म के आधार पर कानूनों को संहिताबद्ध किया गया था और इन्हें मौखिक रूप से और बाद में लिखित रूप में प्रसारित किया गया। स्मृतियाँ विवादों को सुलझाने और न्याय प्रशासन के लिए कानूनी मार्गदर्शक के रूप में कार्य करती थीं। इनमें से सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ थे—‘मनुस्मृति’ और ‘याज्ञवल्क्य स्मृति’।

‘मनुस्मृति’

‘मनुस्मृति’ को प्राचीन भारत का सबसे प्रारंभिक और प्रभावशाली कानूनी ग्रंथ माना जाता है। यह ग्रंथ मनु, जो हिंदू परंपरा में मानव जाति के प्रथम पुरुष माने जाते हैं, के नाम पर लिखा गया है। ‘मनुस्मृति’ में जीवन के विभिन्न पहलुओं को नियंत्रित करने वाले कानून निर्धारित किए गए हैं, जिनमें विवाह, उत्तराधिकार, संपत्ति, व्यापार और सामाजिक आचरण शामिल हैं। इस ग्रंथ में धर्म के सिद्धांतों को विस्तार से वर्णित किया गया है और यह समाज के विभिन्न वर्गों, जैसे—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के लिए अलग-अलग कर्तव्यों को परिभाषित करता है।

‘मनुस्मृति’ में कानूनी विवादों को सुलझाने के लिए प्रक्रियाएँ भी दी

गई हैं। उदाहरण के लिए, यह ग्रंथ संपत्ति के विवाद, ऋण और अनुबंध के उल्लंघन जैसे मामलों में दंड और समाधान का वर्णन करता है। ‘मनुस्मृति’ के कानूनों का सार्वजनिक वाचन और शिक्षण के माध्यम से प्रसार किया जाता था, जिसने सभी क्षेत्रों में न्याय के समान अनुप्रयोग को सुनिश्चित किया। ‘मनुस्मृति’ ने न केवल वैदिक काल में, बल्कि बाद के काल में भी भारतीय कानूनी और सामाजिक व्यवस्था को प्रभावित किया। हालाँकि, इस ग्रंथ में कुछ विचार, जैसे महिलाओं और निम्न वर्गों के प्रति भेदभावपूर्ण दृष्टिकोण, आधुनिक संदर्भ में विवादास्पद माने जाते हैं (डब्ल्यू & स्मिथ, 1991, पृ. 34)।

‘याज्ञवल्क्य स्मृति’

‘याज्ञवल्क्य स्मृति’ ‘मनुस्मृति’ के बाद सबसे महत्वपूर्ण और प्रभावशाली स्मृति ग्रंथ है। इस ग्रंथ का नाम वैदिक ऋषि याज्ञवल्क्य के नाम पर रखा गया है, जिन्हें इसका रचयिता माना जाता है, हालाँकि यह संभव है कि यह ग्रंथ उन्हें सम्मान के तौर पर समर्पित किया गया हो। ‘याज्ञवल्क्य स्मृति’ की शैली ‘मनुस्मृति’ की तुलना में अधिक व्यवस्थित और संक्षिप्त है। यह ग्रंथ अनुष्ठान छंद में लिखा गया है, जो इसकी वाक्पटुता और संरचना को और अधिक प्रभावशाली बनाता है। ‘मनुस्मृति’ को छोड़कर, ‘याज्ञवल्क्य स्मृति’ किसी भी अन्य स्मृति से अधिक लोकप्रिय और व्यापक है।

‘याज्ञवल्क्य स्मृति’ में धर्म, कानून और सामाजिक आचरण के सभी पहलुओं को अध्यायों में व्यवस्थित किया गया है। इस ग्रंथ में साक्ष्य (प्रमाण) को पदानुक्रमिक रूप से चित्रित किया गया है, जो वैदिक काल में कानूनी प्रक्रियाओं की जटिलता को दर्शाता है :

- **प्रमाणित दस्तावेज :** यह सबसे उच्च स्तर का साक्ष्य माना गया। यह लिखित अनुबंध या दस्तावेज थे, जो विवादों को सुलझाने में सर्वोच्च महत्व रखते थे।
 - **गवाह :** यदि लिखित दस्तावेज उपलब्ध नहीं थे, तो गवाहों के बयानों को साक्ष्य के रूप में स्वीकार किया जाता था।
 - **अग्निपरीक्षा :** अंतिम उपाय के रूप में, अग्निपरीक्षा जैसी पाँच प्रकार की सत्यापन योग्य गवाही का उपयोग किया जाता था। यह एक प्राचीन प्रथा थी, जिसमें सत्यता को सिद्ध करने के लिए कठिन परीक्षाओं, जैसे—‘आग पर चलना’ से गुजरना पड़ता था।
- ‘याज्ञवल्क्य स्मृति’ में चौदह विद्याओं का उल्लेख किया गया है, जो वैदिक ज्ञान की आधारशिला थीं। इनमें चार वेद (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद), छह वेदांग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद और ज्योतिष), पुराण, न्याय, मीमांसा और धर्मशास्त्र शामिल हैं। याज्ञवल्क्य ने इन विद्याओं को धर्म और ज्ञान के स्रोत के रूप में प्रस्तुत किया। ‘याज्ञवल्क्य स्मृति’ में एक श्लोक में कहा गया है :

पुराण न्यायमीमांसा धर्मशास्त्रांगमिश्रितः।

वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश॥

(‘याज्ञवल्क्य स्मृति’ (आचाराध्याय, श्लोक 1.3)

इस श्लोक का अर्थ है कि पुराण, न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र और वेदांगों सहित वेद, ज्ञान और धर्म के चौदह स्रोत हैं।

‘याज्ञवल्क्य स्मृति’ में सामाजिक और कानूनी सुधारों पर भी ध्यान दिया गया। उदाहरण के लिए, याज्ञवल्क्य ने नियोग (एक प्रथा, जिसमें

विधवा को अपने पति के भाई से संतान उत्पन्न करने की अनुमति थी) की निंदा नहीं की और विधवाओं को संपत्ति के उत्तराधिकार का अधिकार दिया। इसके साथ ही, याज्ञवल्क्य ने जुए को पूरी तरह प्रतिबंधित नहीं किया, बल्कि इसे राज्य के नियंत्रण में लाकर राज्य की आय का हिस्सा बनाया। 'व्यवहाराध्याय' में ऋण, साक्ष्य और विवादों के समाधान के नियम दिए गए हैं।

'याज्ञवल्क्य स्मृति' में धर्म को विस्तार से वर्णित किया गया है। इस ग्रंथ में यह बताया गया है कि धर्म का पालन कौन करेगा, इसे कैसे करना चाहिए और इसके विभिन्न पहलुओं, जैसे—अध्ययन, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ जीवन, पंचयज्ञ, दान, भोजन के नियम, वास्तुशुद्धि, अशौच, श्राद्ध, स्त्री-धर्म, राजधर्म, आत्मनिग्रह और मोक्ष की अवधारणा, को कैसे लागू करना चाहिए। धर्मशास्त्र साहित्य भारतीय जीवनशैली और प्रथाओं में कानून की महत्ता का एक शाश्वत प्रमाण है (डॉनिगर, 1991)।

सभा और समिति : सामाजिक और राजनीतिक संगठन

वैदिक काल में सभा और समिति दो महत्वपूर्ण सामाजिक और राजनीतिक संस्थाएँ थीं, जो समाज के संगठन और शासन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थीं। ये संस्थाएँ वैदिक काल की शासन प्रणाली में लोकतांत्रिक तत्त्वों को दर्शाती थीं और राजा के अधिकारों पर नियंत्रण और संतुलन का कार्य करती थीं।

सभा

सभा को ऋग्वेद में प्रमुखों या कुलीनों की परिषद् के रूप में संदर्भित किया गया है। यह एक विशिष्ट समूह था, जिसमें संभवतः जनजाति के प्रमुख, पुजारी और अन्य प्रभावशाली लोग शामिल होते थे। सभा का मुख्य कार्य जनजाति से संबंधित महत्वपूर्ण चर्चाओं, जैसे—युद्ध, शांति और कानूनी विवादों का समाधान करना था। सभा विशेष रूप से न्यायिक कर्तव्यों से जुड़ी थी और इसका उपयोग कानूनी विवादों को सुलझाने, अपराधियों को दंड देने और जनजाति के बीच कानून और व्यवस्था को बनाए रखने के लिए किया जाता था।

ऋग्वेद में सभा का उल्लेख कई बार किया गया है, जो इसकी महत्वपूर्ण भूमिका को दर्शाता है। सभा में होने वाली चर्चाएँ गंभीर और विचारशील होती थीं और यहाँ लिए गए निर्णय जनजाति के हित में होते थे। सभा में राजा भी भाग लेता था, लेकिन वह सभा के निर्णयों से बाँधा होता था। यह दर्शाता है कि वैदिक काल में राजा की शक्ति असीमित नहीं थी और सभा राजा के अधिकारों पर एक महत्वपूर्ण नियंत्रण के रूप में कार्य करती थी।

समिति

समिति सभा से भिन्न थी, क्योंकि यह एक बड़ी और अधिक समावेशी सभा थी। समिति में पूरी जनजाति, जिसमें आम लोग भी शामिल होते थे, भाग लेती थी। यह सभा युद्ध, शांति और राजा के चुनाव जैसे महत्वपूर्ण मामलों पर चर्चा करने के लिए आयोजित की जाती थी। समिति का स्वरूप अधिक लोकतांत्रिक था, क्योंकि इसमें जनजाति की सामूहिक इच्छा को व्यक्त करने का अवसर होता था। समिति में आम लोगों की भागीदारी इस बात का संकेत है कि वैदिक काल में सामाजिक और राजनीतिक निर्णयों में व्यापक सहभागिता को महत्व दिया जाता था। समिति सामाजिक और

धार्मिक आयोजनों में भी भाग लेती थी। इसमें मंदिर के पुजारी और आम लोग दोनों शामिल होते थे और यह सामाजिक एकता को बढ़ावा देती थी। समिति में लिए गए निर्णय जनजाति के सभी सदस्यों के लिए बाध्यकारी होते थे और यह जनजाति की एकता और सामूहिक निर्णय लेने की प्रक्रिया को दर्शाता था।

सभा और समिति का महत्त्व

ऋग्वेद में सभा और समिति का बार-बार उल्लेख किया गया है, जो उनकी शक्ति और महत्त्व को दर्शाता है। ये संस्थाएँ वैदिक काल में सरकार का एक महत्वपूर्ण हिस्सा थीं और राजा के अधिकारों पर आवश्यक नियंत्रण और संतुलन के रूप में कार्य करती थीं। सभा और समिति ने यह सुनिश्चित किया कि शासन प्रणाली में सामूहिक सहभागिता और धर्म के सिद्धांतों का पालन हो।

उत्तर वैदिक काल (लगभग 1000-600 ई.पू.) में वैदिक समाज में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन देखे गए। इस काल में साम्राज्यवाद की अवधारणा उभरी और राजा की शक्ति में वृद्धि हुई। साथ ही, न्याय व्यवस्था में भी विकास हुआ और सामाजिक संगठन अधिक जटिल हो गया। इस काल के प्रमुख ग्रंथ, जैसे अथर्ववेद, यजुर्वेद और उपनिषद्, उत्तर वैदिक काल की सामाजिक और राजनीतिक संरचना का वर्णन करते हैं।

साम्राज्यवाद और राजा की भूमिका

उत्तर वैदिक काल में साम्राज्यवाद की अवधारणा स्पष्ट रूप से उभरी। इस काल में राजा को अधिराज, राजाधिराज और सम्राट जैसे शीर्षकों से संबोधित किया जाने लगा, जो उनकी बढ़ती शक्ति और प्रभाव को दर्शाता है। राजा की स्थिति पहले की तुलना में अधिक केंद्रीकृत हो गई थी और वह साम्राज्य के सर्वोच्च शासक के रूप में उभरा। हालाँकि, राजा को भी धर्म का पालन करना अनिवार्य था, क्योंकि धर्म को देश का वास्तविक संरभु माना जाता था। राजा का कर्तव्य था कि वह धर्म को लागू करे और अपनी प्रजा की रक्षा करे। राजा को अपने मंत्रियों और सलाहकारों पर निर्भर रहना पड़ता था, जो उसे शासन में सहायता प्रदान करते थे। इस काल में सभा और समिति की भूमिका धीरे-धीरे कम हो गई और राजा की शक्ति में वृद्धि हुई। हालाँकि, अथर्ववेद में एक भजन इस बात की पुष्टि करता है कि राजा अभी भी सभा और समिति की सलाह पर विचार करता था (शर्मा, 1983, पृ. 104)।

अथर्ववेद के सप्तम कांड में 12वें सूक्त का प्रथम मंत्र है :

सभा च मा समितिश्चावतां प्राजापतेर्दुहितरौ तथ्यने।

येन संगच्छाम उप एमए एष शिक्षाचारु वडानी पिता मण्डलियों में।

(अथर्ववेद, 7.12.1)

यह श्लोक सभा (सामान्य सभा या न्यायिक परिषद्) और समिति (राजनीतिक सभा या विधायी सभा) को प्रजापति की पुत्रियों के रूप में चित्रित करता है, जो वैदिक समाज की लोकतांत्रिक संस्थाओं का प्रतीक हैं। यह प्रार्थना करता है कि इन संस्थाओं के माध्यम से समाज एकजुट और सद्भावपूर्ण बने। अथर्ववेद (लगभग 1200-1000 ई.पू.) वैदिक साहित्य का चौथा वेद है, जो दैनिक जीवन, चिकित्सा, शांति और सामाजिक सद्भाव पर केंद्रित है। यह सूक्त (7.12) सामूहिक एकता और शांति की कामना से संबंधित है, जहाँ सभा और समिति को दिव्य उत्पत्ति प्रदान की गई है, ताकि

उनका महत्त्व रेखांकित हो। वैदिक काल में सभा पुरुषों की सलाहकारी/न्यायिक सभा थी (ग्राम स्तर पर), जबकि समिति अधिक व्यापक जन-सभा थी (राजा के चुनाव, युद्ध निर्णय आदि के लिए)। राजा इन दोनों का सम्मान करता था और ये संस्थाएँ आर्य समाज की प्रारंभिक लोकतांत्रिक व्यवस्था को दर्शाती हैं। यह श्लोक बाद के ग्रंथों (जैसे शतपथ ब्राह्मण) में भी उद्धृत है, जहाँ इन्हें राज्य-व्यवस्था का आधार माना गया। आधुनिक संदर्भ में, भारतीय संविधान सभा को इनकी प्रेरणा से जोड़ा जाता है।

न्याय व्यवस्था का विकास

उत्तर वैदिक काल में न्याय व्यवस्था में महत्वपूर्ण विकास हुआ। यह काल प्रारंभिक वैदिक काल की 'आँख के बदले आँख और दाँत के बदले दाँत' जैसी आदिम व्यवस्था से बहुत आगे बढ़ चुका था। इस काल में न्यायिक प्रणाली अधिक संरचित और परिष्कृत हो गई थी। अपराधियों को दंड देने के लिए व्यवस्थित नियम बनाए गए थे। उदाहरण के लिए, अभियुक्तों को 100 गायों (सेतगया) की कीमत के बराबर दंड देकर छोड़ दिया जाता था। यह दंड-प्रणाली अपराध की गंभीरता और सामाजिक स्थिति के आधार पर निर्धारित की जाती थी। गाँवों में न्यायाधीश, जिन्हें ग्राम्यवादीन कहा जाता था, स्थानीय स्तर पर विवादों का समाधान करते थे। ये ग्राम्यवादीन गाँव के प्रमुख या बुजुर्ग होते थे, जो धर्म और स्मृति ग्रंथों के आधार पर निर्णय लेते थे। इस काल में राजा का न्यायालय सर्वोच्च न्यायिक संस्था के रूप में कार्य करता था, जहाँ गंभीर मामलों और अपीलों की सुनवाई होती थी। उत्तर वैदिक काल में एक सुचारू रूप से चलने वाली पुलिस व्यवस्था भी थी। ऋग्वेद में जीवग्रीभ (जो संभवतः पुलिस या सुरक्षा बलों का प्रभारी था) और उपनिषदों में उग्र (जो एक सैन्य या प्रशासनिक अधिकारी था) का उल्लेख है। ये संदर्भ इस बात की पुष्टि करते हैं कि उत्तर वैदिक काल में कानून और व्यवस्था को बनाए रखने के लिए एक व्यवस्थित पुलिस बल मौजूद था।

बृहस्पति, नारद और मनु जैसे विधि निर्माताओं ने इस काल में न्याय प्रशासन के लिए विस्तृत नियम बनाए। इन नियमों में न्यायाधीशों के लिए दिशा-निर्देश शामिल थे, जैसे कि विवादों को निष्पक्ष रूप से सुलझाना और साक्ष्य के आधार पर निर्णय लेना। इसके साथ ही, कानून तोड़ने वाले अधिकारियों को दंडित करने के उपाय भी किए गए थे, जो यह सुनिश्चित करते थे कि प्रशासनिक शक्ति का दुरुपयोग न हो।

सामाजिक और कानूनी असमानता

उत्तर वैदिक काल में जाति व्यवस्था का विकास हुआ, जिसके परिणामस्वरूप कानूनी असमानता बढ़ी। इस काल में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जैसे वर्गों की स्थिति स्पष्ट रूप से परिभाषित हो गई थी। कानूनी दंड और अधिकार वर्ण के आधार पर भिन्न थे। उदाहरण के लिए, एक ब्राह्मण को अपराध के लिए हल्का दंड दिया जाता था, जबकि एक शूद्र को उसी अपराध के लिए कठोर दंड का सामना करना पड़ता था। यह असमानता सामाजिक संरचना में गहरे रूप से समाई हुई थी और धर्मशास्त्र ग्रंथों द्वारा समर्थित थी।

शहरों का विकास और प्रशासन

उत्तर वैदिक काल में भारत में कई शहरों का विकास हुआ, जैसे कि

हस्तिनापुर, कौशांबी और उज्जैन। इन शहरों में अपनी स्वयं की पुलिस, न्यायाधीश और प्रशासनिक कार्यालय थे। यह काल वैदिक युग से भिन्न था, क्योंकि इस काल में एक औपचारिक न्याय प्रशासन देखा गया। शहरों में स्थानीय स्तर पर विवादों को सुलझाने के लिए विभिन्न प्रकार के न्यायिक निकाय थे। राजा का न्यायालय सर्वोच्च न्यायिक संस्था के रूप में कार्य करता था, जहाँ गंभीर अपराधों और अपीलों की सुनवाई होती थी। इस काल में पुलिस व्यवस्था भी अधिक संगठित हो गई थी। पुलिस बल का कार्य कानून और व्यवस्था को बनाए रखना, अपराधियों को पकड़ना और राजा के आदेशों को लागू करना था। यह दर्शाता है कि उत्तर वैदिक काल में प्रशासनिक और कानूनी प्रणाली में काफी प्रगति हुई थी।

न्यायालयों का पदानुक्रम

प्राचीन भारत में न्यायालयों का एक सुसंगठित पदानुक्रम था, जो बृहस्पति स्मृति और कात्यायन स्मृति में वर्णित है। यह पदानुक्रम सामाजिक और कानूनी विवादों को कुशलतापूर्वक हल करने के लिए डिज़ाइन किया गया था।

1. कुल (परिवार परिषद्) :

कुल परिवार के बुजुर्गों और विद्वानों का समूह था, जो पारिवारिक विवादों, जैसे उत्तराधिकार, विवाह या संपत्ति विभाजन, को हल करता था। यह सबसे निचला स्तर था, जो सामुदायिक विश्वास और परंपराओं पर आधारित था।

2. श्रेणी (व्यापार परिषद्) :

श्रेणी व्यापारियों, शिल्पकारों और पेशेवरों की सभा थी, जो व्यापारिक विवादों, जैसे अनुबंध उल्लंघन या गुणवत्ता विवाद, को हल करती थी। यह परिषद् निष्पक्षता और व्यावसायिक नैतिकता को सुनिश्चित करती थी।

3. गण (गाँव सभा) :

गण गाँव के बुजुर्गों और सम्मानित व्यक्तियों की सभा थी, जो स्थानीय विवादों, जैसे सीमा विवाद या छोटे अपराध, को हल करती थी। यह सामुदायिक सहमति और धर्म पर आधारित थी।

4. अधिकृत (राजा द्वारा नियुक्त न्यायालय)

ये राजा द्वारा स्थापित औपचारिक न्यायालय थे, जिनमें तीन प्रकार शामिल थे :

- **प्रतिष्ठित** : गाँव या कस्बे में स्थायी न्यायालय।
- **अप्रतिष्ठित** : विशेष मामलों के लिए अस्थायी या मोबाइल न्यायालय।
- **मुद्रिता** : शाही मुहर के साथ उच्च-स्तरीय न्यायालय।

इन न्यायालयों में सूत्र और स्मृति में पारंगत न्यायाधीश नियुक्त किए जाते थे।

5. ससिता (राजा का दरबार) :

यह राज्य का सबसे बड़ा न्यायालय था, जिसकी अध्यक्षता राजा करता था। राजा की सहायता के लिए प्रद्विवक (मुख्य न्यायाधीश) और सभ्य (न्यायाधीश समूह) होते थे। यह गंभीर अपराधों और अपीलों के लिए सर्वोच्च मंच था।

6. नृप (स्वयं राजा) :

राजा न्यायिक प्रणाली का सर्वोच्च अधिकारी था, जो धर्म के सिद्धांतों द्वारा निर्देशित होता था। वाचस्पति मिश्र के अनुसार, प्रत्येक उच्च

न्यायालय का निर्णय निचले न्यायालय से अधिक बाध्यकारी था, क्योंकि यह अधिक ज्ञान और अध्ययन पर आधारित होता था।

मनुस्मृति में एक श्लोक है : “न्यायेन संनादति सर्व, यद् धर्मेन समृद्धति”। (मनुस्मृति, अध्याय 7, श्लोक 99)

इस का अर्थ है कि “न्याय के माध्यम से सर्व संनादति (गूँजता) है, जो धर्म के साथ समृद्ध होता है।”

यह उपदेश गुरुकुल से विदा लेने वाले शिष्य को गुरु द्वारा दिया जाता है, जो जीवन के लिए नैतिक आधार सिखाता है। तैत्तिरीय उपनिषद् (लगभग 6ठी-5वीं शताब्दी ई.पू.) वैदिक शिक्षा का सार है, जहाँ ‘सत्यं वद’ (सत्य बोलो) और ‘धर्मं चर’ (धर्म का पालन करो) के साथ स्वाध्याय (आत्म-अध्ययन) पर बल दिया गया है। ‘संनादति’ शब्द यहाँ धर्म की विजयी गूँज को इंगित करता है, जैसे जंगल में शेर की दहाड़ सबको कंपित कर देती है। यह शिष्य को समाज में प्रवेश के लिए तैयार करता है, ताकि वह न्यायपूर्ण जीवन से विश्व की समृद्धि में योगदान दे। यह याज्ञवल्क्य स्मृति के ‘न्याय’ विद्या-स्थान से भी जुड़ता है, जहाँ न्याय धर्म का आधार है (मिश्रा, 2015)।

धर्मशास्त्र प्राचीन भारत का कानूनी और नैतिक संग्रह था, जो जीवन के हर पहलू विवाह, उत्तराधिकार, व्यापार और अपराध को नियंत्रित करता था। यह तीन श्रेणियों में विभाजित था :

1. सूत्र : संक्षिप्त नियम और सिद्धांत।
2. स्मृति : विस्तृत कानूनी ग्रंथ, जैसे मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य स्मृति।
3. निबंध : स्मृतियों का सार और व्याख्या।

धर्मशास्त्र ने यह सुनिश्चित किया कि न्यायिक संचार धर्म और सत्य पर आधारित हो। यह सामाजिक कर्तव्यों को प्राथमिकता देता था, जैसे कि राजा का अपनी प्रजा की रक्षा करने का दायित्व।

मनुस्मृति

मनुस्मृति सबसे प्रारंभिक और प्रभावशाली कानूनी ग्रंथों में से एक है, जो सामाजिक और कानूनी नियमों को संहिताबद्ध करता है। यह विवाह, संपत्ति और अपराधों जैसे विषयों को कवर करता है। मनुस्मृति के नियमों का संचार सार्वजनिक वाचन और शिक्षण के माध्यम से होता था, जिससे समाज में एकरूपता और नैतिकता बनी रहती थी।

याज्ञवल्क्य स्मृति

‘याज्ञवल्क्य स्मृति’ ‘मनुस्मृति’ से अधिक व्यवस्थित और व्यापक है। यह अनुष्टुप छंद में रचित है और तीन मुख्य अध्यायों—आचार, व्यवहार और प्रायश्चित—में विभाजित है। यह साक्ष्य के पदानुक्रम को परिभाषित करता है :

1. लिखित दस्तावेज
2. गवाह
3. अग्निपरीक्षा (सत्यापन की पाँच विधियाँ)

‘याज्ञवल्क्य स्मृति’ में एक श्लोक है “पुराणं न्यायमीमांसा धर्मशास्त्राङ्गमिश्रितः। वेदाः स्थानानि विद्याना धर्मस्य च चतुर्दश।” (याज्ञवल्क्य स्मृति, अध्याय 1, श्लोक 294)

‘याज्ञवल्क्य स्मृति’ ने विधवाओं को संपत्ति के अधिकार प्रदान किए और जुए को राज्य के नियंत्रण में लाकर आय का स्रोत बनाया। यह ग्रंथ

धर्म के व्यापक पहलू ब्रह्मचर्य, गृहस्थ धर्म, पंचयज्ञ, श्राद्ध और मोक्ष हैं। याज्ञवल्क्य स्मृति का यह उपोद्घात प्रकरण ऋषियों द्वारा याज्ञवल्क्य से वर्णाश्रम-धर्म (वर्णों और आश्रमों के कर्तव्य) पर प्रश्न के उत्तर के रूप में आता है। यहाँ धर्म को प्राकृतिक व्यवस्था से जोड़ते हुए बताया गया है कि ये 14 विद्या-स्थान धर्म के मूल स्रोत हैं। यह स्मृति (लगभग 300-500 ईस्वी) धर्मशास्त्र परंपरा का महत्वपूर्ण ग्रंथ है, जो ‘मनुस्मृति’ के बाद रचा गया और जिसने मध्यकालीन भारतीय न्याय व्यवस्था पर गहरा प्रभाव डाला। यह श्लोक भारतीय ज्ञान प्रणाली की संरचना को दर्शाता है, जहाँ वेद मुख्य हैं, वेदांग सहायक और अन्य दर्शन ग्रंथ पूरक (जोशी, 2017, याज्ञवल्क्य स्मृति, 1.3)।

उत्तर वैदिक काल : औपचारिक न्याय प्रशासन

उत्तर वैदिक काल में साम्राज्यवाद की अवधारणा उभरी, जिसमें ‘अधिराज’, ‘राजाधिराज’ और ‘सम्राट’ जैसे शब्द प्रचलित हुए। राजा को धर्म का पालक माना जाता था और वह अपने मंत्रियों और सलाहकारों पर निर्भर था। न्याय प्रणाली ‘आँख के बदले आँख’ से आगे बढ़कर अधिक परिष्कृत हो गई। दंड में जुर्माना (जैसे 100 गायों का मुआवजा) और कारावास आदि शामिल थे। गाँव स्तर पर ग्राम्यवादीन (गाँव न्यायाधीश) छोटे विवादों को हल करते थे।

मौर्य काल : संगठित न्यायिक प्रणाली

मौर्य काल में न्यायिक प्रणाली अत्यधिक संगठित थी, जैसा कि कौटिल्य के ‘अर्थशास्त्र’ और मेगस्थनीज की ‘इंडिका’ में वर्णित है। मेगस्थनीज ने मौर्य साम्राज्य में चोरी और डकैती की दुर्लभता का उल्लेख किया, जो सामाजिक ईमानदारी और कठोर न्यायिक व्यवस्था को दर्शाता है (कौटिल्य, 2005, पृ 120 .; मेगस्थनीज, 1972, पृ 85 .)।

मौर्य न्यायालय दो प्रकार के थे :

- धर्मस्थीय : दीवानी मामलों के लिए।
- कंटकशोधन : फौजदारी मामलों के लिए।

पाटलिपुत्र में राजा और मुख्य न्यायाधीश के नेतृत्व में सर्वोच्च न्यायालय था, जिसमें चार-पाँच सहायक न्यायाधीश होते थे। स्थानीय स्तर पर ग्राम सभाएँ और नगरपालिका न्यायालय कार्य करते थे, जिनमें तीन न्यायाधीश और तीन आयुक्त होते थे। दंड में जुर्माना, कारावास, अंग-भंग और मृत्युदंड शामिल थे।

निष्कर्ष

धर्मशास्त्र, मनुस्मृति, और याज्ञवल्क्य स्मृति जैसे ग्रंथों ने कानून और आचरण के नियमों को संहिताबद्ध किया और न्याय प्रशासन को निर्देशित किया। सभा और समिति वैदिक काल की महत्वपूर्ण संस्थाएँ थीं, जो लोकतांत्रिक तत्त्वों और राजा के अधिकारों पर नियंत्रण को दर्शाती थीं। उत्तर वैदिक काल में साम्राज्यवाद का उदय हुआ और राजा की शक्ति में वृद्धि हुई। इस काल में सभा और समिति का प्रभाव कम हुआ, लेकिन न्याय व्यवस्था में महत्वपूर्ण प्रगति हुई। पुलिस बल, स्थानीय न्यायाधीश और शहरों में प्रशासनिक कार्यालयों का विकास इस काल की विशेषता था। हालाँकि, जाति व्यवस्था के कारण कानूनी असमानता भी बढ़ी। वैदिक और उत्तर वैदिक काल ने भारत की कानूनी

और सामाजिक संरचना को आकार दिया और इसकी परंपराएँ बाद के काल में भी प्रभावशाली रहीं। न्यायिक संचार प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था की रीढ़ था, जो धर्म, सत्य और ऋत के सिद्धांतों पर आधारित था। सभा, समिति, धर्मशास्त्र और न्यायालयों ने कानून और व्यवस्था को बनाए रखा, विवादों को हल किया और सामाजिक सद्भाव को सुदृढ़ किया। 'मनुस्मृति' और 'याज्ञवल्क्य स्मृति' जैसे ग्रंथों ने कानूनी और नैतिक मार्गदर्शन प्रदान किया, जबकि मौर्य काल की संगठित प्रणालियों ने न्यायिक संचार को औपचारिक और व्यवस्थित बनाया। यह विरासत आधुनिक भारत की न्यायिक प्रथाओं में जीवित है, जो संचार के स्थायी महत्व और प्राचीन भारतीय ज्ञान की प्रासंगिकता को दर्शाती है। आज प्राचीन भारतीय विधि ग्रंथ प्रत्यक्ष रूप से लागू कानून नहीं हैं, लेकिन वे विधि इतिहास, हिंदू न्यायशास्त्र और भारतीय राजनीतिक विचार के अध्ययन में अत्यंत महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में जीवित हैं। समकालीन 'भारतीय न्यायशास्त्र' एक ऐसा न्याय मॉडल गढ़ सकता है, जो पश्चिमी और भारतीय दोनों परंपराओं का संतुलित मिश्रण हो और जाति, लिंग या धर्म के आधार पर किसी भी प्रकार के भेदभाव को स्वीकार न करे। पंचायती राज, लोक अदालत, मध्यस्थता और सुलह जैसी परंपरागत संस्थाओं को आधुनिक रूप देकर न्याय व्यवस्था को आसान बनाया जा सकता है।

संदर्भ सूची

- अय्यर, के. बालसुब्रमण्यम. (1982). *कन्सेप्ट ऑफ़ धर्म इन एशियंट इंडिया*. दिल्ली : मुंशीराम मनोहरलाल प्रकाशन.
- आल्टेकर, ए. एस. (1999). *प्राचीन भारत में राज्य और शासन* (द्वितीय संस्करण). दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास.
- आल्टेकर, ए. एस. (1962). *स्टेट एंड गवर्नमेंट इन एशियंट इंडिया*. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास.
- आल्टेकर, ए. एस. (1962). *स्टेट एंड गवर्नमेंट इन एशियंट इंडिया*. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास : पृ 73
- आल्टेकर, ए. एस. (1962). *स्टेट एंड गवर्नमेंट इन एशियंट इंडिया*. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास, पृ. 72.
- कौटिल्य. (2005). *अर्थशास्त्र* (राधाकृष्ण शर्मा, संपादक). वाराणसी : चौखंबा संस्कृत सीरीज, पृ. 120.
- जैन, एस. सी. (1995). *प्राचीन भारतीय समाज और धर्मशास्त्र*. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास : पृ 35.
- जैन, एस. सी. (1995). *प्राचीन भारतीय समाज और धर्मशास्त्र*. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास : पृ 40 .
- जोशी, आर. (2017). *याज्ञवल्क्य स्मृति*, 1.3, दिल्ली : संस्कृत साहित्य संस्थान.
- डॉनिगर, डब्ल्यू. & स्मिथ, बी. के. (1991). *द लॉज ऑफ़ मनु*. न्यू दिल्ली : पेंगुइन बुक्स, पृ. 150.

- डॉनिगर, डब्ल्यू. & स्मिथ, बी. के. (अनु. एवं संपा.). (1991). *द लॉज ऑफ़ मनु*. न्यूयॉर्क : पेंगुइन बुक्स, पृ. 34.
- मनु. (2005). *मनुस्मृति* (पं. सत्यनारायण शास्त्री, सम्पा.). वाराणसी : चौखंबा संस्कृत सीरीज.
- मिश्रा, आर.एन. (2015). *बृहस्पति स्मृति*. 1.1.10, जयपुर : संस्कृति प्रकाशन.
- मिश्रा, आर.के. (2000). *धर्मशास्त्र: कानूनी और नैतिक दृष्टिकोण*. वाराणसी: चौखंबा संस्कृत सीरीज, पृ. 22–24.
- मेगस्थनीज. (1972). *इंडिका* (आर. टॉमसन, अनुवादक). दिल्ली : इंडियन पब्लिशिंग हाउस, पृ. 85.
- व्यास, कृष्ण. द्वैपायन. (2017). *महाभारत* (उद्योगपर्व, अध्याय 33–40). गोरखपुर : गीता प्रेस.
- शर्मा, आर. के. (2024). *प्राचीन भारत में न्यायिक व्यवस्था और धर्म का स्रोत*. विद्या प्रकाशन, पृष्ठ 47.
- शर्मा, आर.के. (2005). *तैत्तिरीय उपनिषद्*, 1.11.1, सं. पं., दिल्ली : चौखंबा संस्कृत प्रतिष्ठान.
- शर्मा, आर. के. (2020). *प्राचीन में न्यायिक प्रणालियाँ : विकास और संचार*. नई दिल्ली: एकेडमिक प्रेस, (पृ. 45).
- शर्मा, आर.के. (2005). *अथर्ववेद*. 7.12.1, सं., दिल्ली : चौखंबा संस्कृत प्रतिष्ठान.
- शर्मा, आर.के. (2005). *अथर्ववेद*, 7.12.2, सं., दिल्ली : चौखंबा संस्कृत प्रतिष्ठान.
- शर्मा, आर.एस. (1999). *एस्पेक्ट्स ऑफ़ पॉलिटिकल आइडियाज एंड इंस्टिट्यूशंस इन एशियंट इंडिया*. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास.
- शर्मा, आर.एस. (1999). *एस्पेक्ट्स ऑफ़ पॉलिटिकल आइडियाज एंड इंस्टिट्यूशन्स इन एशियंट इंडिया*. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास.
- शर्मा, आर.एस. (1999). *एस्पेक्ट्स ऑफ़ पॉलिटिकल आइडियाज एंड इंस्टिट्यूशन्स इन एशियंट इंडिया*. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास, पृ. 50.
- शास्त्री, एल.एन. (2015). *ऋग्वेद*, दिल्ली : श्रीवर्धन प्रकाशन.
- शास्त्री, एल.एन. (2015). *ऋग्वेद*, 10.90.2, सं. पं., दिल्ली : श्रीवर्धन प्रकाशन.
- शास्त्री, एल.एन. (2015). *ऋग्वेद*, 7.104.12, सं., दिल्ली : श्रीवर्धन प्रकाशन.
- शर्मा, एल.डी. (2008). *मनुस्मृति*, 8.168, वाराणसी : चौखंबा संस्कृत सीरीज.
- शर्मा, आर.के. (2001). *धर्मशास्त्र और प्राचीन भारतीय कानून*. दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास पृ 124.
- शर्मा, आर.एस. (1983). *मैटेरियल कल्चर एंड सोशल फॉर्मेशंस इन एशियंट इंडिया*. दिल्ली : मैकमिलन पृ. 104.



संचार की आधुनिक चुनौतियाँ और गांधी का संप्रेषण दृष्टिकोण

डॉ. देशराज वर्मा¹

सारांश

संचार को मानव समाज की एक मूलभूत सामाजिक प्रक्रिया मानते हुए यह अध्ययन औपनिवेशिक भारत में संप्रेषण पर ब्रिटिश सत्ता द्वारा लगाए गए प्रतिबंधों, सेंसरशिप, प्रेस एक्ट, भाषा-नीति और औपनिवेशिक दमन के कारण उत्पन्न संचार-संकट को रेखांकित करता है। यह शोध-अध्ययन दर्शाता है कि उपनिवेशवाद ने किस प्रकार भाषा, शिक्षा, प्रेस और समाचार-पत्रों को नियंत्रित करके जनमत की आवाज को दबाने का प्रयास किया। इसी पृष्ठभूमि में महात्मा गांधी का संचार-दृष्टिकोण और उनकी पत्रकारिता एक वैकल्पिक, नैतिक और जनोन्मुख मॉडल के रूप में उभरकर सामने आती है। गांधी ने 'इंडियन ओपिनियन', 'यंग इंडिया', 'नवजीवन' और 'हरिजन' जैसे पत्रों के माध्यम से सत्याग्रह, अहिंसा और सामाजिक सुधार के सिद्धांतों पर आधारित पत्रकारिता की अनूठी परंपरा स्थापित की। इस अध्ययन में गांधी के संप्रेषण के प्रमुख तत्वों—सत्यनिष्ठता, संयम, आत्म-अनुशासन, वस्तुनिष्ठता, भाषाई सरलता और जनहित—का विस्तृत विश्लेषण किया गया है। गांधी ने औपनिवेशिक कानूनों, प्रेस सेंसरशिप, आर्थिक असुविधाओं और राजनीतिक दमन के बावजूद पत्रकारिता को सेवा और सत्य के कार्य के रूप में अपनाया। शोध-अध्ययन में वर्तमान समय की संचार चुनौतियों—फेक न्यूज, पेड न्यूज, एजेंडा सेटिंग, बहुराष्ट्रीय मीडिया-स्वामित्व, सोशल मीडिया की अनियमितता, जनमत-प्रबंधन और पत्रकारों की सुरक्षा—का विश्लेषण किया गया है जो यह दर्शाता है कि संचार की आज की समस्याएँ भी शासन, पूँजी और तकनीक के बढ़ते दबाव से जुड़ी हैं। निष्कर्षतः, अध्ययन यह सिद्ध करता है कि गांधी की नैतिक संप्रेषण-दृष्टि, सत्य-अहिंसा पर आधारित पत्रकारिता और जनसंचार में संयम आज के डिजिटल और राजनीतिक रूप से जटिल संचार-परिदृश्य में भी अत्यंत प्रासंगिक हैं। गांधी की संप्रेषण-नैतिकता आज की मीडिया अविश्वसनीयता, सूचना-अराजकता और भ्रामक समाचारों की चुनौती का प्रभावी समाधान प्रस्तुत करती है।

संकेत शब्द : संचार, औपनिवेशिक काल, प्रेस सेंसरशिप, नैतिक संप्रेषण, जनमत निर्माण, फेक न्यूज, पेड न्यूज, एजेंडा सेटिंग, सोशल मीडिया, मीडिया नैतिकता।

प्रस्तावना

संचार से आशय अपने भाव, विचार, संदेश, सूचना को दूसरों तक पहुँचाना और अपने अनुभवों का परस्पर आदान-प्रदान करना है। संचार एक द्विमार्गी प्रक्रिया है, जिसके लिए आवश्यक है कि यह संबंधित व्यक्तियों तक इस अर्थ में पहुँचे जिस अर्थ में संप्रेषणकर्ता ने अपने विचारों को भेजा है। मानव के सामाजिक जीवन और उसकी प्रगति में संचार की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। संचार एक गतिशील मानसिक प्रक्रिया है। यह सामाजिक प्रक्रिया भी है, क्योंकि इसके लिए समाज का होना आवश्यक है। इससे मनुष्य की पहचान और रिश्ते बनते हैं। विद्वानों का मानना है कि संचार ही समाज है, जिसमें संचार हुआ वही समाज बना अर्थात् संचार के बिना सामाजिक जीवन की कल्पना करना असंभव है। मानव जीवन में संचार के चार प्रकार मौखिक, अशाब्दिक, लिखित और दृश्य संचार है। संचार या संप्रेषण के इतिहास को क्लासिकल सोशल साइंस में विचारधारा के रूप में चिह्नित किया गया है। संप्रेषण के विकास के इतिहास को तीन भागों में बाँटकर देखा गया है। पहले चरण में स्ट्रक्चरल ट्रांसफॉर्मेशन ऑफ सोसाइटी है, जिसमें पब्लिक स्फ़ेयर सत्ता का टूल बनता जा रहा है। दूसरे चरण में हेराल्ड इनिश और मार्शल मैक्लुहान का काल आता है। इसमें साम्राज्यों के इतिहास के आधार पर चर्चा की गई है। संप्रेषण से साम्राज्य का चरित्र उजागर होता है। कनाडा स्कूल के सिद्धांतकारों द्वारा यह सिद्धांत प्रतिपादित किया गया है। तीसरा चरण हरमनटीज का युग है, जो उत्तर आधुनिक प्रभाव का युग माना जाता है। इसमें एजेंडा सेटिंग, पब्लिक ऑपिनियन, मीडिया एजेंडा, जनमत निर्माण, जनमत परिवर्तन तथा नॉलेज गैप की चर्चा हुई है।

शोध विधि

शोध पत्र में जानकारी एकत्र करने और उसका अध्ययन करने के लिए गुणात्मक, ऐतिहासिक, विश्लेषणात्मक और तुलनात्मक विधियाँ प्रयोग की गई हैं। ऐतिहासिक अध्ययन विधि में औपनिवेशिक काल में संचार की स्थिति, प्रेस पर नियंत्रण, गांधी की पत्रकारिता और उस समय के सामाजिक वातावरण का अध्ययन इतिहास के आधार पर किया गया है। पुस्तकालयीय अध्ययन विधि में अधिकांश सामग्री पुस्तकों, शोध-पत्रों, जर्नलों, पत्रिकाओं और गांधी वाङ्मय से ली गई है। गांधी के लेख, भाषण और पत्रों का भी अध्ययन किया गया। तुलनात्मक विधि के अंतर्गत दो स्थितियों की तुलना की गई—औपनिवेशिक काल की संचार चुनौतियाँ और वर्तमान समय की संचार चुनौतियाँ। इससे यह पता लगाया गया कि गांधी के विचार आज भी कैसे उपयोगी हो सकते हैं।

औपनिवेशिक काल में संचार की चुनौतियाँ

यह सर्वविदित है कि विभिन्न कालों में समय के साथ-साथ उसकी परिस्थितियाँ भी भिन्न हो जाती हैं। इस प्रकार संचार की चुनौतियाँ भी काल और परिस्थितियों के आधार पर भिन्न-भिन्न होती हैं। भारत में औपनिवेशिक काल अर्थात् आजादी के पहले और स्वतंत्रता काल अर्थात् आजादी के बाद के काल में काल और परिस्थितियाँ बदलने से संचार की चुनौतिया बदली हैं। स्वतंत्रता से पूर्व देश ब्रिटिश उपनिवेशवादियों के आधिपत्य में था। ब्रिटिश एक व्यापारी के रूप में भारत आए थे। ब्रिटिश साम्राज्यवादियों का एकमात्र लक्ष्य भारत का आर्थिक शोषण करना था। औपनिवेशिक काल में संचार की सबसे बड़ी चुनौती विदेशी शासन

था, जो किसी भी तरह से भारत का आर्थिक शोषण करना चाहता था। संसाधनों और पूँजी की लूट के इस काल में उपनिवेशवादियों ने अपनी सत्ता तथा आर्थिक लालसा को लंबे समय तक कायम रखने के लिए लोगों की आवाज (जनमत की आवाज) को दबाया।

औपनिवेशिक काल में भाषा भी संचार की एक प्रमुख चुनौती थी। अँग्रेज भारतीयों को अँग्रेजी माध्यम में ही शिक्षा देना चाहते थे। उन्होंने भारतीय शिक्षा पद्धति और भाषा की उपेक्षा की। मैकाले का मानना था कि “यूरोप के एक अच्छे पुस्तकालय की एक अकेली अलमारी भारत और अरब के पूरे मुल्क के ज्ञान के समान थी, इसलिए उन्होंने भारतवासियों के लिए यूरोपीय साहित्य और विज्ञान की शिक्षा का समर्थन किया, जो अँग्रेजी भाषा के माध्यम से दी जाए” (बंदोपाध्याय, 2017, पृष्ठ 141-42)। उनका तर्क था कि “ऐसी शिक्षा हमारे और हमारे द्वारा शासित करोड़ों व्यक्तियों के बीच में ऐसे व्यक्तियों का एक वर्ग पैदा करेगी, जो खून और रंग में भारतीय मगर रुचियों और विचारों में, नैतिकता और बुद्धि में, अँग्रेज होंगे” (घोष, 1995, पृष्ठ 31-33)। मैकाले का यह मानना था कि अँग्रेजी भाषा की शिक्षा के द्वारा ब्रिटिश प्रशासन के लिए भारतीय क्लर्क मिल जाएँगे और जिनकी सहायता से वे अपने आर्थिक हितों की पूर्ति आसानी से कर पाएँगे।

औपनिवेशिक शासन में संचार के साधनों का विकास भी एक चुनौती था। अँग्रेज भारत में संचार के माध्यमों का विकास नहीं करना चाहते थे। अँग्रेजों ने भारत में मुद्रणालय तो स्थापित कर दिया था, लेकिन इसका प्रयोग वे केवल ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिए करना चाहते थे। ब्रिटिश उपनिवेशवादी समाचार पत्र नहीं छापना चाहते थे, क्योंकि यदि वे समाचार पत्र छापते तो उनके अन्याय, अपराध, शोषण और अपकर्म की खबर लंदन और दूसरे देशों में पहुँचती। ऐसे विदेशी शासन में संचार के साधनों के विकास की कल्पना करना बड़ा मुश्किल था। इस समय कुछ लोग कंपनी की कार्यप्रणाली से असंतुष्ट थे, जिनमें अँग्रेज और भारतीय दोनों तरह के लोग थे। कंपनी के असंतुष्ट कर्मचारी भारत में कंपनी के अपकर्मों तथा दुष्कर्मों का भांडा फोड़ने के लिए समाचार पत्र निकालना चाहते थे, लेकिन वे सफल नहीं हुए। यह जेम्स आगस्टस हिक्की के भाग्य में था कि उसने 1780 में भारत में पहला समाचार पत्र ‘द बंगाल गजट’ अथवा ‘द कोलकाता जनरल एडवाइजर’ निकाला। उसकी सरकारी अधिकारी, गवर्नर जनरल तथा मुख्य न्यायाधीश की निष्पक्ष आलोचना के कारण उसके मुद्रणालय को ब्रिटिश सरकार द्वारा जप्त कर लिया गया। इसके बाद 1784 में ‘कोलकाता गजट,’ 1785 में ‘बंगाल जनरल,’ 1785 में ही ‘ओरिएंटल मैगजीन आफ कोलकाता’ आदि अनेक समाचार पत्र प्रकाशित हुए। इन समाचार पत्रों ने आगस्टस हिक्की के कटु अनुभव से लाभ उठाया और ब्रिटिश अधिकारियों से झगड़ा नहीं किया (ग्रोवर & यशपाल, 2003, पृष्ठ 264)। आरंभ में इन पत्र-पत्रिकाओं का उद्देश्य यूरोपीय एवं एंग्लो इंडियन लोगों का केवल मनोरंजन करना था। ये केवल कंपनी के अधिकारियों की दया पर निर्भर थे, लेकिन बाद में ब्रिटिश सरकार के खिलाफ विभिन्न आंदोलनों और लोगों की एकजुटता के कारण ब्रिटिश सरकार ने प्रेस पर अंकुश लगाना शुरू कर दिया। उन्होंने प्रेस से संबंधित वर्नाकुलर प्रेस एक्ट, सेंसरशिप, लाइसेंस रेगुलेशन, न्यूजपेपर एक्ट, इंडियन प्रेस एक्ट आदि लागू कर जनमत की आवाज को दबाने का प्रयत्न किया। प्रेस अधिनियम और प्रेस सेंसरशिप के द्वारा ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ सामान्य बात

को भी राजद्रोह का आरोप लगाकर प्रकाशन से रोक दिया जाता था। मुद्रणालय को जब्त कर लिया जाता था और सम्पादकों को गिरफ्तार कर लिया जाता था। इतने दमन के बावजूद औपनिवेशिक काल में समाचार पत्र-पत्रिकाओं का विकास हुआ। 1821 में राजा राममोहन राय, जिन्हें ‘भारतीय प्रेस का जन्मदाता’ कहा जाता है, ने अँग्रेजी में ‘ब्रह्मनिकल मैगजीन’ और बंगाली में साप्ताहिक समाचार पत्र ‘संवाद कौमुदी’ का प्रकाशन किया। इन्होंने फारसी में ‘मिरातुल अखबार’ को भी निकाला। 30 मई, 1826 को हिंदी का पहला अखबार ‘उदंत मार्तंड’ पंडित जुगल किशोर ने निकाला। लोगों में राष्ट्रीयता और एकता की भावना जाग्रत होने पर धीरे-धीरे समाचार पत्रों में ब्रिटिश सरकार के विरोध के स्वर गूँजने लगे। अमृतलाल चक्रवर्ती पर ‘प्रयाग समाचार’ के कारण राजद्रोह का मुकदमा चला। इस काल में ‘वंदे मातरम,’ ‘केसरी’ और ‘भारत मित्र’ स्वदेशी आंदोलन के प्रमुख स्तंभ थे। 1925 में कृष्णदत्त पालीवाल द्वारा आगरा में ‘सैनिक’ और 1930 में मुंशी प्रेमचंद द्वारा ‘हंस’ का प्रकाशन किया गया। इन पत्र-पत्रिकाओं ने युग के सवाल को उजागर किया। ‘हंस’ में प्रेमचंद लिखते हैं कि अगर सांप्रदायिकता अच्छी हो सकती है तो पराधीनता भी अच्छी हो सकती है, झूठ भी अच्छा हो सकता है (चौबे, 2018, पृष्ठ 31)। स्वतंत्रता का बीजारोपण, स्वदेशी का प्रसार तथा सामाजिक कुरीतियों का विरोध औपनिवेशिक काल की पत्र-पत्रिकाओं का मुख्य उद्देश्य था। इस प्रकार औपनिवेशिक काल में जनसंचार के लिए सबसे बड़ी चुनौती विदेशी शासन व्यवस्था के अंतर्गत विदेशी भाषा, विदेशी शिक्षा, विदेशी कानून, औपनिवेशिक प्रेस अधिनियम और प्रेस सेंसरशिप थी।

गांधी : अंतर्मुखी छात्र से उत्कृष्ट संचारक

औपनिवेशिक दासता के इसी काल में ही महात्मा गांधी का जन्म हुआ। गांधी के आरंभिक जीवन को देखकर कोई नहीं कह सकता था कि एक दिन गांधी एक महान् पत्रकार और संप्रेषणकर्ता बनेंगे। आरंभ में गांधी के शिक्षक उन्हें अत्यंत शर्मीला, अंतर्मुखी, औसत छात्र मानते थे। अपनी आत्मकथा में वे लिखते हैं कि इस शर्मीलेपन को मैंने संपूर्ण इंग्लैंड प्रवास में बनाए रखा। मेरे लिए पूर्व तैयारी के बिना बोलना मुश्किल हो जाता था। जब कभी मुझे अजनबी श्रोताओं का सामना करना पड़ा, मैं हिचकिचाहट से भर जाता था और जब कभी बच पाता तो बोलने से बचा करता था (गांधी, 2005, पृष्ठ 57)। आरंभ में गांधी को देखकर नहीं लगता था कि वे एक महान् व्यक्ति बनेंगे। भारती नरसिम्हन लिखती हैं कि “कोई भी मुश्किल से यह विश्वास करेगा कि एक अनाड़ी छात्र और एक घबराया हुआ वकील एक इतना बड़ा प्रभावशाली पत्रकार और संप्रेषणकर्ता बन सकता है” (भारती, 1997, पृष्ठ संख्या 4)। भारत में अपने स्कूली जीवन के दौरान उन्होंने अखबार नहीं पढ़ा। गांधी जब वकालत अध्ययन के लिए लंदन गए तो वे वहाँ पहली बार समाचार पत्र के संपर्क में आए। गांधी ने लंदन में वेजिटेरियन समिति के अपने मित्रों द्वारा समिति की पत्रिका ‘वेजिटेरियन’ में पहली बार शाकाहार, भारतीय रीति-रिवाज, त्योहार पर केंद्रित कई लेख लिखे (भट्टाचार्य, 1965, पृष्ठ 5)। कानून की शिक्षा के साथ-साथ गांधी के लिए यह पत्रकारिता का प्रशिक्षण काल था। गांधी का पहला आलेख 7 फरवरी, 1891 को ‘इंडियन वेजिटेरियन’ शीर्षक से प्रकाशित हुआ (भट्टाचार्य, 1965, पृष्ठ 2)। इसके बाद गांधी ने अपने पूरे जीवन काल में समाचार पत्रों की प्रूफ रीडिंग से लेकर संवाददाता और

संपादक के रूप में योगदान दिया। गांधी ने छह पत्र-पत्रिकाओं—‘इंडियन ओपिनियन’, ‘यंग इंडिया’, ‘नवजीवन’, ‘हरिजन’, ‘हरिजन सेवक’ (हिंदी), ‘हरिजन बंधु’ (गुजराती)—का संपादन और लेखन किया। इसके अलावा गांधी ने अनेक समाचार पत्रों जैसे ‘प्रज्ञा बंधु’, ‘अमृत बाजार पत्रिका’, ‘द हिंदू’, ‘द बॉम्बे क्रॉनिकल’, ‘काठियावाड़ टाइम्स’, ‘द सर्च लाइट’, ‘बिहार समाचार’ आदि में साक्षात्कार के माध्यम से अपनी आवाज को नागरिकों तक पहुँचाया।

विदेशी शासन में संचार की विभिन्न चुनौतियों के होते हुए भी गांधी ने दक्षिण अफ्रीका और भारत दोनों ही जगह बड़े संयम, आत्मानुशासन और बुद्धिमत्ता से अपने समाचार पत्रों को चलाया। गांधी ने प्रिंटिंग प्रेस, तार, केबल, टेलीग्राफ तथा रेडियो आदि जनसंचार माध्यमों का प्रयोग किया, ताकि सत्याग्रह और अहिंसा के अपने विचार को वे बहुसंख्यक श्रोताओं तक पहुँचा सकें। 1896 ईस्वी में गांधी जब दक्षिण अफ्रीका से भारत आए तो उन्होंने यहाँ ‘ग्रीन पंपलेट’ प्रकाशित किया, जिसमें दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों का चित्रण था। ‘पायनियर’ ने उस ग्रीन पंपलेट पर सबसे पहले लेख निकाला। इसका सारांश विलायत गया। उस सारांश का सारांश फिर रायटर के द्वारा नेटाल पहुँचा (गांधी, 2002, पृष्ठ 153)। ‘ग्रीन पंपलेट’ के सारांश से दक्षिण अफ्रीका के गोरे नाराज हो गए और 1897 में जब गांधी पुनः दक्षिण अफ्रीका गए तो उन्होंने गांधी पर हमला किया, लेकिन गांधी ने उनको माफ कर दिया। गांधी का मानना था कि उन्हें ग्रीन पुस्तिका के विषय में सही जानकारी नहीं है। गांधी ने कहा, “मैं हमला करने वालों को दोषी भी नहीं मानता, उन्हें तो यह कहा गया है कि मैंने हिंदुस्तान में अतिशयोक्तिपूर्ण बातें कहकर नेटाल के गोरे को बदनाम किया है। वे इस बात को मानकर गुस्सा हों तो इसमें आश्चर्य क्या है? दोष तो बड़ों का है। मुझे कहने की इजाजत दें तो आपका माना जाना चाहिए। आप लोगों को सही रास्ता दिखा सकते थे, पर आपने भी रायटर के तार को ठीक माना और यह कल्पना कर ली कि मैंने अतिशयोक्ति की होगी। मुझे किसी पर मुकदमा नहीं चलाना है। जब वस्तुस्थिति प्रकट होगी, लोगों को पता चलेगा तो वे खुद पछताएँगे” (गांधी, 2002, पृष्ठ 173)।

गांधी पर यह हमला गलत या भ्रामक संचार के कारण था, जो दक्षिण अफ्रीका के गोरे में फैलाया गया था। दक्षिण अफ्रीका में बसे भारतीयों को संगठित करने, उनमें एकता स्थापित करने के लिए गांधी ने 4 जून, 1903 को ‘इंडियन ओपिनियन’ का प्रकाशन किया। इसके तीन सूत्रीय उद्देश्य थे—पहला, भारतीय समुदाय की शिकायतों को सरकार, दक्षिण अफ्रीका में श्वेत लोगों, इंग्लैंड तथा भारत के लोगों की जानकारी में लाना; दूसरा, दक्षिण अफ्रीकी भारतीय लोगों को इस उद्देश्य से उनकी कमियों से अवगत कराना कि वे उन्हें दूर कर सकें; और तीसरा, भारतीय समुदाय में व्याप्त सांस्कृतिक एवं धार्मिक असहिष्णुता को समाप्त करना (गांधी, 1906, पृष्ठ 9)। ‘इंडियन ओपिनियन’ चार भाषाओं हिंदी, अंग्रेजी, गुजराती और तमिल में प्रकाशित होता था। चारों भाषाएँ एक ही समाचार पत्र में अलग-अलग खंड में होती थीं। एक ही समाचार पत्र का चार भाषाओं में प्रकाशित होना, वह भी ऐसे समय में जब संसाधन बहुत सीमित थे, एक बहुत बड़ी विशेषता थी। भारत आने पर गांधी ने ‘यंग इंडिया’, ‘नवजीवन’ का संपादन किया। इन दोनों समाचार पत्रों के माध्यम से गांधी राजनीतिक विषयों का प्रचार-प्रसार करते थे। 1922 में ‘यंग इंडिया’ में ‘गर्जन तर्जन’ लेख लिखने के कारण गांधी को गिरफ्तार किया गया और उन्हें छह साल

का कारावास हुआ। गांधी के द्वारा राजनीतिक विषयों पर लेख लिखे जाने के कारण उनके दफ्तरों पर ब्रिटिश सरकार बार-बार छापा मारती थी। 1932 में गांधी की गिरफ्तारी के बाद इनका प्रकाशन बंद हो गया। ब्रिटिश दमन और शोषण के आगे गांधी ने हार नहीं मानी। गांधी ने गिरफ्तारी के एक वर्ष बाद ‘हरिजन’ (1933-1948) नामक पत्र प्रारंभ किया, जो पूर्णतया हरिजन मनोरथों के प्रति समर्पित और ईमानदारी पूर्वक समस्त राजनीति से परे था (भट्टाचार्य, 1965, पृष्ठ संख्या 55)।

निडर पत्रकार

औपनिवेशिक शासन की विभिन्न बाधाओं और चुनौतियों के बावजूद गांधी ने न तो दक्षिण अफ्रीका और न ही भारत में अपनी पत्रकारिता की नैतिकता और वस्तुनिष्ठता के साथ कोई समझौता किया। वे हमेशा निडरता से अपनी पत्रकारिता करते रहे। पत्रकारिता में यह निडरता उन्हें सत्यता और नैतिकता के पालन से मिली। दक्षिण अफ्रीका में गांधी के सामने संगठन के लिए कार्यकर्ताओं का निर्माण, रचनात्मक कार्यक्रमों का प्रसार, विदेशी शासन के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने की बड़ी चुनौती थी। इसके लिए गांधी ने जून 1903 में ‘इंडियन ओपिनियन’ का प्रकाशन किया। ‘इंडियन ओपिनियन’ के प्रकाशन से दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों के आंदोलन में एक नया मोड़ आया। भारतीय समाज को उसकी भावनाएँ प्रकट करने वाला और विशेष रूप से उनके हित में संलग्न एक मुखपत्र मिल गया (गांधी, 1970, संपूर्ण गांधी वाङ्मय, खंड 3, पृष्ठ-406)। हालाँकि यह सत्य है कि गांधी कभी भी ‘इंडियन ओपिनियन’ के संपादक नहीं रहे, फिर भी उन्होंने ‘इंडियन ओपिनियन’ की जिम्मेदारी अपनी मानी थी। उन्होंने साप्ताहिक के बारे में आत्मकथा में लिखा, संपादन का सच्चा बोझ तो मुझ पर ही पड़ा। मेरे भाग्य में प्रायः हमेशा दूर से ही अखबार की व्यवस्था सँभालने का योग रहा है। मनसुखलाल नाजर संपादक का काम न कर सकें, ऐसी कोई बात नहीं थी, पर दक्षिण अफ्रीका के अटपटे प्रश्नों पर मेरे रहते उन्होंने स्वतंत्र लेख लिखने की हिम्मत नहीं की। उन्हें मेरी विवेक शक्ति पर अत्यधिक विश्वास था। अतएव जिन-जिन विषयों पर कुछ लिखना जरूरी होता, उन पर लिखकर भेजने का बोझ भी मुझ पर डाल देते थे। मैं अखबार का संपादक नहीं था, फिर भी उसमें प्रकाशित लेखों के लिए मैं ही जिम्मेदार था (गांधी, 1970, संपूर्ण गांधी वाङ्मय, खंड 39, पृष्ठ 218)।

गांधी ने हमेशा इस जिम्मेदारी का निर्वाह किया। उस समय ‘इंडियन ओपिनियन’ गंभीर आर्थिक संकट में था। हर अंक के साथ सोचना पड़ता था कि अगला अंक कैसे निकलेगा? सिर्फ खर्च में कटौती से काम नहीं चल सकता था। उसे तत्काल मदद की आवश्यकता थी, अन्यथा अखबार बंद हो जाता, किरकरी होती। तलवार गांधी के सिर पर लटक रही थी तो उन्होंने 1600 पाउंड का चेक अखबार के नाम दिया। इसके बाद गांधी की माली हालत वह हो गई, जो मुकदमे से पहले थी (उपाध्याय, 2020, पृष्ठ 121)। लेकिन गांधी ने इसकी परवाह नहीं की और उन्होंने बड़ी ईमानदारी और सेवा भाव से ‘इंडियन ओपिनियन’ को चलाया। ‘इंडियन ओपिनियन’ चार भाषाओं हिंदी, अंग्रेजी, गुजराती और तमिल में प्रकाशित होता था। हिंदी, गुजराती, तमिल भाषा के द्वारा दक्षिण अफ्रीका में बसे भारतीयों और अंग्रेजी के द्वारा वे शिक्षित भारतीयों और ब्रिटिश उपनिवेशवादियों को एशियायियों की समस्याओं से अवगत कराना चाहते थे। गांधी ने अपनी पत्रकारिता में कभी भी पूँजी के अभाव को बाधा या चुनौती के रूप में

स्वीकार नहीं किया। उन्होंने 'इंडियन ओपिनियन' के संचालन के लिए आश्रम के सभी लोगों से सहयोग लिया। गांधी ने केवल इसके लिए लेख लिखते थे, अपितु इसके संचालन के लिए अपनी मेहनत की कमाई भी देते थे। 'इंडियन ओपिनियन' के प्रकाशन में अपनी कठिनाइयों का वर्णन करते हुए हेनरी पोलाक कहते हैं, "इंडियन ओपिनियन" के कार्यालय में कोई नौकर, चपरासी या मजदूर नहीं थे। प्रेसकर्मी (स्वयंसेवक) द्वारा ही खुद अखबार छपा जाता था। उन्हें मोड़ना, उन पर पता चिपकाकर बंडल बनाकर रेलवे स्टेशन तक ले जाना होता था। यह सभी कार्य आश्रमवासियों के द्वारा होता था।"

पत्रकारिता के माध्यम से सेवा

गांधी ने पत्रकारिता को कभी भी अपनी आजीविका का आधार बनाने की कोशिश नहीं की। उनकी राय में पत्रकारिता एक सेवा थी। पत्रकारिता को कभी भी निजी हित या जीविका कमाने का जरिया नहीं बनना चाहिए और अखबार या संपादक के साथ चाहे जो भी हो जाए, लेकिन उसे अपने देश के विचारों को सामने रखना चाहिए। नतीजा चाहे जो भी हो, अगर जनता के दिलों में जगह बनानी है तो उन्हें एकदम अलग धारा का सूत्रपात करना होगा (दुबे, 2019, पृष्ठ संख्या 234)। उन्होंने समाचार पत्र को लोगों तक सूचनाओं को पहुँचाने का सेवा कार्य माना। उन्होंने समाचार पत्रों के खर्च को चलाने के लिए पाठकों की संख्या बढ़ाने पर जोर दिया न कि विज्ञापन द्वारा पैसा कमाने पर। समाचार पत्र विज्ञापन के संबंध में गांधी लिखते हैं, "समाचार पत्रों में स्थापित प्रथा बन गई है कि वे राजस्व के लिए सदस्य शुल्क के बजाय विज्ञापनों पर निर्भर रहते हैं। इसका परिणाम बहुत बुरा हुआ है। जो समाचार पत्र शराब की बुराई के बारे में लिखता है, वही समाचार पत्र शराब की प्रशंसा में विज्ञापन छापता है। उसी अंक में हम तंबाकू के हानिकारक प्रभावों के बारे में पढ़ते हैं और यह भी इसे कहाँ से खरीदा जाए। चिकित्सा विज्ञापन राजस्व का सबसे बड़ा स्रोत है, हालाँकि उन्होंने लोगों को बहुत नुकसान पहुँचाया है। बहुत से लोग हानिकारक दवाइयाँ खरीदने के लालच में आ जाते हैं। इसमें से बहुत से विज्ञापन अनैतिकता को बढ़ावा देते हैं। ऐसे विज्ञापन धर्म के प्रचार के लिए चलाए जाने वाले समाचार पत्रों में भी जगह पा लेते हैं। यह प्रथा पूरी तरह से पश्चिम से आई है। चाहे कितनी भी कीमत या प्रयास क्यों न करने पड़ें, हमें इस पश्चिमी प्रथा को समाप्त करना चाहिए। प्रत्येक समाचार पत्र का कर्तव्य है कि वह विज्ञापनों के संदर्भ में कुछ संयम बरते" (गुप्ता)। विज्ञापन के संदर्भ में 'कल्याण' पत्रिका निकालने से पूर्व जब हनुमान प्रसाद पोद्दार महात्मा गांधी से आशीर्वाद लेने गए तो गांधी ने सुझाव दिया कि पत्र के स्तर और स्वरूप की रक्षा के लिए दो बातें आवश्यक हैं—पहली, पत्रिका में विज्ञापन न छापना; दूसरी, पुस्तक समीक्षा प्रकाशित नहीं करना।

महात्मा गांधी ने कभी भी अपने लेखन की विश्वसनीयता के साथ समझौता नहीं किया। भारत आने पर गांधी ने 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' के माध्यम से लोगों में जन जागृति पैदा की। भारत में गांधी की पत्रकारिता का मिशन था—नैतिक मूल्यों की स्थापना, सत्य-अहिंसा का पालन करते हुए सत्याग्रह के सहारे साम्राज्यवाद के खिलाफ संघर्ष करना और भारत को स्वतंत्रता के मार्ग की ओर अग्रसर करना। ब्रिटिश सरकार ने रॉलेट एक्ट और विभिन्न कानूनों को लाकर राष्ट्रीय जागरण को दबाने का प्रयास किया। ब्रिटिश दमन के सामने गांधी ने कभी भी हार नहीं मानी।

गांधी के लेख 'गर्जन तर्जन' के आधार पर असंतोष भड़काने के आरोप में 10 मार्च, 1922 को उन्हें अहमदाबाद में गिरफ्तार कर लिया गया। गांधी की यह गिरफ्तारी पत्रकारिता के कारण ही थी, फिर भी गांधी अपने मार्ग से विचलित नहीं हुए। गांधी जब यरवदा और आगा खाँ महल में बंद थे, तब भी उन्होंने पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन को बंद नहीं होने दिया। उन्होंने जेल से ही पत्र-पत्रिकाओं के लिए नियमित लेखन कार्य किया। औपनिवेशिक शासन द्वारा अँग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाने और अँग्रेजी को ही प्रोत्साहन देने के बावजूद गांधी ने क्षेत्रीय भाषाओं और हिंदी में अपनी पत्र-पत्रिकाओं का लेखन और प्रकाशन किया। बहुसंख्यक भारतीय क्षेत्रीय भाषाएँ और हिंदी ही बोलते थे। इसके साथ गांधी ने अँग्रेजी भाषा में भी अपनी पत्र-पत्रिकाओं को प्रकाशित किया, जिससे शिक्षित भारतीयों और अँग्रेजों को भारतीयों की स्थिति और उनकी समस्याओं को समझा सकें।

लेखन में आत्मानुशासन

गांधी के लेखन में उनके आत्मानुशासन को देखा जा सकता है। उनके लेखन की भाषा सरल, सहज और अलंकारिकता रहित थी। उनके लेखन को साधारण व्यक्ति भी आसानी से समझ सकता था। गांधी 'इंडियन ओपिनियन' का महत्त्व बताते हुए लिखते हैं, "जब तक वह मेरे अधीन था, उसमें किए गए परिवर्तन मेरे जीवन में हुए परिवर्तनों के द्योतक थे। जिस तरह आज 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' मेरे जीवन के कुछ अंशों के निचोड़ रूप हैं, उसी तरह 'इंडियन ओपिनियन' था। उसमें मैं प्रति सप्ताह अपनी आत्मा को उड़ेलता था और जिसे मैं सत्याग्रह के रूप में पहचानता था, उसे समझाने का प्रयत्न करता। जेल के दिनों को छोड़कर 10 वर्षों के अर्थात् 1914 तक के 'इंडियन ओपिनियन' का शायद ही कोई अंक ऐसा होगा, जिसमें मैंने कुछ लिखा न हो। इसमें मैंने एक शब्द भी बिना विचारे, बिना तोले लिखा हो या किसी को केवल खुश करने के लिए लिखा हो अथवा जानबूझकर अतिशयोक्ति की हो, ऐसा मुझे याद नहीं पड़ता। मेरे लिए यह अखबार संयम की तालीम सिद्ध हुआ था। मित्रों के लिए वह मेरे विचारों को जानने का माध्यम बन गया था" (गांधी, 1970, संपूर्ण गांधी वाङ्मय, खंड 39, पृष्ठ 218)। औपनिवेशिक चुनौतियों के बावजूद भी गांधी ने तनावपूर्ण स्थितियों में अपनी भावनाओं को विषयवस्तु और अभिव्यक्ति के तरीकों को दूषित करने की अनुमति नहीं दी थी। वे लिखते हैं, "अतः मेरे विश्वास के प्रति सच्चा होने के लिए मैं क्रोध अथवा द्वेष में लेखन नहीं कर सकता। मैं लक्ष्यहीन रूप से नहीं लिख सकता। मैं मात्र जुनून को उकसाने के लिए नहीं लिख सकता। पाठकों को उन संयमों का कोई भी आभास नहीं हो सकता, जिनका उपयोग मुझे शीर्षकों और मेरी शब्दावली के चयन के लिए सप्ताह-दर-सप्ताह करना पड़ता है। यह मेरे लिए एक प्रशिक्षण है। यह मुझे स्वयं में झाँकने और अपनी कमजोरियों को खोजने के योग्य बनाता है। प्रायः मेरा घमंड एक चतुर अभिव्यक्ति का अथवा मेरा क्रोध एक कठोर विश्लेषण का दबाव डालता है। यह एक भयानक अग्नि परीक्षा है, किंतु इस कूड़ा-करकट को दूर करने की एक बढ़िया कार्यवाही है" (गांधी, 1969, वॉल्यूम- 27, पृष्ठ-322)।

स्वतंत्रता के बाद संचार की चुनौतियाँ

आजादी के बाद संचार क्रांति के कारण संचार के माध्यमों में तीव्र वृद्धि हुई। अब संचार माध्यमों में प्रिंट मीडिया के साथ-साथ रेडियो,

टेलीविजन और सोशल मीडिया (फेसबुक, व्हाट्सएप, ट्विटर, इंस्टाग्राम आदि) संचार में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। अब किसी भी सूचना का आदान-प्रदान करना सेकेंडों का काम हो गया है। संचार के माध्यम के रूप में सोशल मीडिया के आने से पूरी दुनिया में जनसंचार के ऊपर चल रहे नियंत्रण एवं विनियम लगभग समाप्त हो गए हैं। सोशल मीडिया लाभकारी है, लेकिन कई चुनौतियाँ भी इसने खड़ी की हैं। आज सोशल मीडिया द्वारा फर्जी या भ्रामक खबरें फैलाना आसान हो गया है, जिसके परिणाम भयानक हो सकते हैं। मिथ्या या भ्रामक सूचना का प्रसार लोगों के विश्वासों को प्रभावित कर सकता है। फेक न्यूज की प्रवृत्ति आज बढ़ी है और यह संचार की सबसे बड़ी चुनौती बन गया है। फेक न्यूज से लोगों के विचारों को बदलकर उन्हें अपने अनुसार चलने, लोगों को किसी विचारधारा या सत्ता से जोड़ने के लिए प्रभावित किया जाता है। लोगों के मत को परिवर्तित करने का कार्य किया जा रहा है।

आज संचार में बहुराष्ट्रीय निगमों या विदेशी पूँजी निवेश भी एक चुनौती के रूप में हमारे सामने है। जैसे-जैसे संचार माध्यम बड़ी पूँजी निवेश का खेल बनते गए हैं, उनसे लाभ कमाने की अपेक्षाएँ भी उसी अनुपात में बढ़ी हैं (बिष्ट, 2011, पृष्ठ-3)। आज संचार माध्यम पूँजीपतियों या व्यापारियों के हाथ में चला गया है। उनका तो एक मात्र लक्ष्य धनोपार्जन है। वे किसी भी तरीके से संचार माध्यमों के स्वामित्व द्वारा अधिक से अधिक धनार्जन करना चाहते हैं। इसके लिए विज्ञापनों द्वारा अधिक से अधिक राजस्व प्राप्त करना, चाहे विज्ञापन अनैतिक ही क्यों न हों, अब उनका मुख्य उद्देश्य है? इस प्रकार का धनार्जन गांधीय पत्रकारिता के मूल्यों के खिलाफ है। बहरहाल, संचार साधनों की वृद्धि से ज्ञान के प्रसार में भी तीव्रता आई है। ज्ञान का प्रसार प्रिंट मीडिया से लेकर सोशल मीडिया (फेसबुक, व्हाट्सएप, ट्विटर, इंस्टाग्राम) आदि के द्वारा तीव्रता से हो रहा है। आज ज्ञान के प्रसार के लिए बहुत सारी 'व्हाट्सएप यूनिवर्सिटियाँ' चल रही हैं, जो तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर पाठकों के सामने प्रस्तुत करती हैं, जिससे पाठकों को सही जानकारी नहीं मिल पाती है। फलस्वरूप पाठक भ्रमित हो जाता है और वह मिथ्या जानकारी का स्वयं भी संचार करने लगता है, जिससे समाज को गलत दिशा मिलती है।

आज प्रिंट मीडिया बहुत संकट के दौर से गुजर रहा है। सोशल मीडिया, फेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम, व्हाट्सएप के आने से प्रिंट मीडिया के सामने आज पाठकों की समस्या उत्पन्न हो गई है। विभिन्न विचारधाराओं के प्रति जो अंधभक्ति का दौर चला है, वह चिंताजनक है। आज मीडिया पर सत्ता या शक्ति का नियंत्रण हो गया है। अब लोक एजेंडा मीडिया का एजेंडा न होकर सत्ता या शक्ति का एजेंडा हो गया है। बहुत सारे समाचार पत्र बंद होने के कगार पर हैं, लेकिन यह भी सच है कि इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, सोशल मीडिया ने संचार को एक नई दिशा दी है। इन सबके बीच आज संचार में बहुत सारी चुनौतियाँ सामने आई हैं। इन चुनौतियों में फेक न्यूज, पेड न्यूज, एजेंडा सेटिंग, ब्रेनवाशिंग, सत्ता या शक्ति द्वारा हस्तक्षेप आदि हैं, जिनके कारण संचार में सत्यता, वस्तुनिष्ठता और निष्पक्षता का अभाव-सा होने लगा है। 1909 में गांधी ने 'हिंद स्वराज' के प्रथम अध्याय में 'काँग्रेस के कर्तार्थता' शीर्षक में लिखा है, "समाचार पत्रों का काम तो है लोगों की भावनाएँ जगाना और उन्हें जाहिर करना; दूसरा काम है लोगों में अमुक जरूरी भावनाएँ पैदा करना और तीसरा काम है लोगों में दोष हों तो चाहे जितनी मुसीबतें आने पर भी बेधड़क होकर उन्हें दिखाना" (गांधी, 2019,

पृष्ठ 23)। आज वर्तमान में 'पब्लिक स्पेस' खत्म होता जा रहा है, विमर्श की परिपाटी संकुचित हो रही है। वैचारिक राजनीति खत्म होने से वैचारिक विमर्श भी खत्म हुआ है। लोकतंत्र के चौथे स्थान के रूप में समाचार पत्र या मीडिया सत्ता की दलाली में अपनी भूमिका निभा रहा है।

निष्कर्ष

आज वैश्वीकरण और तकनीकी विकास के युग में संचार की चुनौतियाँ बढ़ी हैं और उनका स्वरूप भी बदला है, लेकिन ऐसा नहीं है कि चुनौतियाँ पहले नहीं थीं या गांधी के समय में नहीं थीं। चुनौतियाँ उस समय भी थीं, लेकिन गांधी ने उन चुनौतियों का सामना संयम, आत्मानुशासन और बुद्धिमत्ता से किया। गांधी के सामने भी विदेशी सत्ता या शक्ति का दबाव, विभिन्न प्रेस कानूनों का भय, जेल में डालने का भय, प्रेस के लिए धनाभाव, पत्रकारिता की भाषा, विषयवस्तु आदि समस्याएँ थीं, लेकिन गांधी ने बड़ी निडरता से अपनी बातें पत्रकारिता और संचार के अन्य माध्यमों से लोगों के सामने रखीं। उन्होंने कभी भी ब्रिटिश सत्ता या शक्ति के दबाव को स्वीकार नहीं किया। गांधी ने स्वयं कहा था कि मैंने किसी को खुश करने के लिए या जानबूझकर अतिशयोक्तिपूर्वक नहीं लिखा। वर्तमान मीडिया या पत्रकारिता को भी बिना किसी सत्ता या शक्ति के दबाव के निडरता और निष्पक्षता से अपना कार्य करना चाहिए। मीडिया और पत्रकारिता में एक और महत्वपूर्ण चुनौती विश्वसनीयता की है। सोशल मीडिया के आने से फेक न्यूज का चलन बढ़ गया है। बिना किसी स्रोत के या प्रामाणिकता के सूचनाओं का प्रसार कर दिया जाता है। गांधी ने कभी भी ऐसा नहीं किया। वे इस संबंध में कहते हैं कि मैंने कभी भी एक भी शब्द बिना विचारे और बिना तोले नहीं लिखा। अर्थात् गांधी किसी बात को या किसी समाचार को बिना जाँचे प्रेषित नहीं करते थे। वर्तमान में मीडिया या पत्रकारिता से जुड़े लोगों को उनसे प्रेरणा लेनी चाहिए। मीडिया या पत्रकारिता से जुड़े लोगों पर आज बहुत दबाव है। यह दबाव खबरों को जल्दी प्रेषित करने, खबरों को सत्ता के अनुसार प्रेषित करने या बाजार के हिसाब से प्रेरित करने का हो सकता है। इस दबाव से ईमानदार, सत्यनिष्ठ, कर्तव्यनिष्ठ लोगों में क्रोध या गुस्सा आ जाता है और वे विचलित हो जाते हैं, लेकिन विचलित होने की जरूरत नहीं है। बिना विचलित हुए उन्हें सत्यता, निष्पक्षता और प्रामाणिकता से समाज में अपनी बात का संचार करने की आवश्यकता है।

गांधी ने भी अपना लेखन कभी क्रोध या द्वेष में नहीं किया। वे स्वयं इस बात को अपनी आत्मकथा में स्वीकार करते हैं। इसके लिए संयम और आत्मानुशासन आवश्यक है। वर्तमान मीडिया या पत्रकारिता के क्षेत्र में तीव्र विकास से दर्शकों और पाठकों में भ्रम की स्थिति पैदा हो गई है कि किस माध्यम की खबरों को चुना जाए। इससे प्रिंट मीडिया की हालत बहुत खराब हो रही है, क्योंकि ज्यादा खबरें सोशल मीडिया में पहले से ही आ जाती हैं। इससे प्रिंट मीडिया में पाठकों का अभाव होता जा रहा है। अन्य मीडिया पर भी विश्वसनीयता या विषयवस्तु को लेकर उलझने हैं कि हम क्या लिखें या क्या दिखाएँ? इस संबंध में गांधी से सीख लेने की जरूरत है। उन्होंने ऐसे वातावरण में काम किया, जब पाठक बहुत कम थे, लेकिन उन्होंने विषयवस्तु पर ध्यान दिया। उनकी पत्रकारिता में देखें तो 'यंग इंडिया', 'नवजीवन' में जहाँ उन्होंने राजनीतिक खबरों का लेखन किया, वहीं 'हरिजन' में सामाजिक कार्य, रचनात्मक कार्य से संबंधित विषयों पर लिखा। इस विशेषता ने उनके समाचार पत्रों के लिए पाठकों की

कमी नहीं होने दी। इससे भी सीख लेने की जरूरत है कि दर्शकों या पाठकों की रुचि और जरूरत के अनुसार विषयवस्तु का चयन किया जाए। अतः वर्तमान संचार की चुनौतियों, चाहे वे प्रिंट मीडिया या इलेक्ट्रॉनिक मीडिया या सोशल मीडिया से संबंधित हों, के समाधान के लिए गांधी के विचार पथ-प्रदर्शक की भूमिका निभा सकते हैं।

संदर्भ सूची

- उपाध्याय, एम. (2020). बापू. खंड-2, नई दिल्ली : सेतु प्रकाशन.
- गांधी, एम.के. (2005). *द स्टोरी ऑफ माय एक्सपेरिमेंट विद ट्रुथ*. अहमदाबाद : नवजीवन प्रकाशन.
- गांधी, एम. (2002). *सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा*. अहमदाबाद : नवजीवन पब्लिशिंग हाउस.
- गांधी, एम.के. (1906). 'इंडियन ओपिनियन', 28 अप्रैल, 1906. उद्धरित गोंसाल्विस, पीटर. स्वतंत्रता के लिए परिधान. नई दिल्ली : सेज भाषा प्रकाशन,
- गांधी, एम.के. (1970). संपूर्ण गांधी वाङ्मय. नई दिल्ली : प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार.
- गांधी, एम. (1969). कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी. नई दिल्ली : पब्लिकेशन डिवीजन, मिनिस्ट्री ऑफ इन्फार्मेशन एंड ब्राडकास्टिंग, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, वॉल्यूम - 27.
- गांधी, एम. (2019). *हिंद स्वराज*, वाराणसी : सर्व सेवा संघ प्रकाशन.
- गुप्ता, वी.एस. महात्मा गांधी एंड मास मीडिया. https://www.mkgandhi.org/mass_media.php से पुनःप्राप्त.
- ग्रोवर, बी.एल. & यशपाल. (2003). *आधुनिक भारत का इतिहास एक नवीन मूल्यांकन*. नई दिल्ली : एस. चंद्र प्रकाशन.
- घोष, एस.सी. (1995). *हिस्ट्री ऑफ एजुकेशन इन मॉडर्न इंडिया*. 1757-1986, हैदराबाद : ओरियंट लॉन्गमैन प्रकाशन.
- चौबे, के. एस. (2018). *मीडिया संस्कृति समय*. दिल्ली : प्रकाशन संस्थान.
- दुबे, आर.के. (2019). *गांधी और पत्रकारिता : एक पड़ताल*. गवेषणा. आगरा : केंद्रीय हिंदी संस्थान, अंक 115, जनवरी-मार्च
- बंदोपाध्याय, एस. (2017). *प्लासी से विभाजन तक और उसके बाद*. हैदराबाद : ओरिएंटल ब्लैकबर्न प्रकाशन.
- बिष्ट, पी. (2011). *समयांतर*, वर्ष 42. अंक 4 जनवरी.
- भट्टाचार्य, एस.एन. (1965). *महात्मा गांधी ए जनरलिस्ट*. मुंबई : एशिया पब्लिशिंग हाउस.
- भारती, एन.एस. (1997). *मेकिंग ऑफ ए ग्रेट कम्युनिकेटर गांधी*. दिल्ली: नेशनल मीडिया सेंटर.



जम्मू-कश्मीर में पत्रकारिता के इतिहासपुरुष : एक विवेचना

डॉ. विनीत उत्पल¹

सारांश

जम्मू-कश्मीर में पत्रकारिता का इतिहास काफी पुराना है। राज्य में पहली प्रिंटिंग प्रेस 'विद्या विलास प्रेस' की स्थापना डोगरा शासक ने वर्ष 1858 में बनारस के पंडित बंकट राम शास्त्री की मदद से की थी। कभी यह राज्य पंजाब रियासत का अंग होता था और इसकी राजधानी लाहौर हुआ करती थी। जम्मू-कश्मीर से जुड़े समाचार लाहौर से प्रकाशित होने वाले समाचार-पत्र और पत्रिकाएँ प्रकाशित करते थे और वहाँ के कई समाचार-पत्रों से जुड़कर जम्मू-कश्मीर के पत्रकार, लेखक और संपादक विभिन्न विषयों पर लिखा करते थे। वर्ष 1924 में महाराजा प्रताप सिंह ने लाला मुल्क राज सराफ को साप्ताहिक पत्र 'रणबीर' के प्रकाशन की अनुमति दी। वर्ष 1931 में महाराजा हरी सिंह ने प्रेस एवं प्रकाशन अधिनियम लागू किया, जिसके बाद से यहाँ समाचार पत्रों का प्रकाशन आसान हो गया। ऐसे में राज्य की सक्रिय पत्रकारिता में कुछ इतिहासपुरुष हुए जिन्होंने अपने दम पर राज्य के समाचारों को प्रकाशित किया, पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन किया और स्थानीय पत्रकारिता को राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर एक पहचान दी। प्रस्तुत शोध पत्र उन चुनिंदा ग्यारह पत्रकारों और संपादकों के पत्रकारिता जीवन पर आधारित है, जिन्होंने स्वतंत्रतापूर्व एवं स्वतंत्रोत्तर काल में जम्मू-कश्मीर की पत्रकारिता में अपनी एक अलग पहचान बनाई। शोध हेतु द्वितीयक स्रोतों यानी पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं, ऑनलाइन सामग्रियों का अध्ययन कर शोध चर्चा प्रस्तुत की गई है।

संकेत शब्द : जम्मू-कश्मीर की पत्रकारिता, लाला मुल्क राज सराफ, बलदेव प्रसाद शर्मा, ओपी सराफ, सतपाल साहनी, डी.सी. प्रशांत, सूरज सराफ, सनाउल्ला भट, लाला गोपाल सच्चर, बलराज पुरी, प्रेम नाथ जलाली, वेद भसीन.

प्रस्तावना

जम्मू-कश्मीर में पत्रकारिता का विकास केवल समाचार प्रकाशन नहीं है, बल्कि विचार, अभिव्यक्ति, संघर्ष और समाज परिवर्तन की यात्रा रहा है। इस क्षेत्र में मुद्रण-प्रकाशन की आधारशिला उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में तब रखी गई, जब 1858 में 'विद्या विलास प्रेस' की स्थापना हुई (खान एवं अन्य, 2024)। उस समय राज्य की राजनीतिक-सामाजिक संरचना, सीमित साधन-सुविधाएँ और कठोर प्रशासनिक प्रतिबंध पत्रकारिता के लिए बड़ी चुनौती थी, फिर भी कई इतिहासपुरुषों ने अपने साहस, लेखन और संगठनात्मक क्षमता से सार्वजनिक संवाद को न केवल संभव बनाया, बल्कि समृद्ध भी किया। लाला मुल्क राज सराफ, बी.पी. शर्मा, ओम प्रकाश सराफ, सतपाल साहनी, डी.सी. प्रशांत, वेद भसीन जैसे अनेक पत्रकारों ने जम्मू-कश्मीर की प्रेस परंपरा को नई दिशा दी। किसी ने समाचार पत्रों की शुरुआत की, किसी ने सत्याग्रह और सामाजिक आंदोलनों की पक्षधर पत्रकारिता को अपनाया, तो किसी ने फोटोग्राफी, साहित्य, प्रसारण और राजनीतिक सहभागिता के माध्यम से पत्रकारिता के नए आयाम स्थापित किए। इन पत्रकारों ने कठिन परिस्थितियों—राजशाही के प्रतिबंध, राजनीतिक अस्थिरता, भारत-पाक विभाजन और सीमित साधन—के बावजूद स्थानीय मुद्दों को राष्ट्रीय पटल पर पहुँचाने का काम निरंतर किया।

शोध उद्देश्य

- जम्मू-कश्मीर की पत्रकारिता के ऐतिहासिक विकास का विश्लेषण करना।
- जम्मू-कश्मीर की पत्रकारिता के बारह प्रमुख इतिहासपुरुषों, लाला मुल्क राज सराफ, बी.पी. शर्मा, ओम प्रकाश सराफ, सतपाल साहनी, डी.सी. प्रशांत, वेद भसीन आदि के जीवन, कार्य, विचारधारा, और योगदान का व्यवस्थित अध्ययन करना।

- यह जाँचना कि जम्मू-कश्मीर के पत्रकारों ने राजशाही शासन, राजनीतिक अस्थिरता, प्रतिबंधों, सेंसरशिप, विभाजन और सीमित संसाधनों के दौरान किस प्रकार पत्रकारिता को जीवंत रखा और जन-संवाद को एक दिशा दी।

शोध प्रविधि

यह अध्ययन गुणात्मक प्रकृति का है। इसमें ऐतिहासिक दस्तावेजीकरण और वर्णनात्मक विश्लेषण का उपयोग किया गया है। यह अध्ययन जम्मू-कश्मीर के ग्यारह प्रमुख पत्रकारों के जीवन, कार्य, योगदान और ऐतिहासिक संदर्भों का अध्ययन प्रस्तुत करता है, जिन्होंने स्वतंत्रता पूर्व और स्वतंत्रता के बाद भी पत्रकारिता को न सिर्फ जीवंत रखा, बल्कि आगामी पीढ़ियों के लिए दिशा-सूचक मानक भी स्थापित किए। अध्ययन पूर्णतः द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है। इसके लिए पुस्तकें और शोध कार्य, समाचार-पत्र और पत्रिकाएँ, जीवनी, स्मरण-ग्रंथ, स्मारक प्रकाशन, ऑनलाइन आर्काइव, वेब-सोर्स, डिजिटल लाइब्रेरी, सरकारी रिपोर्ट का अध्ययन किया गया। साथ ही, पाठ्य सामग्री का विषयानुसूल विश्लेषण किया गया है। इसके तहत प्रत्येक पत्रकार के जीवन, कार्य, चुनौतियों और योगदान से जुड़े विषयों की पहचान की गई है और उसका विश्लेषण किया गया। चूँकि उपलब्ध जानकारी का अधिकांश भाग द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है, इस कारण कई ऐतिहासिक पहलुओं की प्रामाणिकता स्रोतों पर निर्भर है।

लाला मुल्कराज सराफ : जम्मू-कश्मीर में पत्रकारिता के पितामह

आठ अप्रैल, 1894 को जम्मू-कश्मीर के सांबा में जन्मे लाला मुल्कराज सराफ जम्मू-कश्मीर की पत्रकारिता में इतिहासपुरुष के रूप में जाने जाते हैं। उन्हें जम्मू-कश्मीर में 'पत्रकारिता का पितामह' कहा जाता है (सराफ, 2024)। उन्होंने तत्कालीन प्रिंस ऑफ वेल्स कॉलेज (अब गवर्नमेंट गांधी

¹सहायक प्राध्यापक, भारतीय जन संचार संस्थान, उत्तरी क्षेत्रीय परिसर, जम्मू. ईमेल : vinitutpal@gmail.com

मेमोरियल कॉलेज) जम्मू से स्नातक की उपाधि प्राप्त की थी, जहाँ उन्होंने वर्ष 1915 में पहली बार कॉलेज पत्रिका 'तवी' में आलेख लिखा। उन्होंने लाहौर से प्रकाशित कश्मीरी पत्रिका के लिए भी कई बार उसी दौरान आलेख लिखा। प्रमोद कुमार (2022) लिखते हैं कि लाला लाजपत राय की पत्रकारिता से प्रभावित होकर उन्होंने उनके प्रसिद्ध दैनिक समाचार पत्र 'वंदे मातरम्' से उप-संपादक के रूप में अपनी पत्रकारिता की शुरुआत की थी।

मुल्कराज सराफ की इच्छा जम्मू-कश्मीर की तत्कालीन रियासत में एक समाचार पत्र शुरू करने की थी। इसके लिए उन्होंने तत्कालीन शासक प्रताप सिंह से अनुरोध किया। तीन साल बाद उन्हें समाचार-पत्र प्रकाशन करने की अनुमति मिली और 24 अप्रैल, 1924 को उर्दू भाषा में साप्ताहिक समाचार पत्र 'रणबीर' का प्रकाशन शुरू हुआ। मुल्कराज सराफ ने अखबार का शीर्षक 'पहाड़ी' और प्रेस का शीर्षक 'डोगरा प्रेस' रखने का विचार किया था, लेकिन समाचार पत्र का शीर्षक 'रणबीर' और प्रिंटिंग प्रेस का नाम 'पब्लिक प्रिंटिंग प्रेस' रखा गया। आनंद (1967) द्वारा संपादित पुस्तक 'कमेमोरिटिवे वॉल्यूम में' मुल्कराज सराफ लिखते हैं कि महज संयोग था कि यह नाम महाराजा रणबीर सिंह के नाम से मिलता-जुलता था, जो महाराजा गुलाब सिंह के बेटे थे और जिन्होंने जम्मू-कश्मीर राज्य की स्थापना की थी। वे महाराजा प्रताप सिंह के पिता थे। वास्तव में 'रणबीर' का सही नाम 'रणवीर' था और जिसका अर्थ होता है 'युद्ध जीतने वाला'। इसके प्रकाशन के लिए प्रताप सिंह ने प्रतिवर्ष 100 रुपये और राजा हरि सिंह ने 50 रुपये प्रतिवर्ष आर्थिक सहायता प्रदान की थी। 'रणबीर' की विज्ञापन दर पहली बार प्रति पंक्ति डेढ़ रुपये और बाद में प्रति पंक्ति एक रुपये थी। रणबीर के पहले अंक में तीन पृष्ठ विज्ञापन थे।

सन् 1930 में जब महात्मा गांधी ने पूरे देश में सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू किया और ऐतिहासिक दांडी मार्च की यात्रा शुरू की तो जम्मू-कश्मीर में भी स्वतःस्फूर्त हड़ताल का आयोजन हुआ और जुलूस निकाले गए। उस वक्त यूरोपीय टोपी पहने गधे का जुलूस, विदेशी कपड़े की होली और ब्रिटिश अधिकारी वेकफील्ड के साथ अपमानजनक व्यवहार किया गया, जिसका विवरण अगले दिन 'रणबीर' ने प्रकाशित किया। इस कारण तत्कालीन शासक ने 'रणबीर' के प्रकाशन को बंद करने का आदेश दिया (कुमार, 2022)। इसके बाद सराफ ने लाहौर से 'अमर' और 'मशीर' नामक समाचार-पत्र का प्रकाशन शुरू किया। करीब 18 महीने से अधिक समय के बाद फिर 13 नवंबर, 1931 को 'रणबीर' को पुनः प्रकाशन की अनुमति मिली।

मुल्कराज सराफ ने दिसंबर 1934 में बच्चों की मासिक पत्रिका 'रतन' का प्रकाशन शुरू किया। देश के विभाजन के कारण 'रतन' के प्रकाशन की व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गई और इसका अंतिम प्रकाशन सितंबर, 1947 में हुआ। 27 जनवरी, 1941 से रणबीर पत्रिका का अंतिम पृष्ठ हिंदी में प्रकाशित होने लगा, लेकिन पाठकों ने इस पहल को प्रोत्साहित नहीं किया। इस कारण हिंदी परिशिष्ट बंद कर दिया गया। 30 अगस्त, 1943 से 'रणबीर' को सप्ताह में दो दिन प्रकाशित किया जाने लगा। एक दिसंबर 1946 को रणबीर दैनिक रूप में प्रकाशित होने लगा। इसी वर्ष ईस्ट इंडिया कंपनी और महाराजा गुलाब सिंह के बीच अमृतसर संधि का शताब्दी वर्ष मनाया गया और 'रणबीर' का 'जम्मू और कश्मीर विश्वकोश' शीर्षक से एक विशेष अंक भी प्रकाशित हुआ (कुमार, 2022)।

सराफ (2024) के अनुसार लाला मुल्कराज सराफ जम्मू-कश्मीर के

भारत में विलय के हिमायती थे। इस कारण 'रणवीर' में इससे संबंधित बातें हमेशा प्रकाशित होती थीं। वर्ष 1947 में इसे फिर से बंद करने का आदेश दिया गया। इस संदर्भ में महात्मा गांधी ने जुलाई 1947 में श्रीनगर में महाराजा से मुलाकात की। भारत के स्वतंत्र होते ही राज्य के अधिकारियों में बदलाव हुआ और 26 अगस्त, 1947 को रणबीर के प्रकाशन पर रोक लगाने का आदेश वापस लिया गया। इसका प्रकाशन 10 सितंबर, 1947 को दोबारा शुरू हुआ और अंतिम प्रकाशन 18 मई, 1950 को हुआ। सन् 1976 को मुल्कराज सराफ को पद्मश्री से सम्मानित किया गया। उनका निधन 21 फरवरी, 1989 को 94 वर्ष की आयु में मुंबई में हुआ।

प्रेम नाथ बजाज: कश्मीर से निकाला पहला उर्दू समाचार पत्र

जम्मू-कश्मीर के श्रीनगर से उर्दू भाषा में निकलने वाले पहले समाचार-पत्र 'वितास्ता' के प्रकाशन का श्रेय प्रेम नाथ बजाज को जाता है। उनका जन्म 13 जुलाई, 1905 को श्रीनगर में एक कश्मीरी ब्राह्मण परिवार में हुआ था। सन 1922 में कॉलेज में दाखिला लेने के बाद उन्होंने लाहौर के अखबार 'अखबार-ए-अलान', 'सूबा-ए-कश्मीर' और 'रांडर्स पॉलिटिक्स' में आलेख लिखना शुरू किया। उनकी शुरुआती शिक्षा कश्मीर के एस.पी. कॉलेज में हुई। उन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय से स्नातक की उपाधि प्राप्त की।

अगस्त 1930 में कश्मीरियों को एकजुट करने के लिए बजाज ने 'युवक सभा' की स्थापना की। साथ ही, कश्मीर की पहली राजनीतिक पार्टी मुस्लिम कांफ्रेंस के लिए भी कार्य करना शुरू किया (घोष, 2017)। उन्होंने कश्मीर से पहला समाचार पत्र 'वितास्ता' 31 अक्टूबर, 1932 को शुरू किया (अहमद, 2019)। वर्ष 1935 में प्रेम नाथ बजाज ने शेख अब्दुल्ला के सहयोग से 'विस्ताता' का नाम बदलकर साप्ताहिक समाचार-पत्र 'हमदर्द' शुरू किया। यह समाचार पत्र वर्ष 1953 में दैनिक में परिवर्तित हो गया। इस पत्र में प्रेम नाथ बजाज, महात्मा गांधी और पंडित जवाहरलाल नेहरू के बीच होने वाला पत्राचार प्रकाशित होता था। माना जाता है कि यह समाचार-पत्र ऑल जम्मू-कश्मीर मुस्लिम कांफ्रेंस का मुखपत्र था। इस पत्र ने वर्ष 1938 में राज्य विधानसभा चुनाव में पार्टी के लिए खुलेआम प्रचार किया था। 19 मार्च, 1938 से लेकर जुलाई, 1938 तक यह समाचार-पत्र पांच पृष्ठ का प्रकाशित होता था। यह पत्र भारत की स्वतंत्रता और राष्ट्रीयता के पक्ष में था, लेकिन डोगरा शासन के खिलाफ था।

प्रेम नाथ बजाज को मुस्लिम कांफ्रेंस को नेशनल कांफ्रेंस में बदलने की योजना बनाने वाले व्यक्ति के तौर पर भी जाना जाता है। इसका परिणाम वर्ष 1939 में मुस्लिम कांफ्रेंस के नेशनल कांफ्रेंस में रूपांतरण के रूप में सामने आया। सन 1941 में शेख अब्दुल्ला और प्रेम नाथ बजाज दोनों ने 'हमदर्द' के संयुक्त प्रकाशक से खुद को दूर कर लिया और बाद में बजाज अब्दुल्ला के खिलाफ हो गए (ब्राइटर कश्मीर, 2019)। प्रेम नाथ बजाज 'हमदर्द' के मुख्य संपादक और प्रकाशक बन गए। उन्होंने शेख अब्दुल्ला के खिलाफ अपने संपादकीय में जमकर लिखा।

गौरतलब है कि अगस्त 1938 से लेकर मई 1939 तक 'हमदर्द' प्रेस बंद रहा क्योंकि प्रेम नाथ बजाज को नौ महीने जेल की सजा हुई थी। वर्ष 1947 में उनकी नज़रबंदी और वर्ष 1950 में रिहाई के बाद उनके निर्वासन के कारण यह उर्दू दैनिक बंद हो गया। 1960 के दशक में वे कश्मीर में

भारतीय शासन के पक्षधर हो गए। वर्ष 1975 में अब्दुल्ला-इंदिरा समझौते के बाद वे मीरवाइज फारुक की अवामी एक्शन कमिटी और मोहि-उद-दीन कारा के पोलिटिकल कांफ्रेंस के साथ मोरारजी देसाई के नेतृत्व वाली जनता पार्टी के साथ जुड़ गए (बेग, 2017)।

प्रेम नाथ बजाज ने 'इनसाइड कश्मीर' (1942), 'आज़ाद कश्मीर' (1951), 'द हिस्ट्री ऑफ़ स्ट्रगल फ़ॉर फ़्रीडम इन कश्मीर' (1954), डॉटर्स ऑफ़ वितासा: ए हिस्ट्री ऑफ़ कश्मीरी वुमेन (1959), कश्मीर इन क्रूसिबल (1967), डेमोक्रेसी थ्रू इंटिमीडेशन एंड टेरर (1978) जैसी पुस्तकें भी लिखी। वर्ष 1977 में वे जनता पार्टी में शामिल हुए। 5/6 जुलाई, 1984 की मध्य रात्रि में बजाज ने अंतिम सांस ली।

बलदेव प्रसाद शर्मा : जम्मू-कश्मीर के सबसे बुजुर्ग कार्यरत पत्रकार

बलदेव प्रसाद शर्मा यानी बी.पी. शर्मा जम्मू-कश्मीर के एकमात्र ऐसे पत्रकार थे, जिन्हें 92 वर्ष की आयु में सबसे बुजुर्ग कार्यरत पत्रकार बनने के लिए लिम्का बुक ऑफ़ रिकॉर्ड्स में सूचीबद्ध किया गया। एक जनवरी, 1909 को श्रीनगर के बोरी में जन्मे बी.पी. शर्मा ने अपना पत्रकारिता जीवन 1927 में तब शुरू कर दिया था, जब वे श्रीनगर में दसवीं कक्षा के छात्र थे। उन्होंने अपना पहला समाचार 'रणबीर' में लिखा था और उनकी आयु तब 17 वर्ष थी। उन्होंने अपनी स्कूली शिक्षा श्री प्रताप हाई स्कूल, श्रीनगर से पूरी की और फिर उच्च शिक्षा के लिए श्री प्रताप कॉलेज, श्रीनगर में दाखिला लिया। उन्होंने 1931 में पंजाब विश्वविद्यालय, लाहौर से प्रथम श्रेणी में स्नातक की उपाधि प्राप्त की।

कश्मीर रिकार्ड्स (2023) के मुताबिक, 24 सितंबर, 1934 को श्रीनगर से साप्ताहिक समाचार पत्र 'कश्मीर टाइम्स' से जुड़े और इसके लिए उन्होंने 88 वर्ष की आयु के बाद भी लेखन किया। 25 वर्ष की आयु में वे उन छह ब्रिटिश और स्थानीय पत्रकारों में सबसे कम उम्र के थे, जिन्हें 1934 में जम्मू-कश्मीर की पहली प्रजा सभा (निर्वाचित विधानसभा) की कार्यवाही को कवर करने के लिए आमंत्रित किया गया था। उन्हें शेख अब्दुल्ला का करीबी माना जाता था, जिसके परिणामस्वरूप राज्य में सत्ता परिवर्तन के बाद उन्हें 9 अगस्त, 1953 को श्रीनगर में शेख अब्दुल्ला के साथ गिरफ्तार कर लिया गया था। रिहाई के बाद उन्होंने बख्शी शासन में कार्य करने से इनकार कर दिया और कोलकाता स्थित ऑल इंडिया रेडियो में अपनी सेवाएँ देनी शुरू की।

बी.पी. शर्मा को जम्मू में रेडियो कश्मीर (ऑल इंडिया रेडियो) स्थापित करने का श्रेय जाता है और वे इसके पहले निदेशक थे। इसकी स्थापना 1947 में पाकिस्तानी दुष्प्रचार का मुकाबला करने के लिए की गई थी। उन्होंने अपना पत्रकारिता जीवन 'रॉयटर्स', 'टाइम्स ऑफ़ इंडिया', 'हिंदुस्तान टाइम्स' और 'द ट्रिब्यून' के साथ बिताया। बी.पी. शर्मा तत्कालीन जम्मू-कश्मीर एवं लद्दाख राज्य के प्रधान सूचना अधिकारी भी बने। वर्ष 1966 में सेवानिवृत्त होने से पहले उन्होंने भोपाल, इंदौर और अंततः जम्मू में कार्य किया (श्रीवास्तव, 2013)।

सेवानिवृत्ति के बाद उन्हें जम्मू-कश्मीर में क्षेत्रीय सर्वेक्षण संगठन (PSO) का निदेशक नियुक्त किया गया और इस बीच उन्होंने सूचना एवं जनसंपर्क निदेशक का कार्यभार भी संभाला। 1975 के बाद से उन्होंने अपना पूरा समय शोध कार्यों में लगा दिया। उन्होंने अपना ज्यादातर समय राज्य अभिलेखागार में बिताया और डोगरी भाषा सहित राज्य के ऐतिहासिक

तथ्यों से जुड़े बहुमूल्य दस्तावेज एकत्र किए। जम्मू-कश्मीर के पूर्व मुख्यमंत्री फारुक अब्दुल्ला ने उन्हें मंत्री स्तर का दर्जा दिया था, क्योंकि उन्होंने वर्ष 1947 में तत्कालीन रियासत के महाराजा हरि सिंह द्वारा भारत के साथ जम्मू और कश्मीर राज्य के विलय से संबंधित खोए हुए दस्तावेजों का पता लगाने में मदद की थी। बीपी शर्मा ने ही इस बात को साबित किया कि पहला समाचार पत्र 1867 में जम्मू से शुरू किया गया था, जिसका नाम था 'विद्या विलास'। यह एक द्विभाषी साप्ताहिक समाचार पत्र था, जिसमें प्रति पृष्ठ दो कॉलम होते थे, एक आधा हिंदी में और दूसरा आधा उर्दू में। इसके संपादक वेंकटराम शास्त्री थे। यह एक साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संस्था 'विद्या विलास सभा' की पत्रिका थी, जिसके संरक्षक स्वयं महाराजा रणबीर सिंह थे (शर्मा, 2025)।

कई वर्षों तक साहित्य अकादमी के सदस्य के रूप में उन्होंने डोगरी भाषा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। वे डोगरी शोध संस्थान के अध्यक्ष भी थे। उन्हें जम्मू-कश्मीर का चलता-फिरता विश्वकोश कहा जाता था। बी.पी. शर्मा ने 'द स्टाम्प्स ऑफ जम्मू एंड कश्मीर' पुस्तक के प्रकाशन में भी योगदान दिया, जिसे कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय बर्कले के प्रोफेसर फ्रिट्स स्टाल ने लिखा था और 1983 में न्यूयॉर्क कलेक्टर्स क्लब द्वारा प्रकाशित किया गया था। पुस्तक में डोगरा शासकों के आधीन डाक प्रणाली के बारे में लेखों की एक शृंखला है। 23 जनवरी, 2005 को उनका स्वर्गवास हो गया।

ओम प्रकाश सराफ : पत्रकारिता से राजनेता तक

3 मई, 1922 को सांबा जिले में जन्मे ओम प्रकाश सराफ जम्मू-कश्मीर के सिर्फ एक पत्रकार ही नहीं, बल्कि राजनेता और अकादमिक विद्वान भी थे। बी.ए. की पढ़ाई करने के बाद उन्होंने पत्रकारिता की राह चुनी। उन्होंने कई दशकों तक पत्रकारिता के साथ-साथ राजनीति में एक साथ कार्य किया। वे अपने पिता लाला मुल्कराज सराफ की पत्रकारिता से काफी प्रभावित थे और उनके साथ रहकर उन्होंने पत्रकारिता की बारीकियाँ सीखीं। उनके साथ रहकर उन्होंने अपने पिता की पत्रकारिता को आगे बढ़ाया। वे पीर पंजाल की पहाड़ी के दोनों तरफ यानी जम्मू और कश्मीर दोनों इलाकों में आम लोगों के बीच काफी लोकप्रिय थे।

ओम प्रकाश सराफ तमाम उम्र विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं एवं समाचार एजेंसियों के साथ कार्य करते रहे। रोहिमित्रा (2025) लिखते हैं कि वे वर्ष 1938 से वर्ष 1947 तक बच्चों की पत्रिका 'रतन' के संयुक्त संपादक रहे। वर्ष 1942 से वर्ष 1950 तक 'रणबीर' के समाचार संपादक रहे। वर्ष 1931 में 'तेज' के संवाददाता और वर्ष 1942 में 'मिलाप' से जुड़े। वर्ष 1950 के शुरुआती दिनों में 'अमृत बाजार पत्रिका' के लिए पत्रकारिता की और वर्ष 1958 से वर्ष 1960 तक एजेंसी फ्रांस प्रेस (एफपी), वर्ष 1963-1965 तक 'रॉयटर्स' के लिए कार्य किया। बाद में वर्ष 1967 में यूएनआई, 1968-1970 तक हिंदुस्तान टाइम्स और ट्रिब्यून के लिए कार्य किया।

सुरेशचंद्र (2021) लिखते हैं, 'रणबीर जम्मू-कश्मीर का पहला अखबार था, जिसे शेख अब्दुल्ला ने अपनी स्वतंत्र नीति के लिए प्रतिबंधित कर दिया था, इस तथ्य के बावजूद कि ओम प्रकाश सराफ नेशनल कॉन्फ्रेंस के संस्थापक सदस्यों में से एक थे।' पुष्प सराफ (2021) ने अपने पिता को लेकर लिखा है, "सबसे महत्वपूर्ण सबक जो हमने उनसे सीखा वह शिक्षा के उद्देश्य के बारे में था। वे अपने इस विश्वास को रेखांकित करने के लिए अक्सर महात्मा गांधी को उद्धृत किया करते थे कि भौतिकवादी गतिविधियों

की ओर जाने के बजाय मन की मुक्ति की तलाश करनी चाहिए। उन्होंने नैतिकता का उपदेश नहीं दिया, बल्कि व्यक्तिगत आचरण और कार्यों से उदाहरण स्थापित किए...अपने युवा दिनों में मैंने श्रीनगर में उनसे पत्रकारिता की पहली शिक्षा ली, जहाँ मैंने अपनी स्नातक की डिग्री प्राप्त की।”

शर्मा (2017) लिखते हैं कि ओम प्रकाश सराफ का व्यापक राजनीतिक जीवन भी था। वे नेशनल कानफ्रेंस के संस्थापक सदस्यों में से एक थे। वे जम्मू-कश्मीर में जनता पार्टी के संस्थापक थे। वर्ष 1954 से 1964 तक जम्मू एवं कश्मीर में प्रजा सोशलिस्ट परिषद् के जम्मू-कश्मीर के प्रांत अध्यक्ष रहे और जमकर राज्य की राजनीति की। उन्होंने कश्मीर के अमीराकदल से विधानसभा चुनाव लड़ा और 1977 में जयप्रकाश नारायण (जेपी) के कहने पर उधमपुर लोकसभा से चुनाव भी लड़ा। वे 1975 से 1981 तक एमएलसी रहे और 1975-1976 में जम्मू एंड कश्मीर कोऑपरेटिव स्प्लाइ एंड मार्केटिंग फेडरेशन लिमिटेड (जेएफएफईडी) के अध्यक्ष भी रहे।

ओम प्रकाश सराफ अकादमिक लेखन भी किया करते थे और उन्होंने जम्मू-कश्मीर से जुड़े विभिन्न विषयों पर कई आलेख भी लिखे हैं। वह चाहे अनुच्छेद-370 हो या फिर यहाँ की राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था, वे अपनी स्वतंत्र लेखनी के जरिये विभिन्न मुद्दों को सरकार और लोगों के सामने लाते रहे। 25 नवंबर, 2017 को जम्मू में उनका देहांत हो गया और उनकी इच्छा के मुताबिक परिवार ने जम्मू गवर्नमेंट मेडिकल कॉलेज को देह दान कर दिया, जो जम्मू-कश्मीर के इतिहास में दर्ज है।

सतपाल साहनी : पत्रकारिता के साथ फोटोग्राफी में माहिर

वर्ष 1922 में पाकिस्तान के रावलपिंडी में जन्मे सतपाल साहनी एक पत्रकार, लेखक के साथ-साथ फोटोग्राफर भी रहे। उन्होंने अपनी स्कूली शिक्षा लाहौर के सेक्रेड हार्ट स्कूल सहित श्रीनगर के मिशन स्कूल, शेख बाग और एस.पी. हाईस्कूल, श्रीनगर से की और एस.पी. कॉलेज श्रीनगर से स्नातक की उपाधि प्राप्त की। वह स्कूल हॉकी इलेवन के सदस्य थे और लाहौर के वाल्टन में अखिल भारतीय जंबूरी के लिए जम्मू-कश्मीर के पहले स्काउट दल का हिस्सा थे।

स्कूपन्यूज (2017) के मुताबिक साहनी में शुरू से ही लेखन के प्रति रुचि थी और वे कॉलेज की अंग्रेजी पत्रिका के संपादक बने। वे कॉलेज की अन्य गतिविधियों में भी बहुत सक्रिय रहे, जिनमें खेल, साहित्यिक कार्य, छात्र संघ की गतिविधियाँ आदि शामिल थीं और वे कश्मीर लिटरेरी सोसाइटी के दो महासचिवों में से एक बने। वे अखिल भारतीय छात्र संघ से जुड़े थे और 1939 से 1943 तक इसकी जम्मू-कश्मीर शाखा के महासचिव रहे। अगस्त 1947 में महात्मा गांधी की कश्मीर यात्रा के दौरान उनके स्थानीय सचिव होने का उन्हें गौरवपूर्ण अनुभव था।

उन्होंने अपने पत्रकारिता करियर की शुरुआत वर्ष 1948 में श्रीनगर से ‘टाइम्स ऑफ इंडिया’ के संवाददाता के रूप में की। साहनी देश के उन गिने-चुने पत्रकारों में एक थे, जिन्हें पत्रकारिता की लगभग सभी विधाओं में महारत हासिल थी। साहनी संभवतः एकमात्र विशेषाधिकार प्राप्त फोटो पत्रकार थे, जिन्हें पंडित जवाहरलाल नेहरू से संपर्क करने की पूरी सुविधा थी। वे मई 1948 में अपनी पहली यात्रा से लेकर अक्टूबर 1963 में अपनी अंतिम यात्रा तक, कश्मीर की अपनी सभी यात्राओं के दौरान काम के दौरान, आराम करते समय और निजी पलों के दौरान उनकी तस्वीरें लेते थे। इस वादे पर कि वे इन तस्वीरों का इस्तेमाल उनकी अनुमति के बिना नहीं करेंगे, जिसे

उन्होंने जीवन भर पूरी निष्ठा से निभाया। उन्होंने पर्यटन स्थलों को बढ़ावा देने के लिए जम्मू-कश्मीर के लगभग सभी दुर्गम इलाकों के अलावा देश के अन्य हिस्सों और विदेशों की यात्राएँ कीं। राज्य में लड़ाख पर्यटन को एक स्वतंत्र गंतव्य और साहसिक पर्यटन के रूप में बढ़ावा देने में उनका बहुत बड़ा योगदान है।

व्हाइटहेड (2005) लिखते हैं कि वर्ष 1990 के दशक की शुरुआत में कश्मीर में पाकिस्तान प्रायोजित आतंकवाद की शुरुआत के कारण सतपाल साहनी को श्रीनगर भारी मन से छोड़ना पड़ा था। उन्होंने अपने जीवन से भी ज्यादा लाखों फोटो नेगेटिव, स्लाइड आदि के अपने अनमोल संग्रह की विशेष देखभाल की, जिन्हें जम्मू लाया गया था, जहाँ उन्होंने अपना शेष जीवन बिताया। युद्ध संबंधी तस्वीरों और अन्य सामग्रियों का उनका दुर्लभ संग्रह महाराजा रणजीत सिंह युद्ध संग्रहालय, लुधियाना में प्रदर्शित है।

छह दशकों से अधिक के कैरियर में सतपाल साहनी ने गहरी निष्ठा से पत्रकारिता की। प्रेस क्लब जम्मू की वेबसाइट के अनुसार उन्होंने चार प्रमुख युद्धों 1948, 1962, 1965 और 1971 को कवर किया था। उन्होंने जम्मू-कश्मीर के यात्रा वृत्तांत से लेकर केंद्र-राज्य संबंधों और नेहरू के कश्मीर तक, विविध विषयों पर पाँच पुस्तकें लिखीं। उन्होंने फारूक अब्दुल्ला के शासनकाल में सूचना महानिदेशक के रूप में भी कार्य किया। एस.पी. साहनी जम्मू प्रेस क्लब की पत्रकार कल्याण निधि समिति के अध्यक्ष भी रहे। सतपाल साहनी की याद में इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन (आईपीए) हर वर्ष व्याख्यानमाला का आयोजन करता है।

डी.सी. प्रशांत : सड़क से संसद तक पत्रकारिता

डी.सी. प्रशांत यानी धर्मचंद प्रशांत जम्मू-कश्मीर के समर्पित पत्रकार थे। अप्रैल 1923 में जन्में डी.सी. प्रशांत ने प्रिंस ऑफ वेल्स कॉलेज, जम्मू और सनातन धर्म कॉलेज, लाहौर से शिक्षा प्राप्त की थी। उन्होंने अपना करियर जम्मू विश्वविद्यालय से पत्रकारिता के लेक्चरर के रूप में शुरू किया। वे जम्मू प्रेस क्लब, कश्मीर यूनियन ऑफ जर्नलिस्ट, डोगरा संस्था, हिंदी साहित्य मंडल और हिंदी प्रचारिणी सभा के अध्यक्ष भी रहे (राज्य सभा, 2013)।

उत्पल (2024) लिखते हैं कि डी.सी. प्रशांत अपने पूरे करियर में चाहे एक पत्रकार के रूप में या राज्यसभा सदस्य के रूप में, पत्रकारिता के सिद्धांतों और समाज की भलाई के लिए गहराई से प्रतिबद्ध रहे। उन्होंने 1946 में लाहौर से अपना पत्रकारिता करियर शुरू किया और भारत की आजादी तक एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडिया (एपीआई) के साथ काम करना जारी रखा। वर्ष 1947 में वे प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया (पीटीआई) में शामिल हो गए। उन्होंने कोलकाता स्थित हिंदुस्तान स्टैंडर्ड के दिल्ली संस्करण के ब्यूरो प्रमुख के रूप में भी काम किया। वर्ष 1989 में उन्होंने उदारतापूर्वक अपने घर के दो कमरे ‘द ट्रिब्यून’ अखबार को देने की पेशकश की और जम्मू कश्मीर जर्नलिस्ट एसोसिएशन की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

डी.सी. प्रशांत ने अप्रैल 1982 से अप्रैल 1988 तक जम्मू-कश्मीर राज्य का प्रतिनिधित्व राज्यसभा में किया और मीडिया से जुड़े मुद्दे हमेशा संसद में उठाते रहे। 13 जुलाई, 1982 को उन्होंने संसद के उच्च सदन में स्थानीय रेडियो स्टेशनों पर कश्मीरी और डोगरी कार्यक्रमों के लिए आवंटित समय के बारे में सरकार से सवाल किया। प्रशांत ने पूछा, ‘रेडियो कश्मीर, जम्मू द्वारा कश्मीरी कार्यक्रम को एक सप्ताह में और रेडियो कश्मीर, श्रीनगर द्वारा डोगरी कार्यक्रम को कितना समय आवंटित किया जाता है?’ इस सवाल

का सरकार ने जवाब दिया था कि रेडियो कश्मीर, जम्मू, हर हफ्ते कश्मीरी में दो 15 मिनट के कार्यक्रम प्रसारित कर रहा था, जबकि रेडियो कश्मीर, श्रीनगर, डोगरी संगीत का साप्ताहिक 15 मिनट का कार्यक्रम पेश कर रहा था। हालाँकि, अमृतसर-जालंधर और श्रीनगर में टेलीविजन स्टेशनों पर प्रति सप्ताह केवल 15 मिनट की डोगरी प्रोग्रामिंग थी और छठी पंचवर्षीय योजना के दौरान जम्मू में एक टेलीविजन केंद्र के लिए कोई योजना नहीं थी (उत्पल, 2024)।

20 नवंबर, 1987 को प्रशांत ने सातवीं योजना अवधि के दौरान जम्मू क्षेत्र में आकाशवाणी और दूरदर्शन इकाइयों के विस्तार की योजना के बारे में पूछताछ की। सरकार ने खुलासा किया कि ऑल इंडिया रेडियो का इरादा भद्रवाह और कठुआ में नए रेडियो स्टेशन स्थापित करने के साथ-साथ जम्मू ट्रांसमीटर को 50 किलोवाट से 300 किलोवाट तक अपग्रेड करने का है।

डी.सी. प्रशांत इस बात से हैरान थे कि भारत में सभी रेडियो स्टेशनों को 'ऑल इंडिया रेडियो' के रूप में क्यों जाना जाता है, जबकि उनके गृह राज्य में रेडियो स्टेशन को 'रेडियो कश्मीर' कहा जाता था। उन्होंने संसद में सरकार से सीधे सवाल कर इस मामले पर सफाई माँगी। 11 मार्च, 1988 को उन्होंने पूछा, "क्या यह सच है कि जम्मू में ऑल इंडिया रेडियो स्टेशन को आधिकारिक तौर पर 'रेडियो कश्मीर, जम्मू' कहा जाता है, जबकि भारत में अन्य रेडियो स्टेशनों को 'ऑल इंडिया रेडियो' या 'आकाशवाणी' के नाम से जाना जाता है? क्या यह नाम राज्य सरकार द्वारा 1948 में दिया गया था, जब यह राज्य के नियंत्रण में था? यदि हाँ, तो क्या सरकार अब नाम बदलने की योजना बना रही है, क्योंकि यह 1954 से केंद्र सरकार के नियंत्रण में है?" (उत्पल, 2024)। डी.सी. प्रशांत एक बहुमुखी नेता थे, जिन्होंने राज्य के रेडियो स्टेशनों के कर्मचारियों की भलाई के लिए बहुत चिंता व्यक्त की। उन्होंने रेडियो कश्मीर, श्रीनगर और जम्मू के समाचार कक्षों में कर्मचारियों के स्तर पर सवाल उठाए। जवाब में, सूचना और प्रसारण मंत्री वसंत साठे ने निम्नलिखित जानकारी साझा की: रेडियो कश्मीर, जम्मू में पाँच कर्मचारी थे, जबकि रेडियो कश्मीर, श्रीनगर में अठारह थे। 28 अगस्त, 2013 को उनका निधन जम्मू में हुआ (एक्सेलसियर, 2013)।

सूरज सराफ : पत्रकारिता के साथ इतिहास के ज्ञाता

24 जून, 1924 को पाकिस्तान के लावलपुर में जन्मे सूरज सराफ ने जम्मू-कश्मीर में पत्रकारिता के क्षेत्र में अपनी अलग पहचान कायम की। उन्होंने पत्रकार होने के साथ-साथ एक इतिहासकार की भी भूमिका निभाई और अपनी लेखनी से पाठकों को क्षेत्र की तमाम विशेषताओं से अवगत कराया। जम्मू के प्रिंस ऑफ वेल्स कॉलेज (अब जीजीएम साइंस कॉलेज) से बीएससी की उपाधि प्राप्त करने के बाद सूरज सराफ ने पंजाब विश्वविद्यालय, लाहौर से एलएलबी उत्तीर्ण की और कुछ समय के लिए वकालत भी की। सराफ (2025) के अनुसार वकालत के दौरान उन्हें लगा कि वह इस कार्य के लिए उपयुक्त नहीं हैं और उन्हें अपने कार्य के दौरान झूठ बोलना पड़ता है। इसलिए उन्होंने सत्य उजागर करने के लिए पत्रकारिता का दामन थामा। वे पूरी जिंदगी स्वतंत्र पत्रकारिता करते हुए सदैव लीक से हटकर पत्रकारिता करते रहे और समाज के विभिन्न पहलुओं को उजागर करते रहे। उन्होंने वर्ष 1947 से 1950 तक 'रणबीर' में बतौर असिस्टेंट एडिटर कार्य किया।

वर्मन (2018) के मुताबिक वर्ष 1965 में जम्मू-कश्मीर सरकार ने सूरज सराफ को जनसंपर्क अधिकारी के रूप में नियुक्त किया। वर्ष 1977

के बाद से लेकर उन्होंने अपने अंतिम साँस तक कई स्थानीय और राष्ट्रीय दैनिक समाचार पत्रों का प्रतिनिधित्व किया। इनमें 'टाइम्स ऑफ इंडिया', 'हिंदू', 'द ट्रिब्यून' के साथ संवाददाता के रूप में काम करना शामिल है। वे पत्रकारिता के साथ-साथ फोटोग्राफर, लेखक और अपने समय के इतिहासकार भी थे। उन्होंने कलाकारों, लेखकों और अन्य ऐसी ही हस्तियों के जीवन और कृतियों पर लेखन किया है, जिनके बारे में उस दौर में कोई लिखने की सोचता भी नहीं था। उन्होंने जम्मू-कश्मीर के बारे में संस्कृति और अन्य ऐतिहासिक आँकड़ों से संबंधित तथ्यों की जाँच करने के बाद 'जम्मू हेरिटेज' नामक पुस्तक लिखी।

'जम्मू हेरिटेज' नामक अपनी पुस्तक में उन्होंने जम्मू शहर, रघुनाथ मंदिर, मुबारक मंडी, शिव गुफा मंदिर, बाहु किला, झिरी मेला, पुरमंडल-उत्तरवाहिनी, मानसर-सनासर, क्रिमची मंदिर, अखनूर, बिलावर, महोर गढ़, बसोली, रामनगर, शूद महादेव, सुकराला देवी, वैष्णो देवी, सनासर, पुंछ, किशतवाड़, भद्रवाह, डोगरा लोक नृत्य, लघु मूर्तियों सहित कला-शिल्प, पर्यटन स्थल और मेले-त्योहार आदि पर आलेख लिखे हैं। वर्मन (2018) लिखते हैं, "सूरज सराफ ने क्षेत्र के पर्यटन, कला और संस्कृति के विभिन्न पहलुओं पर काम किया और इसे किताबों की शक्ल दी। संस्कृति के विभिन्न पहलुओं और क्षेत्र के अन्य ऐतिहासिक तथ्यों पर काम करते हुए उन्होंने उन्हें किताबों का रूप दिया। उन्होंने कला, शिल्प, पुरातत्त्व, पर्यटन, आस्था और विरासत पर बड़े विवरण और शोध के साथ किताबें भी लिखीं। ये पुस्तकें क्षेत्र में शिल्प के क्षेत्र में आस्था, रचनात्मकता और विकास के विविध दृष्टिकोणों के पीछे के विचारों और आदर्शों के दस्तावेजीकरण के क्षेत्र में उनके बेहतरीन योगदान में से एक रही हैं।"

सूरज सराफ की अन्य प्रमुख पुस्तकें हैं—'ग्लिम्प्सेस ऑफ जम्मू', 'बाबर एंटीक्विटिस', 'जम्मू दर्शन' और 'वैष्णो देवी'। डोगरी संस्था, जम्मू द्वारा उन्हें 'डोगरा रतन' सम्मान से सम्मानित किया गया। उनकी फोटोग्राफी को पहली बार 1972 में 'इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इंडिया' द्वारा सम्मानित किया गया था। जम्मू में स्थापित फोटोग्राफरों के एक समूह 'नियो-इमेजेज' ने भी 1992 में फोटोग्राफी के क्षेत्र में उनके योगदान के लिए उन्हें सम्मानित किया। सूरज सराफ का निधन 23 जून, 2012 को हुआ।

सनाउल्ला भट : उर्दू पत्रकारिता के 'बाबा-ए-सहाफत'

सनाउल्ला भट को कश्मीरी पत्रकारिता की नींव रखने और कश्मीर में पत्रकारिता को मजबूत और जीवंत बनाने के लिए 'बाबा-ए-सहाफत' यानी पत्रकारिता का पितामह' कहा जाता है। 14 नवंबर, 1926 को जन्मे ख्वाजा सनाउल्ला भट ने 1952 में 'कश्मीर' नामक एक साप्ताहिक समाचार पत्र की स्थापना कर पत्रकारिता में अपना करियर शुरू किया। यह पाकिस्तान के कब्जे वाले कश्मीर के मुजफ्फराबाद से प्रकाशित होता था। इस संदर्भ में उन्होंने लिखा भी है कि वर्ष 1947 के समय मैं सीमा पार था। अनुजा जैन (2024) ने लिखा है कि वर्ष 1952 में उस पाकिस्तान में एक साप्ताहिक समाचार पत्र शुरू किया, जिसे 'कश्मीर' कहा जाता था। उनके और अधिकारियों के बीच मतभेद थे और आखिरकार वर्ष 1957 में पाकिस्तानी पुलिस ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया, 22 दिनों तक पूछताछ की और फिर पाकिस्तानी सेना को सौंप दिया। पाकिस्तानी सेना ने उन्हें भारतीय सीमा में भेज दिया, जहाँ भारतीय सेना ने तीन दिनों तक पूछताछ कर पुलिस के हवाले किया, जिसने 16 दिनों तक पूछताछ कर घर भेज दिया।

अहमद (2023) लिखते हैं कि वर्ष 1957 में ख्वाजा सनाउल्ला भट ने दैनिक उर्दू समाचार पत्र 'आफताब' की स्थापना की और 40 से अधिक वर्षों तक इसके संपादक के रूप में कार्य किया। यह समाचार पत्र वर्ष 1965 में भारत के समाचार पत्र पंजीयक के साथ पंजीकृत था। 'आफताब' जम्मू और कश्मीर में ऑफसेट प्रिंटिंग प्रेस पर प्रकाशित होने वाला पहला समाचार पत्र बना, जिसने दृश्य तत्वों के माध्यम से इसकी सामग्री की अपील को काफी बढ़ा दिया।

'आफताब' जम्मू-कश्मीर क्षेत्र में तस्वीरें प्रकाशित करने वाला पहला समाचार पत्र था और इसे राज्य में फोटो पत्रकारिता शुरू करने का श्रेय दिया जाता है। प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया (पीटीआई) और यूनाइटेड न्यूज ऑफ इंडिया (यूएनआई) जैसी समाचार सेवाओं में अपनी सदस्यता के माध्यम से वह कश्मीर के लोगों के लिए अंतरराष्ट्रीय समाचार लाने में सक्षम था। उन्होंने अपने समाचार-पत्र के वितरण के लिए हॉकरों की नियुक्ति की। उन्होंने पूर्णकालिक संवाददाताओं और कर्मचारियों को काम पर रखने की शुरुआत कश्मीर में की।

अप्रैल 1990 में जम्मू और कश्मीर के तत्कालीन राज्यपाल ने सरकारी सैनिकों द्वारा किए गए अत्याचारों पर विस्तृत रिपोर्ट प्रकाशित करने के बाद 'आफताब' को बंद करने का आदेश दिया। हालाँकि, दस दिन बाद श्रीनगर उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश ने राज्यपाल के फैसले को पलट दिया, जिससे भट को प्रकाशन फिर से शुरू करने की अनुमति मिल गई। इस मामले में उनका तर्क था कि सरकार और अलगाववादी आतंकवादियों, दोनों से भय और धमकी के कारण कोई भी समाचार पत्र वास्तव में स्वतंत्र होने का दावा नहीं कर सकता है। उनका कहना था कि उन्होंने आतंकवादियों की सेवा की, क्योंकि जनता उनके साथ थी। हमने उनके बयान प्रकाशित किए और उनके कार्यों की सूचना पाठकों को दी। इस समाचार-पत्र में एक दैनिक कार्टून भी प्रकाशित होता था, जो अक्सर तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक मुद्दों को प्रतिबिंबित करता था (अहमद, 2023)।

वर्ष 1975 में ख्वाजा सनाउल्ला भट कश्मीर प्रेस क्लब के पहले अध्यक्ष बने। उनकी उल्लेखनीय पुस्तक 'कश्मीर इन फ्लेमिंग्स : एन अनटोल्ड स्टोरी ऑफ कश्मिरर्स पॉलिटिकल अफेयर्स' और 'कश्मीर, 1947 से 1977 तक' प्रमुख हैं। ख्वाजा सनाउल्ला भट का 25 नवंबर, 2009 को श्रीनगर में निधन हो गया।

लाला गोपाल सच्चर : जम्मू-कश्मीर में हिंदी पत्रकारिता के जनक

लाला गोपाल सच्चर को जम्मू-कश्मीर में हिंदी पत्रकारिता का जनक कहा जाता है। वे जम्मू में हिंद समाचार समूह के प्रतिनिधि और 'द सच न्यूज' के मालिक थे। उनका जन्म जम्मू में 17 जुलाई, 1927 को हुआ था। मैट्रिक पास करने से पहले तीन अलग-अलग स्कूलों में उन्होंने पढ़ाई की और मनावर (छंब सेक्टर) से मिडिल पास किया। प्रिंस ऑफ वेल्स कॉलेज (जी. एम. साइंस कॉलेज) जम्मू में दाखिला लिया, लेकिन देश के विभाजन और उसके बाद पाकिस्तान के आक्रमण के कारण वे स्नातक की पढ़ाई पूरी नहीं कर सके (रोहिमित्रा, 2024)।

वर्ष 1949 में पंडित प्रेमनाथ डोगरा की गिरफ्तारी के बाद उन्होंने उर्दू में 'आकाशवाणी' नाम से एक भूमिगत समाचार बुलेटिन शुरू किया। इस प्रकाशन के लिए उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और बुरी तरह पीटा गया, जिससे उनका दाहिना पैर टूट गया। प्रजा परिषद् आंदोलन के समर्थन में

लिखने के कारण उन्हें श्रीनगर जेल में डाल दिया गया, न मुकदमा चला, न पेशी हुई और बैरक के सामने बोर्ड पर लिख दिया गया—शत्रु एजेंट (रोहिमित्रा, 2024)।

गोपाल सच्चर ने स्थानीय उर्दू साप्ताहिक 'गुलाब' के साथ काम करना शुरू किया, लेकिन 1952 में जम्मू और कश्मीर के भारत में विलय के लिए आंदोलन शुरू होने के साथ, उन्होंने एक बार फिर हिंदी और उर्दू में क्रमशः 'आकाशवाणी' और 'लोकवाणी' नामक भूमिगत समाचार बुलेटिन शुरू किए, जिससे उनकी पुनः गिरफ्तारी हुई और बाद में जुलाई 1953 में रिहाई हुई। उन्होंने दो दशकों तक स्वर्गीय पंडित प्रेमनाथ डोगरा के प्रचार सचिव के रूप में भी काम किया और उस अवधि के दौरान उन्होंने तीन उर्दू साप्ताहिक 'स्वदेशी', 'जयस्वदेश' और 'दीपक' का संपादन किया। जीवन भर वे पाँच समाचार पत्रों के संपादक रहे। तरुण विजय (2022) लिखते हैं, "उन्होंने पंडित प्रेमनाथ डोगरा, डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी और अटल जी के कश्मीर प्रवास के समय निष्पक्ष पत्रकारिता का धर्म निभाया। फारूक अब्दुल्ला के शासन के समय उनके जम्मू-कश्मीर लिबरेशन फ्रंट से संबंधों को फोटो सहित उजागर किया। वे कश्मीर और जम्मू के संघर्ष के जीते-जागते विश्वकोश थे। देश के प्रति उनके इस योगदान को देखते हुए 'पाञ्चजन्य' ने उन्हें तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी के करकमलों से नचिकेता सम्मान से सम्मानित करवाया था।"

पंजाब केसरी से उनका विशेष नाता था। लाला जगत नारायण जी के आशीर्वाद से उन्होंने काफी काम किया। लाला जगत नारायण जी ने उन्हें जम्मू 'पंजाब केसरी' का प्रकाशक बनाया। 'पाञ्चजन्य', 'ऑर्गनाइजर', 'मदर लैंड' के अलावा गोपाल सच्चर ने पीटीआई, यूएनआई, कर्नाटक और दक्षिण के कई अन्य अखबारों के लिए संवाददाता के रूप में काम किया। इसके अलावा उन्होंने 'प्रभात', 'प्रदीप', 'जन प्रदीप', हिंदी दैनिक जालंधर, 'करंट वीकली', बॉम्बे 'दिनमान हिंदी वीकली' दिल्ली, 'डेली मदरलैंड', 'हिमाचल समाचार न्यूज' एजेंसी और कुछ अन्य के संवाददाता के रूप में काम किया। तरुण विजय (2025) लिखते हैं, "उनकी रपटों में कश्मीर में चल रहे देशद्रोही अलगाववादी तत्वों के मंसूबों, उनके साथ सत्ता पक्ष की साँठगाँठ, पाकिस्तान और अन्य विदेशी तत्वों से मिलने वाली सहायता, जेकेएलएफ जैसे संगठनों के साथ अब्दुल्लाओं के षड्यंत्र आदि का खुलासा होता था। उनकी रपटें सत्य घटनाओं, तथ्यों, सप्रमाण वृत्तांत के लिए जानी जाती थीं।" उन्होंने हजारों उर्दू, हिंदी, अंग्रेजी दस्तावेजों का अमूल्य खजाना जम्मू के दीनदयाल पुस्तकालय को दिया है। लाला सच्चर का 14 नवंबर, 2022 को जम्मू में 95 वर्ष की आयु में निधन हो गया।

बलराज पुरी : जम्मू में पत्रकारिता एवं इसके प्रशिक्षण के अग्रदूत

जम्मू-कश्मीर में पत्रकारिता के अग्रदूत बलराज पुरी जम्मू क्षेत्र के एक सामाजिक, मानवीय और राजनीतिक कार्यकर्ता थे। उनका जन्म 1 अगस्त, 1928 को हुआ था और लेखन में उनकी शुरुआत बारह वर्ष की आयु में हुई, जब उन्होंने जम्मू में उर्दू समाचार पत्र शुरू किया। वे चौदह वर्ष की आयु में भारत छोड़ो आंदोलन में शामिल हो गए और 1946 में जम्मू में छात्र आंदोलनों का नेतृत्व किया। उन्होंने विभाजन के समय दंगों को टालने के लिए काम करने हेतु 1947 में पीस वालंटियर कोर की स्थापना की थी।

बलराज पुरी ने 27 जून, 1942 को उर्दू साप्ताहिक 'कश्मीर संसार' की स्थापना की और बाद में 1950 में 'सच उंदा' दैनिक का संपादन किया। वे

मासिक पत्रिका 'न्यू सोशलिट' (1957-69), द्विमासिक पत्रिका 'कश्मीर अफेयर्स' (1959-61) और द्विमासिक पत्रिका 'ह्यूमन राइट्स' (1991) के संपादक भी रहे। वे देश भर के विभिन्न समाचार पत्रों में नियमित योगदानकर्ता थे। उन्होंने 40 से अधिक पुस्तकें और समाचार पत्रों और पत्रिकाओं के लिए 1000 से अधिक लेख लिखे हैं। वे राजनीतिक टिप्पणीकार भी थे। चित्रलेखा जुत्सी (2015) ने लिखा है, "दो मुद्दे वर्षों से बलराज साहब की राजनीति को रेखांकित करते रहे। वह था क्षेत्रीय स्वायत्तता की अनुमति देकर जम्मू और कश्मीर राज्य के भीतर जम्मू की स्थिति को पुनः केंद्रीकृत करना और राज्य के भीतर एक स्वस्थ विपक्ष का विकास करना।" इन दोनों को वे लोकतांत्रिक राजनीति का आधार मानते थे।

बलराज पुरी की प्रमुख पुस्तकें 'रीजनल ऑटोनोमी इन जम्मू एंड कश्मीर', '5000 इयर्स ऑफ कश्मीर', 'कश्मीर टुवर्ड्स इंसेजेंसी', 'सिमरिंग वोल्केनो-स्टडी ऑफ जम्मूज रिलेशन विद कश्मीर', 'जम्मू एंड कश्मीर : ट्रंफ एंड ट्रेजेडी ऑफ इंडियन फेडरेशन' हैं। उन्होंने जम्मू और कश्मीर के पत्रकारों को तैयार करने के लिए भारतीय विद्या भवन शाखा शुरू की और कई युवाओं को पत्रकार बनने के लिए यहाँ प्रशिक्षित किया। उन्होंने जम्मू और कश्मीर पर शोध और लेखन के लिए 1986 में 'जम्मू और कश्मीर अफेयर्स' नामक संस्थान की भी स्थापना की।

मनोरंजन मोहंती लिखते हैं, "द इकोनॉमिक वीकली" और बाद में 'द इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली' ने उनके कई मौलिक लेखों को प्रकाशित किया, जिनमें भारतीय राजनीति के महत्वपूर्ण मोड़ों के साथ-साथ कश्मीरी प्रश्नों के इतिहास के महत्वपूर्ण बिंदुओं पर एक मूल्यवान दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया था।" बलराज पुरी आत्मनिर्णय लेने वाले विद्वान् थे और नियमित रूप से समाचार पत्रों का अध्ययन करते थे। वे पहले पृष्ठ से लेकर अंतिम पृष्ठ तक समाचार पत्रों के एक उत्साही पाठक थे। 2005 में भारत सरकार ने उन्हें पद्म भूषण से सम्मानित किया और प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने 2009 में राष्ट्रीय एकता के लिए 24वें इंदिरा गांधी पुरस्कार से सम्मानित किया।

सुमंत्र बोस ने अपनी पुस्तक 'कश्मीर : संघर्ष की जड़ें शांति का मार्ग' में इस बात का उल्लेख किया है कि जम्मू और कश्मीर में बख्शी गुलाम मोहम्मद का शासन बड़े पैमाने पर भ्रष्टाचार और माफिया-शैली के अधिनायकवाद के कारण कुख्यात हो गया था। उस समय, बलराज पुरी ने जवाहरलाल नेहरू से मुलाकात कर उन्हें इस दमनकारी स्थिति से अवगत कराया। शेख अब्दुल्ला सरकार ने उन्हें पाकिस्तान से आने वाले शरणार्थियों के मामलों के प्रबंधन की जिम्मेदारी दी। फारूक अब्दुल्ला ने उन्हें क्षेत्रीय स्वायत्तता समिति का प्रमुख नियुक्त किया, एक पद जिससे उन्होंने सरकार द्वारा उनकी सिफारिशों से असहमति जताने के बाद इस्तीफा दे दिया। पुरी को 1974 में इंदिरा गांधी शेख अब्दुल्ला समझौते का एक वास्तुकार माना जाता है। 30 अगस्त, 2014 को बलराज पुरी का निधन हो गया।

प्रेमनाथ जलाली : राजनीतिक कार्यकर्ता भी, पत्रकार भी

प्रेमनाथ जलाली यानी पी.एन. जलाली को जम्मू-कश्मीर में राजनीतिक कार्यकर्ता के साथ-साथ पत्रकारिता के लिए भी याद किया जाता है। उनका जन्म 28 दिसंबर, 1928 को हुआ और उन्होंने चर्च मिशनरी स्कूल, श्रीनगर से स्कूली शिक्षा शुरू की। उनके पिता डाक सेवाओं में कार्यरत थे। वे काफी कम उम्र में ही कम्युनिस्ट पार्टी में शामिल हुए और 1941 से 1949 तक

इसके लिए कार्य किया और बाद में नेशनल कॉन्फ्रेंस मिलिशिया के लिए कार्य करने लगे। उनकी जिम्मेदारी रंगरूटों में साक्षरता को बढ़ावा देना और जागरूकता विकसित करनी थी (व्हाइटहेड, 2007)।

1957-58 में प्रेमनाथ जलाली इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि वे आंदोलन खड़ा करने में रुचि नहीं रखते थे और जिस तरह का आंदोलन वे चाहते थे, उसमें उनकी रुचि नहीं थी। कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यकर्ता के तौर पर चेकोस्लोवाकिया में तीन साल बिताने के बाद वे चीन चले गए। वहाँ से मोहभंग होने के बाद 1957 में भारत वापस आ गए। वर्ष 1956 में उन्होंने शादी की और कुछ समय दिल्ली में रहने के बाद वे पूरी तरह पत्रकारिता के लिए समर्पित हो गए।

श्याम कौल (2023) लिखते हैं कि प्रेमनाथ जलाली ने बॉम्बे के 'साप्ताहिक ब्लिट्ज' और दिल्ली के 'पैट्रियट' के लिए काम किया और 1960 के दशक की शुरुआत से लेकर 20 से अधिक वर्षों तक प्रेस ट्रस्ट ऑफ इंडिया के श्रीनगर संवाददाता के तौर पर कार्य करने के बाद 1984 में सेवानिवृत्त हुए। वे जम्मू और कश्मीर में भारतीय श्रमजीवी पत्रकार महासंघ (आईएफडब्ल्यूजे) इकाई के अध्यक्ष थे। उन्होंने 1985 में श्रीनगर में आईएफडब्ल्यूजे राष्ट्रीय मीडिया सत्र का आयोजन किया था।

प्रेमनाथ जलाली कहते थे कि जम्मू-कश्मीर लिबरेशन फ्रंट (जेकेएलएफ) ने 1983 में उन पर जानलेवा हमला करने के लिए ब्रिटेन से एक आतंकवादी भेजा था और जब उन्हें पता चला कि उन पर हमला होने वाला है, तो वे श्रीनगर पहुँच गए। कश्मीर यूनियन ऑफ वर्किंग जर्नलिस्ट्स (केयूडब्ल्यूजे) 1990 के शुरुआती वर्षों तक अस्तित्व में रहा और जब अलगाववादी आंदोलन अपने हिंसक दौर में प्रवेश कर गया तो इसके कई सदस्य और अध्यक्ष जे.एन. साथु सहित कुछ पदाधिकारी सर्दियों में महीनों के लिए जम्मू चले गए थे या घाटी छोड़ चुके थे। तब तक पीटीआई के तत्कालीन ब्यूरो प्रमुख पी.एन. जलाली के नेतृत्व में इसके कुछ सक्रिय सदस्यों के शामिल होने के बाद केयूडब्ल्यूआई दो हिस्सों में विभाजित हो चुका था। जलाली ने एक अलग समूह बनाया और के. विक्रम राव के नेतृत्व वाले इंडियन फेडरेशन ऑफ वर्किंग जर्नलिस्ट्स (आईएफडब्ल्यूजे) से संबद्ध हो गए।

ज्ञान पाठक (2023) लिखते हैं कि जम्मू-कश्मीर में 1989 के विस्फोट के उपरान्त उभरकर सामने आए आतंकवाद ने क्षेत्रीय सुरक्षा और सामाजिक संरचना को गहन रूप से प्रभावित किया। इस चरण में राज्य के प्रतिष्ठित वरिष्ठ पत्रकार पी. एन. जलाली इंडो-एशिया पैसिफिक न्यूज एजेंसी (IPA) से संबद्ध थे। ओ. पी. सभरवाल और पी. एन. जलाली, दोनों पत्रकारों ने क्षेत्र की बदलती हुई जमीनी परिस्थितियों का विस्तृत और तथ्याधारित विश्लेषण प्रस्तुत किया। साथ ही, उन्होंने आतंकवाद की चुनौती से निपटने हेतु उपयुक्त नीतिगत विकल्पों की पहचान और उनके मूल्यांकन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनका यह योगदान न केवल समकालीन पत्रकारिता के लिए मार्गदर्शक सिद्ध हुआ, बल्कि नीति-निर्माण की प्रक्रिया के लिए भी विशिष्ट रूप से प्रासंगिक रहा। वे अक्सर कश्मीर विश्वविद्यालय स्थिति मीडिया एजुकेशनल रिसर्च सेंटर (एमईआरसी) में मीडिया के विद्यार्थियों को पढ़ाने के लिए भी जाते थे (अहमद, 2018)। पी.एन. जलाली का 27 जुलाई, 2009 को निधन हो गया।

वेद भसीन : अँग्रेजी पत्रकारिता का महापुरुष

वेद भसीन को जम्मू-कश्मीर राज्य में 'अँग्रेजी पत्रकारिता का महापुरुष'

कहा जाता है। उनका जन्म एक मई 1929 को जम्मू में हुआ। उन्होंने अपनी स्कूली शिक्षा जम्मू में प्राप्त की थी। प्रिंस ऑफ वेल्स कॉलेज, जम्मू (वर्तमान जीजीएम साइंस कॉलेज) से स्नातक करने के बाद अपनी स्नातकोत्तर की डिग्री नई दिल्ली से प्राप्त की।

वर्ष 1945 में पत्रकारिता से उनका जुड़ाव तब शुरू हुआ जब वे अपने कॉलेज की पत्रिका 'तवी' के संपादक बने। वे 1945 से 1949 तक जम्मू-कश्मीर छात्र संघ के अध्यक्ष, 1950 से 1953 तक जम्मू-कश्मीर युवा राष्ट्रीय सम्मेलन के अध्यक्ष और 1949 से 1953 तक राष्ट्रीय सम्मेलन की महापरिषद् के सदस्य रहे। अपने राजनीतिक रुझान के चलते वेद भसीन नेशनल कॉन्फ्रेंस से भी जुड़े। राष्ट्रीय स्तर पर, भारतीय राजनीति में वे अपने करीबी दोस्तों के साथ सोशलिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया, जयप्रकाश नारायण और अन्य नेताओं के साथ जुड़े रहे और भारत की समग्र स्वतंत्रता के लिए और जम्मू-कश्मीर में निरंकुशता के खिलाफ लड़ाई के लिए काम किया। कुछ वर्षों के बाद उन्होंने सक्रिय राजनीति छोड़ दी और पत्रकारिता को अपना करियर बनाया।

वेद भसीन ने 1948-58 तक 'दैनिक संदेश' के साथ और 1958-63 तक 'कश्मीर पोस्ट श्रीनगर' के संपादक के रूप में पत्रकारिता की। उन्होंने 'खिदमत' के जम्मू संवाददाता के रूप में काम किया। उन्होंने 'रेडियो कश्मीर' के संवाददाता के रूप में भी काम किया। वेद भसीन ने 1952-54 तक उर्दू साप्ताहिक 'नया समाज' से अपने पत्रकारिता जीवन की शुरुआत की थी। अनिल सहगल (2024) लिखते हैं कि तत्कालीन जम्मू-कश्मीर के प्रधानमंत्री शेख अब्दुल्ला की 'अलोकतांत्रिक' गिरफ्तारी और गिरफ्तारी के विरोध के कारण 1954 में 'भारत रक्षा अधिनियम-1950' के तहत इस पर प्रतिबंध लगा दिया गया था।

वेद भसीन ने 1955 में 'कश्मीर टाइम्स' की स्थापना की, जो एक साप्ताहिक के रूप में शुरू हुआ और 1971 में एक पूर्ण दैनिक में परिवर्तित हो गया। भसीन ने 1963-1969 तक समाचार संकलन एजेंसी यूनआई के साथ इसके प्रमुख और कश्मीर ब्यूरो प्रमुख के रूप में भी काम किया। वे 1964 से 2000 तक 'कश्मीर टाइम्स' के संपादक रहे और 1989 से 2000 तक 'दैनिक कश्मीर टाइम्स' (हिंदी) के प्रधान संपादक रहे और फिर 2000 से कश्मीर टाइम्स प्रकाशन समूह के अध्यक्ष रहे। भसीन ने 1963 से 1969 तक जम्मू-कश्मीर के लिए यूनआई संवाददाता के रूप में भी कार्य किया। उन्होंने विभिन्न पत्रिकाओं और समाचार पत्रों में कश्मीरी समाचार, भारत-पाकिस्तान समस्याओं और अन्य संघर्ष क्षेत्रों और मीडिया के विषयों पर योगदान दिया। वे 1950-1953, 1957 से 1960 तक सांस्कृतिक मंच जमीनू के अध्यक्ष और 1949 से 1952 तक हिंदी साहित्य मंडल के महासचिव रहे। भसीन डोगरी संस्था के संस्थापक सदस्य थे और 'बज्म-ए-उर्दू', 'पंजाबी लेखक सभा' और कई अन्य सामाजिक एवं सांस्कृतिक संगठनों से भी जुड़े रहे।

1998 से 'जम्मू-कश्मीर कला, संस्कृति और भाषा अकादमी' की केंद्रीय समिति और सामान्य परिषद् के सदस्य और नामी डोगरी संस्था 'द आर्ट फाउंडेशन (पंजीकृत) जम्मू' के मुख्य संरक्षक बने। उन्होंने 1991 से संरक्षक 'व्यक्ति-कलाकार समूह', अध्यक्ष 'जमतु उपभोक्ता परिषद्' के रूप में कार्य किया। इसके अलावा, वे संरक्षक अवेयर (ग्रामीण विकास निकाय) भी रहे। वे 1970 से सहकारिता और उपभोक्ता आंदोलन से जुड़े रहे। उन्होंने 1947-1976 तक जम्मू सुपर बाजार के अध्यक्ष के रूप में कार्य किया तथा

1972 से 1975 तक भारतीय पर्यटन विकास निगम (आईटीडीसी) के निदेशक मंडल में कार्य किया।

वे 'पाकिस्तान-भारत शांति एवं लोकतंत्र मंच' (पीआईपीएफपीडी) के संस्थापक सदस्य (पूर्व सह-अध्यक्ष) और इसकी संयुक्त कश्मीर समिति, 'साउथ एशियंस फॉर ह्यूमन राइट्स' के अध्यक्ष होने के साथ-साथ 'जम्मू-कश्मीर शांति, न्याय एवं लोकतंत्र संस्थान' के अध्यक्ष भी रहे। वे तीन बार जम्मू प्रेस क्लब के अध्यक्ष रहे। वे दो बार 'जम्मू-कश्मीर एसोसिएशन ऑफ जर्नलिस्ट्स' और 'जम्मू एडिटर्स कॉन्फ्रेंस' के अध्यक्ष रहे और कई वर्षों तक प्रेस सलाहकार समितियों (संयोजक के रूप में) सहित विभिन्न प्रेस निकायों में कार्य किया। 1990 के बाद के दशक से उनकी पत्रकारिता के रुझान में बड़ा बदलाव आया और वे अलगाववादियों का समर्थन करते हुए दिखाई देने लगे। 5 नवंबर, 2015 को वेद भसीन का 86 वर्ष की आयु में जम्मू में निधन हो गया।

निष्कर्ष

जम्मू-कश्मीर की पत्रकारिता का इतिहास उन इतिहास पुरुषों के बिना अधूरा है, जिन्होंने सीमित संसाधनों, राजनीतिक दमन, सामाजिक-सांस्कृतिक तनाव और संघर्षपूर्ण परिस्थितियों के बीच भी पत्रकारिता को एक जीवंत लोकधर्म के रूप में विकसित किया। लाला मुल्कराज सराफ की प्रगतिशील दृष्टि, बी.पी. शर्मा की शोध-निष्ठा, ओम प्रकाश सराफ का राजनीतिक-पत्रकारिता समन्वय, सतपाल साहनी की फोटोग्राफिक विरासत और डी.सी. प्रशांत की संपादकीय-संसदीय सक्रियता इस बात का प्रमाण है कि यहाँ की पत्रकारिता मात्र पेशा नहीं, बल्कि एक वैचारिक एवं राजनीतिक प्रतिबद्धता भी थी। इन पत्रकारों ने समाचार पत्रों और पत्रिकाओं का संपादन-प्रकाशन तो किया ही, अभिलेखों के संरक्षण, भाषा-साहित्य के संवर्द्धन, फोटोग्राफी के विस्तार, जनसंचार माध्यमों की स्थापना और जनसरोकार से जुड़े प्रश्नों को लगातार उठाकर जम्मू-कश्मीर के सामाजिक-राजनीतिक विमर्श को दिशा प्रदान की। उनके कार्यों से यह स्पष्ट होता है कि पत्रकारिता घटनाओं का लेखा-जोखा तो है ही, समाज के चेतन प्रवाह, लोकतांत्रिक संवेदनशीलता और नागरिक अधिकारों की रक्षा का माध्यम भी है।

यह अध्ययन इस निष्कर्ष की ओर संकेत करता है कि जम्मू-कश्मीर में पत्रकारिता की विरासत संघर्ष, नैतिकता और जनसेवा की त्रयी पर आधारित रही है। आने वाली पीढ़ियों के लिए ये इतिहासपुरुष न सिर्फ प्रेरणा हैं, बल्कि इस बात का सशक्त उदाहरण भी हैं कि किस प्रकार कठिन परिस्थितियाँ भी पत्रकारिता की सत्यनिष्ठा और सामाजिक उत्तरदायित्व को कमजोर नहीं कर सकतीं। इसलिए उनके योगदान का पुनः पाठ और पुनर्मूल्यांकन आज के मीडिया परिदृश्य में और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है।

संदर्भ सूची

- अहमद, एस. (2023). ख्वाजा सनाउल्ला बट : द फादर ऑफ जर्नलिज्म इन कश्मीर. कश्मीर पेन. <https://www.kashmirpen.in/kh-sanaullah-bhat/> से पुनःप्राप्त.
- अहमद, के. बी. (2018). जर्नलिज्म इन कश्मीर : जर्नी एंड माइलस्टोन. <https://kbahmad05.medium.com/journalism-in-kashmir-journey-and-milestones-40050b069f3e> से पुनःप्राप्त.

- अहमद, के.बी. (2018), कश्मीर्स मीडिया एक्सपीरियंस कॉन्टीनुम, <https://www.brighterkashmir.com/prem-nath-bazaz-first-kashmiri-journalist-to-receive-a-bullet-for-his-editorials> से पुनः प्राप्त.
- आनंद, ए. (1967). कमेमोरेटिव वॉल्यूम : लाला मुल्क राज सराफ. नई दिल्ली: विनय सराफ एंड डिजिटल पब्लिकेशन.
- उत्पल, वी.के.जे. (2025). चैंपियन ऑफ जर्नलिस्म, बोथ इन प्रैक्टिस एंड इन प्रिंसिपल. <https://www.dailyexcelsior.com/champion-of-journalism-both-in-practice-and-in-principle/> से पुनःप्राप्त.
- एक्सेलसियर कोरस्पोंडेंट (2022, 14 नवंबर). फादर ऑफ हिंदी जर्नलिज्म लाला सचर पासेज अवे. डेली एक्सेलसियर. <https://www.dailyexcelsior.com/father-of-hindi-journalism-lala-sachar-passes-away/> से पुनःप्राप्त.
- एक्सेलसियर कोरस्पोंडेंट (2013). डीसी प्रशांत पासेज अवे. डेली एक्सेलसियर. <https://www.dailyexcelsior.com/dc-prashant-passes-away/> से पुनःप्राप्त.
- कश्मीर रिकार्ड्स (2023, 17 नवंबर). बी.पी. शर्मा-जेएंडके'ज वॉकिंग इनसाइक्लोपीडिया. <https://kashmir-rechords.com/bp-sharma-jks-walking-encyclopedia/> से पुनःप्राप्त.
- कुमार, पी. (2022). मीडिया इन जेएंडके'ज एंड द इंडियन फ्रीडम मूवमेंट. कम्युनिकेटर. 57(2), 82-88.
- कौल, एस. (2018). पी. एन. जलाली-ए होमेज टू एन अनकॉमन मैन. कश्मीर सेंटिनल <https://ikashmir.net/writers/pnjalali.html> से पुनःप्राप्त.
- खान, एम.बी. & राजा, एम.सी. (2024). नेचर ऑफ एडवर्टाइजमेंट इन न्यूजपेपर्स ऑफ जम्मू एंड कश्मीर (1924-1947). लाइब्रेरी ऑफ प्रोग्रेस-लाइब्रेरी साइंस, इनफार्मेशन टेक्नोलॉजी एंड कंप्यूटर, 44(3).
- घोष, पी. (2017), पंडित प्रेम नाथ बजाज-ए मिसअंडरस्टूड एंड रेवोलुशनरी कश्मीरी पंडित, हिंदुस्तान टाइम्स, <https://www.hindustantimes.com/india-news/pandit-prem-nath-bazaz-a-misunderstood-and-revolutionary-kashmiri-pandit/story-MXcRZoUTA3kcJcf3pseGTK.html> से पुनः प्राप्त.
- चंदर, एस. (2021). ओम सराफ-एन इंस्टीट्यूशन विद नो नेट कनेक्शन प्रेजेंटली. डेली एक्सेलसियर. <https://www.dailyexcelsior.com/om-saraf-an-institution-with-no-net-connection-presently/> से पुनःप्राप्त.
- जुत्शी, सी. (2015). बलराज पुरी : एन अप्रेसिएशन. कश्मीर कनेक्टेड. <https://www.kashmirconnected.com/articles--reports/balraj-puri-an-appreciation-by-chitralekha-zutshi> से पुनःप्राप्त.
- जेबी टीम (2024). अनवेलिंग द स्टोरी ऑफ जेएंडके'ज फर्स्ट न्यूजपेपर: रणबीर. जम्मू विरासत. <https://jammuvirasat.com/first-news-paper-jammu-kashmir/> से पुनःप्राप्त.
- जैन, ए. (2024). ख्वाजा सनाउल्ला भट : फादर ऑफ जर्नलिज्म इन कश्मीर. <https://thenorthlines.com/khwaja-sanaullah-bhat-father-of-journalism-in-kashmir/> से पुनःप्राप्त.
- डिन, एच. (2025). हिस्ट्री एंड डेवलपमेंट ऑफ पोलिटिकल कार्टून्स इन कश्मीर. इन ड्राइंग पोलिटिकल नैरेटिव्स विद ह्यूमर इन कश्मीर: सटीरिकल ब्रशस्ट्रोक्स (पृष्ठ 39-68), स्पिंगर नेचर स्विट्जरलैंड.
- नदाफ, ए. एच. (2018). द एवोलुशन ऑफ प्रेस इन कश्मीर रीजन. रिसर्च रिव्यू जर्नल. 03 (04). https://rrjournals.com/wp-content/uploads/2018/04/137-140_RRIJM18030432.pdf से पुनःप्राप्त.
- नजीर, बी. (2023). पोलिटिकल अवेकनिंग इन कश्मीर थ्रू उर्दू न्यूजपेपर्स फ्रॉम 1924-1975 : ए हिस्टोरिकल स्टडी : स्पिन जर्नल ऑफ आर्ट्स. ह्यूमनीटीज एंड सोशल साइंसेज. 2(7), 54-60
- परे, एफ. एच. (2018). द रणबीर न्यूजपेपर : एज एन एडवोकेट ऑफ द फ्रीडम स्ट्रगल इन जम्मू एंड कश्मीर फ्रॉम 1924-1950. IAHRW इंटरनेशनल जर्नल ऑफ सोशल साइंस 6(8), 1533-1535.
- परे, एम. आई. (2022). डिवाइसिंग रिलिजन एंड पोलिटिक्स: जर्नलिस्टिक फील्ड इन अली ट्वेंटीएथ-सेचुरी कश्मीर. मीडिया हिस्ट्री. 28(2), 199-213
- पाठक, जी. (2023). रिमेम्बरिंग ओ.पी. सभरवाल, ए डेडिकेटेड जर्नलिस्ट इन हिज सेंटेनरी ईयर. आईपीए न्यूजपैक. <https://ipanewspack.com/remembering-o-p-sabherwal-a-dedicated-journalist-in-his-centenary-year/> से पुनःप्राप्त.
- पाठक, आर. (2023). ओ.एन. कौल-ए जर्नलिस्ट, एडिटर एंड मीडिया एडवाइजर. कश्मीर रिकार्ड्स. <https://kashmir-rechords.com/on-koul-a-journalist-editor-media-advisor/> से पुनःप्राप्त.
- प्रेसक्लब. (2024) एस.पी. साहनी. <https://www.pressclubofjammu.com/trendsetters/sp-sahni.htm> से पुनःप्राप्त.
- पैरे, आई & सईद, एस. (2022). रिथिंकिंग साउथ एशियन मीडिया हिस्टोरोग्राफी : एक्सकेवटिंग प्रिंसली इंडियाज मीडिया कल्चर्स विद रेफरेंस टू जम्मू एंड कश्मीर स्टेट. सोसाइटी एंड कल्चर इन साउथ एशिया. 8(1), 72-95
- ब्राइट कश्मीर. (2019). प्रेम नाथ जलाली: फर्स्ट कश्मीरी जर्नलिस्ट तो रिसीव ए बुलेट फॉर हिज एडिटोरियल्स, <https://www.brighterkashmir.com/prem-nath-bazaz-first-kashmiri-journalist-to-receive-a-bullet-for-his-editorials> से पुनः प्राप्त.
- बेग, यू. (2017). सेवन इन्फ्लुएन्शियल मैन ऑफ कश्मीर हिस्ट्री, फ्री प्रेस कश्मीर, <https://freepresskashmir.news/2017/08/04/seven-influential-men-of-kashmir-history/amp/> से पुनः प्राप्त.
- बोस, एस. (2005). कश्मीर : रूट्स ऑफ कनफ्लिक्ट, पाथ्स टू पीस. हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
- मोहंती, एम. (2014). बलराज पुरी (1928-2014): एन एक्स्ट्राऑर्डिनरी सोशललिस्ट डेमोक्रेट. इकनोमिक एंड पोलिटिकल वीकली. 49(44), 31-33.
- राज्यसभा. (2013). ओबेचुरी रेफरेंस. <https://share.google/>

- FBkMjopEBIN5rFxAs से पुनःप्राप्त.
- रोहमित्रा, आर. (2023, जुलाई 17). ट्रिब्यूट टू ए लीजेंडरी जर्नलिस्ट. डेली एक्सेलसियर. <https://www.dailyexcelsior.com/tribute-to-a-legendary-journalist/> से पुनःप्राप्त.
- रोहमित्रा, आर. (2024, 17 जुलाई). वेटेरेन जर्नलिस्ट लाला गोपाल सचर: ए ट्रिब्यूट. द स्टेट टाइम्स. <https://statetimes.in/veteran-journalist-lala-gopal-sachar-a-tribute/> से पुनःप्राप्त.
- रोहमित्रा, आर. (2025, 13 सितम्बर). लाला गोपाल सचर: द फादर ऑफ हिंदी जर्नलिज्म इन जे एंड के-ए ट्रिब्यूट ऑन हिज थर्ड डेथ एनिवर्सरी. नार्थलाइंस. <https://thenorthlines.com/lala-gopal-sachar-the-father-of-hindi-journalism-in-jk-a-tribute-on-his-3rd-death-anniversary/> से पुनःप्राप्त.
- रोहमित्रा, आर. (2025). ए फ्लोरल ट्रिब्यूट टू द मैन ऑफ मासेस लेट ओम प्रकाश सराफ : ए वेटेरेन पब्लिक फिगर. ए जर्नलिस्ट, ए ग्रेट स्टेट्समैन एंड पॉलिटिकल लीजेंड. <https://www.facebook.com/dailytaskeenofficial/posts/personality-a-floral-tribute-to-the-man-of-masses-let-om-prakash-sarafa-veteran-p/607628998999392/> से पुनःप्राप्त.
- वर्मन, जंग, एस. (2018). लेट सूरज सराफ-ए वेटेरेन जर्नलिस्ट, राइटर एंड फोटोग्राफर. <https://www.earlytimes.in/newsdet.aspx?q=235806> से पुनःप्राप्त.
- विनोद, आर. (2022). लाला मुल्कराज सराफ : फादर ऑफ जर्नलिज्म इन जम्मू एंड कश्मीर. डेली एक्सेलसियर. <https://www.dailyexcelsior.com/lala-mulkr-raj-saraf-father-of-journalism-in-jammu-and-kashmir/> से पुनःप्राप्त.
- विजय, टी. (2022, नवंबर 21). पत्रकारिता के योद्धा ऋषि का निर्वाण. पाञ्चजन्य. <https://panchjanya.com/2022/11/21/257937/bharat/jammu-and-kashmir/nirvana-of-the-warrior-sage-of-journalism/> से पुनःप्राप्त.
- विजय, टी. (2022, नवंबर 15). नहीं रहे पाञ्चजन्य के योद्धा पत्रकार गोपाल सच्चर, प्रधानमंत्री अटल जी ने किया था सम्मान. पाञ्चजन्य. <https://panchjanya.com/2022/11/15/257265/bharat/panchjanya-warrior-journalist-gopal-sachar-is-no-more/> से पुनःप्राप्त.
- व्हाइटहेड, ए. (2005). पार्टीशन वॉइसेज : सतपाल साहनी. <https://www.andrewwhitehead.net/partition-voices-sat-paul-sahni.html> से पुनःप्राप्त.
- व्हाइटहेड ए. (2007). पार्टीशन वॉइसेस : पी.एन. जलाली. <https://www.andrewwhitehead.net/partition-voices-pran-nath-jalali.html> से पुनःप्राप्त.
- शर्मा, एस.पी. (2025). रिमेंबरेिंग बी.पी. शर्मा. <https://www.dailyexcelsior.com/remembering-bp-sharma/> से पुनःप्राप्त.
- शर्मा, ए. (2017, 25 नवंबर). ओम प्रकाश सराफ, फॉर्मर एमएलए फ्रॉम जेएंडके पासेज अवे एट 95. <https://indianexpress.com/article/india/om-saraf-former-mla-from-j-k-passes-away-at-95-4954206/> से पुनःप्राप्त.
- श्रीवास्तव, एस.पी. (2013). बलदेव प्रसाद शर्मा : ए ब्रीफ प्रोफाइल. शीराजा. अक्टूबर-दिसंबर, 2013.
- सराफ, एम. आर. (2024). फिफ्टी ईयर एज ए जर्नलिस्ट. जमना ज्ञान देवी सराफ ट्रस्ट.
- सहगल, ए. (2024). डायंस ऑफ इंग्लिश जर्नलिज्म इन जम्मू एंड कश्मीर. कश्मीर टाइम्स. <https://kashmirtimes.com/opinion/comment-articles/doyen-of-english-journalism-in-jammu-kashmir> से पुनःप्राप्त.
- साहनी, एस. (2024). सत्यपाल साहनी-ए कन्वर्सेशन. <https://ikashmir.net/memoirs/sahni2.html> से पुनःप्राप्त.
- स्कूपन्यूज (2019). ग्लोरियस ट्रिब्यूट पेड टू सती साहनी. <https://www.scoopnews.in/det.aspx?q=85299> से पुनःप्राप्त.



‘नेपाल संदेश’ : भारत-नेपाल संबंधों में प्रगाढ़ता हेतु बालेश्वर अग्रवाल की एक रचनात्मक पहल

डॉ. रामाशंकर कुशवाहा¹

सारांश

स्वतंत्रता के पश्चात् व्यक्तिगत सूझबूझ से राष्ट्र निर्माण को गति देने का कार्य करने वालों में एक नाम बालेश्वर अग्रवाल का भी है। उन्होंने एक तरफ ‘हिंदुस्थान समाचार’ बहुभाषी संवाद समिति के माध्यम से भाषाई पत्रकारिता को मजबूती देने का कार्य किया, तो दूसरी तरफ प्रवासी भारतीयों के बीच भारत की छवि दृढ़ करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। पत्रकारिता के माध्यम से पंचवर्षीय योजना के मूल्यांकन और सुधार को लेकर किया गया उनका प्रयास अत्यंत सराहनीय था। रणनीतिक दृष्टि से देखें तो पत्रकारिता किसी भी देश की आधारभूत संरचना को और अधिक व्यवस्थित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। ऐसी स्थिति में बालेश्वर अग्रवाल का उस दौर में किया गया वैश्विक प्रयास बहुत सराहनीय है। इसकी शुरुआत नेपाल से हुई। इसके बाद उन्होंने दुनिया के एक दर्जन से अधिक देशों में रह रहे प्रवासी भारतीयों तक पहुँच बनाई। भारतीय संस्कृति को लेकर जो मुहिम उन्होंने शुरू की, उसकी परिणति ‘इंडियन डायसपोरा’ और आर्थिक सहयोग के रूप में आज दिखाई दे रही है। उनके योगदान का मूल्यांकन करें तो जाहिर होता है कि वे अपने तरीके से समस्याओं और बदलाव को उजागर करने का महत्वपूर्ण कार्य ‘इंडियन डायसपोरा’ को जोड़कर कर रहे थे। उनके इस प्रयास से भारत को सांस्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक स्तर पर मिली पहचान और अधिक समृद्ध हुई। विश्व में डायसपोरा का जो महत्व है, उसके परिप्रेक्ष्य में देखें तो राष्ट्र निर्माण के प्रारंभिक दौर में उनकी यह सकारात्मक पहल आज भी प्रासंगिक है। बालेश्वर जी ने ‘नेपाल संदेश’ समाचार पत्र के माध्यम से भारत-नेपाल संबंधों को मजबूती प्रदान की।

संकेत शब्द: बालेश्वर अग्रवाल, हिंदुस्थान समाचार, फ्रेंड्स ऑफ नेपाल, बुलेटिन, नेपाल संदेश, युगवार्ता।

प्रस्तावना

बालेश्वर अग्रवाल की कार्यशैली में रचनात्मकता की प्रचुरता रही। अपनी जीवन यात्रा में कुछ काम उन्होंने ऐसे किए हैं, जिनकी मिसाल अन्यत्र दुर्लभ है। अपने उद्देश्य और प्रयास को लेकर वे हमेशा आश्वस्त थे, इसलिए जिस पथ पर चले, कभी वापस नहीं मुड़े और न ही कभी किसी को निराश किया। अपनी कर्मठता से उन्होंने ‘हिंदुस्थान समाचार एजेंसी’ को हर तरह से समृद्ध किया। उसे अंतरराष्ट्रीय मंच तक ले गए। भारत से बाहर एजेंसी का पहला पड़ाव नेपाल था। वहाँ एजेंसी पत्रकारिता के साथ सांस्कृतिक आदान-प्रदान को और मजबूती देने का माध्यम बन गई। समय के साथ इसमें और विस्तार हुआ। कूटनीतिक स्तर पर पहुँचने से इनके प्रयासों का महत्व और बढ़ गया। ‘नेपाल संदेश’ कुछ इसी तरह के प्रयास की व्यावहारिक परिणति था। बालेश्वर अग्रवाल ने ‘हिंदुस्थान समाचार’ के माध्यम से न केवल ‘मुफ़स्सिल पत्रकारिता’ को बढ़ावा दिया, बल्कि सीमित संसाधन में भी एजेंसी को वैश्विक स्तर पर स्थापित करने में सफल रहे। उनकी यह यात्रा कई तरह के उतार-चढ़ाव से भरपूर थी। वैसे तो एजेंसी की शुरुआत कुछ खास उद्देश्यों को लेकर हुई थी, लेकिन बालेश्वर अग्रवाल के नेतृत्व में उसका उद्देश्य व्यापक हो गया। हिंदुस्थान समाचार के समानांतर उन्होंने ‘युगवार्ता’ और ‘नेपाल संदेश’ जैसे अन्य मजबूत विकल्प तैयार किए। इससे खबरों का दायरा व्यापक हो गया। उन्होंने युवा प्रतिभाओं के साथ मिलकर भारत और नेपाल के मध्य प्रत्येक स्तर पर कार्य किया। उनके कार्य की व्यापकता को देखते हुए लोग उन्हें ‘गैर सरकारी राजदूत’ कहने लगे थे।

शोध उद्देश्य

प्रस्तुत शोध का मुख्य उद्देश्य भारतीय पत्रकारिता से जुड़े एक ऐसे व्यक्तित्व, बालेश्वर अग्रवाल, को सामने लाना है, जिसका जीवन रचनात्मक गतिविधियों और सफलतम प्रयोगों का पुलिंदा है।

शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध की प्रकृति विश्लेषणात्मक है। इसके लिए गुणात्मक तथ्यों का संकलन प्राथमिक और द्वितीयक स्रोतों से किया गया है। प्राथमिक स्तर की सामग्री अंतरराष्ट्रीय सहयोग परिषद् और देश-दुनिया में फैले हुए उन लोगों से बात करके प्राप्त की गई, जिन्होंने बालेश्वर जी के साथ कार्य किया। उन पर केंद्रित संस्मरणात्मक पुस्तक और उनके खुद के लिखे गए पत्र भी आधार सामग्री के रूप में प्रयोग हुए हैं। केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा द्वारा प्रकाशित ‘प्रवासी जगत्’ के विशेषांक से कुछ ताजा जानकारी मिली, जिससे शोध का आधार बहुत मजबूत हुआ है। शोध को प्रामाणिक बनाने में लोगों से लिया गया साक्षात्कार विषय की व्यापकता और गहराई के लिए अनिवार्य है। खासकर तब, जब बालेश्वर अग्रवाल पर लिखित जानकारी नहीं के बराबर है।

‘नेपाल संदेश’ की शुरुआत

स्वतंत्रता के बाद भी मूल्य आधारित पत्रकारिता की तासीर बिल्कुल ताजी थी। उसी दौरान ‘नेपाल संदेश’ अस्तित्व में आया। इसकी पृष्ठभूमि में कुछ छोटे-छोटे अन्य प्रयास और ‘हिंदुस्थान समाचार बहुभाषी एजेंसी’ की भूमिका स्पष्ट थी। उस दौरान अपने व्यापक पाठक वर्ग के कारण हिंदी पत्रकारिता ने खूब तरक्की की। ऐसा इसलिए हो सका, क्योंकि उसको दिशा देने की जिम्मेदारी कुछ मजबूत और ईमानदार कंधों पर थी। ‘आजादी के बाद देश जब तरक्की की राह पर चलने लगा तब समाचार पत्रों की जिम्मेदारियाँ बहुत बढ़ गई थीं’ (जैन, 1973)। अच्छा यह था कि उस वक्त निभाने वाले लोग थे, जिसके कारण तमाम अभाव एवं बाधाएँ उनके हौसलों से छोटी पड़ गईं। सभी के रचनात्मक योगदान से निर्माणों की शृंखला खड़ी हो गई। बालेश्वर अग्रवाल बहुत व्यापक सोच के साथ काम कर रहे थे। ‘उनके जीवन में भारतीयता, देशभक्ति तथा वसुधैव कुटुंबकम् की अंतःचेतना का अद्भुत समन्वय

¹एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, दयाल सिंह महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली। ईमेल : ramashankarkushwah.hindi@dsc.du.ac.in

था’ (गुप्ता, 2021)। इसे वे आजीवन निभाते रहे। सब तरफ होने वाले सामूहिक प्रयासों से देश की तरक्की की दिशा तय हुई। उस नींव में कुछ ईंट ‘हिंदुस्थान समाचार’ की तरफ से भी पड़ीं। खासकर विदेशों में देश की छवि बनाने में जो लोग जुटे थे, उसमें ‘हिंदुस्थान समाचार’ पहले पायदान पर था। उसने शुरुआत पड़ोसी देश नेपाल से की थी। ‘1954 में ‘हिंदुस्थान समाचार’ और कुछ भारतीय भाषाओं के पत्रकारों का एक अखिल भारतीय सम्मेलन पटना में आयोजित हुआ, जिसके मुख्य अतिथि नेपाली काँग्रेस के वरिष्ठ नेता मातृका प्रसाद कोइराला थे’ (कुमार, 2021)। यह जमावड़ा राष्ट्रवादियों का था। उन्होंने सांस्कृतिक आदान-प्रदान को मजबूती देने की बात पर एकजुटता दिखाई। यह ऐसी शुरुआत थी, जिसने आगे चलकर भारत-नेपाल संबंधों को मजबूत आधार प्रदान किया, क्योंकि इस सम्मेलन में जुटे नेपाली प्रतिनिधि आगे चलकर सत्तासीन हुए।

बालेश्वर अग्रवाल नेपाल से लगातार संपर्क में थे। उनका यह संपर्क बहुस्तरीय था। अनुभव से वह बहुत जल्दी इस निष्कर्ष पर पहुँच गए कि भारत और नेपाल के बीच संबंधों का दायरा बहुत व्यापक है। पड़ोसी होने के नाते सहमतियों के साथ कुछ आपसी असहमतियाँ भी समानांतर चलती हैं। कई बार इनमें होने वाले उतार-चढ़ाव दोनों देशों के लिए असहज स्थिति पैदा कर देते हैं। साथ ही कभी इनका दायरा इतना व्यापक हो जाता है कि उन्हें एक माध्यम के द्वारा नहीं समेटा जा सकता। ऐसा कई बार ‘हिंदुस्थान समाचार एजेंसी’ के साथ भी हुआ कि वह आमजन की सहमतियों और असहमतियों के सभी पहलुओं तक नहीं पहुँच पा रही थी। कार्यक्षेत्र या कहें कि किसी घटना की विषयवस्तु का दायरा इतना व्यापक हो जाता था कि एजेंसी के संसाधन और उसके संवाददाताओं के प्रयास, दोनों कम पड़ रहे थे। एजेंसी नेपाल से आने वाली खबरों का प्रसारण तो कर देती थी, लेकिन भारत और नेपाल के संबंधों/समस्याओं को लेकर वहाँ की जनता के मन में आए दिन उठने वाले सवाल को जवाब एजेंसी के पास नहीं था। राजनीतिक फैसलों के साथ-साथ जनता और सत्ता के स्तर पर होने वाले जरूरी फैसलों और असहमतियों तथा उसके कारणों का जवाब एजेंसी के दायरे से बाहर की बात थी। इसके लिए बालेश्वर अग्रवाल एक मंच बनाना चाहते थे, जो प्रशासन से अलग जनता की आवाज को भी अवसर दे। बालेश्वर अग्रवाल का जुड़ाव जमीनी था। जिन देशों में उनकी रुचि थी, वहाँ वह हमेशा निगाह रखते थे। ऐसे ही नेपाल में हो रहे परिवर्तनों को वे बहुत नजदीक से देख रहे थे। उन परिवर्तनों पर संवाद करने की जरूरत महसूस कर रहे थे। सामरिक/राजनीतिक और सांस्कृतिक, आर्थिक जैसे कई ऐसे मामले थे, जिसके लिए बुद्धिजीवियों द्वारा लेखन कर पृष्ठभूमि तैयार की जाती थी और सरकारें उसे अमल में लाने का मसौदा तैयार करती थीं। नेपाल में इस तरह का प्रयास करने के लिए उन्होंने ‘नेपाल संदेश’ नाम से एक पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया। उस समय एजेंसी के आर्थिक हालात बहुत अच्छे नहीं थे, फिर भी धनाभाव में जरूरी काम रोके नहीं जा सकते। इस सिद्धांत के तहत वे आगे बढ़े। नेपाल में चीनी दखल को रोकने और वहाँ के जनमानस की सोच को भारतीय राजनीतिक गलियारे तक पहुँचाने के लिए किसी ऐसे मंच की आवश्यकता थी। इसलिए बालेश्वर अग्रवाल संसाधनों की चिंता किए बिना ‘नेपाल संदेश’ निकालने की तरफ बढ़ गए।

‘युगवार्ता फीचर सर्विस’

इसी बीच ‘हिंदुस्थान समाचार’ की तरफ से विभिन्न माध्यमों में खबरें देने के साथ-साथ ‘युगवार्ता फीचर सर्विस’ भी चल रही थी। स्वाभाविक था कि इस तरह के अतिरिक्त प्रयासों से एजेंसी पर आर्थिक दबाव बढ़ गया था। हालाँकि एजेंसी ने किसी तरह के अतिरिक्त दबाव से बचने के लिए ‘युगवार्ता’ को फीचर सर्विस के रूप में प्रारंभ किया था (सिन्हा, 2017), फिर भी सीमित आमदनी के कारण कुछ तो दबाव पड़ना ही था। इसलिए ‘युगवार्ता’ के बाद एजेंसी के पदाधिकारी ‘नेपाल संदेश’ या इस तरह का कोई प्रयास कर अतिरिक्त बोझ लेने के पक्ष में नहीं थे, जबकि बालेश्वर अग्रवाल धुन के पक्के व्यक्ति थे। उन्हें अपनी कार्यक्षमता पर पूरा भरोसा था। साथ में संघ पर प्रतिबंध के दौरान उन्होंने देख लिया था कि एक संगठन से कई संस्थाएँ चलाना कितना घातक है। एक बंद हुआ तो सब ठप पड़ जाएगा। बालेश्वर अग्रवाल की सोच और भविष्य की योजना के तहत ‘नेपाल संदेश’ को सुचारु रूप से चलाने और हिंदुस्थान समाचार समिति से अलग रखने के लिए एक स्वतंत्र ट्रस्ट का निर्माण किया गया। उसका नाम था—‘पशुपति नाथ प्रकाशन ट्रस्ट’ (छपोलिका, 2019)। उसमें पटना और बिहार के अलग-अलग हिस्सों में संवाददाता रहे रामनिवास छपोलिका भी एक ट्रस्टी थे। इस ट्रस्ट के बारे में पूरी जानकारी रामनिवास छपोलिका ने ही दी। उनका कहना था कि उसी प्रकाशन के तहत ‘नेपाल संदेश’ नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन पटना से प्रारंभ हुआ। इस साप्ताहिक के पहले प्रकाशक थे ‘दुर्गा प्रसाद खवाड़े’। वे बिहार (देवघर) के रहने वाले थे। पत्रिका का उद्देश्य था—नेपाल की राजनीतिक गतिविधियों पर निगरानी रखना और उन्हें चीन की ओर जाने से रोकना। इस उद्देश्य हेतु बालेश्वर अग्रवाल बराबर काठमांडू एवं नेपाल के शहरों में और तराई वाले इलाकों में जाया करते थे। उनके सहयोगी बताते हैं कि वे लोगों के बीच अपने विचारों को बहुत प्रभावी ढंग से रखा करते थे। नेपाल के सभी मंत्रियों, प्रधानमंत्री, महाराज, दूतावास के अधिकारियों से उनका मिलना-जुलना बराबर होता रहता था।

‘नेपाल संदेश’ में ‘नेपाल और भारत’ से संबंधित राजनीतिक-सामाजिक समस्याओं पर आलेख प्रकाशित होते थे। एक रणनीति के तहत भारत और नेपाल के बीच में सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनैतिक विषयों पर जनता से जुड़े प्रतिनिधियों के विचारों को महत्व दिया जाता था। इसके माध्यम से भारत की सोच को नेपाल की जनता तक पहुँचाने का प्रयास होता था। व्यावहारिक रूप में देखें तो सांस्कृतिक संरक्षण के लिए राजनयिक संबंधों से इतर इस तरह के प्रयास की बहुत जरूरत थी, क्योंकि नेपाल में माओवाद और कम्युनिस्ट पार्टी का विस्तार होने लगा था। चीनी दूतावास बनाने के बाद तो चीन नेपाल में सुनियोजित तरीके से भारत विरोधी गतिविधियों को हवा देने का कार्य कर रहा था। बालेश्वर अग्रवाल इसे स्पष्ट करते हुए लिखते हैं, ‘The Chinese are actively engaged in penetrating in the Nepalese affairs. They described king’s February action as internal affair of Nepal. Their Foreign Minister paid an official visit to Nepal and Nepalese Foreign Minister, Shri Ramesh Nath Panday, went on an eleven-day official visit to China. Even his Majesty the king and the Finance Minister of Nepal visited China during this period. Chinese have promised

all support, both economic and military to Nepal. Shri Ramesh Pandey on his return from China to Kathmandu in September said that if India, USA and UK were not extending their cooperation, they had to get it from other countries' (अग्रवाल, 2013)।

साप्ताहिक से दैनिक पत्र

बालेश्वर जी नेपाल में हो रहे इन बदलावों और चीन की साजिशों को बहुत नजदीक से देख रहे थे। खासकर राजशाही की खिलाफत करने वाले लोगों को उसका समर्थन था। चीन की कोशिश थी कि नेपाल में राजशाही को समाप्त कर लोकतंत्र की स्थापना हो, जबकि बालेश्वर अग्रवाल का निष्कर्ष था कि नेपाली जनता एकाएक ऐसे किसी परिवर्तन को स्वीकार नहीं कर सकेगी। नेपाल में किए गए जमीनी कार्यों से वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि वहाँ राजशाही और लोकतंत्र दोनों रहने चाहिए, कुछ वैसा ही जैसा कि ब्रिटेन में है, क्योंकि राजा के प्रति जनता का सम्मान था। जबकि वामपंथी विचार के विस्तार के लिए पीछे से चीन सहयोग कर रहा था। चीन का दखल बहुत न बढ़े, इसलिए भी ऐसे प्रयासों की जरूरत थी। दुनिया में नेपाल एकमात्र हिंदू राष्ट्र है। बालेश्वर अग्रवाल इसलिए भी प्रयास कर रहे थे कि नेपाल से भारत का सांस्कृतिक संबंध बरकरार रहे। इसके लिए ऐसे माध्यम बहुत उपयोगी साबित होते हैं। बालेश्वर अग्रवाल नेपाल की स्थिति को बहुत नजदीक से देख रहे थे। उनको पता था कि वहाँ क्या घटित हो रहा है और उसका कारण क्या है। साथ ही वे यह भी जानते थे कि इसका भारत-नेपाल संबंध पर क्या प्रभाव पड़ेगा। इसी सोच के साथ उन्होंने 'नेपाल संदेश' का साप्ताहिक प्रकाशन आरंभ किया था। इतना जरूर है कि इस प्रकाशन के पीछे वे अकेले नहीं थे, बल्कि इसमें कई व्यक्तियों और संगठनों की भूमिका थी। उसमें भारत और नेपाल दोनों तरफ के लोग शामिल थे। विषयवस्तु और संतुलित विश्लेषण के कारण 'नेपाल संदेश' प्रबुद्ध पाठकों के बीच जगह बनाने में सफल रहा। पत्रिका ने भारत और नेपाल के नेता/विश्लेषक के साथ-साथ दोनों देशों के संबंधों पर शोध करने वाले लोगों तक मुद्दों और समस्याओं को पहुँचाने और समझने-समझाने में मदद करने का कार्य किया।

'नेपाल संदेश' का दायरा बहुत तेजी से बढ़ा। इस बीच बालेश्वर अग्रवाल को महसूस हुआ कि हम इसको दैनिक रूप से प्रकाशित करें तो अधिक से अधिक सामग्री पाठकों तक पहुँचाई जा सकती है। इसलिए 'नेपाल संदेश' को 'साप्ताहिक' से 'दैनिक' कर दिया गया। ऐसा इसलिए भी किया गया कि सामग्री साप्ताहिक पत्र से बहुत अधिक मिलने लगी थी। स्तरीय सामग्री के कारण साप्ताहिक पत्र की स्वतंत्र पहचान बन गई थी। उसका स्तर दैनिक से अलग था। पाठकों के बीच उस स्तर का अभाव न हो, इसके लिए एक और प्रयास किया गया। 'नेपाल संदेश' को साप्ताहिक से दैनिक करके 'पशुपति नाथ प्रकाशन ट्रस्ट' के द्वारा अगस्त 1972 में 'हिमालय सेंटिनल' नाम से एक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन प्रारंभ किया गया। इस समय, जब यह अतीत की बात हो गई है, तो 'हिमालय सेंटिनल' को लेकर बालेश्वर अग्रवाल के सहयोगियों की मिली-जुली प्रतिक्रिया देखने को मिली। कुछ का मानना था कि 'हिमालय सेंटिनल' के प्रकाशन की जरूरत नहीं थी और न ही 'नेपाल संदेश' को दैनिक करने की जरूरत थी। उसके दो कारण थे—पहला तो यह कि 'नेपाल संदेश' ही बहुत

कठिनाई से निकल पा रहा था। आर्थिक मोर्चे पर उसमें दिक्कतें बहुत थीं। दूसरा, बेहतर लेख और सूचनाओं के कारण उसका एक स्तर बन गया था। उसके पाठकों की संख्या भारत से अधिक नेपाल में थी। इसलिए उसके प्रारूप को छेड़ना नहीं चाहिए था। वह आगे और बेहतर होती, जिसे बालेश्वर अग्रवाल की सफलता की निशानी समझा जाता। एक पक्ष यह भी मानता है कि 'नेपाल संदेश' के नाम पर सामग्री बहुत आने लगी थी। इतना कि दो-तीन अंक एक साथ निकाले जा सकते थे। इसलिए सोचा यह गया कि इसको दैनिक करने से विज्ञापन मिलेगा और पत्र अपने साथ 'हिमालय सेंटिनल' को भी आगे ले जाएगा (छपोलिका, 2019)।

हिमालयन सेंटिनल

सोच सही हो तो कार्य अंजाम तक पहुँच जाता है। कई बार परिस्थितियाँ विपरीत हो जाती हैं और सही प्रयास भी सफल नहीं हो पाता। 'नेपाल संदेश' के साथ ऐसा हुआ। 'हिमालय सेंटिनल' के पहले संपादक बनाए गए थे 'रामनिवास छपोलिका'। वे बताते हैं, 'इसका दायित्व मेरे कंधों पर सौंप दिया गया था। अखबार के संपादक के रूप में मेरे नाम को छपा जाने लगा था—रामनिवास, एम.ए.। मुझे काठमांडू भी जाना पड़ता था। काठमांडू में महाराजा, प्रधानमंत्री, मंत्रिगण, दूतावास के अधिकारियों से भी मिलना-जुलना होता था। उनका साक्षात्कार भी लेना पड़ता था। इस दौरान मुझे 'हिंदुस्थान समाचार' के अधिकारियों का पूर्ण सहयोग मिला करता था। 'हिमालय सेंटिनल' का प्रकाशन एक रणनीति के तहत हुआ था। बालेश्वर अग्रवाल अलग-अलग संस्था बनाकर काम क्यों कर रहे थे, इसका कारण तब स्पष्ट हुआ, जब आपातकाल लगा और 'हिंदुस्थान समाचार सहकारी समिति' को बंद कर दिया गया। अलग संस्थान से निकलने के कारण 'नेपाल संदेश' का प्रकाशन बाद में भी होता रहा। रामनिवास छपोलिका संघ के स्वयंसेवक थे। 'नेपाल संदेश' शुरू होने से पहले ही देश में जनसंघ बन गया था। चुनाव में उसकी भागीदारी शुरू हो गई थी। जनसंघ बनने के बाद कम्युनिस्ट और सामाजवादियों के समानांतर एक और वैचारिक विपक्ष खड़ा होने लगा था। 'हिंदुस्थान समाचार', 'नेपाल संदेश' और 'हिमालयन सेंटिनल' का संपादन-प्रबंधन ऐसे लोगों के हाथ में था, जिनसे सामान्यतया यह उम्मीद नहीं की जाती थी कि वे लोग कांग्रेस पार्टी के प्रधानमंत्री की आलोचना को नहीं छापेंगे, क्योंकि तब देश में कांग्रेस पार्टी का वर्चस्व था। उसके बहुत से नेता अपने विरोधी दलों और संगठनों को बिल्कुल पंसद नहीं करते थे, फिर भी राष्ट्रवादी सोच के लोगों ने ऐसा कई मौकों पर किया। एक वाक्या 1963 में हुआ था। रामनिवास छपोलिका बताते हैं, 'हिमालय सेंटिनल' के संबंध में मैंने पटना से नेपाल जाकर वहाँ के प्रधानमंत्री का एक साक्षात्कार लिया था। पटना लौटने पर मैंने उस साक्षात्कार को 'नेपाल संदेश' तथा 'हिमालयन सेंटिनल' में नहीं छापने का निर्णय लिया। इस संबंध में मैंने अपने निर्णय के बारे में बालेश्वर अग्रवाल को सूचित कर दिया। इस पर उन्होंने प्रसन्नता प्रकट की और बधाई दी। इसका कारण यह था कि नेपाल के प्रधानमंत्री ने भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री के खिलाफ जहर उगला था, जिसे मैं किसी भी शर्त पर छापने को तैयार नहीं था' (छपोलिका, 2019)।

मूल्यपरक पत्रकारिता

उस दौर में पत्रकारिता की पहली शर्त ईमानदारी थी। दाऊजी गुप्त के

अनुसार ‘आज की तरह उस समय मीडिया का कार्य सनसनी पैदा करने वाले बनावटी समाचार देना नहीं, बल्कि समस्या की जड़ तक पहुँचकर उसे सत्य के मानदंड पर कसकर यथावत प्रस्तुत करते हुए उसके समाधान को भी परोक्ष रूप से इंगित करना था (गुप्त, 2021)। ‘नेपाल संदेश’ के संदर्भ में यह चरितार्थ होता दिखाई देता है। यह स्वस्थ पत्रकारिता का उदाहरण था, जिसे बालेश्वर अग्रवाल प्रोत्साहित कर रहे थे। बालेश्वर अग्रवाल रामनिवास छपोलिका के निर्णय से इसलिए सहमत थे, क्योंकि कई बार खबर से देश में आपसी मतभेद या वैचारिक टकराहट होती रहती थी। ऐसे में दुनिया का कोई और देश इसे मौका समझकर भुनाने का प्रयास भी कर सकता था, जो वैचारिक तौर पर ‘हिंदुस्थान समाचार’ को बिल्कुल गवारा नहीं था। वे जानते थे कि देश के अंदरूनी मामले का कोई और फायदा लेने लगा तो हमारी राष्ट्रवादी सोच पर सवाल उठेगा। इस मामले में बालेश्वर अग्रवाल की सोच स्पष्ट और सराहनीय थी। स्वाभाविक है कि उस धारा में काम करने वाले उनके सहयोगी भी किसी अतिवाद के शिकार नहीं थे। ‘हिंदुस्थान समाचार’ इसी तरह की कुछ विशेषताओं के साथ अपनी पहचान बनाने में सफल रहा।

नेपाल के संदर्भ में होने वाले इस तरह के फैसलों के कारण ‘पशुपतिनाथ ट्रस्ट’ को नेपाल सरकार की तरफ से जो आर्थिक मदद मिलती थी, वह बंद हो गई। ‘नेपाल संदेश’ और ‘हिमालय सेंटिनल’, दोनों समाचार पत्र घाटे में पड़ गए। धनाभाव के कारण इन्हें बहुत लंबे समय तक चलाना संभव नहीं था। इधर ‘हिंदुस्थान समाचार’ किसी और पत्र-पत्रिका को पैसा देने के लिए तैयार नहीं था। ऐसे में पशुपतिनाथ ट्रस्ट की संचालन समिति द्वारा दो महत्वपूर्ण फैसले लिए गए। पहला यह कि ‘हिमालयन सेंटिनल’ साप्ताहिक प्रकाशन को बंद कर दिया गया। दूसरा, ‘नेपाल संदेश’ को दैनिक की जगह पुनः साप्ताहिक प्रकाशन बना दिया गया। हालाँकि बहुत छोटी अवधि में इन दोनों प्रकाशनों ने नेपाल में बहुत अच्छी ख्याति प्राप्त कर ली थी। बालेश्वर अग्रवाल का प्रबंधन बहुत स्तरीय था। वे जरूरत और वक्त दोनों को पढ़ना जानते थे। उनके बेहतर प्रबंधन के कारण ही ‘नेपाल संदेश’ बहुत लंबे समय तक चला और वह भारत-नेपाल-संबंधों को सही दिशा में ले जाने के संदर्भ में समय-समय पर बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता रहा। अपनी विविधतापूर्ण प्रस्तुति के कारण ‘नेपाल संदेश’ अपनी सीमा में काफी बेहतर स्थिति में था। आर्थिक मोर्चे की बात करें तो उसके संपादन का खर्च निकल जाता था।

आरंभ में ‘नेपाल संदेश’ का दफ्तर पटना में ‘हिंदुस्थान समाचार’ के साथ ही था। बाद में जब बालेश्वर अग्रवाल ने 53, श्रीकृष्णा नगर, कदम कुँआ, पटना में एक मकान खरीदा तब वहाँ स्थानांतरित हो गया। बहुत लंबे समय तक उसी मकान में रहकर पत्रकार रामाश्रय प्रसाद ‘नेपाल संदेश’ का संपादन करते थे। आपातकाल के बाद भी ‘नेपाल संदेश’ कुछ समय तक पटना से निकला, लेकिन बालेश्वर अग्रवाल के हटने के साथ

ही वह ढलने लगा, क्योंकि ‘नेपाल संदेश’ के प्रकाशन में बालेश्वर जी के संबंधों की बड़ी भूमिका थी। एक तरह से वही पत्रिका के लिए ऑक्सीजन थे। धनाभाव और दिशाहीनता से जूझता हुआ ‘नेपाल संदेश’ सन् 2000 के आसपास पूरी तरह बंद हो गया।

निष्कर्ष

बालेश्वर अग्रवाल ने ‘नेपाल संदेश’ का प्रकाशन एक विशेष उद्देश्य के साथ प्रारंभ किया था। तमाम अभावों और संघर्षों के बाद भी उसमें काफी हद तक वे सफल रहे। उनकी पत्रकारिता ने इस अवधारणा को और मजबूती देने का कार्य किया कि नेपाल-भारत केवल पड़ोसी देश नहीं हैं, बल्कि उनमें सांस्कृतिक एकरूपता बहुत अधिक है। दोनों देशों के बीच पारिवारिक संबंध सांस्कृतिक एकरूपता को और प्रगाढ़ करते हैं। खेती-किसानी, प्राकृतिक जलस्रोत तक जुड़े हुए हैं। ऐसे में दूसरे देशों की दखल को नकारने या जनमानस को सरकार की गतिविधियों से अवगत कराने का काम ‘नेपाल संदेश’ ने किया। सरकारों के फैसलों और कभी-कभी होने वाली नाकाबंदी से दोनों देशों के बीच शादियाँ तक रुक जाती थीं। सामान्य जन को भारत-नेपाल के खिलाफ बोलने का अवसर मिलता था। ‘हिंदुस्थान समाचार’ और ‘नेपाल संदेश’ की पहल से पारदर्शिता को बढ़ावा मिला। उस दौर में जनमानस के दबाव में दोनों देशों का नेतृत्व किसी पूर्वग्रह या फिर साजिश से बचकर कार्य करने को बाध्य हुआ। दोनों देशों को नीति बनाने में मदद मिली, जिससे जनता उन संघर्षों से बच गई, जो उसकी दैनिक चर्या को रोकने का कार्य कर रहे थे। बालेश्वर अग्रवाल की रचनात्मक पहल का ही यह परिणाम था।

संदर्भ सूची

- अग्रवाल, बी. (2013). डेडलॉक इन नेपाल, नारायण कुमार/गोपाल अरोड़ा (सं.), कर्मयोगी बालेश्वर अग्रवाल : व्यक्ति और विचार, दिल्ली : प्रभात प्रकाशन, पृष्ठ 172.
- कुमार, एन. (2021). वज्रादपि कठोराणि, मृदूनि कुसुमादपि, प्रवासी जगत, खंड-4, अंक-3, अप्रैल-जून, पृष्ठ 12.
- गुप्त, डी. (2021). ‘देवमूर्ति बालेश्वर’, प्रवासी जगत, खंड-4, अंक-3, अप्रैल-जून, पृष्ठ 65.
- छपोलिका, आर.एन. (2019). पेशे से वकील और पत्रकार, 30 जून, 2019 को महावीर स्थान, हजारीबाग, झारखंड में साक्षात्कार.
- जैन, ए.के. (1973). लोकतंत्र में समाचार पत्रों का कर्तव्य और दायित्व, हिंदुस्थान समाचार प्रकाशन वार्षिकी, कलकत्ता, हिंदुस्थान समाचार के पच्चीस वर्ष पर विशेष अंक, पृ-29.
- सिन्हा, आर.के. (2017). पूर्व सांसद, वरिष्ठ लेखक एवं व्यवसायी. दिनांक 15 सितंबर, 2017 को दिल्ली में साक्षात्कार.



भ्रामक राजनीतिक संचार और मीडिया साक्षरता : एक समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ. कुमार प्रियतम¹

सारांश

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में 'मीडिया की आलोचनात्मक समझ' को किसी लोकतांत्रिक देश में उत्कृष्ट जीवन जीने में एक सहायक क्षमता के रूप में भी देखा जा रहा है। मीडिया की इसी आलोचनात्मक समझ का संबंध 'मीडिया साक्षरता' से है, जो प्रस्तुत शोध पत्र का आधार है। ब्रिटेन के 'ऑफिस ऑफ कम्युनिकेशन' के अनुसार 'मीडिया साक्षरता' या 'मीडिया लिटरेसी' से तात्पर्य किसी मीडिया सामग्री तक किसी व्यक्ति की पहुँच, उस सामग्री के विश्लेषण, उसके मूल्यांकन और संदेशों के निर्माण करने की क्षमता से है। इस नई क्षमता के साथ ही देश के युवा एक नए और आत्मनिर्भर भारत की नींव रख 2047 के विकसित भारत के सपने को साकार करने में एक कदम आगे बढ़ा सकते हैं। वैश्विक अनुपात में देखा जाए तो भारत जैसे विकासशील देश में युवाओं की एक बड़ी आबादी है, जिस पर देश के तमाम छोटे-बड़े राजनीतिक दलों की निगाहें लगी होती हैं। वर्तमान युवा वर्ग, सिर्फ भारत के लोकतंत्र में एक मतदाता के रूप में ही महत्वपूर्ण नहीं है, बल्कि वह बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए भी एक बड़ा और सक्रिय उपभोक्ता समूह भी है। ऐसे में इन युवाओं पर सिर्फ राजनीतिक दलों की ही नहीं, बल्कि गूगल और फेसबुक जैसी वैश्विक सोशल मीडिया कंपनियों की नज़रें भी हैं, क्योंकि युवा वर्ग उनका एक बड़ा उपभोक्ता भी है। देखा गया है कि ऐसी कंपनियाँ अपना हित साधने के लिए किसी भी हद तक जा सकती हैं, जिसका नुकसान भारत के युवा वर्ग को उठाना पड़ सकता है। इतना ही नहीं, आज का युवा वर्ग, कई क्षेत्रीय दलों द्वारा किए जा रहे पूर्वग्रह युक्त राजनीतिक संचार या उनके लुभावने वादों के भ्रामक जाल में आसानी से फँस सकता है। गहन साहित्य समीक्षा और सर्वेक्षण पर आधारित प्रस्तुत शोध पत्र में बिहार की राजधानी पटना के विश्वविद्यालय, कॉलेज एवं कोचिंग संस्थानों में पढ़ने वाले तकनीकी रूप से जागरूक युवाओं का अध्ययन के लिए चयन किया गया है।

बीज शब्द : आत्मनिर्भर भारत, मीडिया साक्षरता, प्रलोभन, भ्रामक समाचार, युवा, राजनीतिक संचार.

प्रस्तावना

राजनीतिक संचार के इतिहास पर लेखक डैरेन जी. लिलेकर अपनी पुस्तक में लिखते हैं, "राजनीतिक संचार का प्रयोग अक्सर तब किया जाता था जब अपनी सत्ता और शक्ति से किसी प्रतिद्वंद्वी का विरोध करना होता था। मानवीय इतिहास में राजनीतिक संचार इकतरफा ही रहा है, यह ऊपर से नीचे की ओर यानी नेता से जनता की ओर होता था" (लिलेकर, 2009)। वहीं लेखक आगे लिखते हैं कि वर्तमान समय में राजनीतिक संचार का बस रूप बदल गया है और अब दुतरफा संचार की प्रवृत्ति चल रही है, जिसमें मीडिया एक निर्णायक भूमिका निभा रहा है। मीडिया की उपस्थिति के बाद 'राजनीतिक संचार' की भूमिका अब एक उत्प्रेरक के रूप में हो गई है। आधुनिक लोकतंत्र में नागरिकों की प्रतिक्रिया की ज़रूरत होती है और नागरिकों की सतत भागीदारी लोकतंत्र के विमर्श के केंद्र में होती है। 'राजनीतिक संचार' का महत्व लोकतंत्र में इसलिए भी बढ़ जाता है, क्योंकि लोकतंत्र में 'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता' एक महत्वपूर्ण अधिकार के रूप में नागरिकों को प्राप्त होती है। इसी अधिकार में सूचना प्राप्त करने का अधिकार भी शामिल है। भारत में सूचना का अधिकार लोगों को दिया गया है और लोग सूचना प्राप्त कर इस अधिकार का इस्तेमाल कर सकते हैं। भारत में 'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता' के मौलिक अधिकार से ही 'मीडिया' शक्ति प्राप्त करता है अर्थात् मीडिया के अधिकांश अधिकार इसी मौलिक अधिकार से ऊर्जा प्राप्त करते हैं, जिसके तहत मीडिया, अपनी सूचना, शिक्षा और मनोरंजन के उद्देश्य की पूर्ति करता है और स्वयं को जनहित या लोकहित का प्रहरी कहता है। वर्तमान समय में 'मीडिया' शब्द संचार प्रक्रिया में समर्थ समायोजित व्यवस्था का नाम है, जिसमें आमतौर पर आज टेलीविजन, रेडियो, समाचार पत्र-पत्रिका, पुस्तकें, विज्ञापन और अब मल्टीमीडिया

उपकरण यानी इंटरनेट से युक्त कंप्यूटर, स्मार्टफोन और वीडियो गेम, एप इत्यादि को भी शामिल किया जा सकता है। इसलिए आज 'मीडिया की आलोचनात्मक समझ' को किसी लोकतांत्रिक देश में उत्कृष्ट जीवन जीने में एक सहायक क्षमता के रूप में भी देखा जा रहा है। मीडिया की इसी आलोचनात्मक समझ का संबंध 'मीडिया साक्षरता' से है, जिस पर इस शोध पत्र का आधार रखा गया है।

शोध प्रविधि

किसी भी लोकतांत्रिक देश में 'राजनीतिक संचार' लोकतांत्रिक प्रक्रिया के अनुरूप किया जाता है। लोकतंत्र में 'लोक या जनता' को सर्वोपरि माना गया है और भारत में युवाओं की जनसंख्या उसी 'लोक' के एक बड़े भाग का प्रतिनिधित्व करती है, जो सक्रिय मतदाता भी होते हैं और जिन पर लोकतंत्र की नींव भी टिकी होती है। इस शोध अध्ययन में 'युवाओं' को लक्षित कर रूपरेखा तैयार की गई है, खासकर ऐसे युवा, जो किसी आम चुनाव में पहली बार मतदान करने की योग्यता प्राप्त करते हैं, यानी जो युवा 18 वर्ष उम्र सीमा को पार कर पहली बार निर्वाचन सूची में शामिल होते हैं। युवाओं को लक्षित करने के पीछे एक बड़ी वजह यह भी है कि 'युवा' अक्सर कुछ नया करने वाले और डिजिटल फ्रेंडली, यानी नई-नई तकनीकों को आत्मसात् करने वाले और साथ-ही-साथ ये एक सक्रिय नागरिक और सतत विकास कार्यों में सकारात्मक भूमिका निभाने वाले भी होते हैं। मनोवैज्ञानिक बार्कर के अनुसार, "युवा एक ऐसा श्रेणी वर्ग है, जिस आयु वर्ग में आवश्यक मनोवैज्ञानिक विशेषताएँ और सामाजिक ज़रूरतें लगभग समान होती हैं" (बार्कर, 2000)। गहन साहित्य समीक्षा और सर्वेक्षण पर आधारित इस शोध पत्र में सर्वे हेतु उद्देश्यपूर्ण प्रतिदर्शन

¹अकादमिक सह शिक्षण सहयोगी, भारतीय भाषा (हिंदी) पत्रकारिता विभाग, भारतीय जन संचार संस्थान, नई दिल्ली. ईमेल : writeforkumar@gmail.com

का प्रयोग करते हुए 18 से 29 वर्ष आयु वर्ग के 460 युवाओं का चयन किया गया। इसमें बिहार की राजधानी पटना के कॉलेज, विश्वविद्यालयों एवं कोचिंग संस्थानों में पढ़ने वाले तकनीकी रूप से जागरूक युवाओं का ही अध्ययन के लिए चयन किया गया। साथ ही इस अध्ययन में पहली बार मतदान करने वाले और मतदान के अधिकार का पहले भी प्रयोग कर चुके 18 से 29 वर्ष आयु वर्ग के युवाओं को शामिल किया गया। इस शोध के लक्षित प्रतिदर्श में मीडिया स्वभाव या आदत की जाँच, बंद और खुले दोनों तरह के चयनित प्रश्नों के माध्यम से 'मीडिया साक्षरता फ्रेमवर्क' के आधार पर तैयार 'प्रश्नावली' से की गई है। आँकड़ों का संकलन वर्ष 2021 में किया गया है, इसलिए भी कि वर्ष 2020 में बिहार विधानसभा चुनाव हो रहा था, जिसमें सरकारी नौकरी जैसे मुद्दों को केंद्र में रखकर क्षेत्रीय राजनीतिक दलों द्वारा युवाओं को लुभाया गया था।

शोध का सैद्धांतिक पक्ष

राजनीतिक संचार में सोशल मीडिया के सैद्धांतिक पक्ष को भी समझा जा सकता है कि क्यों आज अन्य सभी मीडिया की अपेक्षा सोशल मीडिया का महत्व राजनीतिक रूप से भी बढ़ता ही जा रहा है। सोशल मीडिया के जरिये सिर्फ शहरी क्षेत्रों में ही नहीं, दूरदराज के क्षेत्रों में भी ओपिनियन लीडर तक अपना एजेंडा पहुँचाने का कार्य बखूबी चल रहा है। उदाहरणस्वरूप हम देख सकते हैं कि इंस्टाग्राम, फेसबुक, व्हाट्सएप, एक्स (पूर्व ट्विटर) और यूट्यूब जैसे माध्यमों पर राजनीतिक दलों का जैसा जोर है, उसके पीछे जनसंचार की एक थ्योरी काम कर रही है, जिसे 'टू स्टेप थ्योरी' (कैटज & लाजर्सफेल्ड, 1955) के नाम से जाना जाता है। इस सिद्धांत में जिन ओपिनियन लीडर की बात हो रही है, उनमें से आज अधिकतर सोशल मीडिया पर सक्रिय हैं और युवा वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं।

समीक्षात्मक विवेचना

ब्रिटेन के 'ऑफिस ऑफ कम्युनिकेशन' के अनुसार 'मीडिया साक्षरता' या 'मीडिया लिटरेसी' से तात्पर्य किसी मीडिया सामग्री तक किसी व्यक्ति की पहुँच, उस सामग्री के विश्लेषण, उसके मूल्यांकन और संदेशों के निर्माण करने की क्षमता से है। मीडिया साक्षर लोग टीवी, रेडियो, समाचारपत्र-पत्रिका, इंटरनेट, किताबें, वीडियोगेम, संगीत और मीडिया से प्राप्त हर तरह की सूचनाओं को समझने और विश्लेषित करने की योग्यता रखते हैं (मीडिया लिटरेसी ऑडिट, 2005)। यूनेस्को की 'मीडिया और सूचना साक्षरता' मार्गदर्शिका के अनुसार मीडिया साक्षरता में 'सभी के लिए सूचना तक पहुँच, गुणवत्तायुक्त शिक्षा और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का आधार' शामिल है (यूनेस्को, 2013)। इस संदर्भ में यह माना जा सकता है कि बिना मीडिया और सूचना साक्षरता की योग्यता के युवाओं की समाज और समुदाय में सक्रिय भागीदारी काफी मुश्किल होती है और ऐसे लोगों के लिए एक अच्छे और प्रभावी शासन में हिस्सेदारी भी कठिन होती है (ग्रिजल & टोर्सस कैल्वो, 2013)। इसलिए यूनेस्को द्वारा मीडिया साक्षरता की योग्यता की 'एक आवश्यक क्षमता' के रूप में पहचान की गई है। कैलीफोर्निया युनिवर्सिटी के प्रोफेसर डब्ल्यू. जेम्स पॉटर ने अपनी पुस्तक में मीडिया साक्षरता को संदेशों से भरी इस दुनिया में 'सेल्फ-हेल्प या स्वयं सुरक्षा' जैसा बताया है, यानी कोई विद्यार्थी, मीडिया साक्षरता के जरिये मीडिया संदेशों से अपनी रक्षा करने में सक्षम हो सकता है (पॉटर, 2011)। उन्होंने अपनी दूसरी पुस्तक में बताया कि हम अनजाने में या आदत के अनुसार बहुत-सी ऐसी

मीडिया सामग्री का उपभोग करते हैं, जो हमारे लिए जरा भी उपयोगी नहीं है। हम अवचेतन में बहुत से ऐसे कार्य करते हैं, जिनके बारे में थोड़ा भी ठहर कर सोचें, तो हम वे कार्य कदापि नहीं करेंगे। अर्थात् मीडिया साक्षरता किसी को मशीन की भाँति, कोई कार्य आटोमेशन या बिना किसी संज्ञान के करने से बचाती है (पॉटर, 2019)।

वर्ष 2018 में संयुक्त राष्ट्र के एक उच्चस्तरीय कार्यक्रम में विश्व भर के युवाओं के अधिकारों को सुनिश्चित करने के लिए एक रणनीति बनाई गई और 'युवा 2030 रणनीति' का शुभारंभ किया (संयुक्त राष्ट्र, 2018), जिसका लक्ष्य एवं उद्देश्य एक ऐसे विश्व का निर्माण करने का है, जिसमें सभी युवाओं के मानवाधिकारों का सम्मान सुनिश्चित हो और उन्हें इतना सशक्त बनाया जाए कि वे अपने विकास हेतु अपनी समस्त क्षमताओं का पूर्ण उपयोग कर सकें। वहीं वर्ष 2018 में भारत के निर्वाचन आयोग द्वारा जारी निर्वाचन सूची के अनुसार, "भारत में कुल लगभग 87 करोड़, 91 लाख (87,91,25,763) से ज्यादा मतदाताओं के नाम दर्ज हैं, जिनमें करीब 4.5 करोड़ की संख्या ऐसे युवा वर्ग की है, जो किसी चुनाव में पहली बार मतदान करने वाले हैं। वहीं प्रेस इन्फॉर्मेशन ब्यूरो के द्वारा जारी विज्ञप्ति के अनुसार वर्ष 2024 में भारत में कुल लगभग 96 करोड़ 88 लाख मतदाता हैं, जिनमें 2 करोड़ से ज्यादा युवा मतदाता शामिल हैं (पीआईबी, 2024)। इनके अलावा 17 वर्ष से अधिक करीब 10 लाख से अधिक युवाओं ने मतदाता सूची में उन्हें शामिल करने के लिए आवेदन दिया है। कहने का अर्थ यह है कि देश के युवा लोकतांत्रिक प्रक्रिया में सक्रिय रूप से रुचि ले रहे हैं।

केंद्रीय सांख्यिकी कार्यालय के अनुसार भारत में युवाओं की जनसंख्या लगभग 34 प्रतिशत है और इसी रिपोर्ट के आधार पर वर्तमान समय में 15 से 34 वर्ष आयु वर्ग के लोगों को भारत में 'युवा' माना जाता है (केंद्रीय सांख्यिकी कार्यालय, 2017)। इससे स्पष्ट है कि भारत में युवाओं की एक बड़ी आबादी रहती है, जिस पर देश के सभी छोटे-बड़े राजनीतिक दलों की नज़रें लगी रहती हैं। संयुक्त राष्ट्र की 'युवा 2030 रणनीति' के लक्ष्य एवं उद्देश्य और भारत के निर्वाचन आयोग के आँकड़े प्रस्तुत शोध पत्र में युवाओं को लक्षित किए जाने को तर्कसंगत ठहराते हैं। वर्तमान में इंटरनेट पर उपलब्ध लगभग सभी मीडिया चैनल और वेबसाइटें, हर समय स्मार्टफोन के जरिये युवाओं के साथ-साथ चल रहे होते हैं और उनके हर निर्णय को, कोई-न-कोई सुझाव देकर, तरह-तरह से प्रभावित करते रहते हैं। यह सुझाव बिना पूछे भी कई मीडिया मंचों द्वारा दिया जाता है कि आप क्या करें और क्या न करें, क्या पढ़ें या क्या देखें, क्या खरीदें या क्या पहनें आदि-आदि। अर्थात् वर्तमान मीडिया हर वक्त किसी-न-किसी माध्यम से युवाओं को प्रभावित कर रहा होता है। चूँकि यह एक सर्वमान्य जानकारी है कि मीडिया का प्रभाव अधिकसंख्य युवाओं पर गहरा होता है, इसलिए इससे बचने के उपाय ढूँढ़ना भी आवश्यक हो जाता है। एक अमेरिकी रिसर्च एजेंसी (जेनिथ, 2017) के अनुसार भारत में करीब 530 मिलियन लोगों के पास स्मार्टफोन हैं। वर्तमान स्मार्टफोन और इंटरनेट खपत की वास्तविक वस्तुस्थिति को देखते हुए 'मीडिया साक्षरता' को भारत में एक आवश्यक योग्यता के रूप में लिया जा सकता है।

इंटरनेट पर भारत के युवाओं की बृहत् मौजूदगी के बाद भी कुछ जागरूकता कार्यक्रमों को छोड़कर 'मीडिया की समझ' विकसित करने की कोई औपचारिक या अनौपचारिक शिक्षा यहाँ के युवाओं को अब तक नहीं दी जा सकी है। इसका नतीजा है कि भारत के युवा, इंटरनेट और

सोशल मीडिया की बढ़ती आदत और सूचनाओं की बारिश से स्वयं को बचाने में असमर्थ दिखाई देते हैं। वर्तमान राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय मीडिया परिदृश्य को देखते हुए भी 'मीडिया साक्षरता' के लिए एक व्यापक नीति की आवश्यकता महसूस की जा रही है, क्योंकि आज इंटरनेट या सोशल मीडिया के जरिये किसी देश की लोकतांत्रिक प्रक्रिया में हस्तक्षेप के आरोप-प्रत्यारोप भी अंतरराष्ट्रीय राजनीति में लगाए जा रहे हैं (रॉयटर्स, 2025)। ऐसे में अब इंटरनेट आधारित अधिकतर प्लेटफॉर्मों का भरपूर स्तेमाल कर रहे युवाओं के लिए कोई-न-कोई रक्षा कवच विकसित करना जरूरी समझा जा रहा है। विश्व में 'मीडिया साक्षरता' को एक ऐसे ही रक्षा कवच के रूप में देखा और समझा गया है। मीडिया साक्षरता जैसे रक्षा कवच की जरूरत को और महत्व तब मिलता है, जब भारत की राजनीतिक पार्टियों की संचार प्रणाली का विश्लेषण किया जाता है। इस विश्लेषण से हम पाते हैं कि लगभग अधिकतर क्षेत्रीय राजनीतिक दल, युवाओं को अपने पक्ष में करने की हर संभव कोशिश करते रहते हैं, ताकि उनके सहारे चुनाव में जीत दर्ज कर सकें।

कोई भी राजनीतिक दल, चाहे वह सत्ता पक्ष का हो या विपक्ष का, यदि इस वर्ग को अपने पक्ष में लाने में कामयाब रहता है तो वह वर्तमान लोकतांत्रिक चुनाव प्रणाली में आसानी से सत्तासुख प्राप्त कर सकता है। इसलिए सभी राजनीतिक दल युवाओं को अपने साथ जोड़ने के लिए उनसे कई वादे और तरह-तरह के प्रलोभन, जिनमें मुफ्त लैपटॉप, मोबाइल, टैबलेट और यहाँ तक कि 'बिना ब्याज के शिक्षा ऋण' तक शामिल हैं, दिए जाने की बात करते हैं, क्योंकि यदि युवावर्ग उनके साथ आ गए तो 'फर्स्ट पास्ट द पोस्ट सिस्टम' यानी कि किसी भी चुनाव में "जिसे सबसे ज्यादा 'मत' प्राप्त होता है वही जीत जाता है" के आधार पर कोई भी राजनीतिक दल बहुमत प्राप्त कर सकता है। उत्तर प्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री अखिलेश यादव, युवाओं को लैपटॉप बाँटने के लिए सुर्खियों में बने रहे थे, वहीं बिहार विधानसभा चुनाव 2020 में तेजस्वी यादव ने दस लाख सरकारी नौकरी देने (दैनिक भास्कर, 2020) और वर्ष 2025 में एक कदम आगे बढ़कर हर घर में एक सरकारी नौकरी देने (शर्मा, 2025) का भ्रामक प्रचार कर युवाओं को लुभाने की हर संभव कोशिश की। कई शोध रिपोर्टों से स्पष्ट है कि 'युवा वर्ग' इंटरनेट और सोशल मीडिया पर ज्यादा एक्टिव रहते हैं (हूटसूट & केपीएमजी-आईएमसी, 2018)। इसलिए कहा जा सकता है कि भारत में युवाओं की एक बड़ी आबादी राष्ट्रद्रोही ताकतों, आस-पड़ोस के देशों द्वारा फैलाए जा रही भ्रामक सूचनाओं (फेक न्यूज) और क्षेत्रीय दलों के राजनीतिक पूर्वग्रह से प्रेरित प्रलोभनयुक्त प्रचारों की आसान शिकार हो सकती है।

स्टैटिस्टा की एक रिपोर्ट के अनुसार, वर्ष 2023 में पूरी दुनिया में फेसबुक इस्तेमाल करने वालों में भारत करीब 49.7 करोड़ उपयोगकर्ताओं के साथ पहले नंबर पर था, जिसके वर्ष 2040 तक लगभग 90 करोड़ पहुँच जाने की संभावना है (स्टैटिस्टा, 2023)। वहीं फेसबुक के कैंब्रिज एनालिटिका डेटा लीक विवाद के बाद यह प्रश्न, एक शोध का विषय है कि आज बिना किसी की स्वीकृति अथवा आंशिक स्वीकृति लेकर ऐसी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अपने उपयोगकर्ताओं की निजी जानकारी को कहाँ-कहाँ शेयर कर रही हैं? कई सोशल मीडिया पर युवाओं के राजनीतिक विचारों को प्रभावित करने के आरोप भी प्रमाणित हो चुके हैं (टोरेस, 2025)। इतना ही नहीं, भारत, अमेरिका और फ्रांस में तो गूगल पर डाटा प्राइवेसी संबंधी मामले में जुर्माना भी लग चुका है (रोम, 2019)। ऐसे में, भारत के युवाओं में मीडिया की आलोचनात्मक समझ का होना एक प्रकार से फिल्टर की तरह ही काम नहीं करेगा, बल्कि

वैश्विक स्तर पर भारत के खिलाफ चलाए जा रहे किसी राजनीतिक प्रोपेगैंडा का हिस्सा होने से भी उन्हें बचा सकेगा। ऐसा होगा तभी देश के युवा एक नए और आत्मनिर्भर भारत की नींव रखकर 2047 के विकसित भारत के सपने को साकार करने की ओर एक कदम आगे बढ़ सकेंगे।

ऑक्सफोर्ड हैंडबुक के अनुसार राजनीतिक संचार को इस प्रकार परिभाषित किया गया है कि "सत्ता के कार्यों को प्रतीकों के माध्यम से जनता के बीच साझा करना राजनीतिक संचार है" (केन्स्की & जैमिसन, 2019)। समाज निर्माण की भूमिका में राजनीतिक संचार को महत्वपूर्ण माना जाता है, क्योंकि इसी से राज्य और इसके नागरिक एक-दूसरे से जुड़े हुए महसूस करते हैं, परंतु आज 'राजनीतिक संचार' के संदर्भ में भारत की राजनीतिक पार्टियों द्वारा किए जा रहे राजनीतिक संचार का विश्लेषण करने पर स्पष्ट होता है कि लगभग सभी राजनीतिक दल, युवाओं को अपने पक्ष में करने की हर संभव कोशिश करते हैं। अब राजनीतिक दलों द्वारा युवाओं को लक्षित कर विशेष रूप से मीडिया और विज्ञापन रणनीति तैयार की जाती है। अब तो मुख्यधारा के मीडिया के साथ-साथ सोशल मीडिया और इंटरनेट विज्ञापन के सहारे ज्यादा से ज्यादा युवाओं को और भी तीव्रता से लक्षित किया जा सकता है। चुनाव के समय युवाओं को मुफ्त लैपटॉप, मोबाइल या टैबलेट दिए जाने के साथ-साथ और भी कई प्रकार के प्रलोभन दिए जाते रहे हैं, ताकि ज्यादा से ज्यादा युवाओं को अपने पक्ष में किया जा सके। अधिकांश राजनीतिक दल इसमें मीडिया और विज्ञापन का भरपूर इस्तेमाल करते हैं। ऐसे में यदि देश का युवा वर्ग 'मीडिया साक्षर' नहीं होगा, तो वह आसानी से किसी भी दल के बहकावे में आ जाएगा। और यदि, युवा वर्ग बहकावे में आ गया, तब हो सकता है कि जीतने वाला राजनीतिक दल अपना कार्य उत्तरदायित्व के साथ पूरा न करे और युवाओं को अपने पक्ष में करने के लिए जमीनी स्तर पर कार्य करने की अपेक्षा अपने भ्रामक राजनीतिक संचार का ही सहारा ले।

किसी भी मीडिया के इस्तेमाल के फायदे तो हैं, पर उससे होने वाले नुकसान की संभावना से भी इनकार नहीं किया जा सकता है। वास्तविकता यह है कि आज के युवाओं का जीवन कई प्रकार के मीडिया संदेशों की बौछार से दिग्भ्रमित हो रहा है, सोशल मीडिया संदेशों की अति उपलब्धता युवाओं में निर्णय लेने की क्षमता को प्रभावित कर सकती है, जिससे उनके मन में संदेशों को लेकर दुविधा की स्थिति उत्पन्न हो सकती है (नाइक, मैथियास, कृष्णन & जगन्नाथ, 2025)। ऐसी दुविधा की स्थिति में जब बहुत से युवा दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र में चुनाव प्रक्रिया में पहली बार मतदान करने की दहलीज पर खड़े होते हैं, तो प्रश्न उठता है कि मीडिया संदेशों की बमबारी या अधिकता से दुविधाग्रस्त आज के ये युवा क्या एक सुदृढ़ लोकतांत्रिक सरकार के निर्माण करने की भी क्षमता रखते हैं? यह एक बड़ा प्रश्न है। कहा जा सकता है कि जब तक हम बिना सोचे-समझे अपनी निजी जानकारी को सोशल मीडिया पर अपडेट करते रहेंगे, फेसबुक, इंस्टाग्राम और यूट्यूब जैसी सोशल साइटें इस डाटा का अपने लाभ के लिए इस्तेमाल भी करती ही रहेंगी। भारत जैसे विकासशील देशों में यह एक गंभीर समस्या का रूप ले रहा है। इससे बचाव का एक रास्ता यह नजर आता है कि यदि हम अपनी युवाशक्ति को इन तथ्यों के बारे में पहले से थोड़ा-बहुत भी जागरूक कर दें, तो उन्हें कोई आसानी से धोखा नहीं दे सकेगा।

शोध परिणाम

इस सर्वेक्षण के लिए कुल 460 युवाओं का चयन किया गया था। यहां

अलग-अलग आयु वर्ग के कुल 460 युवाओं, जिसमें 274 पुरुष और 186 महिला शामिल हैं। यहां पुरुषों की संख्या का प्रतिशत 60 और महिलाएं 40 प्रतिशत हैं। इस विश्लेषण में शामिल युवाओं के आयु वर्ग के आधार पर कहा जा सकता है कि 18 से 20 वर्ष आयु वर्ग के युवाओं की संख्या 277 (करीब 60 प्रतिशत) है जो सबसे अधिक है। उसके बाद 21 से 23 वर्ष आयु वर्ग वाले युवाओं की संख्या 110 (करीब 24 प्रतिशत) है, वहीं 24 से 26 वर्ष आयु वर्ग वाले युवाओं की संख्या 47 (10 प्रतिशत) और 27 से 29 वर्ष आयु वर्ग वाले युवाओं की संख्या महज 26 (6 प्रतिशत) ही है। उक्त आंकड़ों को देखकर यह कहा जा सकता है बिहार के अधिकांश महत्वपूर्ण शैक्षणिक संस्थानों में सबसे ज्यादा युवा '18 से 20' वर्ष आयु वर्ग की श्रेणी में ही नामांकित हैं।

सर्वेक्षण से प्राप्त आंकड़ों से स्पष्ट है कि आज के युवाओं का सबसे पसंदीदा माध्यम 'सोशल मीडिया' है। प्राप्त आंकड़ें इस बात के प्रमाण हैं कि बिहार जैसे विकासशील राज्य के 460 में से करीब 218, यानी करीब 47% युवा सोशल मीडिया पर अपना समय व्यतीत कर रहे हैं। वहीं सोशल मीडिया के बाद, समाचार पत्र पढ़ने वाले युवा वर्ग की संख्या सिर्फ 114 यानी करीब 25 प्रतिशत ही है। वहीं टेलीविजन देखने वाले युवा वर्ग की संख्या करीब 67, यानी 15 प्रतिशत के साथ तीसरे नंबर पर है। न्यूज वेबसाइट और ई-पेपर पढ़ने वाले युवाओं का प्रतिशत लगभग 47 यानी करीब 10 प्रतिशत है और रेडियो का उपयोग सिर्फ 11, यानी दो प्रतिशत युवा ही करते हैं। अतः कहा जा सकता है कि 'सोशल मीडिया' इस दौर के युवाओं का पसंदीदा माध्यम बन गया है।

सर्वेक्षण में शामिल कुल 460 युवाओं में से 139, यानी करीब 30 प्रतिशत युवा सोशल मीडिया को सबसे विश्वसनीय समाचार माध्यम भी मानते हैं। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि वर्तमान युवाओं में सोशल मीडिया का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है।

सर्वेक्षण में शामिल युवाओं, जिनमें से 280, यानी करीब 61 प्रतिशत ने यह माना है कि राजनीति से जुड़े समाचारों पर वे थोड़ा बहुत भरोसा करते हैं, वहीं 38 युवा, यानी 8 प्रतिशत युवाओं ने यह भी माना है कि वो राजनीति से जुड़े समाचारों पर 'बहुत अधिक' भरोसा करते हैं। अतः यदि राजनीति के समाचारों पर औसत भरोसे की बात स्वीकार की जाए तो स्पष्ट है कि 460 में से 318, यानी अधिकांश युवावर्ग (करीब $61+08=69\%$) राजनीति से जुड़े समाचारों पर भरोसा करते हैं।

राजनेताओं द्वारा दिए गए बयानों पर भरोसा करने के सवाल पर प्राप्त आंकड़ों के आधार पर कहा जा सकता है कि 460 में से 245 युवा यानी करीब 53 प्रतिशत युवा वर्ग (करीब $48+05=53\%$) मीडिया माध्यमों पर राजनेताओं द्वारा दिए गए बयानों पर भरोसा करते हैं। जिससे यह स्पष्ट होता है कि युवाओं का एक बड़ा वर्ग राजनीतिक संचार के प्रलोभनों का शिकार हो सकता है।

प्राप्त आंकड़ों के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि राजनीतिक दलों के वादों और घोषणाओं पर 460 में से करीब 185, यानी करीब 40 प्रतिशत युवाओं द्वारा भरोसा किया जाता है। अर्थात् ऐसे युवा क्षेत्रीय दल के भ्रामक प्रचार के आसान शिकार हो सकते हैं।

प्राप्त आंकड़ों के आधार पर कहा जा सकता है कि कुल 460 में से 184 युवा, यानी करीब 40 प्रतिशत युवावर्ग, राजनीतिक दलों के 'सरकारी नौकरी' देने की बात पर थोड़ा बहुत भरोसा करते हैं और करीब 51 प्रतिशत

युवावर्ग ऐसी किसी बातों पर भरोसा नहीं करते हैं, वहीं 9 प्रतिशत युवाओं ने इस पर अपनी कोई राय जाहिर नहीं की। अतः यह कहा जा सकता है कि यदि सरकारी नौकरी देने के भ्रामक प्रचार पर यदि 40 प्रतिशत युवा भी भरोसा कर रहे हैं तो बिहार जैसे राज्य में यह संख्या कम नहीं है। क्योंकि 100 में से 40 युवा, ऐसे भ्रामक प्रलोभनों के शिकार हो सकते हैं।

आज के युवाओं का किसी समाचार को जानने के लिए उपयोग किया जाने वाला प्राथमिक स्रोत 'सोशल मीडिया' बन गया है। कुल 460 में से 251 युवाओं, यानी करीब 55 प्रतिशत युवाओं के समाचार जानने का प्राथमिक स्रोत, सोशल मीडिया है।

आज के युवाओं का किसी 'ज्वलंत मुद्दे या समस्या' को समझने और उस पर अपनी राय बनाने के लिए उपयोग किया जाने वाला प्रमुख माध्यम भी 'सोशल मीडिया' बन गया है। 460 में से 255 युवाओं, यानी करीब 55.43 प्रतिशत युवाओं द्वारा सोशल मीडिया का इस्तेमाल किसी 'ज्वलंत मुद्दे या समस्या' को समझने और उस पर अपनी राय बनाने के लिए किया जा रहा है।

निष्कर्ष

आज का अधिकांश युवा वर्ग राजनीतिक संचार में अपनी रुचि रखता है, क्योंकि वह राजनीति से जुड़े समाचारों के उपभोग से स्वयं को रोक नहीं सकता, खासकर ऐसे राजनीतिक संचार से निर्मित समाचारों से, जो विशेषकर युवाओं के लिए निर्मित किए गए हों। यदि राजनीति से जुड़े समाचारों पर युवाओं के औसत भरोसे की बात स्वीकार की जाए तो स्पष्ट है कि आज का अधिकांश युवा वर्ग (करीब 69 प्रतिशत) राजनीति से जुड़े समाचारों पर भरोसा करता है। आज के अधिकतर युवाओं द्वारा किसी भी मीडिया माध्यम पर राजनेताओं द्वारा दिए गए बयानों (राजनीतिक संचार) पर भरोसा किया जाता है। करीब 48 प्रतिशत युवा वर्ग मीडिया माध्यमों पर राजनेताओं द्वारा दिए गए बयानों पर 'थोड़ा-बहुत' भरोसा करता है, वहीं करीब 05 प्रतिशत युवा वर्ग मीडिया माध्यमों पर राजनेताओं द्वारा दिए गए बयानों पर 'बहुत अधिक' भरोसा करता है और करीब 39 प्रतिशत युवा वर्ग मीडिया माध्यमों पर दिए गए बयानों पर 'बिल्कुल भरोसा नहीं' करता है। अतः कहा जा सकता है कि अधिकांश युवा वर्ग (53 प्रतिशत) मीडिया माध्यमों पर राजनेताओं द्वारा दिए गए बयानों पर भरोसा करता है। वहीं करीब 40 प्रतिशत युवाओं द्वारा राजनीतिक दलों के वादों और घोषणाओं पर भरोसा किया जाता है।

सर्वेक्षण से प्राप्त आंकड़ों के विश्लेषण से यह भी स्पष्ट होता है कि युवा वर्ग, मीडिया माध्यमों पर किसी राजनेताओं द्वारा दिए गए बयानों पर 'बहुत अधिक' भरोसा करता है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि युवाओं का एक बड़ा वर्ग 'राजनीतिक संचार' से प्रभावित हो रहा है। वहीं प्राप्त आंकड़ों के विश्लेषण यह भी स्पष्ट है करीब 40 प्रतिशत युवावर्ग ने क्षेत्रीय राजनीतिक दलों के भ्रामक 'सरकारी नौकरी' देने की बात पर भरोसा किया था। अतः यह कहा जा सकता है कि जिन युवाओं ने राजनीतिक दलों के सरकारी नौकरी देने की बात पर भरोसा किया, उन्हें राजनीतिक संचार से प्रभावित करना आसान हो सकता है; अर्थात् ऐसे युवा भ्रामक राजनीतिक संचार और प्रलोभनों के आसान शिकार हो सकते हैं। आंकड़ों के विश्लेषण से यह भी स्पष्ट होता है कि युवाओं (करीब 55 प्रतिशत) द्वारा सोशल मीडिया को किसी समाचार को जानने के लिए प्राथमिक स्रोत के रूप में सबसे ज्यादा इस्तेमाल किया जा रहा है। वहीं आज के युवाओं का किसी 'ज्वलंत मुद्दे या समस्या' को

समझने और उस पर अपनी राय बनाने के लिए उपयोग किया जाने वाला प्रमुख माध्यम भी 'सोशल मीडिया' बन गया है।

अतः सोशल मीडिया माध्यमों के खतरों से अनजान आज के अधिकतर युवाओं के लिए मीडिया साक्षरता का महत्त्व इसलिए बढ़ जाता है, क्योंकि जब आज के युवा सोशल मीडिया पर सामग्री निर्माता और उपभोक्ता की दोहरी भूमिका में होते हैं, तो उनसे अपेक्षा की जाती है कि वे कम-से-कम मीडिया साक्षरता से परिचित हों; अन्यथा उनके द्वारा भी भ्रामक और पूर्वग्रह युक्त संचार के प्रसार की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता है। अधिकांश युवा वर्ग सबसे ज्यादा सोशल मीडिया को ही अन्य समस्त माध्यमों की अपेक्षा प्रभावशाली मानता है। ऐसे में जब अधिकतर युवाओं द्वारा सोशल मीडिया को प्रभावशाली माना जा रहा है, तो इसका सामान्य अर्थ यह है कि वर्तमान समय में उन पर सबसे ज्यादा प्रभाव सोशल मीडिया का ही पड़ रहा है। यही कारण है कि कोई समाचार या वीडियो चंद मिनटों में ही वायरल हो जाता है। इसी तरह भ्रामक और पूर्वग्रह युक्त राजनीतिक समाचारों का प्रसार भी अन्य माध्यमों की तुलना में सोशल मीडिया पर तेजी से हो जाता है और युवा भ्रमित हो जाते हैं।

संदर्भ

केन्स्की, के. & जैमिसन, के. एच. (एडिटर). (2019). द ऑक्सफोर्ड हैंडबुक ऑफ पॉलिटिकल कम्युनिकेशन. न्यूयॉर्क : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

केंद्रीय सांख्यिकी कार्यालय. (2017). भारत में युवा 2017. सांख्यिकी एवं कार्यक्रम कार्यान्वयन मंत्रालय, भारत सरकार. https://www.thehinducentre.com/multimedia/archive/03188/Youth_in_India-201_3188240a.pdf से पुनःप्राप्त.

कैटज़, ई. & लाजर्सफिल्ड, पी. एफ. (1955). व्यक्तिगत प्रभाव : जनसंचार के प्रवाह में लोगों की भूमिका. न्यूयॉर्क : फ्री प्रेस.

ग्रिजल, ए., & टोरस कैल्वो, एम. सी. (2013). मीडिया एवं सूचना साक्षरता : नीति और रणनीति दिशा-निर्देश. पेरिस : यूनेस्को.

जेनिथ. (2017, 16 अक्टूबर). भारत में 2018 तक लगभग 530 मिलियन स्मार्टफोन उपयोगकर्ता होने का अनुमान. बिजनेस स्टैंडर्ड. https://www.business-standard.com/article/technology/india-to-have-530-mn-smartphone-users-by-2018-study-117101600191_1.html से पुनःप्राप्त.

टोरस, आर. (2025). राजनीतिक रूप से संवेदनशील संदर्भ में किशोरों एवं युवाओं में सोशल मीडिया बनाम मतदान के प्रति

दैनिक भास्कर. (2020, अक्टूबर 17). बिहार विधानसभा चुनाव 2020: महागठबंधन ने घोषणा पत्र जारी किया; 10 लाख स्थायी नौकरी के वादे को दोहराया. <https://www.bhaskar.com/local/bihar/news/bihar-assembly-election-2020-mahagathbandhan-issued-declaration-letter-repeated-10-lakh-permanent-job-promises-127821905.html> से पुनःप्राप्त.

दृष्टिकोण: 2019 के सामाजिक आंदोलन से पहले और बाद में चिली का अध्ययन. लेख संख्या 1318. <https://doi.org/10.3390/bs15101318> से पुनःप्राप्त.

नाइक, वी. एस., मैथियास, ई. जी., कृष्णन, पी. & जगन्नाथ, वी. (2025). सोशल मीडिया का बच्चों और युवाओं के संज्ञानात्मक विकास पर प्रभाव : एक प्रणालीगत समीक्षा. <https://bmcediatr.biomedcentral.com/articles/10.1186/s12887-025-06041-5> से पुनःप्राप्त.

पॉटर, डब्ल्यू. जे. (2011). मीडिया लिटरेसी (5वाँ संस्करण). थाउज़ेंड ओक्स, कैलिफोर्निया: सेज पब्लिकेशंस.

पॉटर, डब्ल्यू. जे. (2019). सेवन स्किल्स ऑफ मीडिया लिटरेसी. थाउज़ेंड ओक्स, कैलिफोर्निया : सेज पब्लिकेशंस.

पीआईबी. (2024, फरवरी 9). सामान्य चुनावों हेतु विश्व का सबसे बड़ा निर्वाचन क्षेत्र : देशभर में 96.88 करोड़ से अधिक पंजीकृत मतदाता. भारत सरकार. <https://www.pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=2005189> से पुनःप्राप्त.

बार्कर, सी. (2000). सांस्कृतिक अध्ययन : सिद्धांत और व्यवहार. लंदन : सेज पब्लिकेशंस.

मीडिया लिटरेसी ऑडिट. (2005). मीडिया साक्षरता ऑडिट. लंदन : ऑफकॉम/एसआरबी.

यूनेस्को. (2013). मीडिया और सूचना साक्षरता : नीति एवं रणनीति दिशानिर्देश. <https://www.unesco.org/en/media-information-literacy> से पुनःप्राप्त.

रॉयटर्स. (2025, 21 फरवरी). जर्मनी ने रूस पर चुनावों में दुष्प्रचार एवं हस्तक्षेप का आरोप लगाया रॉयटर्स. <https://www.reuters.com/world/europe/germany-warns-russian-disinformation-targeting-election-2025-02-21/> से पुनःप्राप्त.

रोम, टी. (2019, 21 जनवरी). नए यूरोपीय गोपनीयता नियमों के पहले बड़े उल्लंघन पर फ्रांस ने गूगल पर लगभग 57 मिलियन डॉलर का जुर्माना लगाया. द वॉशिंगटन पोस्ट. https://www.washingtonpost.com/world/europe/france-fines-google-nearly-57-million-for-first-major-violation-of-new-european-privacy-regime/2019/01/21/89e7ee08-1d8f-11e9-a759-2b8541bbbe20_story.html से पुनःप्राप्त.

लिलेकर, डी. जी. (2009). की कॉन्सेप्ट्स इन पॉलिटिकल कम्युनिकेशन. नई दिल्ली : सेज पब्लिकेशंस इंडिया प्रा. लि.

शर्मा, सी. (2025, 09 अक्टूबर). “हर घर में एक सरकारी नौकरी, सरकार बनते ही 20 दिन में बनाएँ कानून”; तेजस्वी यादव का बड़ा एलान. दैनिक जागरण. <https://www.jagran.com/bihar/patna-city-bihar-politics-tejashwi-yadav-promises-job-per-household-before-election-40004713.html> से पुनःप्राप्त.

संयुक्त राष्ट्र. (2018, 24 सितंबर). यूथ 2030 : संयुक्त राष्ट्र युवा रणनीति का शुभारंभ संयुक्त राष्ट्र सतत विकास ब्लॉग. <https://www.un.org/sustainabledevelopment/blog/2018/09/youth2030-launch/> से पुनःप्राप्त.

स्टैटिस्टा. (2023). भारत में 2017 से 2040 तक फेसबुक उपयोगकर्ताओं की संख्या. <https://www.statista.com/statistics/304827/number-of-facebook-users-in-india/> से पुनःप्राप्त.

हूट्सूट & केपीएमजी-आईएमसी. (2018, अक्टूबर). डिजिटल इन 2018 : वैश्विक अवलोकन रिपोर्ट.



नवउदारवादी भारत में हिंदी राजनीतिक सिनेमा : विचारधारात्मक राज्य उपकरण के रूप में असहमति का प्रबंधन

गौरव शुक्ल¹ और डॉ. राहुल जोशी²

सारांश

प्रस्तुत शोध-पत्र नवउदारवादी भारत में हिंदी राजनीतिक सिनेमा की वैचारिक भूमिका का विश्लेषण करता है और यह तर्क प्रस्तुत करता है कि समकालीन राजनीतिक फिल्मों को केवल प्रतिरोध, सामाजिक आलोचना या यथार्थवादी अभिव्यक्ति के रूप में समझना अपर्याप्त है। लुई आलथूसर की विचारधारात्मक राज्य उपकरण की अवधारणा और अंतोनियो ग्राम्शी की हेजेमनी की संकल्पना को सैद्धांतिक ढाँचे के रूप में अपनाते हुए यह अध्ययन यह जाँचता है कि नवउदारवादी दौर में हिंदी सिनेमा किस प्रकार राजनीतिक असहमति को दुश्चात्मक वैधता प्रदान करते हुए भी उसे वैचारिक रूप से नियंत्रित करता है। गुणात्मक और पाठ-आधारित फिल्म विश्लेषण की पद्धति के माध्यम से 'हैदर' (2014), 'आर्टिकल' 15 (2019) और 'मद्रास कैफे' (2013) जैसी फिल्मों का अध्ययन किया गया है। विश्लेषण से स्पष्ट है कि इन फिल्मों में राज्य हिंसा, जाति-आधारित अन्याय और राष्ट्रीय सुरक्षा जैसे गंभीर राजनीतिक प्रश्नों को व्यक्तिगत शोक, नैतिक दुविधा और रणनीतिक अपरिहार्यता के विमर्श में रूपांतरित कर दिया जाता है। इस प्रक्रिया में राजनीति सामूहिक संघर्ष की परियोजना न रहकर व्यक्तिगत अनुभव और पेशेवर विवेक तक सीमित हो जाती है। शोध-पत्र यह निष्कर्ष प्रस्तुत करता है कि नवउदारवादी हिंदी राजनीतिक सिनेमा असहमति का उन्मूलन नहीं करता, बल्कि उसका प्रबंधन करता है। यह प्रबंधित असहमति दर्शक को एक संवेदनशील, किंतु अनाक्रांत नागरिक-उपभोक्ता के रूप में इंटरपेलेट करती है, जिससे सत्ता की संरचनात्मक वैधता अप्रश्नित बनी रहती है। इस दृष्टि से समकालीन हिंदी सिनेमा एक सांस्कृतिक अभिव्यक्ति से आगे बढ़कर नवउदारवादी राज्य-बाजार गठजोड़ के भीतर कार्यरत एक प्रभावी वैचारिक उपकरण के रूप में उभरता है।

संकेत शब्द : हिंदी राजनीतिक सिनेमा, नवउदारवाद, विचारधारात्मक राज्य उपकरण, राजनीतिक असहमति, राज्य और सिनेमा, वैचारिक विश्लेषण, लोकप्रिय संस्कृति।

प्रस्तावना

भारतीय हिंदी सिनेमा को लंबे समय तक एक ऐसे सांस्कृतिक माध्यम के रूप में देखा गया है, जो न केवल समाज की यथार्थ परिस्थितियों का प्रतिनिधित्व करता है, बल्कि कई अवसरों पर सत्ता, व्यवस्था और प्रभुत्वशाली विचारधाराओं के प्रति प्रतिरोध का स्वर भी बनता रहा है। विशेष रूप से स्वतंत्रता के बाद के दशकों में विकसित हुआ सामाजिक-राजनीतिक सिनेमा—चाहे वह समानांतर सिनेमा की परंपरा हो या मुख्यधारा के भीतर उभरते असहमति के स्वर—भारतीय लोकतांत्रिक चेतना के निर्माण में एक महत्वपूर्ण हस्तक्षेप के रूप में उपस्थित रहा। किंतु 1990 के दशक के बाद भारतीय समाज, अर्थव्यवस्था और राज्य संरचना में आए नवउदारवादी परिवर्तनों ने न केवल सिनेमा के औद्योगिक ढाँचे को बदला, बल्कि उसकी वैचारिक दिशा और राजनीतिक भूमिका को भी गहरे स्तर पर पुनर्संरचित किया (द्वायर, 2006; फर्नांडेज, 2006)।

नवउदारवाद के आगमन के साथ हिंदी सिनेमा एक ऐसे सांस्कृतिक उद्योग के रूप में विकसित हुआ, जिसमें बाजार, उपभोक्ता-वर्ग और कॉरपोरेट पूँजी निर्णायक भूमिका निभाने लगे। इस संक्रमण का प्रभाव केवल निर्माण, वितरण और प्रदर्शन तक सीमित नहीं रहा, बल्कि सिनेमा के कथ्य, शिल्प और राजनीतिक कल्पना पर भी स्पष्ट रूप से परिलक्षित हुआ। जहाँ एक ओर राजनीतिक विषयवस्तु पूरी तरह लुप्त नहीं हुई, वहीं दूसरी ओर उसका स्वरूप मूलतः परिवर्तित हो गया। प्रत्यक्ष सत्ता-आलोचना, वर्ग संघर्ष

और संरचनात्मक असमानताओं के स्थान पर अब ऐसी कथाएँ अधिक दिखाई देने लगीं, जो राजनीतिक प्रश्नों को नैतिक दुविधा, व्यक्तिगत त्रासदी या राष्ट्रवादी सहमति के दायरे में समेट देती हैं। इस परिवर्तन को केवल 'राजनीतिक सिनेमा के पतन' के रूप में देखना अपर्याप्त होगा; इसे एक गहरी वैचारिक प्रक्रिया के रूप में समझने की आवश्यकता है।

इसी संदर्भ में यह शोध-पत्र यह तर्क प्रस्तुत करता है कि नवउदारवादी दौर में हिंदी राजनीतिक सिनेमा को केवल प्रतिरोध और असहमति के चश्मे से नहीं, बल्कि विचारधारात्मक राज्य उपकरण (आइडियोलॉजिकल स्टेट अपरेटस) के रूप में पढ़ना अधिक उपयुक्त है। लुई आलथूसर के अनुसार विचारधारा केवल दमन या प्रचार का साधन नहीं होती, बल्कि वह सामाजिक विषयों का निर्माण करती है—व्यक्तियों को विशिष्ट प्रकार के 'सब्जेक्ट' के रूप में संबोधित करती है, जिन्हें वह अपनी ही सामाजिक स्थितियों को स्वाभाविक, अपरिहार्य और वैध मानने के लिए प्रेरित करती है (आलथूसर, 1971)। मीडिया और संस्कृति, विशेष रूप से सिनेमा, इस प्रक्रिया में केंद्रीय भूमिका निभाते हैं, क्योंकि वे राज्य के प्रत्यक्ष दमन से अलग, सहमति और आत्मस्फूर्त स्वीकार्यता का निर्माण करते हैं।

इसी वैचारिक प्रक्रिया को अंतोनियो ग्राम्शी की हेजेमनी की अवधारणा और अधिक स्पष्ट करती है। ग्राम्शी के अनुसार आधुनिक पूँजीवादी समाजों में सत्ता केवल बल प्रयोग से नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और नैतिक नेतृत्व के माध्यम से स्थापित होती है, जहाँ शासक वर्ग की विचारधारा सामान्य बोध

¹पीएचडी स्कालर, डिपार्टमेंट ऑफ जर्नलिज्म एंड मास कम्युनिकेशन, स्कूल ऑफ मीडिया स्टडीज एंड ह्यूमैनिटीज, मानव रचना इंटरनेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ रिसर्च एंड स्टडीज, फरीदाबाद, हरियाणा। ईमेल : shukla87200@gmail.com

²असिस्टेंट प्रोफेसर, डिपार्टमेंट ऑफ जर्नलिज्म एंड मास कम्युनिकेशन, स्कूल ऑफ मीडिया स्टडीज एंड ह्यूमैनिटीज, मानव रचना इंटरनेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ रिसर्च एंड स्टडीज, फरीदाबाद, हरियाणा। ईमेल : rahul.smeh@mrii.edu.in

(कॉमन सेंस) के रूप में स्वीकृत हो जाती है (ग्राम्शी, 1971)। नवउदारवादी भारत में हिंदी सिनेमा इसी सामान्य बोध के निर्माण का एक प्रभावशाली माध्यम बनता दिखाई देता है। राजनीतिक फिल्में अब प्रतिरोध के वैकल्पिक विमर्श रचने के बजाय, प्रायः ऐसी कथात्मक संरचनाएँ प्रस्तुत करती हैं, जो सत्ता, राष्ट्र और बाजार की मूल धारणाओं को प्रश्नहीन बना देती हैं।

यहाँ यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि यह शोध-पत्र यह दावा नहीं करता कि नवउदारवादी दौर की सभी राजनीतिक फिल्में एकरूप या पूर्णतः सत्ता-समर्थक हैं, बल्कि इसका उद्देश्य यह दिखाना है कि इन फिल्मों में राजनीतिक विमर्श किस प्रकार 'प्रबंधित असहमति' (मैनेज्ड डिसेंट) के रूप में उपस्थित होता है—जहाँ समस्या को पहचाना तो जाता है, किंतु उसके संरचनात्मक कारणों को अदृश्य कर दिया जाता है। जाति, राज्य हिंसा, भ्रष्टाचार या आंतरिक संघर्ष जैसे मुद्दे फिल्मी आख्यानों में स्थान तो पाते हैं, परंतु समाधान अक्सर व्यक्तिगत नैतिकता, संवेदनशील नायक या राष्ट्रवादी पुनर्संयोजन के माध्यम से प्रस्तुत किए जाते हैं। इस प्रक्रिया में राजनीतिक चेतना एक सामूहिक परियोजना के बजाय निजी अनुभव में सिमट जाती है (हायर, 2006; गागा, 2005)।

इस शोध का केंद्रीय प्रश्न यही है कि नवउदारवादी भारत में हिंदी राजनीतिक सिनेमा किस प्रकार विचारधारात्मक सहमति का निर्माण करता है और दर्शक को एक ऐसे नागरिक-उपभोक्ता के रूप में इंटरपेलेट करता है, जो व्यवस्था से असंतोष तो अनुभव करता है, परंतु उसे बदलने की आकांक्षा से वंचित रहता है। यह अध्ययन यह समझने का प्रयास करता है कि सिनेमा किस प्रकार राजनीति को 'दृश्य' तो बनाता है, परंतु उसे 'क्रियाशील' नहीं होने देता। इस दृष्टि से हिंदी सिनेमा केवल सामाजिक यथार्थ का प्रतिबिंब नहीं, बल्कि नवउदारवादी राज्य-बाजार गठजोड़ की वैचारिक संरचना का एक सक्रिय घटक बन जाता है। अतः यह शोध-पत्र हिंदी राजनीतिक सिनेमा को सौंदर्यशास्त्र या कथात्मक विश्लेषण की सीमाओं से बाहर निकालते हुए, उसे विचारधारा, सत्ता और हेजेमनी के व्यापक सैद्धांतिक ढाँचे में रखकर देखने का प्रयास करता है। आल्थूसर और ग्राम्शी के वैचारिक उपकरणों के माध्यम से यह अध्ययन यह तर्क स्थापित करता है कि नवउदारवादी युग में हिंदी राजनीतिक सिनेमा का प्रमुख कार्य अब प्रतिरोध का निर्माण नहीं, बल्कि सहमति का सांस्कृतिक प्रबंधन बन चुका है।

सैद्धांतिक ढाँचा

लुई आल्थूसर द्वारा प्रतिपादित विचारधारात्मक राज्य उपकरण की अवधारणा आधुनिक पूँजीवादी समाजों में सत्ता के संचालन को समझने के लिए एक केंद्रीय सैद्धांतिक उपकरण प्रदान करती है। आल्थूसर के अनुसार राज्य केवल दमनकारी संस्थाओं—जैसे पुलिस, सेना या न्यायपालिका—के माध्यम से ही नहीं चलता, बल्कि शिक्षा, परिवार, धर्म, मीडिया और संस्कृति जैसे उपकरणों के माध्यम से भी कार्य करता है, जो विचारधारा के स्तर पर समाज को नियंत्रित करते हैं (आल्थूसर, 1971)। इन उपकरणों की विशेषता यह है कि वे बल प्रयोग की अपेक्षा सहमति और स्वीकृति के माध्यम से सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखते हैं।

साहित्य समीक्षा

भारतीय हिंदी सिनेमा और राजनीति के संबंधों पर उपलब्ध अकादमिक साहित्य न केवल विस्तृत है, बल्कि वैचारिक रूप से भी बहुस्तरीय है। इस

क्षेत्र में हुए अध्ययनों को यदि नवउदारवादी परिप्रेक्ष्य में व्यवस्थित किया जाए, तो यह स्पष्ट होता है कि सिनेमा को समझने की प्रमुख प्रवृत्तियाँ समय के साथ बदलती रही हैं। इन प्रवृत्तियों में सिनेमा को कभी सामाजिक यथार्थ का प्रतिबिंब माना गया, कभी राजनीतिक प्रतिरोध का माध्यम और कभी बाजार-प्रेरित सांस्कृतिक उद्योग, किंतु इन सभी दृष्टिकोणों में सिनेमा की विचारधारात्मक सक्रियता को लेकर एक स्पष्ट सैद्धांतिक असंतुलन दिखाई देता है।

हिंदी सिनेमा का सामाजिक-राजनीतिक पाठ

भारतीय सिनेमा अध्ययन की प्रारंभिक धारा में हिंदी सिनेमा को एक सामाजिक पाठ (सोशल टेक्स्ट) के रूप में पढ़ने की प्रवृत्ति रही है। राजाध्यक्ष और विलेमेन (1999) द्वारा संपादित *एनसाइक्लोपीडिया ऑफ इंडियन सिनेमा* इस परंपरा का आधारभूत ग्रंथ है, जिसमें हिंदी सिनेमा को औपनिवेशिक इतिहास, राष्ट्र-निर्माण और आधुनिकता की प्रक्रियाओं से जोड़कर समझा गया है। यह दृष्टिकोण सिनेमा को ऐतिहासिक घटनाओं और सामाजिक संरचनाओं के संदर्भ में स्थित करता है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि फिल्में केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि सांस्कृतिक दस्तावेज भी हैं। इसी क्रम में रवि वासुदेवन (2000; 2010) के कार्य हिंदी सिनेमा को 'लोकप्रिय आधुनिकता' (पॉपुलर मॉडर्निटी) के एक रूप के तौर पर देखते हैं। वासुदेवन का तर्क है कि हिंदी सिनेमा आधुनिक राज्य, नागरिकता और सामाजिक अनुशासन की अवधारणाओं को लोकप्रिय आख्यानों के माध्यम से प्रसारित करता है। हालाँकि यह साहित्य सिनेमा की सांस्कृतिक भूमिका को स्पष्ट करता है, परंतु इसमें सिनेमा को अपेक्षाकृत प्रतिक्रियाशील माध्यम के रूप में देखा गया है, न कि एक वैचारिक शक्ति के रूप में।

राष्ट्र, राज्य और हिंदी सिनेमा की वैचारिक संरचना

हिंदी सिनेमा और राष्ट्रवाद के संबंध पर लिखे गए अध्ययनों ने सिनेमा को राज्य और राष्ट्रीय पहचान के विमर्श से जोड़कर देखने का प्रयास किया है। माधव प्रसाद की पुस्तक 'द आइडियोलॉजी ऑफ द हिंदी फिल्म' (1998) इस संदर्भ में अत्यंत महत्वपूर्ण है। प्रसाद यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि हिंदी सिनेमा एक विशिष्ट 'राज्य-प्रभावित सौंदर्यशास्त्र' विकसित करता है, जिसमें परिवार, नैतिकता और राष्ट्र एक वैचारिक इकाई के रूप में प्रस्तुत होते हैं। यह अध्ययन विशेष रूप से यह दिखाता है कि लोकप्रिय हिंदी सिनेमा किस प्रकार नागरिकता और आज्ञाकारिता के आदर्शों को स्वाभाविक बनाता है। इसी दिशा में सुमंतरा बनर्जी और पार्थ चटर्जी जैसे विद्वानों के राष्ट्र और लोकप्रिय संस्कृति पर किए गए व्यापक कार्यों ने यह स्थापित किया है कि राष्ट्रवादी विचारधारा केवल औपचारिक राजनीतिक विमर्शों में नहीं, बल्कि लोकप्रिय सांस्कृतिक रूपों में भी सक्रिय रहती है (चटर्जी, 1993)। हिंदी सिनेमा इस वैचारिक प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण माध्यम बनता है, जहाँ राष्ट्र को भावनात्मक और नैतिक श्रेणियों में प्रस्तुत किया जाता है।

राजनीतिक सिनेमा, प्रतिरोध और उसकी सीमाएँ

हिंदी राजनीतिक सिनेमा को प्रतिरोध और असहमति के रूप में पढ़ने की परंपरा विशेष रूप से 1970 और 1980 के दशकों के समानांतर सिनेमा से जुड़ी हुई है। रैचल द्वायर (2006) और अमित कुमार (2013) जैसे अध्ययनों में यह तर्क मिलता है कि इस दौर की फिल्मों ने सत्ता, वर्ग और सामाजिक

अन्याय के प्रश्नों को अपेक्षाकृत स्पष्ट रूप से उठाया। श्याम बेनेगल, मृणाल सेन और गोविंद निहलानी के सिनेमा को लोकतांत्रिक हस्तक्षेप के रूप में देखा गया है। हालाँकि, माधव प्रसाद (1998) और रशा हायर (2006) यह इंगित करते हैं कि यह प्रतिरोध भी पूर्णतः वैचारिक स्वतंत्र नहीं था। कई मामलों में राजनीतिक संघर्ष को नैतिक नाट्य में रूपांतरित कर दिया गया, जिससे संरचनात्मक आलोचना सीमित हो गई। नवउदारवादी दौर में यह प्रवृत्ति और अधिक स्पष्ट होती है, जहाँ राजनीतिक सिनेमा प्रत्यक्ष प्रतिरोध के बजाय 'सुरक्षित आलोचना' के रूप में सामने आता है।

नवउदारवाद, बाजार और सिनेमा का औद्योगिकीकरण

1990 के बाद हिंदी सिनेमा में आए संरचनात्मक परिवर्तनों को समझने के लिए नवउदारवाद पर केंद्रित साहित्य अत्यंत महत्वपूर्ण है। लीना फर्नांडिस (2006) का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि नवउदारवादी सुधारों ने भारतीय मध्यवर्ग को एक उपभोक्ता-नागरिक के रूप में पुनर्गठित किया। यह नया मध्यवर्ग न केवल सिनेमा का प्रमुख दर्शक बनता है, बल्कि उसकी वैचारिक सीमाएँ भी तय करता है। तेजस्विनी गांति की पुस्तक '*बॉलीवुड : अ गाइडबुक टू पॉपुलर हिंदी सिनेमा*' (2004) और '*प्रोड्यूसिंग बॉलीवुड*' (2012) हिंदी सिनेमा के कॉरपोरेट संरचनाओं, जोखिम प्रबंधन और बाजार-तर्क को विस्तार से समझाती हैं। गांति यह दिखाती हैं कि किस प्रकार फिल्म निर्माण अब सांस्कृतिक अभिव्यक्ति से अधिक एक नियंत्रित औद्योगिक प्रक्रिया बन गया है। इस औद्योगिकीकरण का सीधा प्रभाव राजनीतिक विषयवस्तु पर पड़ता है, जो अब निवेश और ब्रांड-सुरक्षा के दायरे में सीमित हो जाती है।

शोध अंतराल

यद्यपि उपर्युक्त साहित्य हिंदी सिनेमा, राजनीति और नवउदारवाद के विभिन्न पहलुओं को स्पष्ट करता है, फिर भी एक महत्वपूर्ण वैचारिक अंतराल बना रहता है। अधिकांश अध्ययन सिनेमा को या तो सामाजिक यथार्थ का प्रतिबिंब, प्रतिरोध का माध्यम; या बाजार की उपज मानते हैं। बहुत कम शोध ऐसे हैं, जो हिंदी राजनीतिक सिनेमा को विचारधारात्मक राज्य उपकरण के रूप में व्यवस्थित रूप से विश्लेषित करते हों। यही वह बिंदु है, जहाँ आल्थूसर (1971) और ग्राम्शी (1971) का सैद्धांतिक ढाँचा निर्णायक हस्तक्षेप प्रदान करता है। मीडिया और संस्कृति पर आल्थूसर की अवधारणा यह समझने में सहायता करती है कि सिनेमा किस प्रकार दर्शक को विशिष्ट वैचारिक सब्जेक्ट के रूप में इंटरपेलेट करता है। ग्राम्शी की हेजेमनी की संकल्पना यह स्पष्ट करती है कि यह प्रक्रिया बल प्रयोग नहीं, बल्कि सहमति और सामान्य बोध के निर्माण के माध्यम से संचालित होती है। यह शोध-पत्र इसी सैद्धांतिक अंतराल में हस्तक्षेप करता है और यह तर्क प्रस्तुत करता है कि नवउदारवादी भारत में हिंदी राजनीतिक सिनेमा को केवल प्रतिरोध या बाजार के द्वंद्व में नहीं समझा जा सकता, बल्कि इसे एक ऐसे वैचारिक सांस्कृतिक अभ्यास के रूप में देखना आवश्यक है, जो राज्य, बाजार और दर्शक के बीच सहमति के जटिल संबंधों को स्थिर करता है।

शोध प्रविधि

यह शोध नवउदारवादी भारत में हिंदी राजनीतिक सिनेमा की वैचारिक भूमिका को समझने के लिए गुणात्मक, व्याख्यात्मक और आलोचनात्मक

शोध-पद्धति को अपनाता है। अध्ययन का उद्देश्य किसी मात्रात्मक प्रवृत्ति या दर्शक-प्रतिक्रिया को मापना नहीं, बल्कि यह विश्लेषण करना है कि राजनीतिक हिंदी फिल्मों में किस प्रकार विचारधारात्मक संरचनाओं के भीतर कार्य करती हैं और दर्शक को विशिष्ट वैचारिक सब्जेक्ट के रूप में इंटरपेलेट करती हैं। इस कारण यह शोध सांस्कृतिक अध्ययन, विचारधारात्मक विश्लेषण और पाठ-आधारित फिल्म विश्लेषण की पद्धतियों पर आधारित है।

शोध की प्रकृति और दृष्टिकोण

यह अध्ययन मूलतः आलोचनात्मक सांस्कृतिक अध्ययन (क्रिटिकल कल्चरल स्टडीज) की परंपरा में स्थित है, जहाँ लोकप्रिय सांस्कृतिक रूपों को सत्ता, विचारधारा और सामाजिक नियंत्रण की प्रक्रियाओं के संदर्भ में पढ़ा जाता है। स्टुअर्ट हॉल (1980) के अनुसार सांस्कृतिक पाठ केवल अर्थ का संप्रेषण नहीं करते, बल्कि वे अर्थों का उत्पादन करते हैं, जो प्रभुत्वशाली सामाजिक संरचनाओं से गहरे रूप में जुड़े होते हैं। इसी दृष्टिकोण से हिंदी सिनेमा को यहाँ एक सांस्कृतिक पाठ के रूप में देखा गया है, जो नवउदारवादी राज्य-बाजार गठजोड़ की वैचारिक प्राथमिकताओं को दृश्यात्मक और कथात्मक रूप देता है। इस शोध में सिनेमा को सामाजिक यथार्थ का निष्क्रिय प्रतिबिंब मानने के बजाय एक सक्रिय वैचारिक अभ्यास के रूप में समझा गया है। यह दृष्टि माधव प्रसाद (1998) और रवि वासुदेवन (2010) के उस तर्क से जुड़ती है, जिसके अनुसार लोकप्रिय हिंदी सिनेमा आधुनिक भारतीय समाज में नागरिकता, नैतिकता और सत्ता-संबंधों को सांस्कृतिक रूप से मध्यस्थित करता है। अतः यह अध्ययन प्रतिनिधित्व के प्रश्न से आगे बढ़ते हुए यह जाँचता है कि राजनीतिक फिल्मों में किस प्रकार सहमति, सामान्य बोध और राजनीतिक यथास्थिति को स्वाभाविक बनाती हैं।

पाठ-आधारित फिल्म विश्लेषण

शोध में चयनित फिल्मों का विश्लेषण पाठ-आधारित फिल्म विश्लेषण की पद्धति के माध्यम से किया गया है। इस प्रक्रिया में फिल्म को एक बहुस्तरीय पाठ के रूप में देखा गया है, जिसमें कथानक, चरित्र-निर्माण, संवाद, दृश्य-रचना, संगीत और अंत (क्लोजर) सभी वैचारिक अर्थ-निर्माण में भूमिका निभाते हैं। रॉबर्ट स्टैम (2000) और डेविड बोर्डवेल (1985) के अनुसार फिल्म विश्लेषण का उद्देश्य केवल कथावस्तु का विवरण देना नहीं, बल्कि यह समझना है कि दृश्य और कथात्मक संरचनाएँ किस प्रकार विशिष्ट वैचारिक प्रभाव उत्पन्न करती हैं।

इस अध्ययन में प्रत्येक फिल्म को निम्नलिखित बिंदुओं के आधार पर विश्लेषित किया गया है :

1. राजनीतिक समस्या का निरूपण
2. सत्ता और व्यवस्था की प्रस्तुति
3. प्रतिरोध की संभावनाएँ और उनकी सीमाएँ
4. नैतिक समाधान बनाम संरचनात्मक आलोचना
5. फिल्म का वैचारिक क्लोजर

यह ढाँचा यह स्पष्ट करने में सहायक होता है कि राजनीतिक हिंदी सिनेमा किस प्रकार असहमति को 'प्रबंधित' करता है और दर्शक को एक सीमित राजनीतिक कल्पना के भीतर स्थापित करता है।

इस शोध में उद्देश्यपूर्ण चयन (परपोजिव सैपलिंग) की पद्धति अपनाई

गई है। चयनित फिल्मों में न तो यादृच्छिक हैं और न ही केवल लोकप्रियता के आधार पर चुनी गई हैं। इन्हें इसलिए चुना गया है, क्योंकि ये फिल्में स्वयं को 'राजनीतिक' या 'सामाजिक रूप से सजग' सिनेमा के रूप में प्रस्तुत करती हैं और समकालीन अकादमिक तथा सार्वजनिक विमर्श में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं।

प्रस्तावित केस-स्टडी में निम्नलिखित फिल्मों शामिल हैं :

- 'हैदर' (2014)
- 'आर्टिकल 15' (2019)
- 'मद्रास कैफे' (2013)

इन फिल्मों का चयन इस आधार पर किया गया है कि ये राज्य हिंसा, जाति, लोकतंत्र, राष्ट्रवाद और सत्ता-संघर्ष जैसे केंद्रीय राजनीतिक प्रश्नों को उठाती हैं। साथ ही, ये फिल्में मुख्यधारा की उत्पादन और वितरण संरचनाओं के भीतर बनी हैं, जिससे यह विश्लेषण संभव हो पाता है कि नवउदारवादी ढाँचे के भीतर राजनीतिक विमर्श किस प्रकार रूपांतरित होता है।

सीमाएँ

यह अध्ययन यह दावा नहीं करता कि हिंदी राजनीतिक सिनेमा की सभी प्रवृत्तियों को समग्र रूप से समेट लेता है। यह शोध चुनिंदा फिल्मों पर केंद्रित है और इसका उद्देश्य प्रतिनिधित्व से अधिक वैचारिक कार्यप्रणाली को समझना है। इसके अतिरिक्त, यह अध्ययन दर्शक-अध्ययन या अनुभवजन्य डेटा पर आधारित नहीं है, बल्कि पाठ-आधारित विश्लेषण तक सीमित है। इन सीमाओं के बावजूद, यह शोध नवउदारवादी भारत में राजनीतिक हिंदी सिनेमा की वैचारिक भूमिका को समझने के लिए एक सुदृढ़ सैद्धांतिक और विश्लेषणात्मक ढाँचा प्रस्तुत करता है।

केस-स्टडी 1 : 'हैदर' (2014)

विशाल भारद्वाज निर्देशित 'हैदर' (2014) को समकालीन हिंदी सिनेमा की 'साहसी' और 'राजनीतिक' फिल्मों में गिना जाता है। कश्मीर समस्या, राज्य हिंसा, जबरन गुमशुदगियाँ और सैन्यीकरण जैसे संवेदनशील विषयों को मुख्यधारा के सिनेमा में स्थान देने के कारण इस फिल्म को व्यापक आलोचनात्मक सराहना प्राप्त हुई, किंतु यदि 'हैदर' को केवल प्रतिरोधी राजनीतिक सिनेमा के रूप में पढ़ा जाए, तो यह उसके वैचारिक संचालन को आंशिक रूप से ही समझ पाता है। इस शोध का तर्क है कि 'हैदर' नवउदारवादी दौर के उस राजनीतिक सिनेमा का प्रतिनिधित्व करती है, जो असहमति को दृश्य तो बनाता है, परंतु उसे हेजेमोनिक सीमाओं के भीतर नियंत्रित भी करता है।

राजनीतिक संदर्भ और कथात्मक संरचना

'हैदर' की कथा 1990 के दशक के कश्मीर में स्थापित है—एक ऐसा समय जब उग्रवाद, सैन्यीकरण और नागरिक स्वतंत्रताओं के निलंबन ने सामान्य जनजीवन को गहराई से प्रभावित किया। फिल्म जबरन गुमशुदगियों और हिरासत में यातना जैसे मुद्दों को सामने लाती है, जो लंबे समय तक भारतीय मुख्यधारा मीडिया और सिनेमा में हाशिये पर रहे हैं। इस स्तर पर 'हैदर' राज्य हिंसा को दृश्यात्मक रूप देती है और उस 'मौन' को तोड़ने का प्रयास करती है, जिसकी ओर कई विद्वानों ने संकेत किया है (वासुदेवन, 2010)। हालाँकि, फिल्म की कथात्मक संरचना शेक्सपियर के 'हैमलेट'

पर आधारित है, जो राजनीतिक संघर्ष को मूलतः एक व्यक्तिगत शोक और पारिवारिक विश्वासघात की कथा में रूपांतरित कर देती है। परिणामस्वरूप, कश्मीर की ऐतिहासिक और राजनीतिक जटिलता एक सामूहिक राजनीतिक प्रश्न के बजाय नायक के आंतरिक संकट और नैतिक द्वंद्व के रूप में प्रस्तुत होती है। यह रूपांतरण महत्वपूर्ण है, क्योंकि यहाँ से फिल्म की वैचारिक दिशा स्पष्ट होने लगती है।

इंटरपेलेशन और दर्शक-स्थिति

आल्थूसर (1971) के अनुसार विचारधारा व्यक्तियों को विशिष्ट सब्जेक्ट-स्थितियों में संबोधित करती है। 'हैदर' दर्शक को एक ऐसे नैतिक सब्जेक्ट के रूप में इंटरपेलेट करती है, जो राज्य हिंसा पर संवेदना तो अनुभव करता है, परंतु उसे राजनीतिक कार्रवाई या संरचनात्मक प्रश्न की ओर नहीं ले जाया जाता। दर्शक का भावनात्मक निवेश मुख्यतः 'हैदर' के व्यक्तिगत शोक, उसकी मानसिक अस्थिरता और माँ-पुत्र संबंध तक सीमित रहता है। राज्य यहाँ एक अमूर्त, लगभग अपरिहार्य सत्ता के रूप में उपस्थित होता है—जिसकी हिंसा दुःख है, किंतु ऐतिहासिक रूप से 'समझी जा सकने वाली'। इस प्रकार फिल्म दर्शक को उस स्थिति में स्थापित करती है, जहाँ वह राज्य हिंसा पर दुःख व्यक्त करता है, परंतु उसे चुनौती देने की वैचारिक संभावना से वंचित रहता है। यही वह बिंदु है, जहाँ 'हैदर' विचारधारात्मक राज्य उपकरण के रूप में कार्य करती है—प्रतिरोध को दृश्य बनाते हुए भी उसे राजनीतिक निष्कर्ष तक नहीं पहुँचने देती।

हेजेमनी और 'सुरक्षित' राजनीतिक आलोचना

ग्राम्शी (1971) के अनुसार हेजेमनी वह स्थिति है जहाँ प्रभुत्वशाली विचारधारा सामान्य बोध के रूप में स्थापित हो जाती है। 'हैदर' की आलोचना इसी हेजेमोनिक ढाँचे के भीतर संचालित होती है। फिल्म राज्य की नीतियों पर प्रश्न तो उठाती है, किंतु अंततः किसी वैकल्पिक राजनीतिक दृष्टिकोण को विकसित नहीं करती। राजनीतिक संघर्ष को व्यक्तिगत त्रासदी में बदल देना इस हेजेमोनिक प्रक्रिया का केंद्रीय तत्त्व है।

माधव प्रसाद (1998) यह तर्क देते हैं कि हिंदी सिनेमा अक्सर राजनीतिक संकटों को नैतिक नाट्य में बदल देता है, जिससे सत्ता की संरचनात्मक आलोचना सीमित हो जाती है। 'हैदर' इस प्रवृत्ति का उन्नत उदाहरण है, जहाँ फिल्म अपनी 'साहसिक' विषयवस्तु के बावजूद एक सुरक्षित वैचारिक क्षेत्र में बनी रहती है। यही कारण है कि फिल्म आलोचनात्मक प्रशंसा तो अर्जित करती है, किंतु किसी व्यापक राजनीतिक विमर्श को जन्म नहीं देती।

प्रतिरोध का निजीकरण और उसका परिणाम

'हैदर' में प्रतिरोध सामूहिक आंदोलन या राजनीतिक संगठन के रूप में उपस्थित नहीं है। वह नायक की मानसिक अवस्था, उसके संवादों और प्रतीकात्मक दृश्यों में निहित है। रशा हायर (2006) के अनुसार नवउदारवादी सिनेमा में राजनीतिक संघर्ष का यह निजीकरण एक सामान्य प्रवृत्ति है, जो असहमति को भावनात्मक अनुभव तक सीमित कर देती है। 'हैदर' इस प्रवृत्ति को स्पष्ट रूप से रेखांकित करती है। फिल्म का क्लोजर इस प्रक्रिया को और सुदृढ़ करता है। हिंसा का अंत किसी राजनीतिक समाधान में नहीं, बल्कि व्यक्तिगत त्याग और मौन में होता है। इस प्रकार फिल्म दर्शक को एक ऐसे भावनात्मक संतुलन पर छोड़ देती है, जहाँ असंतोष शेष रहता है, किंतु

राजनीतिक हस्तक्षेप की संभावना समाप्त हो जाती है।

‘हैदर’ और नवउदारवादी राजनीतिक सिनेमा

इस विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ‘हैदर’ नवउदारवादी दौर की उस राजनीतिक हिंदी फिल्म का उदाहरण है, जो असहमति को दृश्यात्मक वैधता तो प्रदान करती है, परंतु उसे हेजेमोनिक ढाँचे से बाहर नहीं जाने देती। फिल्म राज्य हिंसा को उजागर करती है, किंतु उसे इतिहास और संरचना के बजाय व्यक्तिगत त्रासदी के स्तर पर सीमित कर देती है। इस प्रकार ‘हैदर’ प्रतिरोधी सिनेमा होने के बजाय एक ऐसी वैचारिक संरचना में कार्य करती है, जो सहमति और राजनीतिक यथास्थिति के सांस्कृतिक पुनरुत्पादन में योगदान देती है।

केस-स्टडी 2 : ‘आर्टिकल 15’ (2019)

अनुभव सिन्हा निर्देशित ‘आर्टिकल 15’ (2019) को समकालीन हिंदी सिनेमा की ‘सामाजिक रूप से सजग’ और ‘राजनीतिक रूप से साहसी’ फिल्मों में स्थान दिया गया है। जाति-आधारित भेदभाव, संस्थागत हिंसा और प्रशासनिक उदासीनता जैसे विषयों को केंद्र में रखकर यह फिल्म भारतीय लोकतंत्र के उस संवैधानिक आदर्श की ओर संकेत करती है, जिसे व्यवहार में लगातार विफल होते देखा गया है; तथापि, यदि ‘आर्टिकल 15’ को केवल जाति-विरोधी या प्रगतिशील सिनेमा के रूप में पढ़ा जाए, तो यह उसके वैचारिक संचालन और सत्ता-संबंधों को आंशिक रूप से ही समझ पाता है। यह अध्ययन तर्क प्रस्तुत करता है कि ‘आर्टिकल 15’ नवउदारवादी दौर के उस राजनीतिक सिनेमा का प्रतिनिधित्व करती है, जहाँ संरचनात्मक अन्याय को नैतिक हस्तक्षेप और व्यक्तिगत ईमानदारी के माध्यम से हल करने योग्य समस्या के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

जाति का निरूपण और कथात्मक फोकस

फिल्म की कथा ग्रामीण उत्तर भारत में घटित होती है, जहाँ दलित समुदाय के विरुद्ध हिंसा और संस्थागत भेदभाव को एक आपराधिक मामले के रूप में प्रस्तुत किया गया है। ‘आर्टिकल 15’ जाति को एक सामाजिक समस्या के रूप में पहचानती है और उसे भारतीय संविधान के अनुच्छेद 15 के नैतिक ढाँचे में रखकर देखती है। इस स्तर पर फिल्म जाति-व्यवस्था की क्रूरता को दृश्यात्मक रूप से उजागर करती है और उस चुप्पी को तोड़ने का प्रयास करती है, जिसे मुख्यधारा के सिनेमा ने लंबे समय तक बनाए रखा है। किंतु, फिल्म का कथात्मक फोकस बहुत शीघ्र ही सामूहिक सामाजिक संरचना से हटकर एक ‘ईमानदार’ राज्य अधिकारी की यात्रा पर केंद्रित हो जाता है। जाति-आधारित अन्याय, जो मूलतः ऐतिहासिक, संरचनात्मक और संस्थागत समस्या है, उसे एक ऐसे प्रशासनिक तंत्र की विफलता के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, जिसे एक नैतिक व्यक्ति सुधार सकता है। यह स्थानांतरण निर्णायक है, क्योंकि यहीं से फिल्म का वैचारिक रुख स्पष्ट होने लगता है।

इंटरपेलेशन : दर्शक और नैतिक राज्य-सब्जेक्ट

आल्थूसर (1971) की अवधारणा के अनुसार विचारधारा व्यक्ति को विशिष्ट सब्जेक्ट-स्थिति में संबोधित करती है। ‘आर्टिकल 15’ दर्शक को एक ऐसे नैतिक राज्य-सब्जेक्ट के रूप में इंटरपेलेट करती है, जो जाति-व्यवस्था

से ‘व्यक्तिगत रूप से असहमत’ है और जिसे यह विश्वास दिलाया जाता है कि व्यवस्था के भीतर रहकर भी न्याय संभव है। दर्शक का भावनात्मक निवेश पीड़ित समुदाय के संघर्ष से अधिक उस अधिकारी की नैतिक दुविधा और साहस से जुड़ जाता है।

इस प्रक्रिया में राज्य को समस्या के स्रोत के बजाय समाधान के वाहक के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। पुलिस और प्रशासनिक ढाँचा, जो जाति-आधारित उत्पीड़न को ऐतिहासिक रूप से संरक्षित करता रहा है, फिल्म में अंततः नैतिक हस्तक्षेप के माध्यम से सुधरता हुआ दिखाई देता है। इस प्रकार दर्शक को एक ऐसी वैचारिक स्थिति में रखा जाता है, जहाँ वह जाति-व्यवस्था पर क्रोधित तो होता है, किंतु राज्य और उसकी संस्थाओं पर भरोसा बनाए रखता है।

हेजेमनी और नैतिक न्याय का विमर्श

ग्राम्शी (1971) के अनुसार हेजेमनी का संचालन केवल दमन से नहीं, बल्कि नैतिक और सांस्कृतिक सहमति से होता है। ‘आर्टिकल 15’ इसी हेजेमोनिक प्रक्रिया का उदाहरण प्रस्तुत करती है। फिल्म जाति-आधारित हिंसा को उजागर करते हुए भी उस व्यवस्था की वैधता को चुनौती नहीं देती, जो इस हिंसा को संभव बनाती है। न्याय का विचार यहाँ संवैधानिक नैतिकता और व्यक्तिगत ईमानदारी तक सीमित रह जाता है, जबकि सामाजिक और आर्थिक संरचनाएँ अप्रश्नित बनी रहती हैं।

माधव प्रसाद (1998) के अनुसार हिंदी सिनेमा में सामाजिक संकटों को नैतिक नाट्य में बदल देना एक स्थापित प्रवृत्ति रही है। ‘आर्टिकल 15’ इस प्रवृत्ति को नवउदारवादी संदर्भ में पुनर्स्थापित करती है, जहाँ राज्य को सुधारने योग्य संस्था के रूप में और नागरिक को नैतिक उपभोक्ता-नागरिक के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रकार फिल्म एक ‘सुरक्षित’ राजनीतिक आलोचना का निर्माण करती है, जो व्यापक दर्शक-स्वीकृति प्राप्त कर सके।

प्रतिरोध का नैतिकीकरण और उसका प्रभाव

‘आर्टिकल 15’ में प्रतिरोध किसी संगठित दलित आंदोलन, राजनीतिक संघर्ष या सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया के रूप में नहीं उभरता। इसके बजाय वह व्यक्तिगत साहस, प्रशासनिक निर्णय और संवेदनशील नेतृत्व के रूप में प्रस्तुत होता है। आनंद तेलतुंबडे (2018) जैसे विद्वानों ने जाति-विरोधी संघर्ष के संदर्भ में यह तर्क दिया है कि जब जाति को नैतिक समस्या के रूप में देखा जाता है, तो उसके भौतिक और राजनीतिक आधार अदृश्य हो जाते हैं। ‘आर्टिकल 15’ इसी नैतिकीकरण की प्रक्रिया को सिनेमाई रूप प्रदान करती है। फिल्म का क्लोजर इस वैचारिक रुख को और सुदृढ़ करता है। न्याय का बोध किसी सामाजिक परिवर्तन के रूप में नहीं, बल्कि एक व्यक्तिगत जीत और प्रशासनिक सुधार के रूप में स्थापित होता है। दर्शक फिल्म से यह विश्वास लेकर बाहर आता है कि ‘सिस्टम में अच्छे लोग हों’ तो व्यवस्था स्वयं न्यायपूर्ण बन सकती है। यही वह बिंदु है, जहाँ फिल्म की राजनीतिक संभावनाएँ सीमित हो जाती हैं।

‘आर्टिकल 15’ और नवउदारवादी राजनीतिक सिनेमा

इस विश्लेषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि ‘आर्टिकल 15’ नवउदारवादी राजनीतिक हिंदी सिनेमा का एक प्रतिनिधि उदाहरण है, जो जाति जैसे गहरे संरचनात्मक प्रश्न को नैतिक विमर्श और व्यक्तिगत हस्तक्षेप

में रूपांतरित कर देता है। फिल्म असहमति को दृश्यात्मक और भावनात्मक वैधता तो देती है, किंतु उसे उस बिंदु तक नहीं ले जाती, जहाँ वह राज्य, वर्ग और सत्ता की संरचनाओं को चुनौती दे सके। इस प्रकार 'आर्टिकल 15' प्रतिरोधी सिनेमा के बजाय एक ऐसी वैचारिक संरचना के रूप में कार्य करती है, जो हेजेमोनिक सहमति और राजनीतिक यथास्थिति के सांस्कृतिक पुनरुत्पादन में योगदान देती है।

केस-स्टडी 3 : 'मद्रास कैफे' (2013)

शूजित सरकार निर्देशित 'मद्रास कैफे' (2013) को प्रायः हिंदी सिनेमा की उन चुनिंदा राजनीतिक फिल्मों में रखा जाता है, जो राष्ट्रीय सुरक्षा, गुप्तचर एजेंसियों और दक्षिण एशियाई भू-राजनीति जैसे जटिल विषयों को गंभीरता से प्रस्तुत करने का दावा करती हैं। श्रीलंकाई गृहयुद्ध, भारतीय राज्य की गुप्त भूमिका और राजनीतिक हत्या जैसे संवेदनशील मुद्दों को केंद्र में रखते हुए यह फिल्म स्वयं को मुख्यधारा के राष्ट्रवादी सिनेमा से अलग स्थापित करने का प्रयास करती है, किंतु इस शोध का तर्क है कि 'मद्रास कैफे' नवउदारवादी दौर की उस राजनीतिक फिल्म का प्रतिनिधित्व करती है, जहाँ राज्य की हिंसा और हस्तक्षेप को तकनीकी, पेशेवर और अपरिहार्य निर्णयों के रूप में वैध ठहराया जाता है।

राजनीतिक संदर्भ और यथार्थवाद का दावा

'मद्रास कैफे' का सबसे प्रमुख दावा उसका 'यथार्थवाद' है। फिल्म स्वयं को एक वास्तविक राजनीतिक घटना से प्रेरित बताती है और पत्रकारिता, खुफिया एजेंसी तथा सैन्य रणनीति के तत्त्वों का उपयोग कर एक प्रामाणिक राजनीतिक वातावरण रचती है। इस प्रकार का यथार्थवाद दर्शक को यह विश्वास दिलाता है कि प्रस्तुत कथा कल्पना नहीं, बल्कि 'राजनीतिक सत्य' के निकट है। रवि वासुदेवन (2010) के अनुसार यथार्थवाद का यह दावा अक्सर वैचारिक प्रभाव को और अधिक गहरा कर देता है, क्योंकि दर्शक प्रस्तुत विमर्श को प्रश्नहीन रूप से स्वीकार करने लगता है। हालाँकि, फिल्म का यथार्थवाद चयनात्मक है। राजनीतिक घटनाओं की जटिल ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को संक्षिप्त और सरलीकृत कर दिया जाता है, जबकि राज्य के निर्णयों को रणनीतिक विवशता के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रकार फिल्म इतिहास को नहीं, बल्कि राज्य-केंद्रित दृष्टिकोण को यथार्थ के रूप में स्थापित करती है।

इंटरपेलेशन : दर्शक ऐज राष्ट्रवादी-तार्किक सबजेक्ट

आल्थूसर (1971) की इंटरपेलेशन की अवधारणा के अनुसार विचारधारा व्यक्तियों को विशिष्ट सबजेक्ट-स्थितियों में संबोधित करती है। 'मद्रास कैफे' दर्शक को एक ऐसे राष्ट्रवादी-तार्किक सबजेक्ट के रूप में इंटरपेलेट करती है, जो यह मानने के लिए तैयार है कि अंतरराष्ट्रीय राजनीति में नैतिक स्पष्टता संभव नहीं है। दर्शक को यह सिखाया जाता है कि राज्य के निर्णय भावनात्मक या नैतिक नहीं, बल्कि 'रणनीतिक' होते हैं। फिल्म में हिंसा, हत्या और गुप्त हस्तक्षेप को व्यक्तिगत क्रूरता या सत्ता-लोलुपता के रूप में नहीं, बल्कि राष्ट्र-हित में लिए गए कठिन निर्णयों के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रक्रिया में दर्शक स्वयं को उस राज्य-दृष्टि के साथ संरेखित करता है, जहाँ नैतिक प्रश्न 'यथार्थवादी राजनीति' के सामने गौण हो जाते हैं। यह इंटरपेलेशन नवउदारवादी राज्य-विमर्श का केंद्रीय तत्त्व है,

जहाँ राजनीति को नैतिक संघर्ष के बजाय प्रबंधन और विशेषज्ञता का क्षेत्र बना दिया जाता है।

हेजेमनी और सुरक्षा-विमर्श का सामान्यीकरण

ग्राम्शी (1971) के अनुसार हेजेमनी का सबसे प्रभावी रूप वह होता है, जिसमें सत्ता अपनी विचारधारा को सामान्य बोध के रूप में स्थापित कर देती है। 'मद्रास कैफे' में राष्ट्रीय सुरक्षा का विमर्श इसी प्रकार सामान्यीकृत होता है। राज्य की हिंसा को असाधारण घटना के बजाय अपरिहार्य रणनीति के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, जिससे उसका नैतिक मूल्यांकन लगभग असंभव हो जाता है। माधव प्रसाद (1998) यह तर्क देते हैं कि हिंदी सिनेमा अक्सर राष्ट्र और राज्य को एक नैतिक इकाई के रूप में प्रस्तुत करता है। 'मद्रास कैफे' इस परंपरा को नवउदारवादी संदर्भ में पुनर्स्थापित करती है, जहाँ राज्य की भूमिका नैतिक आदर्श से हटकर तकनीकी दक्षता और रणनीतिक तर्कशीलता में बदल जाती है। इस प्रकार फिल्म दर्शक को यह स्वीकार करने के लिए तैयार करती है कि लोकतांत्रिक मूल्य और मानवाधिकार अंतरराष्ट्रीय राजनीति के क्षेत्र में व्यावहारिक नहीं हो सकते।

फिल्म में पत्रकारिता को राज्य-विमर्श के भीतर एक सीमित नैतिक प्रतिरोध के रूप में प्रस्तुत किया गया है। पत्रकार का चरित्र प्रश्न उठाता है, किंतु अंततः वह भी उसी यथार्थवादी ढाँचे के भीतर काम करता है, जिसे फिल्म स्वाभाविक मानती है। रशा हायर (2006) के अनुसार इस प्रकार का सीमित प्रतिरोध हेजेमोनिक संरचना को चुनौती देने के बजाय उसे और अधिक विश्वसनीय बनाता है, क्योंकि वह दर्शक को यह आभास देता है कि आलोचना की गुंजाइश मौजूद है—भले ही उसका प्रभाव नगण्य हो।

'मद्रास कैफे' और नवउदारवादी राज्य-विमर्श

इस विश्लेषण के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि 'मद्रास कैफे' नवउदारवादी राजनीतिक हिंदी सिनेमा का एक महत्वपूर्ण उदाहरण है, जहाँ राजनीति को नैतिक संघर्ष के बजाय रणनीतिक प्रबंधन के क्षेत्र में स्थानांतरित कर दिया जाता है। फिल्म राज्य की भूमिका को प्रश्नों के दायरे से बाहर निकालकर विशेषज्ञता, गोपनीयता और अपरिहार्यता के विमर्श में स्थापित करती है। इस प्रकार 'मद्रास कैफे' असहमति को पूरी तरह समाप्त नहीं करती, किंतु उसे उस बिंदु तक सीमित कर देती है, जहाँ वह राज्य-केंद्रित हेजेमनी को चुनौती नहीं दे पाती।

नवउदारवादी हिंदी सिनेमा में राजनीति का वैचारिक पुनर्संयोजन

पूर्ववर्ती केस-अध्ययनों ('हैदर', 'आर्टिकल 15' और 'मद्रास कैफे') का तुलनात्मक विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि नवउदारवादी दौर का हिंदी राजनीतिक सिनेमा प्रतिरोध और असहमति की भाषा को पूरी तरह त्याग नहीं करता, बल्कि उसे एक नियंत्रित, पुनर्संरचित और वैचारिक रूप से सुरक्षित ढाँचे में पुनः स्थापित करता है। यह प्रक्रिया न तो आकस्मिक है और न ही केवल व्यक्तिगत फिल्मकारों की वैचारिक सीमाओं का परिणाम; बल्कि यह उस व्यापक राजनीतिक-आर्थिक संरचना से उत्पन्न होती है, जिसमें राज्य, बाजार और संस्कृति एक-दूसरे के साथ गहरे रूप में अंतर्संबद्ध हो चुके हैं। इन फिल्मों में राजनीति अब किसी सामूहिक ऐतिहासिक संघर्ष या वैकल्पिक सामाजिक कल्पना के रूप में नहीं, बल्कि व्यक्तिगत अनुभव, नैतिक दुविधा और पेशेवर विवेक के रूप में प्रस्तुत होती है। 'हैदर' में राज्य

हिंसा को व्यक्तिगत शोक और पारिवारिक विघटन में रूपांतरित कर दिया जाता है; 'आर्टिकल 15' में जाति-आधारित संरचनात्मक अन्याय को एक नैतिक राज्य-अधिकारी की व्यक्तिगत ईमानदारी के माध्यम से सुलझाने योग्य समस्या के रूप में देखा जाता है; और 'मद्रास कैफे' में अंतरराष्ट्रीय राजनीति और राज्य-हस्तक्षेप को रणनीतिक अपरिहार्यता के रूप में सामान्यीकृत किया जाता है। इन तीनों उदाहरणों में राजनीतिक प्रश्न 'दृश्य' तो बनते हैं, किंतु वे उस स्तर तक नहीं पहुँचते, जहाँ वे सत्ता-संरचनाओं की वैधता को चुनौती दे सकें।

नवउदारवाद राजनीति को सामूहिक संघर्ष के बजाय प्रबंधन, विशेषज्ञता और व्यक्तिगत नैतिकता के क्षेत्र में स्थानांतरित करता है (फर्नांडिस, 2006)। हिंदी राजनीतिक सिनेमा इस तर्कशीलता को सांस्कृतिक स्तर पर पुनरुत्पादित करता है। परिणामस्वरूप, राजनीतिक सिनेमा न तो पूरी तरह निष्क्रिय हो जाता है और न ही प्रत्यक्ष प्रतिरोधी; बल्कि वह एक ऐसी मध्यवर्ती भूमिका निभाता है, जो असहमति को मान्यता देकर भी उसे हेजेमोनिक ढाँचे के भीतर नियंत्रित रखता है। इस दृष्टि से देखा जाए तो नवउदारवादी हिंदी राजनीतिक सिनेमा की सबसे निर्णायक विशेषता उसका असहमति का प्रबंधन है। यह प्रबंधन दर्शक को यह अनुभव कराता है कि राजनीति पर बात हो रही है, प्रश्न उठाए जा रहे हैं और सत्ता को चुनौती दी जा रही है—जबकि वास्तविकता में सत्ता की मूल संरचनाएं अप्रश्नित बनी रहती हैं। यही वह बिंदु है, जहाँ हिंदी सिनेमा एक सांस्कृतिक अभिव्यक्ति से आगे बढ़कर एक वैचारिक राज्य उपकरण के रूप में कार्य करता है।

निष्कर्ष

यह शोध-पत्र नवउदारवादी भारत में हिंदी राजनीतिक सिनेमा की भूमिका को पुनः परिभाषित करने का प्रयास करता है। आल्थूसर और ग्राम्शी के सैद्धांतिक ढाँचे के माध्यम से यह अध्ययन यह तर्क स्थापित करता है कि समकालीन हिंदी राजनीतिक सिनेमा को केवल प्रतिरोध और अभिव्यक्ति की श्रेणियों में समझना अपर्याप्त है। इसके बजाय, इसे एक ऐसे वैचारिक सांस्कृतिक अभ्यास के रूप में देखना आवश्यक है, जो सहमति, सामान्य बोध और राजनीतिक यथास्थिति के निर्माण में सक्रिय भूमिका निभाता है। 'हैदर', 'आर्टिकल 15' और 'मद्रास कैफे' जैसे उदाहरण यह दर्शाते हैं कि राजनीतिक फिल्में अब सत्ता के बाहर खड़े होकर प्रश्न नहीं करतीं, बल्कि सत्ता के भीतर रहकर उसकी सीमाओं को 'मानवीय', 'नैतिक' और 'यथार्थवादी' रूप में प्रस्तुत करती हैं। यह बदलाव किसी एक फिल्मकार या शैली का नहीं, बल्कि उस नवउदारवादी संरचना का परिणाम है, जिसमें सिनेमा एक सांस्कृतिक उद्योग, दर्शक एक उपभोक्ता और राजनीति एक प्रबंधनीय समस्या बन चुकी है।

अध्ययन का निष्कर्ष यह भी है कि हिंदी राजनीतिक सिनेमा का संकट विषयवस्तु की अनुपस्थिति का नहीं, बल्कि राजनीतिक कल्पना के संकुचन का संकट है। राजनीति अब सामूहिक परिवर्तन की परियोजना नहीं रह गई है; वह व्यक्तिगत अनुभव, नैतिक समाधान और रणनीतिक विवेक में सीमित हो गई है। इस प्रक्रिया में सिनेमा लोकतांत्रिक बहस का विस्तार करने के बजाय उसे नियंत्रित करने का माध्यम बनता जा रहा है। अंततः यह शोध

यह संकेत देता है कि नवउदारवादी युग में हिंदी सिनेमा का अध्ययन अब केवल सौंदर्यशास्त्र, यथार्थवाद या प्रतिनिधित्व के प्रश्नों तक सीमित नहीं रह सकता। इसके लिए विचारधारा, सत्ता और राजनीतिक अर्थशास्त्र को एक साथ रखकर देखने की आवश्यकता है। केवल इसी दृष्टि से यह समझा जा सकता है कि क्यों समकालीन हिंदी राजनीतिक सिनेमा प्रतिरोध का भ्रम तो रचता है, परंतु प्रतिरोध की संभावना को लगातार स्थगित करता रहता है।

संदर्भ सूची

- आल्थूसर, एल. (1971). *आइडियोलॉजी एंड आइडियोलॉजिकल स्टेट अपरेटसेज*. लंदन : वर्सो.
- कुमार, ए. (2013). *सिनेमा एंड सोशल चेंज इन इंडिया*. नई दिल्ली : राउतलेज इंडिया.
- गांति, टी. (2004). *बॉलीवुड : अ गाइडबुक टू पॉपुलर हिंदी सिनेमा*. न्यूयॉर्क : रूतलेज.
- गांति, टी. (2012). *प्रोड्यूसिंग बॉलीवुड : इनसाइड द कंटेम्प러리 हिंदी फिल्म इंडस्ट्री*. डरहम : ड्यूक यूनिवर्सिटी प्रेस.
- ग्राम्शी, ए. (1971). *सेलेक्शंस फ्रॉम द प्रिजन नोटबुक्स*. न्यूयॉर्क : इंटरनेशनल पब्लिशर्स.
- चटर्जी, पी. (1993). *द नेशन एंड इट्स फ्रैगमेंट्स : कॉलोनियल एंड पोस्टकॉलोनियल हिस्ट्रीज*. प्रिंसटन : प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस.
- तेलतुंबडे, ए. (2018). *द रिपब्लिक ऑफ कास्ट : थिंकिंग इक्वैलिटी इन द टाइम ऑफ नियो-लिबरल हिंदुत्व*. नई दिल्ली : नवायन.
- द्रायर, आर. (2006). *फिल्मिंग द गॉड्स : रिलिजन एंड इंडियन सिनेमा*. लंदन : रूतलेज.
- प्रसाद, एम. (1998). *द आइडियोलॉजी ऑफ द हिंदी फिल्म : अ हिस्टोरिकल कंस्ट्रक्शन*. नई दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
- फर्नांडेज, एल. (2006). *इंडियाज न्यू मिडल क्लास : डेमोक्रेटिक पॉलिटिक्स इन एन एरा ऑफ इकॉनॉमिक रीफॉर्म*. मिनियापोलिस : यूनिवर्सिटी ऑफ मिनेसोटा प्रेस.
- बोर्डवेल, डी. (1985). *नैटिव इन द फिक्शन फिल्म*. मैडिसन : यूनिवर्सिटी ऑफ विस्कॉन्सिन प्रेस.
- राजाध्यक्ष, ए. & विलेमेन, पी. (1999). *एनसाइक्लोपीडिया ऑफ इंडियन सिनेमा*. लंदन : ब्रिटिश फिल्म इंस्टिट्यूट.
- वासुदेवन, आर. (2000). *मेकिंग मीनिंग इन इंडियन सिनेमा*. नई दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
- वासुदेवन, आर. (2010). *द मेलोड्रामैटिक पब्लिक : फिल्म फॉर्म एंड स्पेक्टेशिप इन इंडियन सिनेमा*. नई दिल्ली : परमानेंट ब्लैक.
- स्टैम, आर. (2000). *फिल्म थ्योरी : एन इंट्रोडक्शन*. ऑक्सफोर्ड : ब्लैकवेल.
- हायर, आर. (2006). *फ्रेमिंग पॉलिटिक्स इन पॉपुलर हिंदी सिनेमा*. नई दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
- हॉल, एस. (1980). *एनकोडिंग/डिकोडिंग*. इन एस. हॉल, डी. हॉब्सन, ए. लोव, एवं पी. विलिस (संपा.), *कल्चर, मीडिया, लैंग्वेज* (पृ. 128–138). लंदन : हचिंसन.

बालेश्वर अग्रवाल के जीवन और कर्म का आख्यान

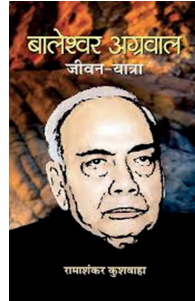
संगीता झा

“माता भूमि: पुत्रोऽहं पृथिव्या:”—अथर्ववेद के इस पृथ्वी सूक्त का अर्थ है—भूमि माता है, मैं उसका पुत्र हूँ। डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल अपने निबंध ‘माताभूमि’ में इस सूक्त की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि ‘यह संबंध केवल भौतिक नहीं है, इसका पूर्ण रस तो मन के अनुभव में है।’ मनुष्य का प्रधान अंग राष्ट्रीय संस्कृति की उपासना में निहित है। माता-भूमि के इसी भाव को हम राष्ट्रसेवी बालेश्वर अग्रवाल के व्यक्तित्व में देख सकते हैं, जिन्होंने अपना पूरा जीवन राष्ट्र की सेवा में लगा दिया। इनके जीवन के विभिन्न पहलुओं को ‘बालेश्वर अग्रवाल जीवन-यात्रा’ पुस्तक में डॉ. रामाशंकर कुशवाहा द्वारा प्रस्तुत किया गया है। लेखक के शोधपरक गुण की सराहना करते हुए पद्मभूषण रामबहादुर राय इस पुस्तक के पुरोकथन में लिखते हैं, “इस पुस्तक को जो पूरा पढ़ेगा, वह अनुभव कर सकेगा कि पाँच साल से अधिक समय इसमें अवश्य लगा, लेकिन बालेश्वर जी की जीवनयात्रा का शायद ही कोई प्रसंग और पक्ष इसमें छूट गया हो। यह संभव हो सका है, इसलिए कि डॉ. रामाशंकर कुशवाहा ने तिनका-तिनका जोड़ा नहीं, खोजा।”

संघ वैचारिकी को समर्पित प्रकाशन

‘हिंदुस्थान समाचार’ के पुरोधा पत्रकारों को समर्पित ‘बालेश्वर अग्रवाल जीवन-यात्रा’ पुस्तक प्रभात प्रकाशन द्वारा प्रकाशित है। यह पुस्तक पाठकीयता और सूचना, दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। पत्रकारिता में किए गए बालेश्वर अग्रवाल के बहुमूल्य योगदान के अनेक पहलुओं को लेखक ने बहुत गहराई और संजीदगी के साथ उकेरा है। भारतीय समाज में परिवार का अत्यंत महत्व है। इसी के माध्यम से बालक रूपी नन्हे बीज को सहारा मिलता है और सही मार्गदर्शन एवं दिशा से वही नन्हा बीज बड़ा होकर छायादार वृक्ष की भाँति सभी के लिए कल्याणकारी सिद्ध होता है। बालेश्वर अग्रवाल के व्यक्तित्व निर्माण की प्रक्रिया भी परिवार से शुरू होती है, जहाँ वे अपने माता-पिता से अनुशासन, श्रम एवं संयम सीखते हैं और जिसका उन्होंने आजीवन पालन किया। अपनी शिक्षा के दौरान ही बालेश्वर अग्रवाल राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संपर्क में आते हैं। यहीं से उनके स्वतंत्र विचारों को दिशा मिलती है और वे राष्ट्रसेवा के मार्ग पर अग्रसर होते हैं। इन्हीं वैचारिक आंदोलनों के प्रचार-प्रसार हेतु 1948 में उन्होंने ‘चंद्रगुप्त प्रकाशन’ आरंभ किया। यहाँ से उनकी सार्वजनिक जीवन के साथ पत्रकारीय यात्रा की शुरुआत हुई। किसी कार्य को करने की उनकी योजनाबद्ध रचनात्मकता उनकी सफलता का मूलमंत्र थी। इसी मंत्र के साथ ‘प्रवर्तक’ साप्ताहिक पत्रिका की शुरुआत हुई, जिसका उद्देश्य मुख्य रूप से जनमानस के बीच संघ की वैचारिकी को प्रस्तुत करना था। हालाँकि कुछ साप्ताहिक, जैसे—‘पांचजन्य’, ‘चेतना’, ‘तरुण भारत’, ‘राष्ट्रधर्म’, ‘साधना’ और ‘आकाशवाणी’ आदि निकाले गए थे, लेकिन राजनीतिक विद्वेष और संसाधन के अभाव में ज्यादातर को बंद कर दिया गया। ऐसा ही कुछ ‘प्रवर्तक’ के साथ भी हुआ।

साप्ताहिक पत्रिकाओं पर हुए ऐसे वज्रपात के पश्चात् बालेश्वर अग्रवाल के कार्य का केंद्र बदल गया। उन्हें देश की पहली बहुभाषी समाचार समिति



पुस्तक	: बालेश्वर अग्रवाल: जीवन-यात्रा
लेखक	: रामाशंकर कुशवाहा
प्रकाशक	: प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली
मूल्य	: 600/-
पृष्ठ	: 296

‘हिंदुस्थान समाचार’ की जिम्मेदारी दी गई, जिसका उन्होंने बखूबी निर्वहन किया। ‘हिंदुस्थान समाचार बहुभाषी एजेंसी’ की नींव दादासाहेब आपटे (शिवराम शंकर आपटे) एवं विनायक दामोदर सावरकर द्वारा डाली गई थी। यह सूचना की दृष्टि से वैज्ञानिक एवं औद्योगिक सभ्यता की उन्नति में मार्ग प्रशस्त करने वाली एजेंसी थी; जो आगे चलकर संघ के स्वयंसेवकों की मेहनत, लगन एवं त्याग से न केवल भारत में, बल्कि विदेशों में भी अपनी पहचान बनाती है। एजेंसी की स्थापना मुंबई में हुई, साथ ही इसकी शाखा कई अन्य शहरों (जैसे पटना एवं बनारस आदि) में भी खुली। बालेश्वर अग्रवाल को सर्वप्रथम पटना शाखा की जिम्मेदारी सौंपी गई।

‘हिंदुस्थान समाचार’ ने स्थानीय खबरों को महत्व देकर ‘मुफस्सिल पत्रकारिता’ की शुरुआत की। आजाद भारत में आम लोगों की स्थिति एवं जरूरत को दिखाने के लिए पत्रकारिता के व्यापक दृष्टिकोण की आवश्यकता थी। आजादी के बाद जीने की जो परिकल्पना जनता में थी, उसके बरअक्स उनकी वर्तमान स्थिति को उजागर करने का काम स्थानीय पत्रकारिता के माध्यम से ही संभव हो सकता था। आम जनता की इस स्थिति को दिखाने का सबसे पहला प्रयास ‘हिंदुस्थान समाचार’ के लोगों द्वारा संभव हुआ। “जिन वादों के साथ देश आजाद हुआ था और गांधी-आंबेडकर के जिस सपने को दिखाकर लोगों को एकजुट किया गया था, लोगों का वह सपना किस तरह चकनाचूर हो गया।” ऐसे स्थानीय लोगों की खबरों को ‘हिंदुस्थान समाचार’ के प्रयासों से सामने लाया गया।

पत्रकारों को पूर्ण स्वतंत्रता

बालेश्वर अग्रवाल ने ‘हिंदुस्थान समाचार’ का विस्तार करते हुए विभिन्न लोगों को इससे जोड़ा। उसमें से अधिकतर लोग आज पत्रकारिता जगत् में अपनी स्वतंत्र पहचान रखते हैं। “जैसे रविंद्र किशोर सिन्हा ने 1967 में 270 रुपये महीने पर पटना में ‘हिंदुस्थान समाचार’ के साथ काम प्रारंभ किया था। आगे चलकर वे ‘हिंदुस्थान समाचार’ के अध्यक्ष बने। ‘हिंदुस्थान समाचार’ से ही कार्य प्रारंभ करने वाले रामबहादुर राय समूह संपादक हैं।” (पृष्ठ-73)। इनमें आलोक मेहता, अशोक टंडन, रजत शर्मा, रामशंकर अग्निहोत्री आदि

जैसे कर्मठ, राष्ट्रप्रेमी व्यक्तित्व रहे हैं।

17 साल के आलोक मेहता को ग्वालियर सम्मेलन में जनसंघ का राष्ट्रीय अधिवेशन कवर करने के लिए भेजना, बालेश्वर अग्रवाल की पारखी नजर का बेहतरीन उदाहरण है। अपनी यात्रा के विषय में आलोक मेहता बताते हैं—“उज्जैन से मुझे भेजा गया और दिल्ली से रामशरण जोशी आए। हम एक-दूसरे को जानते नहीं थे। तब अधिवेशन ऐसे होता था कि एक धर्मशाला में सारी जगह ले ली गई। वहीं पत्रकार भी जमीन पर सो रहे हैं और अटल बिहारी वाजपेयी भी सो रहे हैं। वह आत्मविश्वास, एक्सपोजर ‘हिंदुस्थान समाचार’ और बालेश्वर अग्रवाल ने मुझे दिया” (पृष्ठ-74)।

बालेश्वर अग्रवाल खबर के महत्त्व को जानते थे। खबरों की प्रासंगिकता बनाए रखने में उनकी कार्यशैली की महत्वपूर्ण भूमिका थी। वे ‘हिंदुस्थान समाचार’ के संवाददाताओं में काँग्रेस, जनसंघ, संघ और कम्युनिस्ट पार्टी को कवर करने के लिए उसी विचारधारा के व्यक्ति को भेजते थे, जिससे खबरों की प्रासंगिकता बनी रहे। इसी का परिणाम था कि हर व्यक्ति स्वतंत्रतापूर्वक अपने पत्रकारिता धर्म का निर्वहन कर रहा था। उन्होंने न केवल युवाओं का साथ दिया, बल्कि संरक्षक की भाँति हमेशा उनके पीछे भी खड़े रहे। ब्रजानंदन जी का वक्तव्य बालेश्वर अग्रवाल के इसी संरक्षक रूप को उजागर करता है—“बालेश्वर अग्रवाल, जिसमें भी थोड़ी प्रतिभा और रुचि देखते थे, उसे आगे बढ़ाने का पूरा प्रयास करते थे। मेरे जैसा आदमी, जिसको ठीक से मूँछ भी नहीं आई थी, उसे काठमांडू भेजा। कहते थे कि तुम जाओ, सीखो” (पृष्ठ-75)।

हिंदुस्तान समाचार को मिली नई पहचान

बालेश्वर अग्रवाल व्यक्ति, संबंध, समाज, देश सभी का भरपूर सम्मान करते थे। उनके व्यक्तित्व संबंध भी समाज व देशहितों से ही जुड़े थे। इसका उदाहरण काशी हिंदू विश्वविद्यालय में रहे उनके सहपाठी रहे तुलसी गिरि के साथ हुए एक वाक्य से मिलता है। बालेश्वर ने उनकी सहायता से नेपाल में पत्रकारिता व सांस्कृतिक कार्यों को आगे बढ़ाया। जिस तरह जौहरी खदान में भी हीरे की पहचान कर सकता है, ठीक उसी प्रकार बालेश्वर अग्रवाल अनेक जटिल संतत्यों एवं परिस्थितियों में भी व्यक्ति की प्रतिभा को पहचान लेते थे। डी.एन. झा को पत्रकारिता जगत् में लाने का फैसला इसी प्रकार की पारखी नजर का सुफल था। जिन्हें लोग ‘मिट्टी का माधो’ की संज्ञा देते थे, उसकी प्रतिभा के कारण ही ‘हिंदुस्थान समाचार’ को ‘इंडियन नेशन’, ‘द सर्व लाइट’, ‘आर्यावर्त’ और ‘हिंदी प्रदीप’ जैसे अखबार वरीयता देने लगे थे। डी.एन. झा की स्कूप स्टोरी लाने की कला ही एक समय में ‘हिंदुस्थान समाचार’ को पीटीआई से आगे ले गई थी। अपनी इसी कला की निपुणता से डी.एन. झा न केवल ‘हिंदुस्थान समाचार’, बल्कि यूएनआई में भी अपनी पहचान बनाने में सफल हुए।

हिंदी टेलीप्रिंटर का निर्माण

खबर की दुनिया में भाषा का विशेष महत्त्व होता है। भारत में अंग्रेजी जानने वालों से अधिक संख्या हिंदीभाषी लोगों की है, परंतु पत्रकारिता के क्षेत्र में अंग्रेजी पत्रकारिता हिंदी पत्रकारिता से अधिक समृद्ध दिखाई देती है, जिसका प्रमुख कारण संसाधनों की उपलब्धता है। इस क्षेत्र में बदलाव का पहला कदम ‘हिंदुस्थान समाचार’ द्वारा उठाया गया। ‘हिंदुस्थान समाचार’ ने ‘हिंदी टेली प्रिंटर’ का निर्माण कर हिंदी पत्रकारिता को गति प्रदान की

और उसे समृद्ध बनाया। शिवशंकर आपटे एवं हिंदीप्रेमियों के परिश्रम का सुफल था कि 18 जून, 1954 को हिंदी टेली प्रिंटर की सेवा दिल्ली और पटना के बीच शुरू हुई। इसके निर्माण में तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने भी सहयोग किया। शिवशंकर आपटे डॉ. राजेंद्र प्रसाद को हिंदी टेली प्रिंटर का संरक्षक मानते हुए लिखते हैं—“I having equipped half a dozen tale printers in this fashion I approached the great lovers and patrons of Hindi- Dr. Rajendra babu, our then president, Babu Purushottamdas Tondon, the erstwhile president of Indian National Congress and related my story. They liked the idea and patronised my efforts” (पृष्ठ-80)। ‘हिंदुस्थान समाचार’ द्वारा हिंदी टेली प्रिंटर का निर्माण सूचना संसार में गति एवं निर्भरता लाने वाला क्रांतिकारी कदम साबित हुआ।

बालेश्वर अग्रवाल ने नेपाल और भारत के संबंधों और समस्याओं को लेकर ‘नेपाल संदेश’ पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया। उन्होंने संसाधनों की परवाह न करते हुए नेपाल में चीनी दखल को रोकने और वहाँ के आम जन की सोच को भारतीय राजनीतिक गलियारे तक पहुँचाने का काम किया। हालाँकि इसमें उन्हें अनेक तरह की समस्याओं एवं चुनौतियों का सामना करना पड़ा, लेकिन उन्होंने अपनी कार्यक्षमताओं पर भरोसा करते हुए कार्य को आगे बढ़ाया। इस प्रयास को दिशा देते हुए उन्होंने ‘हिंदुस्थान समाचार समिति’ से अलग रखने के लिए एक स्वतंत्र ट्रस्ट (पशुपतिनाथ प्रकाशन ट्रस्ट) का निर्माण किया। इन्हीं में एक ट्रस्टी रामनिवास छपोलिका थे। इस साप्ताहिक पत्र के पहले प्रकाशक ‘दुर्गा प्रसाद खवाड़े’ थे। अपने उद्देश्य की पूर्ति हेतु बालेश्वर अग्रवाल दृढ़ता से काम करते थे। उनके सहयोगियों के अनुसार “वे लोगों के बीच अपने विचारों को बहुत प्रभावी ढंग से रखा करते थे। नेपाल के सभी मंत्रियों, प्रधानमंत्री, महाराज, दूतावास के अधिकारियों से उनका मिलना-जुलना बराबर होता रहता था” (पृष्ठ-99)।

आपातकाल के दौरान ‘हिंदुस्थान समाचार’ एजेंसी को भी सरकार के दंड का सामना करना पड़ा। हिंदुस्थान समाचार एजेंसी बालेश्वर अग्रवाल की प्राथमिकता थी, परंतु आक्रामक तेवर के कारण एजेंसी को बंद करना पड़ा। इसके बाद बालेश्वर अग्रवाल ने प्रवासी भारतीयों के कार्य को चुना और ए.आर.एस.पी. का कार्य आगे बढ़ाने में जुट गए। “बालेश्वर अग्रवाल सांस्कृतिक गतिविधियों के साथ जरूरत पड़ने पर राजनीतिक सहयोग, भारत और भारतीय मूल के रहने वाले देशों के बीच राजनयिक सहयोग, प्रवासी भारतीयों के बच्चों के लिए भारत में शिक्षा की व्यवस्था, भारत में धर्म-स्थलों का भ्रमण, संस्कृत भाषा का प्रचार-प्रसार, धर्म शिक्षा का प्रबंध, दुनिया के विभिन्न हिस्सों में मंदिर बनवाने और उसमें भारत से पुजारी भेजने आदि जैसे कार्यों में सहयोग करने लगे थे” (पृष्ठ-148)। उनके योगदान इस बात की पुष्टि करते हैं कि बालेश्वर अग्रवाल भारतीय संस्कृति के सच्चे संवाहक रहे हैं, जिन्होंने सदैव भारत एवं भारतीयता के लिए कार्य किया। उनका व्यक्तित्व अत्यंत व्यापक एवं विस्तृत है, जिस पर अनेक प्रकार के शोध किए जा सकते हैं। एक किताब में संपूर्ण व्यक्तित्व समेटना बहुत जटिल कार्य है, फिर भी डॉ. कुशवाहा ने इस महान् विभूति के विषय में शोधपरक दृष्टि से अधिकतम जानकारी खोजने का सराहनीय प्रयास किया है। व्यक्तित्व पर शोध करने वाले शोधार्थियों को भी यह पुस्तक नई दिशा प्रदान करेगी। कुल 296 पृष्ठ की इस पुस्तक में 46 अध्याय हैं।



भारतीय जन संचार संस्थान (समविश्वविद्यालय) प्रकाशन विभाग

नवीन सदस्यता नवीनीकरण प्रपत्र

संचार माध्यम

अब

त्रैमासिक

उपलब्ध है

सेवा में

प्रमुख, प्रकाशन विभाग, भारतीय जन संचार संस्थान (सम विश्वविद्यालय)

नया जेएनयू परिसर, अरुणा आसफ अली मार्ग, नई दिल्ली-110 067

महोदय/महोदया

मैं/हम 'संचार माध्यम' शोध पत्रिका की सदस्यता लेना नवीनीकरण करना चाहते हैं :

संचार माध्यम रु. 200.00 प्रति अंक (रु. 800.00 वार्षिक शुल्क)

कैलेंडर वर्ष (जनवरी-दिसंबर) के लिए.....

डिमांड ड्राफ्ट/चेक संख्या/ऑनलाइन लेनदेन संख्या

दिनांक..... के नाम आहरित के लिए

₹..... सदस्यता नवीनीकरण राशि के रूप में संलग्न है।

पत्रिका निम्नलिखित पते पर भेजी जाए :

नाम

पता

दूरभाष

(हस्ताक्षर दिनांक सहित)

टिप्पणी :

- डिमांड ड्राफ्ट भारतीय जन संचार संस्थान के पक्ष में दिल्ली में देय होना चाहिए।
- व्यक्तियों से प्राप्त चेक स्वीकार नहीं किए जाएंगे; तथापि, संस्थानों/विश्वविद्यालयों द्वारा स्थापित फर्मों से प्राप्त चेक स्वीकार किए जा सकते हैं।

ऑनलाइन फंड ट्रांसफर विवरण :

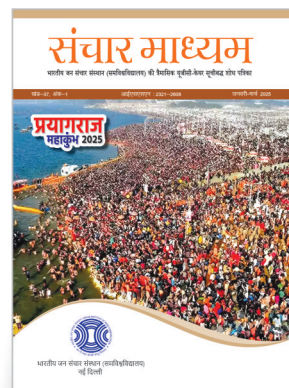
खाताधारक का नाम : **IIMC REVENUE**
पता : Aruna Asaf Ali Marg, New Delhi-110 067
बैंक का नाम एवं शाखा : **State Bank of India**, R K Puram,
New Delhi - 110022
आईएफएससी कोड : **SBIN0001076**
खाता संख्या : **40321700410**
बैंक का प्रकार : SB

SCAN & PAY

UPI ID: 9773601002@SBI



BHIM UPI
BHARAT INTERFACE FOR MONEY UNIFIED PAYMENTS INTERFACE



‘संचार माध्यम’ (ISSN : 2321-2608) भारतीय जन संचार संस्थान (सम विश्वविद्यालय), नई दिल्ली की संचार, मीडिया, पत्रकारिता और उससे संबंधित मुद्दों पर केंद्रित हिंदी में प्रकाशित होने वाली अग्रणी ‘पीयर रिव्यूड’ और यूजीसी-केयर सूचीबद्ध शोध पत्रिका है। इसका प्रकाशन 1980 में आरंभ हुआ और आज यह हिंदी भाषा में संचार, मीडिया और पत्रकारिता से संबंधित विषयों पर विभिन्न प्रकार के विचारों, टिप्पणियों, पुस्तक समीक्षा और मौलिक शोध-पत्रों के प्रकाशन का प्रतिष्ठित मंच है। इसमें मीडिया से संबंधित सभी प्रकार के विषयों पर मौलिक अकादमिक शोध और विश्लेषण प्रकाशित किए जाते हैं। अकादमिक शोध के उच्चतर मूल्यों का पालन करते हुए ‘संचार माध्यम’ में प्रकाशन से पूर्व सभी शोध पत्रों/आलेखों की बहुस्तरीय निष्पक्ष समीक्षा (ब्लाइंड पीयर रिव्यू) कराई जाती है। भारतीय जन संचार संस्थान के प्रकाशन विभाग द्वारा इसका प्रकाशन किया जाता है। अब पत्रिका का प्रकाशन त्रैमासिक हो रहा है।

‘संचार माध्यम’ में निम्नलिखित श्रेणी के शोध-पत्र प्रकाशित किए जाते हैं :

1. **मौलिक शोध पर आधारित शोध-पत्र:** इस प्रकार के शोध-पत्र की शब्द सीमा 4000 से 5000 शब्द होनी चाहिए, जो डबल स्पेस में टाइप किया गया हो। साथ ही अधिकतम 250 शब्दों में शोध सारांश भी शामिल होना चाहिए। शोध-पत्र सिर्फ यूनिकोड फॉण्ट में ही टाइप होना चाहिए और उसमें संबंधित शोध की पूर्ण तस्वीर दृष्टिगोचर होनी चाहिए। शोध-पत्र से जुड़े छायाचित्र/ग्राफ/टेबल, यदि कोई हों, तो वे भी अपनी मूल प्रति के साथ (एक्सेल फाइल इत्यादि) संलग्न किए जाने चाहिए। इस बात का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए कि छायाचित्रों का रिजॉल्यूशन उच्च स्तर का हो ताकि प्रिंटिंग के समय गुणवत्ता प्रभावित न हो। पीडीएफ फाइल में शोध पत्र स्वीकार्य नहीं होंगे।
2. **लघु शोध आधारित शोध-पत्र:** लघु शोध आधारित आलेख 2000 शब्दों से अधिक नहीं होना चाहिए, यानी लगभग 4-5 पृष्ठ, डबल स्पेस में टाइप किया गया हो। यह भी यूनिकोड फॉण्ट में ही टंकित होना चाहिए। ऐसे शोध-पत्र भी पूर्ण हो चुके शोध/अध्ययनों पर ही आधारित होने चाहिए। इसमें ऐसे तथ्यपूर्ण शोध-पत्र भी शामिल हो सकते हैं, जिनका संबंध किसी नवीन तकनीक के विकास से है। ऐसे शोध-पत्रों का शोध सारांश 80 से 100 शब्दों से अधिक नहीं होना चाहिए।
3. **शोध समीक्षा:** इस श्रेणी के अंतर्गत आने वाले समीक्षात्मक आलेखों में प्रस्तावना, साहित्य समीक्षा, शोध परिणाम आदि के अलावा संबंधित शोध में मौजूद कमियों और उन कमियों के सुधार हेतु सुझावों का भी समावेश होना चाहिए, ताकि भविष्य में अन्य शोधकर्ता उन कमियों को दूर करने की दिशा में प्रयास कर सकें।
4. **पुस्तक समीक्षा:** ‘संचार माध्यम’ में पत्रकारिता और जनसंचार पर प्रकाशित पुस्तकों की समीक्षा (शब्द सीमा: 1500) भी प्रकाशित की जाती है। अन्य विषयों जैसे सामाजिक ज्ञान, सामाजिक कार्य, एंथ्रोपोलोजी, कला आदि पर प्रकाशित पुस्तकों की समीक्षा भी भेजी जा सकती है बशर्ते उनका शीर्षक मीडिया अध्ययन से जुड़ा हो या उनकी सामग्री में कम-से-कम 40 प्रतिशत अध्याय मीडिया, जनसंचार या पत्रकारिता से जुड़े हों। पुस्तक समीक्षाएँ उनके पूर्ण विवरण जैसे प्रकाशक, वर्ष, संस्करण, पृष्ठ संख्या, मूल्य व पुस्तक के छायाचित्र के साथ भेजी जानी चाहिए।

प्रकाशन नैतिकता और साहित्यिक चोरी

- संचार माध्यम के लिए जो शोध आलेख भेजे जाएँ उन्हें अन्य पत्रिकाओं को नहीं भेजना चाहिए और न ही शोध आलेखों को पूरी तरह से या आंशिक रूप से उसी सामग्री के साथ किसी अन्य पत्रिका में प्रकाशित किया जाना चाहिए। लेखकों को सुनिश्चित करना चाहिए कि ‘संचार माध्यम’ में प्रकाशन के लिए भेजे जाने वाले आलेख किसी भी रूप में या मिलती-जुलती सामग्री के रूप में पहले प्रकाशित न हुए हों।
- किसी भी तरह की साहित्यिक चोरी किसी भी परिस्थिति में स्वीकार्य नहीं है। आलेख के साथ मूल कार्य का घोषणापत्र प्रस्तुत किया जाना अनिवार्य है, जिसके बिना आलेखों पर कोई विचार नहीं किया जाएगा। लेखकों को आलेखों की प्रामाणिकता सुनिश्चित करनी चाहिए। कोई भी अनैतिक व्यवहार (साहित्यिक चोरी, गलत डेटा आदि) किसी भी स्तर पर (पीयर रिव्यू या संपादन स्तर पर भी) आलेख की अस्वीकृति का कारण बन सकता है। किसी भी समय साहित्यिक चोरी और तथ्यों, निष्कर्षों के स्वनिर्मित आदि पाए जाने पर प्रकाशित आलेख वापस लिए जा सकते हैं।

बहुस्तरीय समीक्षा (पीयर रिव्यू) प्रक्रिया

‘संचार माध्यम’ में प्रकाशनार्थ प्राप्त सभी आलेख दोहरी या बहुस्तरीय निष्पक्ष समीक्षा (डबल ब्लाइंड पीयर रिव्यू) प्रक्रिया के अधीन हैं। शोध आलेखों को विशेषज्ञों के पास बिना उनके लेखक/लेखकों का नाम बताए समीक्षा के लिए भेजा जाता है। उनकी टिप्पणी, सुझावों और अनुशंसा के आधार पर ही शोध-पत्रों के प्रकाशन का निर्णय लिया जाता है। संपादन-परिषद् के संतुष्ट होने पर ही शोध-पत्र प्रकाशित किया जाता है। इस प्रक्रिया में आमतौर पर 4-6 सप्ताह लगते हैं। समीक्षा प्रक्रिया पाँच चरणों पर आधारित है:-

- क) जस के तस स्वीकार करने लायक
- ख) मामूली सुधार की आवश्यकता
- ग) मध्यम सुधार की आवश्यकता
- घ) अधिक सुधार की आवश्यकता
- ङ) अस्वीकृत

‘संचार माध्यम’ तीव्र समीक्षा प्रक्रिया का पालन नहीं करता है

लेखों का संपादन

यदि प्रकाशन के लिए लेख स्वीकार किया जाता है, तो उसे कम-से-कम दो संपादन चरणों से गुजरना पड़ता है। लेखकों को ध्यान रखना चाहिए कि सभी स्वीकृत लेख संपादन के किसी भी स्तर पर संपादकों द्वारा आवश्यक संशोधनों व परिवर्तनों के अधीन हैं।

भारतीय जन संचार संस्थान

समविश्वविद्यालय



भारत का नंबर एक मीडिया संस्थान

स्नातकोत्तर डिग्री पाठ्यक्रम

- एम.ए. स्ट्रेटिजिक कम्युनिकेशन
- एम.ए. मीडिया बिजनेस स्टडीज
- एम.ए. न्यू मीडिया कम्युनिकेशन

स्नातकोत्तर डिप्लोमा पाठ्यक्रम

- अंग्रेजी पत्रकारिता • हिंदी पत्रकारिता • रेडियो और टीवी पत्रकारिता
- विज्ञापन एवं जनसंपर्क • उड़िया पत्रकारिता • मलयालम पत्रकारिता
- उर्दू पत्रकारिता • मराठी पत्रकारिता

नवीनतम और सुसज्जित सुविधाएँ

- साउंड और टीवी स्टूडियो तथा ऑडियो विजुअल सेटअप
- डिजिटल इलेक्ट्रॉनिक कैमरों के साथ टीवी और वीडियो प्रोडक्शन
- मल्टी कैमरा स्टूडियो सेटअप • नॉन-लीनियर वीडियो एडिटिंग
- एडिटिंग कंसोल • डिजिटल साउंड रिकॉर्डिंग • डीएसएलआर कैमरा
- 4K वीडियो कैमरा • प्रोजेक्टर और वातानुकूलित कक्षाएँ
- कंप्यूटर लैब • मल्टीमीडिया सिस्टम
- वॉयस रिकार्डर, ग्राफिक और लेआउट डिजाइनिंग
- अपना रेडियो 96.9 एफएम

छात्रों को व्यावहारिक शिक्षा

- सीखने के मजबूत और व्यावहारिक तरीके
- नवीनतम तकनीक और सॉफ्टवेयर के साथ ज्ञान को बढ़ाना
- विशेष बीट रिपोर्टिंग सत्र
- मीडिया उद्योग के विशेषज्ञों के व्याख्यान

भारतीय जन संचार संस्थान (समविश्वविद्यालय)
(सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार)

जेएनयू न्यू कैंपस, अरुणा आसफ अली मार्ग, नई दिल्ली-110067
फोन : 011-26742920/296 | वेबसाइट: www.iimc.gov.in
ईमेल: iimc1965@gmail.com